विशय–सूची

प्रस्तावना

1. गांधी का संक्षिप्त परिचय
2. हिदं स्वराज
3. सत्याग्रह की परिकल्पना एवं सिद्वातं
4. आधुनिकता एवं गाधंी
5. सर्वोदयः एक मानवतावादी विकल्प
6. गाधंी और उत्तर आधुनिकता
7. न्यासिताः अर्थशास्त्र का नैतिक व आध्यात्मिक सिद्धान्त
8. स्वदेशी
9. अहिंसा
10. गाधंी का राष्ट्रवाद
11. रचनात्मक कार्यक्रम
12. स्वराज की अवधारणा
13. गाधंी तथा साम्प्रदायिक एकता
14. महिलाओं पर गाधंी के विचार
15. अस्पृश्यता और गाधंी
16. गाधंी और पर्यावरण
17. महात्मा गाधंी की प्रासंगिकता

एपेन्डिक्स – 1

गांधी के जीवन की महत्वपूर्ण घटनाएं

प्रस्तावना

एम.के. गांधी खुद अपने और बाकी दुनिया के लिए इतिहास बनाने वाले एक रचनात्मक व्यक्ति थे। वह बेहद जटिल विचारक होने के साथ ही अनोखी शख्सियत के भी धनी थे। उन्हें बड़े पैमाने पर तारीफ मिली लेकिन लोगों ने उन्हें गलत भी समझा। उनकी चिंता के विषय समकालीन होने के साथ समय से परे भी थे। गांधी कदम–दर–कदम चलते हुए उस ऊंचाई तक पहुंचने में सफल रहे जहां तक पहले कोई भी नहीं पहुंच सका था। अपने जीवनकाल में लाखों लोगों को प्रेरित करने वाले गांधी आज भी दुनिया भर में लोगों को प्रेरणा दे रह हैं। उनके विचार सर्वकालिक, समय–सिद्ध और आम लोगों के लिए सरल भाषा में लिखे हुए हैं। वह आम लोगों के बीच से बहुत बड़ी शख्सियत के रूप में उभरे और उन्होंने लाखों लोगों को राजनीतिक, सामजिक और मानवीय स्वतंत्रता के प्रति जागरूक बनाया। उन्होंने इन लोगों को गलत कार्यों के खिलाफ आवाज उठाने के लिए अधिकारों के अहिंसक व्यवहार का व्यावहारिक रास्ता भी सुझाया। संक्षेप में, गांधी सच्चाई से सच्चाई तक का सफर तय कर रहे थे और वह परिवर्तन के लिए अहिंसा की संस्कृति से परिचित कराने वाले विश्व इतिहास के पहले व्यक्ति थे।

महात्मा गांधी, बापू अथवा राष्ट्रपिता के रूप में मशहूर मोहनदास करमचंद गांधी बीसवीं सदी के दुनिया के नेताओं में सबसे ऊंची पायदान पर हैं। पूरी दुनिया में शांति, अहिंसा, सत्य, ईमानदारी, सनातन पवित्रता, करुणा के प्रति उनके लगाव तथा समूची आबादी को एकजुट करने और औपनिवेशिक दासता से देश को स्वतंत्र कराने तथा दुनिया को नया रास्ता दिखाने के लिए इन साधनों का उपयोग करने में मिली सफलता के लिए उन्हें याद किया जाता है।

गांधी ने इतिहास की दिशा बदल दी और नये इतिहास का सृजन किया। वह सिद्धांतों और दृढ़ प्रतिबद्धता वाले व्यक्ति थे और उन्होंने हमेशा वही कार्य किया जिसका वह दूसरों को उपदेश देते थे। उनके लिए सिद्धांत और व्यवहार में कोई विरोधाभास नहीं था और न ही सार्वजनिक तथा निजी जिंदगी को वह अलग रखते थे। जनसमुदाय खासकर वंचितों और दबे–कुचले लोगों की भाषा को समझने और उसे आवाज देने के कारण ही गांधी व्यापक स्तर पर दुनिया पर स्थायी असर छोड़ने में सफल रहे। यहां तक कि अपनी मौत के बाद भी गांधी विद्वानों, सामाजिक कार्यकर्ताओं, मीडिया, नीति–निर्माताओं और स्वप्न–द्रष्टाओं का न केवल भारत बल्कि विदेशों में भी ध्यान आकृष्ट करते रहते हैं।

गांधी हरेक लिहाज से एक महान व्यक्ति थे। दरअसल एक महान व्यक्ति को समझ पाना खासा मुश्किल होता हैं संस्कृत के महान विद्वान भवभूति सही ही कह गये हैं कि 'महान व्यक्ति

के मस्तिष्क को जानने और समझने का दावा वास्तव में कौन कर सकता है?' यह उद्धरण गांधी के संदर्भ में एकदम सटीक बैठता है।

यह पुस्तक गांधी अध्ययन और संस्थानों के क्षेत्र में दो दशकों के अनुसंधान, अध्यापन और प्रशासनिक अनुभव का नतीजा है। यह पुस्तक किसी आस्थावान व्यक्ति की आस्था को बदलने के लिए नहीं बल्कि सामान्य पाठकों के लिए लिखी गयी है। 'गांधी' समूची दुनिया को गुंजायमान कर रहे महात्मा गांधी की मूलभूत धारणाओं का गहन विश्लेषण करती हैं इस पुस्तक में गांधी के पुनर्मूल्यांकन और उनकी पुनर्खोज की विनम्र कोशिश की गयी है। पाठकों की सुविधा को ध्यान में रखते हुए यह पुस्तक सरल–सहल शैली में लिखी गयी है, जिससे विषय पर नयी रोशनी भी पड़ती हैं यह खंड सामाजिक विज्ञान, मानविकी और गांधी अध्ययन के क्षेत्र में पाठकों के विस्तृत फलक को ध्यान में रखकर तैयार किया गया है। यह गांधीवादी अध्ययन का चयन करने वाले उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय के छात्रों के लिए अनिवार्य पुस्तक है। साथ ही देश भर में गांधी को जानने–समझने में मददगार पुस्तक भी साबित होगी।

मित्रों और शुभेच्छुकों के समर्थन और सहयोग के बगैर इस पुस्तक का वर्तमान स्वरूप में आ पाना संभव नहीं था। मैं तहेदिल से उन सभी लोगों का शुक्रिया अदा करता हूं। मे माननीय कुलपति प्रो. एम.पी. दुबे जी का आभारी हॅूं। आप ने मेरे ऊपर विष्वास किया तथा हमे अपने मार्ग दर्षन मे पूरा पाठ तयार करवाऐ। आप के लिए मेरे पास अभिव्यक्ति के षब्द नहीं है। मैं आप का तहे दिल से शुक्रगुजार हूं।

––अनिल दत्त मिश्रा

लेखक परिचय

गांधीवादी विद्वान और कार्यकर्ता के दुर्लभ सम्मिश्रण वाले व्यक्तित्व के धनी डॉ. अनिल दत्त मिश्रा ने राजस्थान के लाडनूं स्थित जैन विष्व भारती विष्वविद्यालय के अहिंसा एवं शांति अध्ययन विभाग में असिस्टेंट प्रोफेसर के रूप में अपने करियर की शुरुआत की थी।

डॉ. मिश्रा इंडियन सोसायटी ऑफ गांधियन स्टडीज, एलायंस फार सर्वोदय के महासचिव तथा नागपुर और पंजाब विश्वविद्यालयों के बोर्ड आफ स्टडीज के सदस्य रहे हैं। भारत के विभिन्न कॉलेजों और विश्वविद्यालयों के गांधी अध्ययन केन्द्रों के सदस्य हैं। इसके अलावा आप भारतीय लाक प्रशासन संस्थान की क्षेत्रीय शाखा के कार्यकारी सदस्य भी हैं। आपने 30 पुस्तकों का लेखन और सम्पादन किया है और 50 से अधिक शोध पत्र प्रकाशित हुए हैं। आप राष्ट्रीय गांधी संग्रहालय के उपनिदेशक हैं।

पुस्तक के विषय में

एम.के. गांधी खुद अपने और बाकी दुनिया के लिए इतिहास बनाने वाले एक सृजनात्मक व्यक्ति थे। वह बेहद जटिल विचारक होने के साथ ही अनोखी शख्सियत के भी धनी व्यक्ति थे। उन्हें व्यापक स्तर पर तारीफ मिली लेकिन उन्हों लोगों ने गलत भी समझा। उनकी चिन्तन के विषय समकालीन होने के साथ ही समय से परे भो थे।

गांधी कदम–दर–कदम चलते हुए उस ऊंचाई तक पहुंचने में सफल रहे जहां तक पहले कोई भी नहीं पहुंच सका था। अपने जीवनकाल में लाखों लोगों को प्रेरित करने वाले गांधी आज भी दुनिया भर में लोगों को प्रेरणा दे रहे हैं। उनके विचार सर्वकालिक, समय–सिद्ध और आम लोगों के लिए सरल भाषा में लिखे हुए हैं। वह आम लोगों के बीच से बहुत बड़ी शख्सियत के रूप में उभरे और उन्होंने लाखों लोगों को राजनीतिक, सामजिक और मानवीय स्वतंत्रता के प्रति जागरूक बनाया। उन्होंने इन लोगों को गलत कार्यों के खिलाफ आवाज उठाने के लिए अधिकारों के अहिंसक व्यवहार का व्यावहारिक रास्ता भी बताया। संक्षेप में, गांधी सच्चाई से सच्चाई तक का सफर तय कर रहे थे और वह परिवर्तन के लिए अहिंसा की संस्कृति से परिचित कराने वाले विश्व इतिहास के पहले व्यक्ति थे।

सरल और सुबोध शैली में लिखी गयी यह पुस्तक पाठकों की मददगार और उन्हें इस विषय पर नयी अंतर्दृष्टि प्रदान करने वाली साबित होगी। यह पुस्तक सामाजिक विज्ञान, मानविकी और गांधीवादी अध्ययन के क्षेत्र से जुड़े पाठकों के विस्तृत फलक को संबोधित है। यह

गांधीवादी अध्ययन का चयन करने वाले दिल्ली विश्वविद्यालय के छात्रों के लिए अनिवार्य पुस्तक होने के साथ ही देश भर में गांधी के बारे में जानने–समझने में मददगार पुस्तक साबित होगी।

गांधी:सिन्द्धान्त और व्यवहार

अनिल दत्त मिश्र

अध्याय –1

गांधी का संक्षिप्त परिचय

परिचय

मोहनदास करमचंद गांधी भारत के स्वतंत्रता से पहले और बाद में सबसे महत्वपूर्ण नेता हैं, जिन्होंने भारतीय स्वतंत्रता के दौरान इतिहास बदल दिया। वे सवज्ञा जन–आंदोलन के जरिए सत्याग्रह का इस्तेमाल करने वालों में प्रथम थे। उनक सत्याग्रह की अवधारणा पूरी तरह से अहिंसा पर आधारित थी। यह अवधारणा गांधी के विचारए कर्म और व्यवहार में दिखाई देती है। गांधी के नेतृत्व में भारत ने स्वतंत्रता हासिल की ओर वे दुनिया भर में नागरिक अधिकारों और स्वतंत्रता आंदोलन के प्रेरणा–स्रोत बने। महात्मा गांधी जटिल विचारक और अद्वितीय व्यक्तित्व थे। महात्मा गांधी को विष्वभर में भारी प्रषंसा मिली है लेकिन उन्हें गलत समझा गया है।

सबसे पहले रविन्द्रनाथ टैगोर ने गांधी को ''महात्मा'' का नाम दिया और नेताजी सुभाष चन्द्र बोस ने उन्हें ''राष्ट्रपिता'' कहकर पुकारा। पष्चिम में चर्चिल ने गांधी को ''अधनंगा'' विद्रोही फकीर कहा। लार्ड वावेल और लार्ड विलिंगटन ने गांधी को ब्रिटिष साम्राज्य का सबसे बड़ा शत्रु बताया। मोहम्मद अली जिन्ना ने उन्हें कट्टर हिन्दू कहा जबकि दक्षिणपंथी वीर सावरकर, डॉ. के. एस. हेगडे वार और एम.एस. गोलंवलकर ने गांधी ''महान आत्मा'' लेकिन मुसलमान समर्थक था। लार्ड माउंटबैटन ने गांधी को एकल व्यक्ति सेना कहा। टाईम पत्रिका ने दलाई लामा, लेक वालेसा, मार्टिन लूथर किंग, लेजर चावेज, आंग सान सू की, बेनिगनो एक्विनो जूनियर, डेसमंड टूटू और नेलसन मंडेला को गांधी की संतान बताया है और उन्हें गांधी की अहिंसा के आध्यात्मिक उत्तराधिकारी कहा है। गांधी ऐसे व्यक्ति हैं जिनके सरोकार समसामयिक लेकिन वे सर्वकालिक हो गए हैं।

गांधी प्रचुर मात्रा में लिखने वाले लेखक हैं और उन्होंने अनेक पुस्तकें लिखी हैं। इनमें उनकी आत्मकथा मेरे सत्य के प्रयोग, दक्षिण अफ्रीका में सत्याग्रह, हिन्द स्वराज, जान रस्किन की अनटू द लास्ट का गुजराती में संक्षिप्त संस्करण–सत्याग्रह आदि प्रमुख है। गांधी ने भगवद गीता पर गुजराती में टीका लिखी है। जिसका महादेव देसाई ने अंग्रेजी में अनुवाद किया ओर यह वर्ष 1946 में प्रकाषित की गयी। उन्होंने शाकाहार, भोजन, स्वास्थ्य, धर्म, सामाजिक सुधार

आदि पर व्यापक रूप से लिखा है। गांधी मूल रूप से गुजराती में लिखते थे। उन्होंने दषकों तक हरिजन सहित अनेक समाचार पत्र का हिन्दी, गुजराती और अंग्रेजी में संपादन किया। इसी तरह से गांधी ने दक्षिण अफ्रीका में अंग्रेजी, तेलुगू, हिन्दी और गुजराती में इंडियन ओपिनियन निकाला। इसके अलावा अंग्रेजी में यंग इंडियन और गुजराती में नवजीवन का संपादन किया। बाद में नवजीवन का प्रकाषन हिन्दी में भी किया गया। इसके अतिरिक्त गांधी प्रतिदिन समाचार पत्रों और अन्य लोगों को अनेक पत्र लिखते थे। महात्मा गांधी की संपूर्ण रचनाओं को भारत सरकार ने ''महात्मा गांधी संकलन'' के नाम से एक सौ भागों में प्रकाषित किया है।

परिवार और बचपन :

मोहनदास करमचंद गांधी का जन्म दो अक्टूबर 1869 को गुजरात के तटीय षहर पोरबंदर की सुदामापुरी में हुआ था। उनके पिता करमचंद गांधी ब्रिटिष षासन के अधीन काठियावाड़ एजेंसी की छोटी–सी रियासत पोरबंदर के दीवान थे। वे हिन्दू मोठ बनिया समुदाय से संबद्ध रखते थे। वे सच्चे, ईमानदार, साहसी और सिद्धांतों में विष्वास करने वाले व्यक्ति थे। उन्होंने कभी भी ज्यादा धन–संपदा एकत्र करने की महत्वकांक्षा नहीं थे। उनका परिवार छोटी–सी संपदा के आधार पर चलता था। गांधी के दादा का नाम उत्तमचंद गांधी था। गांधीजी की माता पुतली बाई थी और वह हिन्दू परणामी वैष्णव समुदाय की थी। वह करमचंद की चौथी पत्नी थी। इससे पूर्व उनकी तीन पत्नियों की मृत्यु प्रसव के दौरान हो गयी थी। धार्मिक स्वभाव की माता और क्षेत्र जैन धर्म ने मोहनदास को शुरुवाती जीवन में ही प्रभावित कर लिया और इस प्रभाव ने उनके पूरे जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। गांधीजी की माता धार्मिक विष्वासों और पूजापाठ करने वाली महिला थी। वह शराब और तंबाकू के सख्त खिलाफ थी। उनकी धर्म में गहरी आस्था थी ओर वे प्रार्थना किए बगैर कभी भोजन ग्रहण नहीं करती थी। महात्मा गांधी ने ऐसे बहुत सारे गुण उनसे ग्रहण किए हें। माता की धार्मिकों के प्रति गहरी आस्था ने महात्मा गांधी के व्यक्तित्व पर अमिट छाप छोड़ी।

गांधी के प्रारंभिक और माध्यमिक स्तर की स्कूली षिक्षा राजकोट में हुई। उनको 12 वर्ष की आयु में अल्फ्रेड हाई स्कूल भेजा गया। वे साधारण किस्म के साधारण विद्यार्थी थे। वे शर्मीले और अन्य बालकों के साथ कम मेलजोल बढाने वाले बालक थे। पूरी स्कूली षिक्षा के दौरान उन्होंने कभी अपने अध्यापकों या

सहपाठियों से झूठ नहीं बोला। अपने बाल्याकाल में गांधी संस्कृत के एक प्राचीन नाटक ''श्रवण पितृ–भक्ति'' से बेहद हुए। इस नाटक में माता–पिता के प्रति श्रवण के श्रद्धाभाव को प्रकट किया गया है। यह नाटक के बाद माता–पिता की आज्ञापालन गांधीजी का ध्येय बन गया। राजा हरिष्चंद्र से संबद्ध एक अन्य नाटक का भी गांधी पर असर पड़ा जिससे उनके जीवन में सच्चाई और गंभीरता आयी।

मई 1883 में 13 वर्षीय मोहनदास का विवाह एक व्यापारी गोकुलदास माकन की पुत्री 14 वर्षीया कस्तूरबाई माकनजी के साथ संपन्न हुआ। बाद में उनका नाम कस्तूरबा पड़ा और लोग प्यार से उन्हें ''बा'' कहते थे। यह क्षेत्र के रीति रिवाजों के अनुसार परंपरागत तरीके से संपन्न बाल–विवाह था। अपने विवाह के दिनों को याद करते हुए गांधीजी ने एक बार कहा था––''हमें विवाह के बारे में ज्यादा कुछ नहीं पता था। हमारे लिए विवाह का मतलब केवल नए कपड़े पहनना, मिठाई खाना और रिष्तेदारों के साथ खेलना था।'' हालांकि उस समय क्षेत्र में यह परंपरा थी कि किषोरावस्था की दुल्हन को काफी लम्बा समय अपने पति से दूर अपने माता–पिता के घर बिताना होता था। वर्ष 1885 में 15 वर्ष की आयु में गांधीजी पिता बने। लेकिन वह बच्चा दुर्भाग्य से कुछ ही दिन जीवित रह सका। इसी वर्ष गांधीजी के पिता करमचंद गांधी भी स्वर्ग सिधार गए। मोहनदास और कस्तूरबा के चार बच्चे, सभी पुत्र––हरिलाल (1888), मणिलाल (1892), रामदास (1897) और देवदास (1900) हुए। कस्तूरबा जीवन भर गांधीजी के साथ उनके सभी संघर्षों में मजबूती के साथ खड़ी रही और उनकी पक्की और कट्टर समर्थक साबित हुई।

ज्ञान की ओर

गांधीजी ने मैट्रिक की परीक्षा गुजरात के भावनगर में सेमलदास कॉलेज से उत्तीर्ण की। गांधीजी चार सितंबर 1888 को कानून की पढ़ाई के लिए लंदन (इंगलैंड) के लिए रवाना हुए। वहां उन्होंने युनिवर्सिटी कॉलेज में प्रवेष लिया। भारत छोड़ते समय गांधीजी को उनकी माता ने जैन भिक्षु बेचारजी के समक्ष मांस और षराब का इस्तेमाल नहीं करने की षपथ दिलाई। हालांकि गांधीजी ने इंगलैंड में इंगलिष रीति–रिवाजों को अपनाया और नृत्य कक्षाओं में हिस्सा लिया। इंगलैंड में उन्होंने षाकाहार पर साल्ट की एक पुस्तक पढ़ी। इससे उन्हें न केवल षाकाहारी रहने में माता के समक्ष ली गयी षपथ निभाने में मदद मिली

बल्कि उन्होंने अपने जीवन में षाकाहार को एक सिद्धांत के तौर पर अपना लिया। इसके बाद षाकाहार का संदेष फैलाना उनके जीवन का लक्ष्य बन गया। इस प्रयास ने उन्हें और ज्यादा सामाजिक और लोकप्रिय बना दिया। इसी समय गांधीजी का परिचय एक कवि हुनाचंद्र से हुआ। उनके अनुरोध पर गांधीजी ने इंग्लिष पढ़ाना षुरू किया। इससे गांधीजी एक इंग्लिष जैंटल मैन की भूमिका में आ गए, लेकिन उन्होंने जीवन भर एक विद्यार्थी के अनुषासन को बरकरार रखा।

गंधीजी लंदन में धर्मवादियों के संपर्क में आए। उन्होंने गांधीजी को गीता के बारे में बताया। बाद के जीवन में गांधीजी प्रतिदिन गीता पढ़ने लगे। गीता गांधीजी के लिए ''विष्व सृजन की कुंजी'' थी। उन्होंने गीता को अपनी माता, कामधेनु, पथ–प्रदर्षक और जीवन का स्रोत बताया है। उन्होंने बाईबिल पढ़ना षुरु किया और न्यू टेस्टामेंट, विषेषकर पर्वत पर उपदेष में गहरी रुचि दिखाई। उन्होंने एडविन अर्नोल्ड की 'द लाइट ऑफ एषिया'' पढ़ी और महात्मा बुद्ध के उपदेषों से प्रभावित हुए। गांधीजी ने अपने एक मित्र की सिफारिष पर कार्लाइले की ''हीरोज एंड हीरो वारषिप'' पुस्तक पढ़ी और पैगम्बर मोहम्मद के बारे में जाना।

ल्दन में बिताए गए तीन साल गांधीजी के लिए सामाजिक, नैतिक और बौद्धिक रूप से परिपक्व होने का समय था। इस दौरान उन्होंने न केवल षैक्षिक रूप से अवसर का इस्तेमाल किया बल्कि बौद्धिक, धार्मिक और सांस्कृतिक रूप से प्रमाणित भी हुए। इसी समय उन्हें अपने परंपरागत नैतिक मूल्यों को आंकने का समय भी मिला। उनको इसी समय पहली बार यह अवसर मिला कि वे अपने जीवन को दिषा दे और अपनी प्राथमिकताएं और मूल्य तय करें।

गांधीजी को 10 जून, 1891 को बैरिस्टर की उपाधि के लिए भारत मिल गया। दो दिन बाद वह लंदन से रवाना हो गए। इसी समय उनको पता चला कि उनकी माताजी का स्वर्गवास हो चुका है। परिजनों ने गांधीजी को यह बात लंदन प्रवास के दौरान नहीं बताई।

टाजीविका की तलाश में :

गांधीजी ने बम्बई अपनी वकालत जमाने की असफल कोषिष की। इसके लिए उन्होंने एक हाईस्कूल में अंषकालिक अध्यापन के लिए आवेदन किया जिसे स्वीकार नहीं किया गया। इसके बाद वे बम्बई से राजकोट लौटे। यहां उन्होंने लोगों को कानूनी सलाहें देनी षुरू की, जिसे उन्होंने एक अंग्रेज अधिकारी से

उलझने के कारण बंद कर दिया। अपनी आत्मकथा में गांधीजी ने इस घटना का जिक्र अपने बड़े भाई के पक्ष में किया गया असफल प्रयास बताया है। इन परिस्थितियों में अप्रैल 1893 को गांधीजी ने दादा अब्दुल्ला एंड कम्पनी का वर्षीय करार स्वीकार कर लिया। इसके तहत उन्हें कम्पनी के दक्षिण अफ्रीका के नेताल कार्यालय में तैनात किया जाना था।

दक्षिण अफ्रीका में :

गांधीजी अप्रैल 1893 में दक्षिण अफ्रीका के लिए रवाना हो गए। हालांकि उनका परिवार भारत में ही रह गया। दक्षिण अफ्रीका में उनका सामना नस्लवाद, भेदवाद, पूर्वग्रह और अन्य दमनात्मक वातावरण से हुआ। भारतीयों के साथ गुलामों और नौकरों की तरह व्यवहार किया जाता है। एक घटना ने गांधीजी का दिमाग़ और जीवन पूरी तरह से बदल दिया और वे खुलकर अन्याय के खिलाफ संघर्ष के लिए तैयार हो गए। वे डरबन से प्रिटोरिया जा रहे थे। रास्ते में उन्हें मार्टिजवर्ग रेलवे स्टेषन पर धक्के देकर उतार दिया गया। हालांकि उनके पास प्रथम श्रेणी का टिकट था। रेलगाड़ी अपने रास्ते पर बढ़ गयी और गांधीजी प्लेटफार्म पर अकेले रह गए। यह सर्दी का मौसम था और भयानक ठंड थी। पूरी रात उनकी आंखों में गुजर गयी। उन्होंने इस अन्याय और भेदभाव के खिलाफ संघर्ष करने और इसका समूल नाष करने का निष्चय किया। वे अपनी वकालत के जरिए इसका विरोध करने लगे।

दक्षिण अफ्रीका की घटनाओं ने गांधीजी को भारतीय समुदाय को एकत्र करने के लिए प्रेरित किया। एक जनसभा में उन्होंने भारतीयों से अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करने और जाति, जन्म और धर्म से ऊपर उठने का कहा। उन्होंने भारतीयों का एक संगठन स्थापित करने पर जोर दिया जो उनके अधिकारों की देखरेख करें। उन्होंने इस संगठन को अपनी सेवा ओर समय मुफ्त में देने का प्रस्ताव किया। गांधीजी ने अब्दुल्ला एंड कंपनी के साथ अपना अनुबंध पूरा किया और इसके बाद 20 वर्ष तक दक्षिण अफ्रीका में रहे। इस दौरान वे भारतीय समुदाय के अधिकारों के लिए सक्रियता से संघर्ष करते रहे।

दक्षिण अफ्रीका के प्रवास के दौरान गांधीजी के जीवन जीने के तरीके में जबरदस्त बदलाव आया। उनकी जीवनषैली साधारण से साधारण होती गयी। वे अपना घरेलू काम–काज स्वयं करने लगे। उन्होंने कपड़ों पर नाममात्र का खर्चा करना तय किया। उन्होंने अस्पतालों में स्वयंसेवक के तौर पर काम किया। वे

लोगों के जीवन के प्रभावित करने वाले मुद्दे जैसे रंगभेद, गरीबी और असमानता का कड़ा विरोध करते थे।

दक्षिण अफ्रीका में गांधीजी ने सामाजिक न्याय के लिए संघर्ष किया और जीत हासिल की। जॉन रस्किन की पुस्तक ''अनटू दिस लास्ट'' पढ़ने के बाद उन्होंने अपनी जीवनषैली में बदलाव करने का फैसला। उन्होंने एक आश्रम की स्थापना की और उसे फीनिक्स का नाम दिया। फीनिक्स डरबन में टालस्टाय फार्म के नजदीक स्थापित किया गया। जनवरी 1915 में गांधी भारत लौटे और वह वकील के रूप में नहीं बल्कि सामाजिक न्याय और समानता के एक अनुभव कार्यकर्ता के तौर पर आए थे। गांधीजी भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में परिचय गोपाल कृष्ण गोखले ने कराया। गांधीजी ने कांग्रेस के एक अधिवेषन में भारतीय मुद्द, राजनीति और भारतीयों को केन्द्र में रखकर भाषण किया।

गांधीजी का यह पूरी तरह से मानना था कि सार्वजनिक जीवन जीने वाले व्यक्ति की जीवनषैली साधारण होनी चाहिए। उन्होंने इसे अपने जीवन में उतारते हुए पष्चिमी वस्त्रों का परित्याग कर दिया। पष्चिमी रहन–सहन सफलता और समृद्धि का प्रतीक माना जाता था।

भारत में सत्याग्रहः

दक्षिण अफ्रीका से लौटने के बाद पहला साल गांधीजी पूरे देष के भ्रमण पर रहे। इस दौरान वे ''बंद मुंह और खुले आंख कान'' से भारत को देखते समझते रहें। वर्ष 1917 में उन्होंने बिहार के चंपारण में अपना पहला सत्याग्रह आरंभ किया, जिसमें उन्हें सफलता प्राप्त हुई। इसके बाद अहमदाबाद में कपड़ा मिल में बोनस के मुद्दे पर हड़ताल हुई। यह हड़ताल 21 दिन चली और गांधीजी ने अपना पहला तीन दिन का उपवास रखा। यह उपवास भी सफल रहा। मिल मालिकों और मजदूरों में जल्दी समझौता हो गया। गांधीजी का अगला सत्याग्रह गुजरात के खेड़ा जिले में हुआ। फसलों के खराब होने के कारण किसान लगान के संबंध में कुछ रियायत चाहते थे। इस सत्याग्रह में राष्ट्रीय स्तर के कई नेताओं ने हिस्सा लिया और सरकार ने आकलन का काम निलंबित कर दिया। गांधीजी की लोकप्रियता बढ़ती रही। इस स्वतंत्रता के आंदोलन में लोगों की सहभागिता बढ़ी। गांधीजी ने असहयोग आंदोलन शुरू किया जिसमें समाज के सभी वर्गों ने हिस्सा लिया।

गांधीजी और अन्य ने 11 मार्च 1930 को साबरमती आश्रम से डांडी के लिए 240 मील लम्बी पैदल यात्रा शुरू की। गांधीजी और उनके सहयोगियों ने 6 अप्रैल 1930 को डांडी में नमक कानून तोड़ा। भारत का कोई भी हिस्सा इससे अछूता नहीं रहा। उन्हें अपार जन–समर्थन मिला और पूरा राष्ट्र उनके साथ खड़ा हो गया। इस सत्याग्रह से स्वराज की नींव पड़ी और यह न केवल भारत से बल्कि पूरी दुनिया से ब्रिटिष राज के उन्मूलन की षुरूआत थी। मैं इस मनमानी के खिलाफ अधिकारों के संघर्ष में पूरे विष्व का समर्थन चाहता हूं। ––डांडी : 5 अप्रैल, 1930।

सरकार ने लार्ड एडवर्ड इर्विन के प्रतिनिधित्व में गांधीजी के साथ बातचीत करने का फैसला किया। इसके परिणामस्वरू‌‌प मार्च 1931 में गांधी–इर्विन समझौते पर हस्ताक्षर किए गए। ब्रिटिष सरकार ने सभी राजनीतिक बंदियों को रिहा करने पर सहमति जताई। इसके बदले में नागरिक सविज्ञा आंदोलन स्थगित करना पड़ा। इस समझौते के परिणाम स्वरूप लंदन में गोलमेज सम्मेलन आयोजित किया। इसमें गांधीजी को भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के एकमात्र प्रतिनिधि के तौर पर आमंत्रित किया गया। इस सम्मेलन से गांधीजी और अन्य राष्ट्रवादी निराष हुए क्योंकि यह मुख्य रूप से राजे–रजवाड़ों और अल्पसंख्यकों पर केन्द्रित रही। इसमें सत्ता हस्तांतरण पर अर्थपूर्ण बात नहीं हो सकी।

वर्ष 1932 में सरकार ने नए संविधान के तहत अछूतों के लिए अलग निर्वाचन प्रणाली की व्यवस्था की। इसके विरोध में गांधीजी ने सितंबर 1932 में छह दिन का अनषन किया। भारी जन दबाव में सरकार को पातावलंकर बालू की मध्यस्थता में बातचीत के जरिए समान निर्वाचन प्रणाली स्वीकार करनी पड़ी। इससे गांधीजी ने अछूतों के जीवन स्तर को सुधारने के लिए नया आंदोलन शुरू किया गया। उन्होंने अछूतों को नया नाम ''हरिजन''– ''ईष्वर की संतान''–– कहा। गांधीजी ने 8 मई 1933 को हरिजन आंदोलन की मदद के लिए आत्मषुद्धि के वास्ते 21 दिन का उपवास किया। गांधीजी ने दलितों के जीवन–स्तर में सुधार के लिए बहुत काम किए।

वर्ष 1936 में कांग्रेस के लखनऊ अधिवेषन और नेहरू के अध्यक्ष बनने के बाद गांधीजी सक्रिय राजनीति में लौटे। गांधीजी अपना ध्यान पूरी तरह से स्वतंत्रता पर केन्द्रित करना चाहते थे और भारत के भविष्य के बारे में अटकलबाजी नहीं करते थे। उन्होंने कांग्रेस को समाजवाद का लक्ष्य हासिल करने का मकसद

स्वीकार करने से नहीं रोका। सुभाष चंद्र बोस 1938 में कांग्रेस के अध्यक्ष बन गए। गांधीजी की आलोचना के बावजूद सुभाष को दुबारा कांग्रेस का अध्यक्ष चुना गया। उन्होंने कांग्रेस में लागू किए सिद्धांतों को छोड़ना शुरु किया तो अखिल भारतीय नेताओं ने सामूहिक रूप से इस्तीफा दे दिया। इसके बाद सुभाष चन्द्र बोस ने कांग्रेस छोड़ दी।

आजादी की ओर :

वर्ष 1939 में द्वितीय विष्व युद्ध शुरू हो गया। गांधीजी ब्रिटिष शासन को युद्ध में ''अहिंसक नैतिक सहयोग'' देने के पक्ष में थे लेकिन कांग्रेस के अन्य नेता भारत को एकतरफा रूप से युद्ध में झोंक देने से नाराज थे। उनका कहना था कि ब्रिटिष शासन ने भारत को युद्ध में शामिल करने से पहले निर्वाचित प्रतिनिधियों से कोई सलाह मषविरा नहीं किया है। इसके विरोध में उन्होंने अपने पदों से इस्तीफा दे दिया। काफी लम्बे विचार–विमर्ष के बाद घोषित किया कि लोकतांत्रिक स्वतंत्रता के लिए लड़े जा रहे इस युद्ध में भारत पक्षकार नहीं बनेगा क्योंकि उसे स्वतंत्रता देने से इंकार किया गया है। जैसे–जैसे युद्ध सघन होता गया वैसे–वैसे गांधीजी ने आजादी की मांग तेज कर दी। इसी समय ''अंग्रेजो, भारत छोड़ो'' का आह्वान करते हुए एक प्रस्ताव तैयार किया गया।

स्वतंत्रता संघर्ष के इतिहास में भारत छोड़ो आंदोलन सबसे सषक्त आंदोलन बना। इस दौरान बड़े पैमाने पर हिंसा हुई और गिरफ्तारियां की गयी। पुलिस की गोली से हजारों स्वतंत्रता सेनानी मारे गए या घायल हुए। लाखों लोग जेलों में ठूंस दिए गए। गांधीजी और उनके सहयोगियों ने यह साफ कर दिया कि भारत को आजादी मिलने तक युद्ध में अंग्रेजों का साथ नहीं दिया जाएगा। गांधीजी ने साफ कह दिया कि व्यक्तिगत हिंसा के कारण आंदोलन नहीं रोका जाएगा। उन्होंने कहा कि व्यवस्थागत अराजकता, वास्तविक अराजकता से भी बुरी है। उन्होंने सभी कांग्रेस जनों और भारतीयों से अहिंसा के जरिए अनुषासन बनाए रखने की अपील की और ''करो या मरो'' का मंत्र दिया।

ब्रिटिष सरकार ने 9 अगस्त 1942 को गांधीजी और कांग्रेस कार्यकारी समिति के सभी सदस्यों को मुंबई में गिरफ्तार कर लिया। गांधीजी को दो वर्ष के लिए पुणे के आगा खान पैलेस में नजरबंद कर दिया गया। यहीं पर गांधीजी को व्यक्तिगत जीवन में दो बड़े झटके सहने पड़े। उनके निजी सचिव पचास वर्षीय महादेव देसाई का हृदयाघात से निधन हो गया और इसके छह दिन बाद ही 22

फरवरी 1944 को कस्तूरबा गांधी स्वर्ग सिधार गयीं। गांधीजी को खराब स्वास्थ्य के कारण युद्ध समाप्ति के पहले 6 मई 1944 को रिहा कर दिया गया। इसके बाद गांधीजी को एक के बाद एक सफलता मिलती गयी और उनके नेतृत्व में भारत 15 अगस्त 1947 को आजाद हो गया।

इस दौरान भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और गांधीजी ने अंग्रेजों से भारत छोड़ने का आह्वान किया तो मुस्लिम लीग ने वर्ष 1943 में देष का विभाजन करके जाने संबंधी प्रस्ताव पारित किया। माना जाता है कि महात्मा गांधी आजादी के दौरान देष के विभाजन संबंधी मांग के खिलाफ थे और उन्होंने एक समझौता भी सुझाया था जिस पर कांग्रेस और मुस्लिम लीग दोनों की सहमति जरूरी थी। इसमें कहा गया था कि एक अस्थायी सरकार के कार्यकाल में आजादी हासिल की जाए और फिर मुस्लिम आबादी की बहुलता वाले जिलों में जनमत संग्रह कराकर विभाजन के सवाल को भी हल किया जा सकता है। जब जिन्ना ने 16 अगस्त 1946 को 'प्रत्यक्ष कार्रवाई' का आह्वान किया तो गांधी बहुत क्रुद्ध हो गये थे और वे दंगों से सबसे अधिक प्रभावित इलाकों में लोगों का कत्ले आम रोकने के लिए चल पड़े थे। उन्होंने भारतीय हिन्दुओं, मुसलमानों और ईसाइयों को एकजुट रखने के लिए कड़ी मेहनत की और हिन्दू समाज में 'अछूतों' को भी दूसरों की तरह राजनीतिक–सामाजिक अधिकार दिये जाने की लड़ाई लड़ी।

14 और 15 अगस्त 1947 को भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम लागू कर दिया गया और उसी के साथ इस पूर्व ब्रिटिष भारतीय साम्राज्य में लगभग 1.25 करोड़ लोगों का विस्थापन भी देखने को मिला। इस विस्थापन के दौरान मरने वाले लोगों का आंकड़ा कुछ लाख से लेकर दस–लाख तक होने का अनुमान है।

बलिदान

गांधीजी नियमित रूप से प्रार्थना सभा किया करते थे जिनमें सभी धर्मों एवं सम्प्रदायों के लोग शामिल होने के लिए स्वतंत्र थे। ऐसी ही एक प्रार्थना सभा में 30 जून 1948 को नाथूराम गोड्से ने उनकी हत्या कर दी। वह ''हे राम'' शब्द का उच्चारण करते हएु जमीन पर गिर पड़े थे। इस तरह अहिंसा का प्रचाकर हिंसा का षिकार हो गया। यमुना नदी के तट पर 31 जनवरी 1948 को उनकी पार्थिव देह राख में तब्दील हो गयी। गांधीजी की हत्या के बाद जवाहरलाल नेहरू ने राष्ट्र को रेडियो के जरिए संबोधित करते हुए कहा, ''हमारी जिंदगी से रोषनी चली गयी है और चारों तरफ अंधेरा ही है। मैंने रोषनी चले जाने की बात

कही वह गलत है। हमारे देष में चमकने वाली यह रोषनी कोई आम रोषनी नहीं थी, यह ऐसी रोषनी थी जिसने तात्कालिक समय से कहीं अधिक चीजों का प्रतिनिधित्व किया। इसने जीवन, शाष्वत सत्य को दर्षाया, हमें सही रास्ते के बारे में याद दिलाया, हमें गलतियों से दूर रखा और इस प्राचीन देष को आजादी के मुकाम तक पहुंचाया। एक बड़ी त्रासदी हमें जिंदगी की सभी बड़ी चीजों के बारे में याद दिलाने तथा उन छोटी चीजों को भूल जाने का प्रतीक है जिनके बारे में हम बहुत अधिक सोचते रहते हैं। अपनी मौत से भी वह हमें जीवन की बड़ी चीजों, शाष्वत सत्य की याद दिला गये हैं। अगर हमें यह चीज ध्यान रही तो यह भारत के लिए अच्छा ही होगा।''

गांधीजी ने मार्टिन लूथर किंग, जेम्स लासन, नेल्सन मंडेला, खान अब्दुल गफ्फार खां, स्टीव बिको, आंग सान सूची और बेनिग्नो अकिनो जैसे कई प्रमुख नेताओं और राजनीतिक आंदोलनों को प्रभावित किया। मार्टिन लूथर किंग जूनियर ने 1955 में कहा, ''यीषू ने हमें लक्ष्य दिये और महात्मा गांधी ने उन्हें हासिल करने के खास तरीके बताये।'' अमेरिकी राष्ट्रपति बराक ओबामा ने सितंबर 2009 में वेकफील्ड हाईस्कूल में दिये अपने भाषण में कहा ि कवह अपनी जिंदगी में सबसे ज्यादा महात्मा गांधी से प्रेरित हुए। ओबामा ने 2010 में भारतीय संसद के संयुक्त अधिवेषन को संबोधित करते हुए कहा, ''मुझे इस बात का एहसास है कि अगर गांधी और अमेरिका सहित पूरी दुनिया के लिए दिये गये उनके संदेष नहीं होते तो मैं आज अमेरिका के राष्ट्रपति के रूप में आज आपके समक्ष खड़ा नहीं होता।''

गांधी की जिंदगी और उनकी षिक्षाओं ने बहुतों को प्रभावित किया जो गांधी को अपना मार्गदर्षक बताते हैं अथवा जिन्होंने अपनी पूरी जिंदगी गांधी के विचारों के प्रचार–प्रसार के लिए समर्पित कर दी। गांधी की पहली जीवनी ''गांधी : ए पैट्रियर इन साउथ अफ्रीका'' 1905 में लंदन इंडियन क्रानिकल में जब प्रकाषित हुई थी उस समय गांधी अधिक चर्चित शख्सियत नहीं थे। यह जीवनी जोसफ जे. ड्रोक ने लिखी थी। यूरोप में सबसे पहले रोमा रोलां ने 1924 में प्रकाषित अपनी पुस्तक 'महात्मा गांधी' के जरिए गांधी के बारे में चर्चा की थी। ब्राजील की अराजकतावादी–नारीवादी लेखिका मारिया लासेर्दा दि मूरा ने भी शांतिवाद संबंधी अपने लेखन में गांधी का उल्लेख किया था। कई जीवनी–लेखकों ने गांधी के जीवन का विवरण देने की भी कोषिष की। इनमें डी.जी. तेंदुलकर की आठ खंडों में प्रकाषित ''महात्मा : लाइफ ऑफ मोहनदास करमचंद गांधी'' तथा

प्यारेलाल और सुषीला नायर की दस खंडों में प्रकाषित 'महात्मा गांधी' पुस्तकें शामिल हैं।

फिल्मों, साहित्य और रंगमंच में भी महात्मा गांधी को रूपायित करने की कोषिष की गयी है। वेन किंग्सले ने 1982 में प्रदर्षित फिल्म 'गांधी' में शीर्षक भूमिका निभायी थी। वर्ष 2006 में प्रदर्षित बालीवुड फिल्म 'लगे रहो मुन्ना भाई' की मुख्य कथावस्तु गांधी के विचार ही हैं। इसी तरह सन् 2007 में आयी फिल्म 'गांधी माई फादर' गांधी और उनके बड़े बेटे हरिलाल के रिष्तों को बयान करती है। वर्ष 1996 में आयी फिल्म 'द मेकिंग ऑफ महात्मा' ने गांधी के दक्षिण अफ्रीका प्रवास को पेष किया था। गांधी के जीवन और उनके कृत्यों के बारे में विस्तार से चर्चा करता वृत्तचित्र 'महात्मा : लाइफ ऑफ गांधी' भी है जो 14 खंडों में है और छह घंटे की अवधि वाला है।

प्रतिष्ठित पत्रिका 'टाइम' ने 1930 में गांधी को 'साला का सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति' घोषित किया था। बीसवीं सदी के सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति के लिए वर्ष 1999 में कराये गये एक सर्वेक्षण में गांधी महान वैज्ञानिक अल्बर्ट आइंस्टीन के बाद दूसरे स्थान पर रहे थे। टाइम पत्रिका ने ही गांधी को वर्ष 2011 में 25 सर्वकालिक राजनीतिक हस्तियों में से एक बताया। संयुक्त राष्ट्र महासभा ने 15 जून 2007 को सर्वसम्मति से एक प्रस्ताव पारित करके गांधी के जन्म दिन 02 अक्टूबर को ''अंतर्राष्ट्रीय अहिंसा दिवस'' के रूप में मनाये जाने का फैसला किया। गांधी के शहादत दिवस 30 जनवरी को पहले से ही कई देषों में स्कूली स्तर पर 'अहिंसा एवं शांति दिवस' के रूप में मनाया जाता है। भारत में गांधी के जन्मदिन पर राष्ट्रीय अवकाष रहता है। भारत गांधी की हत्या वाली तारीख 30 जनवरी को 'षहीद दिवस' के रूप में मनाकर देष की सेवा के लिए प्राणोत्सर्ग करने वाले लोगों को सम्मानित करता है। भारत में गांधी को खास तौर पर समर्पित दो मंदिर भी बने हुए हैं। एक मंदिर उड़ीसा के संबलपुर में स्थित है, जबकि दूसरा मंदिर कर्नाटक के चिकमंगलूर जिले में काडूर के पास बना हुआ है। गांधी की तस्वीर हरेक भारतीय नोट पर भी अंकित रहती है।

गांधी कदम–दर–कदम उस ऊंचाई तक पहुंचे जहां पहले कोई भी नहीं पहुंच सका था। अपने जीवन काल में करोड़ों लोगों को प्रेरित करने वाले गांधी आज भी दुनिया भर में लोगों की प्रेरणा के स्रोत बने हुए हैं। उनके विचार अमर और समय–सिद्ध हैं तथा उन्हें आम आदमी की समझ में आ सकने लायक

सरल–सहल भाषा में लिखा गया है। वह आम इंसानों के बीच बहुत बड़ी शख्सियत के रूप में उभरकर सामने आये और उन्होंने लाखों लोगों को राजनीतिक, सामाजिक और मानवीय स्वतंत्रता के प्रति जागरूक बनाया। उन्होंने इन लोगों को गलत कार्यों के खिलाफ आवाज बुलंद करने के लिए 'अधिकारों के अहिंसक व्यवहार' का तरीका बताकर व्यावहारिक रास्ता भी सुझाया।

संक्षेप में कहा जाए तो गांधी सच्चाई से सच्चाई तक का सफर तय कर रहे थे और विष्व इतिहास के पहले व्यक्ति थे जिन्होंने परिवर्तन के लिए अहिंसा की संस्कृति से अवगत कराया। हमने गांधी के साथ ही अपने सम्मान और स्वाभिमान को भी दफन कर दिया गया है। अब गांधीवाद के मूलभूत सिद्धांतों और तत्वों को अपनाने का समय आ गया है। गांधीवादी सिद्धांत सभी धार्मिक विचारों का निचोड़ है और ये मानव–केन्द्रित दृष्टिकोण के लिए अनिवार्य भी हैं।

संदर्भ सूची

1. जूडिथ एम ब्राउन, गांधी : प्रिजनर ऑफ होप, दिल्ली, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1990, पृष्ठ 231।
2. वही, पृष्ठ 384।

अध्याय 2

हिंद स्वराज

परिचय

हिंद स्वराज महात्मा गांधी की अद्वतीय मौलिक रचना है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र के बाद राजनीतिक सिद्धांत को यह एक महत्वपूर्ण भारतीय योगदान है। गांधी एक रचनात्मक व्यक्ति थे जिन्होंने अपने आस-पास के सामाजिक, राजनीतिक व आर्थिक परिस्थियों के प्रति अपनी रचनात्मक प्रतिक्रिया पूरे शिद्धत से व्यक्त करते हुए एक विकल्प प्रस्तुत किया, जो व्यक्ति, परिवार, समाज व राष्ट्र का मार्ग दर्शन पहले भी किया जो आज भी कर पाने में सक्षम है। हिन्द स्वराज आधुनिक राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक विचारों के एक सशक्त विकल्प को हमारे सामने उस समय रखती है जिस समय पूंजीवाद और मार्क्सवाद अपने अंतरनिहित विडंबनाओं के कारण मानवीय समस्याओं का निदान करने में असफल रहा। वहीं पूरा विश्व गांधीवाद में आशा की नई किरण खोज रहा है। हिंदस्वराज एक ऐसी पुस्तक है जिसकी उपेक्षा मानव के सामाजिक, आर्थिक व मानसिक विकास तथा समकालीन समस्याओं पर होने वाले किसी भी विचार-विमर्श या वाद-विवाद में नहीं की जा सकती है। यह पुस्तक न केवल गांधी के जीवन, विचार व दर्शन को स्पष्ट करती है वरन् तकनीक, औद्योगिकीकरण, निजीकरण, उदारीकरण तथा वैश्वीकरण से उपजे तमाम आधुनिक विसंगतियों को जानने और समझने की कुंजी भी उपलब्ध कराती है।

हिन्द स्वराज, जिसका शाब्दिक अर्थ है भारत में स्वशासन की प्रासंगिकता व महत्ता अभी भी वैश्विक रुचि व उत्सुकता का केंद्र बनी हुई है। यह पुस्तक, भारत की राजनीतिक आजादी हासिल करने के तौर-तरीकों पर ही रोशनी नहीं डालती, वरन यह मानव जाति की मानसिक स्वतंत्रता तथा उसके पशुत्व से मनुष्यत्व और फिर मनुष्यत्व से देवात्व तक के सफर का पूरा खाका भी प्रस्तुत करती है।संक्षेप में कहें तो यह मानव के सर्वोच्च आत्मिक व मानसिक विकास का 'मैग्ना कार्टा' है।[1] वास्तव में हिंदस्वराज एक ऐसी नवीन वैश्विक व्यवस्था का घोषणा पत्र है जिसमें भौतिक तत्वों पर मूल्यों की

सर्वोच्चता संपूर्ण व निर्विवाद है।यह अभी भी न केवल भारत वरन् संपूर्ण विश्व के आम लोगों की आवाज का प्रतिनिधित्व करती है।

हिंद स्वराज गांधी के सक्रिय सार्वजनिक जीवन की प्रारंभिक कृतियों में से एक है। गांधी की दूसरी अन्य रचनाएं,लेखों ,व्याख्यानों,वक्तव्यों,पत्रों व भाषणों के रूप में है। हिंद स्वराज को गांधी की सम्पूर्ण रचनाओं का सार कहा जा सकता है क्योंकि यह छोटी सी परंतु महत्त्वपूर्ण पुस्तिका गांधी के विचारों का दर्पण है। जिसे महादेव देसाई ने ‘ केन्द्रक ’ की संज्ञा दी है। गांधी के शब्दों में उद्धृत करें तो यह एक उतार-चढ़ाव वाला जीवनवृत्त था।[2]

मार्गरेट चटर्जी ने ‘हिंद स्वराज’ को गांधी के विचारों के अध्ययन का प्रथम मौलिक दस्तावेज माना है। प्रसिद्ध इतिहासकार बी.आर.नंदा ने इसे गांधी के लिए उनके ‘श्रद्धा की स्वीकारोक्ति’ कहा है। प्रसिद्ध लेखक इरिक्सिन (Erikson) को इसमें विद्रोह की बू आती है और वह इसे ‘विद्रोहात्मक घोषणा पत्र’ मानता है। डेनिल डाल्टन ने इसे ‘वैचारिक स्वतंत्रता का उद्घोष’ माना है। जबकि प्रसिद्ध गांधीवादी लेखक जुडिथ ब्राउन (Judith Brown) ने इसे राजनीतिक सिद्धांत का एक मौलिक कार्य माना है। इसी प्रकार गेराल्ड हर्ड (Gerald Heard) ने हिंद स्वराज की तुलना रूसों के ‘समाजिक संविदा’ (Social Contract) से की। जबकि जार्ज काटलिन (Geoge Catlin) ने इसकी तुलना सेन्ट इगनीसियस लोयला (St. Ignatitus Loyala) के ‘दी स्पीरिच्यूल एक्सरसाइजेज’ (आध्यात्मिक व्यवहार) से की ।[3]

हिंद स्वराज का अनुवाद स्वयं गांधी ने गुजराती से अंग्रेजी में किया। हिंद स्वराज एक ऐसा बीज था जिसके गर्भ से गांधी विचार रुपी वटवृक्ष का उदय हुआ। गांधी के विचारों मे रुची रखने वालों के लिए हिंद स्वराज की महत्ता प्रथम और महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यहीं उनकी समस्त जिज्ञासाओं का समाधान संभव है। गांधी के विचारों के गहरे समुद्र में गहरे गोता लगाने के इच्छुक साधकों के लिए भी हिंद स्वराज ही वह माध्यम है जिसके द्वारा वह गांधी की आत्मकथा सहित उनकी अन्य रचनाओं का मर्म समझ सकते हैं।[4]

अत्यंत वैज्ञानिक व दार्शनिक विवेचन की व्याख्या अत्यंत साधारण भाषा में करना हिंद स्वराज का सबसे बड़ा और अद्भुत सौंदर्य है। दूसरे शब्दों में हिंन्द स्वराज की भाषा सरल, सहज, सुबोध और पूर्णतया गांधीवादी शैली में है। हिंद स्वराज की यह मौलिक

विशिष्टता व सौंदर्य दोनों है आप जितनी बार इसे पढेंगे उतनी बार आप को नया अन्तर्बोध प्राप्त होगा। हिंद स्वराज के माध्यम से ही गांधी ने अपने जीवन मिशन की सर्वप्रथम उद्घोषणा की और इसके लिए उन्होंने भारत माता की राजनैतिक स्वाधीनता व करोडों भारतीयों के नैतिक पुनरुत्थान को अपना मिशन तय किया। हिंद स्वराज "हमें घृणा के स्थान पर प्रेम का बीज मंत्र देता है यह आत्म बलिदान को हिंसा के स्थान पर प्रतिष्ठित करता है तथा पशु बल पर आत्म बल की सर्वोच्चता का उद्घोष करता है।"[5]

हिंद स्वराज का संदर्भ

इस पुस्तिका को लिखने का तात्कालिक कारण था गांधी का इंग्लैंड में भारतीय उग्रवादियों से आमना-सामना तथा उन उग्रवादियों का लक्ष्य प्राप्ति हेतु हिंसक साधनों के प्रयोग में विश्वास। यद्यपि एक मात्र यही वह कारण नहीं था जिसने गांधी को यह रचना लिखने की प्रेरणा प्रदान की। वरन् इसके विपरीत इसके मूल में इससे कहीं अधिक व्यापक कारण व उद्देश्य विद्यमान थे। सम्पूर्ण पाश्चात्य व भौतिक सभ्यता की समालोचना उनका मूलभूत उद्देश्य था।[6]

हम स्पष्ट रुप से देख सकते हैं कि हिंद स्वराज में तीन प्रमुख मुद्दे बड़े ही प्रभावी रुप से हमारे सामने आते हैं। सर्वप्रथम, तब के भारतीय राजनीति, राजनीतिज्ञ घटनाएं तथा गांधी का इन सब के साथ अपनी सोच व भावनात्मक संबंध। द्वितीय तथा सबसे निर्णायक व महत्त्वपूर्ण प्रश्न जिसने पूरी विचार प्रक्रिया तथा रचना प्रक्रिया को गहराई से प्रभावित किया वह था, आधुनिक सभ्यता के विभिन्न अंग-उपांगों की आलोचनात्मक व्याख्या। तिसरा और अंतिम मुद्दा था निष्क्रिय विरोध का जिसे गांधी ने पशु बल का विकल्प कहा था।[7]

हिंद स्वराज में इन तीन वैचारिक धाराओं का मिलन होता है और इसके परिणामस्वरूप एक नवीन तत्व का जन्म होता है। जिसके द्वारा गांधी आधुनिक सभ्यता या आधुनिकीकरण के खिलाफ चेतन की वकालत करते हैं। हिंद स्वराज आधुनिकीकरण की समालोचना है जो गांधी के शब्दों में पाश्चात्य या आधुनिक भोगवादी सभ्यता का पर्याय है। इस पुस्तिका की सीमा यहीं आकर नहीं ठहर जाती वरन् यह इससे भी आगे जाकर

सम्पूर्ण जीवन के सिद्धांतो की तह को खोलती नजर आती है। यह जीवन का एक सिद्धांत है जो स्थाई न होकर परिवर्तनशील है। एक नये विकल्प की तलाश में भटक रहा कोई भी सिद्धांत स्थाई हो भी नहीं सकता। यह वास्तव में एक ऐसा गतिशील प्रारूप सिद्धांत था जो गांधी के सार्वजनिक जीवन के अनुभवों के साथ-साथ समृद्ध और सुसंस्कृत होता गया। महात्मा गांधी के विचार में 'संसद' और 'मशीनरी ' आधुनिक सभ्यता के मुख्य स्तंभ हैं अत: इसके किसी भी आयात के खिलाफ चेतावनी देते हैं।[8] यहां यह समझना आवश्यक होगा कि गांधी संसद के विरोधी नहीं थे बल्कि संसद के चुने हुए प्रतिनिधियों के मानवीय गुण को गांधी समझते थे उसके आधार पर उन्होंने संसद की आलोचना की। दूसरी तरफ गांधी मशीन के विरोधी नहीं थे बल्कि मशीनीकरण के अंधानुकरण के विरोधी थे।

9 अक्टूबर 1909 को गांधी[9] ने लार्ड एम्पीथिल (Lord Amothill) को एक पत्र लिखा जिसमें प्रस्तुत विचारों ने ही बाद में हिंद स्वराज की आधारशिला बनी-

1-भारत में व्यापक रूप से ब्रिटिश शासन के खिलाफ अधीरता की स्थिति और परिणामस्वरूप घृणा की सहज उपस्थिति।

2-उपरोक्त स्थितियों-परिस्थितियों के दमन का कोई भी प्रयास प्रत्याक्रमण और कटु प्रतिरोध को आमंत्रण देने वाला होगा।

3-ब्रिटिश लोगों का व्यावसायिक स्वार्थों के प्रति अत्यधिक संलिप्तता ब्रिटिश सरकार द्वारा भारतियों के अधिकारों के हनन का मूल कारण ।

4-दोष ब्रिटिश जनता में नहीं वरन् आधुनिक सभ्यता में है जो इंसानियत के मूल आत्मा का निषेध या नकार करती है।

5-रेलवे, मशीनें, विशिष्ट जीवनशैली जैसे आधुनिक सभ्यता के विभिन्न उत्पाद भारतीयों और यूरोपियनों दोनों के लिए रूप में समान रूप से अहितकर तथा दासत्व का प्रतीक।

6-कलकत्ता और बम्बई जैसे बड़े शहरों का विकास सुख के बजाय दुख का कारण ।

7-भारत की दुर्दशा का कारण गांवों की बर्बादी।

8-हिंसक साधनों का विकास आधुनिक सभ्यता की देन।

9-मैं राष्ट्रीय भावना कि अभिव्यक्ति में भागीदार हूँ परंतु उन लोगों के साथ सहमत नहीं हूं जो स्वतंत्रता प्राप्ति हेतु प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से हिंसा का इस्तेमाल करने में विश्वास रखते हैं। क्योंकि मैं यह मानता हूं कि यह अनैतिक तथा भारतीय सभ्यता की मूल आत्मा के खिलाफ है।

10-शासकों का कर्तव्य है कि वे जन अकांक्षाओं के अनुरूप शासन करें; अगर शासक अपने प्राथमिक कर्तव्यों को पूरा करने में असफल होता है तो जनता को इस बात का पूरा अधिकार है कि वह उसे पहचानने व सहयोग करने से इंकार कर दें।

हिंद स्वराज कुछ मूलभूत प्रश्नों को उठाता है। भारत का ब्रिटेन से सामना राजनीतिक और आर्थिक ना होकर सभ्यता मूलक था। अभी भी परिस्थितियां उस समय से अलग नहीं जब गांधी ने हिंद स्वराज लिखा था। हिंद स्वराज की उचित समझ के लिए यह जरूरी है कि हिंद स्वराज के ऐतिहासिक संदर्भों को समझा जाए। इन ऐतिहासिक संदर्भों में मुख्य हैं-

अ-1857 के बाद भारत में सामान्य विकास

ब- नये पेशेवर वर्गों का उदय

स- बंगाल विभाजन की पृष्ठभूमि में भारत में मौजूद तात्कालीन परिस्थितियां

द- रूस-जापान युद्ध तथा रूसी क्रांति की सरगर्मी

इ दक्षिण अफ्रीका में गांधी के व्यापक अनुभव व प्रयोग; तथा

फ गांधी के लिए हिंद स्वराज लिखने का तात्कालिक कारण।[10]

यह पुस्तक मिश्रित लोगों को संबोधित करते हुए लिखी थी, जिसमें उग्रवाद व राजनीतिक हिंसा की ओर तेजी से आकर्षित हो रहे प्रवासी भारतीय थे, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के उपग्रंथी व नरमपंथी धड़े थे, भारतीय राष्ट्र था (आम भारतीय), तथा ब्रिटिश थे (जिसमें भारतीय ब्रिटिश शासक वर्ग तथा ब्रिटेन में रह रहे ब्रिटेनवासी दोनों शामिल थे)।

गांधी द्वारा पुस्तक लिखने के पीछे कारणों की पड़ताल करें तो जो पहले कारण नजर आता है वह है आंतरिक अंतर्बोध तथा संप्रेषण की अनवरत प्रेरणा। एंथेनी जे. परेल[11] ने हिंद स्वराज को लिखने के पीछे उद्देश को निम्न छः वर्गों में वर्गीकृत किया है, जो इस प्रकार हैं-

1-हिंद स्वराज में व्यक्त अपने उन विचारों को गांधी ने कुछ समय तक रोके रखा जिसे संप्रेषित करने को लेकर वह बहुत व्यग्र थे तथा अपनी बात अपने चारों ओर के लोगों, जिसमें भारतीय विशेष रूप से शामिल थे, को जल्दी से जल्दी समझाना चाहते थे क्योंकि कई मुद्दों पर हो रही प्रतिक्रियाओं से वे काफी चिंतित थे।

2- वे स्वराज के अर्थ को स्पष्ट करना चाहते थे, जो कि राजनैतिक आजादी से कहीं अधिक व्यापक और गहरे अर्थों को रखने वाला था।

3- गांधी व्दन्द्व-समाधान हेतु एक शांतिपूर्ण मार्ग के कपाट को पुनः खोलना चाहते थे जो कि भारतीय सभ्यता की विशिष्टता और पहचान दोनों थी तथा अपने देशवासियों, विशेषकर युवाओं को, उग्र रास्तों से दूर हटाकर भारतीय मार्ग पर लाना चाहते थे।

4- गांधी अपने देशवासियों से कहना चाहते थे कि ब्रिटिश उपनिवेशवाद उनका असली दुश्मन नहीं है वरन असली दुश्मन तो पाश्चात्य सभ्यता है। और जब तक वे पाश्चात्य सभ्यता के चकाचौंध से चौंधियाते रहेंगे तब तक वे परतंत्रता की बेड़ियों मों जकड़े रहेंगे चाहे भले ही वे राजनीति आजादी क्यों न हासिल कर लें।

5- गांधी भारतीयों और ब्रिटिशों के राजनैतिक संबंध पर दोस्ती का रंग चढ़ाना चाहते थे न की दुश्मनी का वह ब्रिटेन वासियों का भारतीयों का दुश्मन नहीं मानते थे वरन् असली दुश्मन वे आधुनिक सभ्यता को मानते थे, जिसने दोनों पक्षों को जकड़ा हुआ था।

6- वे हिंद स्वराज के माध्यम से भारत को धर्म का एक ऐसा आधुनिकतम रूप देना चाहते थे जहां पर अंतिम व्यक्ति की आवाज का भी समान रूप से महत्त्व हो तथा वह भी विकास का लाभ उठा सके। 'यद्यपि मैंने राजनीति भाषा का प्रयोग किया है परंतु वास्तव मैं धर्म के बंधन में बंधा हूँ'। इस प्रकार गांधी भारत पर ब्रिटिश उपनिवेशवाद को भारतीय सभ्यता के पूर्ण संभावनाओं के दोहन के लिए इस्तेमाल करना चाहते थे।

परेल[12] ने इसके बाद गांधी के हिंद स्वराज के पीछे के ऐतिहासिक संदर्भों की पड़ताल की। इन संदर्भों में शामिल हैं-

1-सम्पूर्ण विश्व, विशेषकर पश्चिम पर आधुनिक औद्योगिक सभ्यता का बढ़ता प्रभाव। हिंद स्वराज ने इस सभ्यता का विरोध किया और इसे शैतानी करार दिया। परेल के अनुसार, " हिंद स्वराज ने आधुनिक सभ्यता की समालोचना कर आधुनिक राजनैतिक विचार व सिद्धांत को एक महत्त्वपूर्ण योगदान दिया "। आधुनिक सभ्यता की आलोचना के दौरान गांधी का रुख नकारात्मक या प्रतिशोध भरा नहीं था। उन्होंने ऐसे कई योगदानों की प्रशंसा की जिस पर भारतीय सभ्यता में आभाव या उस पर समुचित ध्यान नहीं दिया गया। इन योगदानों में से कुछ प्रमुख थे- स्वतंत्रता, समानता, मानावाधिकार, गरीबों की आर्थिक दशा में सुधार की संभावनाओं की तलाश, महिला अधिकारों की स्वीकारोक्ति तथा धार्मिक सहनशीलता। उनकी आलोचना का मुख्य बिंदु इसकी प्रवृत्तियों को ले कर था जो कि उनके अनुसार स्वातंत्रता की अवधारणा और व्यवहार का निशेध करती थी तथा स्वराज की राह में रोड़े अटकाने का काम करती थी। यह कर्तव्यों के मूल्य पर अधिकारों को बढ़ावा देती थी, नैतिक और आध्यात्मिक प्रगति के स्थान पर आर्थिक प्रगती को तरजीह देती थी तथा विश्व को मैं और तू में विभाजित करती थी। इसके अलावा यह धर्म , राजनैतिक संवेदनशीलता, आर्थिक हैसियत, सैनिक ताकत, शिक्षा आदि को विभाजक के रूप में उपयोग करती थी, साथ ही इसका रुख मानवीय भाईचार तथा वसुधैव कुटुम्ब की आवधारणा का निषेध करने वाला था।

2- दक्षिण अफ्रीका, जहां गांधी, महात्मा के रूप में अवतरित हुए, की राजनीतिक स्थिति भी उन अन्य ऐतिहासिक संदर्भों का हिस्सा थी जिसके साये में हिंद स्वराज लिखी गई। दक्षिण अफ्रिका में गांधी ने भारतीय राष्ट्रवाद की दृष्टि को महसूस और अंगीकार किया था। वास्तव में दक्षिण अफ्रिका ही वह प्लेटफार्म था जिसने गांधी को नेतृत्वकर्ता के रूप में स्थापित किया। परेल ने सही कहा था कि दक्षिण अफ्रिका में उन्हें इस बात का गहराई से अहसास हुआ कि सिर्फ औपनिवेशिक शासन ही भारतीयों की दुर्दशा का मूल कारण नहीं था और उन्होंने अपनी दृष्टि व्यापक करते हुए इस बात को महसूस किया कि आधुनिक

सभ्यता के तौर-तरीके कहीं अधिक दोषी हैं, जिसने संपूर्ण मानवता को गले से जकड़ रखा है।

दक्षिण अफ्रिका ने गांधी को संकुचित विचारों से मुक्त कर उन्हें नवीन दृष्टि प्रदान की। वहां पर वे न केवल बिना किसी सामाजिक व धार्मिक दवाबों के अपना कार्य कर सकते थे वरन् अपने विचारों पर प्रयोग भी फीनिक्स आश्रम जैसे जगहों पर कर सकते थे। लेकिन दक्षिण अफ्रिका रहते हुए उन्हें 1906 व 1909 में लंदन जाकर अपनी राजनीतिक योग्यता को अजमाने व प्राप्त करने का मौका नहीं मिला ।

3- तीसरे ऐतिहासिक संदर्भ के रूप में परेल उन घटनाओं पर अपनी दृष्टि दौड़ाते हैं जिसके अंतर्गत उन प्रवासी भारतीयों का जिक्र आता था जो लंदन में रहते थे तथा ब्रिटिश शासन के खिलाफ हिंसक संघर्ष में विश्वास रखते थे। यहां गांधी को कई क्रांतिकारियों के व्यक्तित्व व विचारों के समीप आने का मिला अंततः हिंद स्वराज लिखने को प्रेरित किया।

4- भारतीय राष्ट्रवाद अंदोलन भी एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक संदर्भ था जिसके साये में हिंद स्वराज लिखा गया।

5- पाश्चात्य लोगों, दार्शनिकों तथा विचारों से परिचय ने भी गांधी के विचारों को समृद्ध तथा उत्कृष्ट किया जो बाद में हिंद स्वराज में फलीभूत हुआ।

उपरोक्त वर्णित विचारों के निचोड़ के रूप में करीब 30,000 शब्दों (96 पृष्ठ) में हिंद स्वराज नाम की एक छोटी सी पुस्तिका लिखी गई, जिसे गांधी ने लंदन में निष्फल मिशन के उपरांत इंग्लैण्ड से दक्षिण अफ्रिका लौटते हुए जहाज एस. एस. किल्डोनन (S.S. Kildonn) पर मूल गुजराती रूप में लिखा। यह 13 से 22 नवम्बर 1909 के बीच दस दिनों के भीतर लिखा गया। पूरी पाण्डुलिपि जहाज के एक कोने पर इस तरह और इस तेजी से लिखी गई कि जब कभी गांधी के दाहिने हांथ में दर्द होता था तो वे बायें हाथ से अपना लेखन जारी रखते थे और इस तरह पाण्डुलीपि लिखने की धुन में उन्होंने दिन और रात के अंतर को पाट दिया। पाण्डुलीपि के 235 पृष्ठों में से 40 को बांये हांथ से लिखा था। सारा लेखन वे प्रेरणा के आगोश में करते चले गए। पूरी रचना में से सिर्फ 16 वाक्यों को हटाया गया तथा नाम मात्र के कुछ शब्दों को यहां-वहां हटाया गया।[13] जैसा गांधी ने स्वयं लिखा है- "मैंने सम्पूर्ण हिंद

स्वराज अपने प्रिय मित्र डॉ. प्राणजीवन मेहता के लिए लिखा। सभी तर्कों को दोबारा ज्यों का त्यों उनके साथ अपने पूर्व के वार्ता के आधार पर लिखा।"[14]

यह पुस्तक प्रथम बार इण्डियन ओपिनियन में धारावाहिक के रूप में प्रकाशित हुई, तथा बाद में यह पुस्तक रूप में 1909 में प्रकाशित हुई, जिसे मार्च, 1910 में बंबई सरकार ने राजद्रोहात्मक मान कर प्रतिबंधित कर दिया।[15] इसके बाद गांधी ने नेटाल से अंग्रेजी रूपांतर कराकर इसके मूल विषयवस्तु को स्पष्ठ करने की कोशिश की तथा यह बताने का प्रयास किया कि यह किसी को हानि पहुंचाने के उद्देश्य से नहीं लिखा गई है। 21 दिसम्बर 1938 को अन्ततः प्रतिबंध हटा लिया गया। जब गोखले ने इसके अनुवाद को देखा तो उन्होंने निष्ठुरतापूर्वक इस बात की घोषणा कर दी कि गांधी भारत में एक वर्ष के प्रवास के बाद स्वयं ही इसे रद्दी के टोकरे में फेक देंगे। 1921 में गांधी ने कहा, " अपने महान गुरू के प्रति पूरी श्रद्धा रखते हुए मैं यह कह सकता हूं कि उनकी भविष्यवाणी सत्य नहीं हुई।" गांधी ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा था, (मैं एक महिला मित्र के प्रति सम्मान व श्रद्धा रखते हुए सिर्फ एक शब्द को वापस लेता हूं।)[16]

हिंद स्वराज या भारतीय स्वशासन आधुनिक सभ्यता की कटु आलोचना करते हैं। यह 20 अध्यायों तथा दो परिशिष्टों में बंटा है। इसमें स्वराज, सभ्यता, वकील, डॉक्टर, मशीन, शिक्षा, निष्क्रिय प्रतिरोध तथा अन्य अनेक विषयों का जिक्र हुआ है। यह व्यावहारिक प्रश्नों को अत्यंत वैज्ञानिक और मौलिक रूप में उठाता है। संवाद के रूप में लिखी गई यह किताब कुछ जगहों पर विलक्षणता की नई ऊंचाई तय करती जान पड़ती है। यह कार्यकर्ताओं के साथ उनकी पारस्परिक संवादों का एक जीवंत दस्तावेज है जिसमें एक प्रकट उपग्रंथी भी शामिल था। पुस्तक के विविध हिस्सों में चार मुख्य विषयों पर प्रकाश डाला गया है। यथा (अ) मुख्य मुद्दे, हिंसा, शिक्षा व तकनीकि, (ब) पार्लियामेण्ट, मशीनरी तथा स्वराज के प्रति कांग्रेसी दृष्टिकोंण की आलोचना, (स) गैर-पाश्चात्य सभ्यता के गैर-पाश्चात्य मापदण्डों के संदर्भ में पाश्चात्य सभ्यता की आलोचना व उसका मूल्यांकन, हिंद स्वराज की दृष्टि में , और (द) सुझाव।[17]

हिंद स्वराज उन सब तत्वों का सार है जिसे महात्मा गांधी ने 40 वर्ष की उम्र में पढ़ा, समझा, सोचा, चिंतन किया तथा अनुभव किया। इंग्लैण्ड में अध्ययन करते हुए वे

उदारपंथी और उग्रपंथी समूहों तथा व्यक्तियों के सम्पर्क में आए। वहीं पर उन्होंने व्यापक रूप से चिंतन, मनन, अध्ययन,और प्रयोग करते हुए पाश्चात्य सभ्यता का अपनी अनुभव निश्चित मिश्रित राय कायम की। उनकी चिंतन विचार प्रक्रीया को टॉल्सटाय, रस्किन, थोरू व एडवर्ड कार्पेंटर जैसे विभूतियों ने गहराई से प्रभावित किया। ये सारे विभूति औद्योगिक जीवन के कट्टर आलोचक तथा सादगी के पैरोकार थे।

गांधी ने हिंद स्वराज में मशीनरी, जो कि तकनीकि का मुख्य अंग है, पर अपना प्रहार करते हुए इसे ' आधुनिक सभ्यता का मुख्य प्रतीक माना तथा इसे एक महान पाप के रूप में चित्रित किया।'[18] हिंद स्वराज में गांधी ने पार्लियामेण्ट को " एक वैश्या तथा एक बांझ स्त्री" बताया। आज पूरे विश्व में गांधी के विचार कितने सटिक है दुनिया की जनता देख रही है। तथा हिंद स्वराज एक ऐसे आदर्श राज्य की ओर संकेत करता है जहां मशीनरी, डॉक्टर, वकील तथा इसी तरह के आधुनिक सभ्यता के अन्य प्रतीक चिन्हों का कोई स्थान नहीं होगा। यह रूसो का प्रकृतिक राज्य नहीं है वरन् मार्क्स का आदर्श समाज है जिसमें राज्य तथा तकनीक के अनुसार तकनीक का स्वरूपों का स्थान गौण से गौणतम होगा।[19]

औद्योगिकरण के सम्पूर्ण प्रश्न पर गांधी का चिंतन दो समानान्तर धाराओं के साथ दौड़ता दिखता है। एक स्तर पर, गांधी गरीबी और बेरोजगारी की समस्या को लेकर चिंतित दिखते हैं। गांधी की विचार धारा इस सबंधं में काफी स्पष्ट थी। वह जानते थे कि पाश्चात्य स्वरूप प्रति व्यक्ति निवेश की मात्रा पर आधारित है, जो कि भारत में तब तक संभव नहीं थी जब तक यह पूर्णतया अधिनायकवादी तथा तानाशाही तरीकों का इस्तेमाल न करें। गांधी का लक्ष्य कुटीर तथा ग्रामीण उद्योगों को पुनर्जीवित करना था। दूसरे शब्दों में कहें तो वह कुटीर तथा हस्तशिल्प उद्योगों द्वारा ग्रामीण अर्थव्यावस्था को पुनः पटरी पर लाना चाहते थे यानी गांवों का पुनः उदय इसका मतलब यह कदापि नहीं है कि गांधी गांवों में उत्पादन के लिए भूतकाल के आदिम तौर-तरीकों के इस्तेमाल के पक्षधर थे। वह ग्रामीण शिल्प में सुधार के उस प्रत्येक प्रयास का स्वागत करने के लिए तत्पर रहते थे जो उत्पादकता में वृद्धि कर सकने में समर्थ था। इसके साथ एक मात्र शर्त यह थी कि इससे लोगों का रोजगार न, छिने। यहां तक कि उन्हें ऊर्जा (बिजली इत्यादि) के उपयोग को स्वीकार करने में भी कोई आपत्ति नहीं थी और वे इसके इच्छुक भी थे, बशर्ते यह ग्रामीण

उद्योगों के लिए सहायक व उपयोगी हो तथा पावर प्लाण्ट पर उनका अधिकार हो। दूसरे स्तर पर हम देखते हैं कि गांधी का औद्योगिकरण के पाश्चात्य स्वरूप पर मौलिक मतभेद था। इस परिप्रेक्ष्य में उनका रुख मार्क्सवादी तथा उदारवादी रवैये से भिन्न हो जाता था। मार्क्सवाद तथा उदारवाद जीवन के उपयोगी व भौतिक स्तर में लगातार वृद्धि पर पक्षधर था और इस स्तर की प्राप्ति के लिए वे प्राकृतिक संसाधनों, खनिजों तथा जीवाश्म ईंधनों के अत्यधिक दोहन पर निर्भर करते थे।

यह प्रवृति मशीनीकरण को बढ़ावा देने वाली थी जिसे गांधी मशीनों के प्रति सनक मानते थे। औद्योगिकीकरण के इस स्तर को प्राप्त करने के लिए इस तरह कृषि की महत्ता निर्णायक हो जाती थी। कृषि की असीमित व अनियमित दोहन के परिणामस्वरूप गांवों का उजड़ना तथा वहां के लोगों का कंगाल होना अवश्यभावी है। और इस कंगाली की राह निश्चित रूप से भीड़ भरे शहरों की सीलन भरे झुग्गी-झोपड़ियों के अमानवीय परिस्थिति में खत्म होती है। इन सबके निचोड़ के रूप में हमारे सामने आता है शहरीकरण में दानवी वृद्धि की ऐसी अनियमित व ताबड़-तोड़ प्रक्रिया जो अपराध, वेश्यावृत्ति और इस तरह के न जाने कितने अनगिनत बुराइयों को जन्म देती है और अन्ततः एक 'स्ट्रीट कार्नर समाज ' को जन्म देती है।[20]

आधुनिक तकनीकि की आलोचना करते हुए गांधी एक अत्यंत ही महत्त्वपूर्ण तथ्य की ओर संकेत करते हैं। उनका संकेत उन तथ्यों के बीच में है जो राष्टों के बीच मतभेद, व्दन्व्द और अन्ततः युद्ध के बीज बोता है। हाल ही में ब्रिटेन के अत्यंत ही प्रतिष्ठित 33 वैज्ञानिकों द्वारा जारी 'उत्तरजीविता की रूपरेखा' (Blueprint of Survival) नामक एक वक्तव्य, जो तकनीकि पर दिनोंदिन बढ़ती निर्भरता पर प्रश्न खड़ा करता है, ने गांधी की आधुनिक तकनीकि को और भी पुख्ता है। चूंकि तकनीकि प्राकृतिक संसाधनों के अधिकाधिक दोहन को प्रेरित करती है। सो आलोचक इस बात की ओर संकेत करते हैं कि क्योंकि ये संसाधन सीमित हैं सो वर्तमान तथाकथित सभ्यता का पूरा ढ़ांचा बर्बादी के कगार पर है या उस ओर अपने कदम तेजी से बढ़ा रहा है। गांधी इसी अधाधुंध मशीनिकरण के प्रति आगाह किया था।[21]

ऐसा नहीं था कि गांधी विज्ञान के विरोधी थे। आधुनिक विज्ञान दो मूल तत्वों पर आधारित है। पहला तत्व वह वैज्ञानिक विचारधारा है जो यथार्थ कि प्रकृति को भेदना चाहता है, ब्रम्हाण्ड की समस्यओं में गहरी पैठ करना चाहता है, दार्शनिक प्रवृति के मूद्दों को उठाकर उसे अपने प्रयोगों के द्वारा स्थापित या खारिज करना चाहता है, तथा ब्रम्हाण्ड व व्यक्ति तथा आत्मा व परमात्मा के एकीकरण के लिए यथार्थ के गहरे सागर में पैठ करना चाहता है। लेकिन विज्ञान का एक दूसरा रूप भी है जो अपने ज्ञान और कौशल का उपयोग मानव जाति के भौतिक जरूरतों को पूरा करने के लिए करना चाहता है।[22]

गांधी ने इसी प्रवृति पर आगाह करते हुए संयम का सुझाव दिया। इसी संदर्भ में गांधी ने उस आयाम को अपनी स्वीकृति प्रदान की जिसमें उसकी उपयोगिता का मानव, समाज व प्रकृति के बहुआयामी संबंधों के परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन सुनिश्चित हो। वर्तमान में हम सभ्यता मूलक संकट से गुजर रहे हैं। यह संकट इसलिए आया है क्योंकि मशीन तकनीकि का पूरा तंत्र संकट में है। और आज संवेदनशील और जागरुक लोगों के अलावा वैज्ञानिक सामुदाय तथा अन्य लोग भी हमें वर्तमान व आगामी संकट की तरफ आगाह कर रहे हैं। गांधी शायद वर्तमान प्रकृति के पहले व्यक्ति थे जिन्होंने तकनीकि प्रगति के व्यापक व गहरे निहितार्थों को गहराई से समझा था। सम्पूर्ण रूप से देखें तो उनकी प्रतिक्रिया सावधनी, संयम व सीमा निर्धारण की थी। इसकी उत्पत्ति हिंद स्वराज में भारतीय सभ्यता बनाम पाश्चात्य सभ्यता को लेकर हुई। गांधी के विचारों का पल्लवन व पुष्पन वैश्विक विकासों (दोनों विश्व युद्ध शामिल) के व्यापक दायरों में हुआ। उन्होंने अपनी प्रतिक्रिया को वैश्विक चरित्र प्रदान किया तथा उसमें पूरी मानव जाति को शामिल किया।[23]

गांधी इसे अपने दार्शनिक विचारों के साथ आसानी से समायोजित कर सकते थे। और इस समायोजन व समन्वयन के परिणामस्वरूप वर्तमान सभ्यतामूलक संकट का समाधान उभरकर सामने आया। अब हम गांधीवादी पद्धति के आधारभूत अवयवों की रूपरेखा तय कर सकते हैं। गांधी में मानव, सभी सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक विकास का केन्द्र बिन्दु बनकर उभरता था। यह मानव आध्यात्मिक मानव होता था जो अपने सामुदाय और परिवेश के साथ अटूट रूप से जुड़ा होता था।[24] दूसरे शब्दों में गांधी के विचार मानव केंद्रित विचार थे।

हिंद स्वराज जीवन के बड़े पैमाने पर अधाधुंध मशीनीकरण के खिलाफ चेतावनी तथा भविष्य का संकेतक है। जैसा की पूर्व में भी संकेत किया गया है कि हिंद स्वराज में प्रस्तुत माडल जड़ या स्थायी नहीं है। बल्कि इसके विपरीत यह समय के साथ गांधी के वैश्विक होती सोच के साथ परिवर्तित संवर्धित तथा गतिशील होता जाता है। अतः हिंद स्वराज को गांधी विचारों के उस ढांचे के अंतर्गत रखा जाना चाहिए जहां यह उनके सक्रिय जीवन के साथ-साथ विकसित व परिपक्व होता है।

हिंद स्वराज में गांधी के उस वाद-विवाद को पुन: जीवन प्रदान किया जिसने 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारतीय मानस को आंदोलित किया था तथा उन्होंने इसके माध्यम से पाश्चात्य सभ्यता के खिलाफ अपनी आवाज बुलंद की। उन्होंने एक नियामक व संतुलित समाज की रूपरेखा भी सामने रखी। जिसकी जड़े भारत की प्राचीन सभ्यता और उसके मूल्यों में टिकी थी। गांधी ने भारतीय सभ्यता की प्रासंगिकता व महत्वा को पुनर्जीवन प्रदान करते हुए यह कहा कि दीर्घकालीन हित में भारत के विकास व समृद्धि के अगले दौर को सुनिश्चित करने के लिए इसे हम प्रारंभिक कदम के रूप में समायोजित कर सकते हैं।[25]

दो अन्य तत्वों ने हिंद स्वराज की रूपरेखा व विषयवस्तु निर्धारित की। लंदन में रह रहे देशभक्त भारतीय इस निष्कर्ष के करीब पहुंचे थे कि, "ब्रिटेन के औपनिवेशिक साम्राज्य को ध्वस्त करने के लिए भारत को भी हिंसा के आधुनिक तौर-तरीकों तथा आधुनिक सभ्यता को गले लगाना चाहिए।"[26]

दक्षिण अफ्रिका में अपने प्रयोगों के आधार पर गांधी ने जीवन के प्रति एक भिन्न रवैया का विकास किया; वे देशभक्त भारतीयों के रोग निदान के उनके तरीकों से असहमत थे।[27] स्पष्टीकरण के तौर पर यह बात गौर करने की है कि गांधी द्वारा रेलवे, डॉक्टर, वकील, संसद, मशीनरी तथा पशु बल की आलोचना को हमें अक्षरश: नहीं लेना चाहिए। इसका सिर्फ सांकेतिक व रूपान्तरित महत्त्व है। गांधी द्वारा व्यक्त विचारों के कहीं अधिक व्यापक व गूढ़ अर्थ थे।[28] गांधी ने 'छुटकारा'[29] नाम से 19 बिंदु कार्यक्रमों का प्रतिपादन

किया। गांधी को समझने के लिए शब्दों का शाब्दिक अर्थ न लेकर उसकी गहराई में जाना आवश्यक है। साथ ही शब्दों के परिपेक्ष्य को समझना जारूरी है।

गांधी ने हिंद स्वराज के अंतर्गत पाश्चात्य सभ्यता की कटु आलोचना की, जो है-(1) औपनिवेशिक साम्राज्यवाद, (2) औद्योगिक पूंजीवाद,और (3) तर्कणावादी उपभोक्तावाद।[30] गांधी के अनुसार , भारत में उपनिवेशवाद की विजय का कारण उसकी शक्ति नहीं वरन् भारतीयों में व्याप्त दुर्लबता व दुर्बल भावना थी। जिसने विदेशी ताकतों को पैर जमाने का मौका दे दिया। गांधी पहले व्यक्ति थे जिन्होंने भारत में उपनिवेशवाद को भारत के 'नैतिक ह्रास' का परिणाम बताया। जिसने लगभग सम्पूर्ण भारत को अपने आगोश में समेट लिया था।[31] भारत ने औपनिवेशिक साम्राज्य की वजय नैतिक दुर्बलता को बताते हुए गांधी ने तर्क किया, "अंग्रेजों ने भारत को अपने कब्जे में नहीं लिया वरन हमने उसे तोहफे में दे दिया। वे यहां अपनी ताकत की वजह से नहीं वरन हम लोगों ने उनकी जड़ को सिंचित किया और लगातार सिंचित कर रहे हैं...."[32]।गांधी के अनुसार भारत में ब्रिटिश विजय की आधारशिला हमारे नैतिक क्षरण के परिणामस्वरूप रखी गई और वह हमारी नैतिकता के गिरते स्तर के साथ-साथ गहरी व स्थायी होती गई।[33]

हिंद स्वराज में गांधी ने उपनिवेशवाद के अतिश्योक्तिपूर्ण पुरुष प्रधान वैश्विक दृष्टिकोण का सबसे प्रभावी पार-सांस्कृतिक प्रतिरोध प्रस्तुत किया। दूसरे शब्दों में, हिंद स्वराज औद्योगिक के रूप में पैर पसार रही विकृति का सबसे सटीक, प्रभावी और रचनात्मक जबाव है।[34] गांधी के लिए औद्योगिकीकरण हमेशा पाश्चात्य सभ्यता का मुख्य संचालक बना रहा। (मशीनरी आधुनिक सभ्यता के सबसे प्रधान प्रतीक है; यह एक महान् पाप का प्रतिनिधित्व करता है....यदि मशीनों के प्रति हमेशा देश में सनक पैदा होती है तो हम अपनी भूमि को दुखों के मलवे के रुप में बदल देंगे)।[35] 'यह अत्यंत आवश्यक है कि हम बुराई के प्रतीक मशीनों की पहचान समय रहते कर लें। इससे हम धीरे-धीरे दूर हो सकेंगे तथा मशीन के बिना कार्य कर सकेंगे...। यदि हम मशीनों को आशिर्वाद के बजाय अभिश्राप मान ले तो इसका अंत स्वयंमेव हो जाएगा।'[36] गांधी के अनुसार सांप का जहर, मिल (कारखाना) उद्योग से कम खतरनाक है क्योंकि पहले वाला तो शारीरिक नुकसान ही करता है लेकिन बाद वाला हमारे तन-मन और आत्मा तीनों को नष्ट कर देता है।[37] गांधी के

अनुसार एक सच्ची सभ्यता और मशीन पर आधारित एक सभ्यता के बीच का व्दवन्द सदैव बना रहेगा। जहां पहले का आधार वाक्य धर्म के गर्भ से निकली नैतिकता का बीज मंत्र है वहीं दूसरे का आधार वाक्य तर्कणावादी उपभोक्तावाद है। आधुनिक सभ्यता में अर्थ और काम का संबंध धर्म से बिल्कुल विच्छेद हो जाता है क्योंकि इसमें उपभोक्तावाद ही सर्वोपरि हो जाती है। गांधी पहले दार्शनिक हैं जिन्होंने भारतीय परंपरा के चार पुरुषार्थ- धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष्य को नए संदर्भ में पुनः स्थापिक किया। मानव के विकास में चारों का समन्वय जरूरी है। भारतीय मनीषियों ने धर्म और मोक्ष्य पर बल दिया वहीं पाश्यात्य मनीषियों ने काम और अर्थ पर बल दिया नतीजा यह हुआ कि भारत पाश्चात्य की भौतिकवादी सभ्यता की चकाचौंध की ओर आकर्षित हुआ वहीं पश्चिमी जगत के लोग भारत के आध्यात्मिकता की मुखर होने लगे। सत्य है अर्थ और काम मानव जीवन के अभिन्न अंग हैं उसे गांधी ने धर्म की परिधि में समायोजित किया।

एक ओर, हिंद स्वराज पाश्चात्य सभ्यता के सैद्धांतिक आधार को रचनात्मक चुनौती है। हिंदू धर्म व उसकी समृद्ध परंपराओं से सभ्यतामूलक संसाधनों का भरपूर उपयोग करते हुए गांधी ने उपनिवेशवाद तथा औद्योगिक पूंजीवाद को परिकल्पित करने के लिए एक नवीन सैद्धांतिक ढ़ांचे का प्रतिपादन किया। वहीं दूसरी ओर उन्होंने कुछ मौलिक अवधारणाओं का विकास किया जो बाद में गांधीवाद कहलाया। स्वराज, सत्य और स्वदेशी ऐसे तीन महत्त्वपूर्ण विषय थे जिसकी उपस्थिति उनकी रचनाओं में दिखती है वरन् उनके सार्वजनिक जीवन में भी यह पूरी सभ्यता के साथ दिखता है। सो गांधी के लिए स्वतंत्रता का मतलब भारत की आध्यात्मिक आजादी से था। और ऐसी आजादी का द्वार प्रत्येक व्यक्ति की सोच में मौलिक परिवर्तन से ही संभव था।[38] स्वदेशी, जिसका मतलब आत्म-सम्मान, आत्मानुभूति, तथा आत्मनिर्भरता था, उत्पादन के पारंपरिक व स्वदेशी तकनीकों का मंडन मात्र नहीं था। वरन् इसका तात्पर्य एक ऐसे रचनात्मक अनुप्रयोग से था जो उपलब्ध संसाधनों का महत्तम उपयोग जनकल्याण अर्थपूर्ण ढ़ंग से कर रहे थे। उनके विमर्श का मुद्दा यह नहीं था कि 'भारत को तकनीकि की जरूरत है या नहीं' वरन् उनके लिए मुख्य मुद्दा था 'भारतीय जरूरतों के अनुरूप तकनीकि'। सत्य और अहिंसा, सात्त्विक ताकत यानि सत्य-बल के मुख्य अस्त्र हैं। ये दोनों मिलकर सत्याग्रह की रचना करते हैं। इसमें अधिकारों कि प्राप्ति के लिए व्यक्तिगत दुख भोग को तहजीर दी जाती थी

और उसे उद्देश्य प्राप्ति हेतु जरूरी माना जाता था। सत्याग्रह तर्कणा, नैतिकता व राजनीति का सम्मिलित देशी रूप था इसके द्‌वारा विरोधियों के दिल और दिमाग के मर्म तक पहुंचकर उसे मथने की कोशिश की जाती थी।[39]

हिंद स्वराज की विषयवस्तु

गीता में 18 अध्याय हैं, उसी प्रकार हिन्द स्वराज में 20 अध्याय हैं। शुरुआत के तीन अध्याय में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस तथा भारतीय जन जागरुकता का जिक्र आया है। पहले अध्याय का शीर्षक 'कांग्रेस और उसके कर्त्ता-धर्त्ता' है। इस अध्याय में गांधी ने अपनी दृष्टि में आम आदमी व लोकपक्ष का तर्क प्रस्तुत करते हैं। हिन्द स्वराज का दूसरा अध्याय 'बंग-भंग' एवं तीसरे आध्याय में 'अशांति और असंतोष' आपस में जुड़ा हुआ है। दूसरे अध्याय में अंग्रेजी हुकूमत द्‌वारा बंगाल का बटवारा (1905) और तीसरे अध्याय में बंग-भंग के बारे में अंग्रेज सरकार के निर्णय के उपरांत पूरे देश और खासकर बंगाल में पैदा हुए "अशांति और असंतोष" के बारे में अपना विश्लेषण प्रस्तुत किया है। हिन्द स्वराज के दूसरे अध्याय में 'बंग-भंग' के बारे में गांधी कहते हैं, "स्वराज के बारे में जागृति का दर्शन बंग-भंग से हुई।...प्रजा एक दिन में नहीं बनती, उसे बनाने में कई वर्ष लग जाते हैं।" तीसरे अध्याय में बंगाल विभाजन के परिणामस्वरूप उपजे अशांति और असंतोष के बारे में अपने विश्लेषण में गांधी कहते हैं कि नींद और जागने की प्रक्रिया में अंगड़ाई की स्थिति तो स्वभाविक है ठीक उसी प्रकार गुलामी की प्रक्रिया में सुप्त चेतना (नींद) और आत्मचेतना (जगाना) के बीच अशांति और असंतोष भी स्वभाविक है। मिस्टर ए.ओ. ह्यूम हमेशा कहते थे कि हिन्दुस्तान में हमेशा अशांति फैलाने की जरुरत है। यह असंतोष बहुत उपयोगी चीज है। इसलिए हर सुधार के पहले असंतोष होना ही चाहिए। इससे यह स्पष्ठ है कि गांधी बंग-भंग को न सिर्फ स्वाभाविक बल्कि ग्राह्य भी मानते हैं। ह्यूम भारतीय समाज में भारतीय संस्कृति, रीति-रिवाजों और धार्मिक मान्यताओं के प्रति असंतोष फैलाना चाहते थे। वे लोग मानते थे कि यदि भारत गुलाम बना तो इसका कारण भारतीय संस्कृति की हीनता एवं अंग्रेजों की संस्कृति की श्रेष्ठता रही है। अत: अगर भारतीयों को विकसित होना है तो ज्यादा संवैधानिक एवं राजनीतिक अधिकार प्राप्त करने से बात नहीं बनेगी बल्कि भारत की

सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक हालत के प्रति भारतीयों में असंतोष बढ़ाना भी आवश्यक है ताकि ये यूरोपीय मापदंडों पर सुधार कर सकें या सुधारकों के द्‌वारा सुधारे जा सकें।

अध्याय चार, 'स्वराज क्या है?' अध्याय से हिन्द स्वराज का असली एजेंडा, असली ब्लू प्रिंट, असली मेनिफेस्टो, असली घोषणापत्र शुरू होता है। वास्तव में पहले तीन अध्याय संदर्भ प्रस्तुत करते हैं। भूमिका बनाते हैं या दूसरे शब्दों में कहे तो पृष्ठभूमि तैयार करते हैं। शेष सोलह अध्याय विषय वस्तु की प्रस्तुति करते हैं तथा अंतिम में अध्याय में पूरी पुस्तक का सार-संक्षेप है।

चौथे अध्याय में गांधी स्वराज का अर्थ एवं प्रकृति समझाते हैं। उनका कहना है कि यह समझना बहुत आवश्यक है कि इस देश से अंग्रेजों को क्यों निकाला जाना चाहिए। गांधी कहते हैं कि कुछ लोग अंग्रेजों को इस देश से भगाना चाहते हैं परंतु वे अँग्रेजी राज और अंग्रेजी राज के विधान में कोई बुराई नहीं देखते । गांधी ने इस अध्याय में स्वराज के सही अर्थ को स्पष्ट किया है।

आधुनिक औद्‌योगिक सभ्यता की मीमांसा अध्याय 5 व 6 में की गई। अपनी कल्पना के स्वराज की चर्चा गांधी हिन्द स्वराज के पांचवे अध्याय में करते हैं। जिसका शीर्षक है-' इंग्लैण्ड की हालत'। गांधी कहते हैं की इंग्लैण्ड में जो राज चलता है वह ठीक नहीं है और हमारे लायक नहीं है। इंग्लैण्ड की संसद तो बांझ और वैश्या है। इस अध्याय में गांधी ने आधुनिक प्रजातंत्र की संसदीय प्रणाली की बहुत सही और कटु आलोचना प्रस्तुत की है। इस आलोचना का महत्त्व समकालीन भारतीय संदर्भ में और भी बढ़ गया। वास्तव में इस अध्याय में अंग्रेजी राज के विधान को अपने तर्क से नकारते हैं।

छठे अध्याय का शीर्षक है- 'सभ्यता का दर्शन'। इस अध्याय का सैद्धांतिक आधार एक ओर सनातन भारतीय सभ्यता की उनकी अपनी समझ है जो मूलतः उनकी (गांधी) व्यक्तिगत अनुभूतियों पर आधारित, तो दूसरी ओर यह प्लेटो, रस्किन, थोरो और टाल्सटाय की रचनाओं से प्रभावित है। भारतीय दृष्टि से यूरोपीय सभ्यता की प्रारंभिक सैद्धांतिक आलोचना है। आधुनिक सभ्यता की इतना सटीक, इतनी कटु, इतनी गंभीर तथा इतनी सरल भाषा में इतनी कलात्मक आलोचना अन्यत्र नहीं मिलती।

‘हिंदुस्तान कैसे गया?’ का वर्णन अध्याय सात में है। सातवें अध्याय में गांधी पिछले अध्याय के तर्कों को आगे बढ़ाते हैं। इस अध्याय का शीर्षक गांधी ने स्पष्ट किया कि हम लोग अपनी पारंपरिक संस्कृति की आन्तरिक कमियों या समाज व्यवस्था की रणनीति कमजोरियों के कारण या अंग्रेजी संस्कृति की आन्तरिक कमियों या समाज व्यवस्था की रणनीतिक कमजोरियों के कारण या अंग्रेजी संस्कृति की आन्तरिक शक्ति या उसकी समाज व्यवस्था की आन्तरिक गुणवत्ता के कारण नहीं हारे हैं बल्कि हमारे प्रभुत्व वर्ग और उभरते हुए मध्य वर्ग के लोभ और लालच के कारण बिना संघर्ष किये एक स्वैच्छिक समझौते के तहत हारे हैं। अंग्रेजी राज्य एक अधार्मिक, अनैतिक एंव चालबाज सभ्यता का ही उपज है जो लोभ, लालच और अनैतिक समझौतों का प्रचार करती है और एक साजिश के तहत हमारे शासक एंव व्यापारिक वर्ग को रिझा कर अपना उल्लू सीधा करती है। गांधी का मानना था कि अंग्रेजों को यहां लाने वाले हम ही है और वे हमारे बदौलत ही यहां रहते हैं हमने उनकी सभ्यता अपनाई है इसलिए वे यहां रह रहे हैं। जिस दिन एक देश के रूप में हिंदुस्तान का स्वाभिमान जाग गया और हमने उनकी शैतानी सभ्यता का आकर्षण त्याग दिया उसी क्षण हमें गुलामी से आजादी मिल जाएगी। वास्तव में इस अध्याय में हिंदुस्तान अंग्रेजों के हाथ में क्यों है इसकी सूक्ष्म व्याख्या की गई है।

8 से 11 अध्याय तक गांधी हिंदुस्तान की दशा की व्याख्या करते हैं। अध्याय में गांधी कहते हैं कि ‘आज हिंदुस्तान की रंक (कंगाल) दशा है।‘ हिंदुस्तान अंग्रेजों से नहीं आजकल की सभ्यता से कुचला जा रहा है, उसकी चपेट में फंस गया है, उसमें से बचने का अभी भी उपाय है लेकिन दिन-ब-दिन समय बितता जा रहा है। मुझे तो धर्म प्यारा है। हिदुस्तान धर्म भ्रष्ट होता जा रहा है। धर्म का अर्थ मैं यहां हिंदु, मुस्लिम या जरथोस्ती धर्म नहीं करता। लेकिन इन सब धर्मों के अंदर जो धर्म है वो हिंदुस्तान से जा रहा है। हम ईश्वर से विमुख होते जा रहे हैं। धर्म से विमुखता गांधी की **पहली चिंता** है। **दूसरी चिंता** गांधी की यह है कि आधुनिक लोग हिन्दुस्तान पर यह तोहमत लगाते हैं कि हम आलसी हैं और गोरे लोग मेहनती और उत्साही हैं। गांधी आगे कहते हैं कि हिन्दुस्तानी लोगों ने इस झूठी तोहमत को सच मान लिया है और आधुनिक मानदण्डों पर खरा उतरना के लिए आऩवश्यक रुप से गलत दिशा में प्रयत्नशील हो गए हैं। हिन्दु, मुस्लिम, जरथोस्ती, ईसाई सब धर्म सिखाते हैं कि हमें दुनियावी बातों के बारे में मंद और धार्मिक (दीनी) बातों के बारे

में उत्साही रहना चाहिए। हमें अपने संसारिक लोभ, लालच, और स्वार्थ की हद बांधनी चाहिए और आत्म विकास एवं सांस्कृतिक परिष्कार पर ज्यादा ध्यान केन्द्रित करना चाहिए। गांधी बल देकर कहते हैं कि जैसा पाखण्ड आधुनिक सभ्यता में पाया जाता है उसकी तुलना में सभी धर्मों में पाया जाने वाला व्यावहारिक पाखण्ड कम खतरनाक और कम दुखदायी होता है। आधुनिक सभ्यता एक प्रकार का मीठा जहर होता है। इसका जब असर हम जानेगें तब पुराने बहम और धार्मिक पाखण्ड इसके मुकाबले मीठे लगेंगे। आधुनिक सभ्यता के बहमों और पाखण्डों से आधुनिक सभ्यता में आस्था रखने वाले लोगों को लड़ने का कोई कारण नजर नहीं आता। जबकी सभी धर्मों के भीतर धर्म और पाखण्ड के बीच धार्मिक संघर्ष सदैव चलता रहा है। गांधी की **तीसरी चिंता** यह है कि कुछ लोगों को अभी भी यह भ्रम है कि अंग्रेजों ने हिन्दुस्तान में शांती और सुव्यावस्था कायम की है नहीं तो ठग, पिंडारी, भील आदि आदमियों को जीना नामुमकिन कर देते। गांधी इसे भी अंग्रेजी राज प्रेरित आधुनिक कुप्रचार मानते हैं। इन सब का इस अध्याय में गहराई से विचार किया गया है।

इसी क्रम को 9वें अध्याय में 'हिन्दुस्तान की दशा ' की व्याख्या करते हुए रेलगाड़ियों के महत्त्व पर प्रकाश डालते हैं। हिन्दुस्तान की तत्कालीन दशा के बारे में गांधी की **चौथी चिंता** यह है कि वास्तव में जिन चीजों ने हिन्दुस्तान को रंक (कंगाल) बनाने में सबसे बड़ी भूमिका निभयी है उसे ही हम लोगों ने लाभकारी मानना शुरू कर दिया है। गांधी की दृष्टि में आधुनिक सभ्यता एक अदृश्य रोग है। इसका नुकसान मुश्किल से मालूम हो सकता है। इस अध्याय का मूल उद्देश्य आधुनिक सभ्यता के तकनीकी आधार पर समालोचना है। इसमें गांधी कहना चाहते हैं कि किसी भी सच्ची, अच्छी और कल्याणकारी सभ्यता का आधार धर्म, नीति और मूल्य होते हैं तथा यंत्रों, तकनीकों, एवं मशीनों का उपयोग मात्र साधन के रूप में होता है। जबकी आधुनिक सभ्यता का आधार मूल्य, नीति और धर्म के बदले आधुनिक तकनीतिक वाला मशीन बन जाता है। गांधी तकनीति की सांस्कृतिक उपयुक्तता का प्रश्न उठाते हैं। उनका मानना है कि मनुष्य के जीवन, आकांक्षा, सुख-दुख, सफलता-असफलता, लाभ-हानि, प्रगति-पतन, जैसे मूल विषयों को जब मूल्यों के स्थान पर

तकनीकि परिभाषित करने लगते हैं तब सभ्यता पर असली संकट आता है। गांधी के तर्क में दम तो है परंतु पिछले अध्यायों के तर्क से थोड़ी असंगति दिखती है।

गांधी की **पांचवी चिंता** यह है कि लोग अंग्रेजों के इस कुप्रचार को सच मानते हैं कि हिन्दुस्तानी लोग अंग्रेजों और रेलवे के आने से पहले एक राष्ट्र नहीं थे और एक राष्ट्र बनने में हम लोगों को सैकड़ों बरस लगेंगे। गांधी साफ-साफ कहते हैं कि यह बिल्कुल बेबुनियाद बात है। जब अंग्रेज हिन्दुस्तान में नहीं थे तब भी हम एक राष्ट्र थे। हमारे विचार एक थे। हमारा रहन-सहन एक था। तभी तो अंग्रेजों ने यहां एक राज्य कायम किया। हमारे बीच भेद तो बाद में उन्होंने ही पैदा किया। एक राष्ट्र का अर्थ यह नहीं कि हमारे बीच कोई मतभेद नहीं था। परंतु हमारे बीच एकता के महत्त्वपूर्ण सूत्र प्राचीनकाल से रहे हैं। हमारे यहां रेलवे नहीं थी लेकिन हमारे समाज के प्रमुख लोग पैदल या बैलगाड़ी में हिन्दुस्तान का सफर करते थे। वे लोग एक-दूसरे की भाषा सीखते थे। देश के चारों कोनों तक लोग तीर्थ करने जाते थे। हमारे यहां एकता के सूत्र अलग प्रकार के रहे हैं।

हिन्द स्वराज के 10वें अध्याय में गांधी हिन्दुस्तान में हिन्दु-मुस्लिम संबंधों की दशा और दिशा की समालोचना करते हैं। हिन्दुस्तान की तात्कालीन दशा के बारे में गांधी की **छठी चिंता** यह है कि विदेशी शिक्षा और कुप्रचार के प्रभाव में कुछ लोग मानने लगे हैं कि भारत में हिन्दू-मुसलमान कभी मिलकर नहीं रह सकते। यह काल्पनिक मिथ है। हिन्दुस्तान में इसलिए सभी धर्मों और मतों के लिए स्थान है। यहां राष्ट्र सभ्यतामूलक अवधारणा है। राष्ट्र या सभ्यता का अर्थ यहां तात्विक रूप से सदैव विश्व व्यवस्था या वसुधैव कुटुम्बकम के रूप में रहा है। नये धर्मों या विदेशी धर्मों एवं उनके अनुयायियों के प्रवेश से राष्ट्र कभी आतंकित और चिंतित नहीं होता। यह एक सनातन सभ्यता है, सनातन राष्ट्र है। यह अंततः मिटने वाला नहीं है। जो नये लोग इसमें दाखिल होते हैं, वे इस राष्ट्र की प्रजा को तोड़ नहीं सकते, वे इसकी प्रजा में अंततः घुल-मिल जाते हैं। हिन्दुस्तान ऐसा रहा है और आज भी ऐसा ही है। गांधी ने स्पष्ट किया कि पूजा पद्धति, रीति-रिवाज और उपासना की सांप्रदायिक व्यवस्था के स्तर पर हिन्दु-मुसलमानों में अंतर अवश्य है परंतु यह अंतर उन्हें दो राष्ट्रों की प्रजा नहीं बना सकती। 1947 में देश के बंटवारे के अवसर पर भी गांधी ने नहीं माना कि दो राज बनने से भारत और पाकिस्तान नामक दो राष्ट्र बन गए। वे हमेशा

मानते रहे कि भारत में राष्ट्र की अवधारणा सभ्यतामूलक रही है, एक प्रकार की भू-सांस्कृतिक अवधारणा रही है और समय-समय पर इसमें न सिर्फ एक से अधिक राज्य होते रहे बल्कि उनके बीच राजनैतिक शत्रुता भी रही है। गांधी का मत था कि बंटवारे के बावजूद भारत और पाकिस्तान के हिन्दु-मुसलमान एक ही सभ्यता के अंग रहेंगे।

हिन्द स्वराज के 11वें अध्याय में वे तत्कालीन हिन्दुस्तानी समाज में वकीलों, जजों और आधुनिक न्यायालयों के द्वारा ब्रिटिश राज्य के संवर्धन की समालोचाना करते हैं। उस समय के हिन्दुस्तानी समाज के बारे में गांधी की **सातवीं चिंता** भारतीय समाज में वकीलों के बढ़ते महत्त्व को लेकर है। उनकी राय में वकीलों ने हिन्दुस्तान को गुलाम बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी है। इस अध्याय में गांधी भारतीय वकीलों के सुप्त राष्ट्रवाद को जगाकर उन्हें अंग्रेजों से असहयोग रकने के लिए प्रेरित करते हैं।

हिन्द स्वराज के 12वें अध्याय में हिन्दुस्तान की तत्कालीन दशा से संबंधित अपना पांचवां लेख 'डॉक्टर' शीर्षक से पूरा करते हैं। इस दृष्टि से पांच लेखों के अंतर्गत गांधी की **आठवीं चिंता** वकीलों, डॉक्टरों जैसे नये पेशों के प्रचार-प्रसार के बहाने अनीति और अधर्म के नये-नये क्षेत्रों में प्रचार-प्रसार को लेकर है। इस अध्याय को बहुत ध्यान और गहराई से पढ़ने की आवश्यकता है वरना बहुत से लोग खसकर नयी पीढ़ी इस अध्याय के रणनीतिक निहितार्थ को समझ नहीं पायेगी और गांधी के तर्क उन्हें बहुत हल्के, यहां तक कि बेतुके व बेबुनियाद नजर आएंगे। इस अध्याय के संदर्भ में ध्यान देना जरूरी है। इसमें अंग्रेजी राज के विरुद्ध और हिन्दुस्तानी सभ्यता में स्वराज की प्राप्ति की दृष्टि में गांधी अपना आठवां तर्क और **आखरी चिंता** प्रस्तुत करते हैं। अंग्रेजी राज और आधुनिक सभ्यता के खिलाफ यह अध्याय गांधी के तरकश का अंतिम बाण था। इस अध्याय में अंग्रेजी राज में डॉक्टरों की भूमिका की वे सरल भाषा में समालोचना प्रस्तुत करते हैं। यह अध्याय अपने समय से काफी पहले उत्तर आधुनिक तर्कों के आधार पर हर व्यक्ति को अपना डॉक्टर खुद बनने, अपने शरीर के स्वभाव और जरूरतों को समझकर अपने रोगों का खुद इलाज करने और अपने सर्वांगीण स्वास्थ्य का ख्याल रखने की अपील करता है। साथ ही साथ अंग्रेजी राज के हिन्दुस्तान में बने रहने का अंतिम और लबले मजबूत स्तंभ ढहाने की कोशिश करता है।

भारत की दयनीय दशा का वर्णन अध्याय 7 से 12 के बीच किया गया है। अध्याय 13 में इस प्रश्न का उत्तर दिया गया है कि क्यों कि गांधी भारतीय सभ्यता को सही मायने में एक आधुनिक सभ्यता मानते थे। सत्याग्रह या निष्क्रिय प्रतिरोध की संभावनाओं पर रोशनी अध्याय 14 से 17 के बीच में डाली गई है। अध्याय 18 से 19 में आधुनिक शिक्षा व तकनीकि से संबंधित विभिन्न समस्याओं की गहराई से पड़ताल की गई है।

20वें अध्याय जिसका शीर्षक छुटकारा है, में पूरे हिन्द स्वराज का निष्कर्ष बताया गया है। पाठक गांधी से राष्ट्र के नाम उनके संदेश में पूछता है। गांधी का संदेश स्पष्ट है। इस राष्ट्र से मैं कहूंगा कि जिस हिन्दुस्तानी को (स्वराज की) सच्ची खुमारी यानी मस्ती चढ़ी होगी, वही अंग्रेजों से ऊपर का बात कह सकेगा और उनके रोब से नहीं दबेगा।

सच्ची मस्ती तो उसी को चढ़ सकती है, जो ज्ञानपूर्वक-समझ-बूझकर-यह मानता हो कि हिन्द की सभ्यता सबसे अच्छी है और यूरोप की सभ्यता चार दिन की चांदनी है। वैसे सभ्यतायें तो आज तक कई हो गयीं और मिट्टी में मिल गयीं, आगे भी कई होंगी और मिट्टी में मिल जायेंगी। इसी को इकबाल ने अपने अंदाज में कहा है “यूनान, मिस्र, रोम्यां सब मिट गए जहां से, बाकि मगर है अब तक नामों निशा हमारा, कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी, सदियों रहा दुश्मन दौरे जहां हमारा”

सच्ची खुमारी उसी को हो सकती है, दो आत्मबल अनुभव करके शरीर बल से नहीं दबेगा और निडर रहेगा सपने में भी तोप-बल का उपयोग करने की नहीं सोचेगा।

सच्ची खुमारी उसी हिन्दुस्तानी को रहेगी, जो आज की लाचार हालत से बहुत ऊब गया होगा और जिसने पहले से ही जहर का प्याला पी लिया होगा।

ऐसा हिन्दुस्तानी अगर एक ही होगा, तो वह भी ऊपर की बात अंग्रेजों से कहेगा और अंग्रेजों को उसकी बीत सुननी पड़ेगी।

ऊपर की मांग, मांग नहीं है, वह हिन्दुस्तानियों के मन की दशा को बताती है। मांगने से कुछ नहीं मिलेगा, वह तो हमें खुद लेना होगा। उसे लेने के लिए हममें ताकत होनी चाहिए। यह ताकत उसी में होगी-

1 जो अंग्रेजी भाषा का उपयोग लाचारी से करेगा।

2 जो वकील होगा तो वो अपनी वकालत को छोड़ देगा और खुद घर में चरखा चलाकर कपड़े बुन लेगा।

3 जो वकील होने के कारण अपने ज्ञान का उपयोग सिर्फ लोगों को समझाने और लोगों की आंखे खोलने में करेगा।

4 जो वकील होकर वादी-प्रतिवादी के झगड़ों में नहीं पड़ेगा, अदालतों को छोड़ देगा और अपने अनुभव से दूसरों को अदालत छोड़ने के लिए समझायेगा।

5- जो वकील होते हुए भी जैसे वकालत छोड़ेगा वैसे ही न्यायाधीशपन भी छोड़ेगा।

6- जो डॉक्टर होते हुए भी अपना पेशा छोड़ेगा और समझेगा कि लोगों की चमड़ी भोंकने के बजाय बेहतर है कि उनकी आत्मा को छुआ जाए और उसके बारे में शोध-खोज करके उन्हें तंदरुस्त बनाया जाये।

7- जो डॉक्टर होने से समझेगा कि खुद चाहे जिस धर्म का हो, लेकिन अंग्रेजी वैद्यशालाओं-फार्मेसियों-में जीवों पर जो निर्दयता की जाती है, वैसी निर्दयता से बनी हुई दवाओं के वजाय बेहतर है कि शरीर रोगी रहे।

8- जो डॉक्टर होने पर खुद चरखा चलायेगा और जो लोग बीमारी का सही कारण बताकर उसे दूर करने के लिए कहेगा; निकम्मी दवाएं देकर उन्हें गलत लाड़ नहीं लड़ायेगा। वह तो यही समझेगा कि निकम्मी दवाएं न लेने से बीमारी की देह अगर गिर भी जाये, तो उससे दुनिया अनाथ नहीं हो जायेगी, और यही मानेगा कि उसने बीमारी पर सच्ची दया की है।

9- जो धनी होने पर भी धन परवाह किये बिना अपने मन में होगा वही कहेगा और बड़े-से-बड़े सत्ताधीश की भी परवाह न करेगा।

10- जो धनी होने से अपना रूपया चरखे चालू करने में खर्चेगा और खुद सिर्फ स्वदेशी माल का इस्तेमाल करके दूसरों को भी ऐसा करने का बढ़ावा देगा।

11- दूसरे हर हिन्दुस्तानी की तरह जो यह समझेगा कि यह समय पश्चाताप का ,प्रायश्चित का और शोक का है।

12- जो दूसरे हर हिन्दुस्तानी की तरह यह समझेगा कि अंग्रेजों का कसूर निकालना बेकार है। हमारे कसूर की वजह से वे हिन्दुस्तान में आये, हमारे कसूर के कारण ही वे यहां रहते हैं और हमारा कसूर दूर होगा तब वे यहां से चले जायेंगे या बदल जायेंगे।

13- दूसरे हिन्दुस्तानियों की तरह जो यह समझेगा मातम के वक्त मौज-शौक नहीं हो सकते। जब तक हमें चैन नहीं है तब तक हमारा जेल में रहना या देश निकाला भोगना ही ठीक है। 14- जो खुद हिन्दुस्तानियों की तरह यह समझेगा कि लोगों को समझाने के बहाने जेल में न जाने की खबरदारी रखना निरा मोह है।

15- जो दूसरे हिन्दुस्तानियों की तरह यह समझेगा कि कहने से करने का असर अद्भुत होता, हम निडर होकर जो मन में है वहीं कहेंगे और इस तरह कहने का नतीजा आये उसे सहेंगे, तभी हम कहने का असर दूसरों पर डाल सकेंगे।

16- जो दूसरे हिन्दुस्तानियों की तरह यह समझेगा कि हम दुख सहन करके ही बंधन वाली गुलामी से छूट सकेंगे।

17- जो दूसरे हिन्दुस्तानियों की तरह समझेगा कि अंग्रेजों की सभ्यता को बढ़ावा देकर हमने जो पाप किया है। उसे धो डालने के लिए अगर मरने तक भी अंडमान में रहना पड़े, तो वह कुछ ज्यादा नहीं होगा।

18- जो दूसरे हिन्दुस्तानियों की तरह समझेगा कि कोई भी राष्ट्र दुख सहन के बिना ऊपर चढ़ा नहीं है। लड़ाई के मैदान में भी दुख की कसौटी होती है, न कि दूसरे को मरना। सत्याग्रह के बारे में भी ऐसा ही है।

19- जो दूसरे हिन्दुस्तानियों की तरह समझेगा कि यह कहना कुछ नकरने के लिए एक बहाना भर है कि 'जब सब लोग करेंगे तब हम भी करेंगे'। हमें ठीक लगता है इसलिए हम करेंगे, जब दूसरों को ठीक लगेगा तब वे करेंगे- यही करने का सच्चा रास्ता है। अगर मैं स्वादिष्ट भोजन देखता हूं, तो उसे खाने के लिए दूसरे की राह नहीं देखता। ऊपर कहे

मुताबिक प्रयत्न करना, दुख सहना यह स्वादिष्ट भोजन है। ऊहकर लालची से करना या दुख सहना निरी बेगार है।

हिन्द स्वराज के अंत में निष्कर्ष के रूप में गांधी लिखते हैं कि-

1 अपने मन का राज्य स्वराज है।

2- उसकी कुंजी सत्याग्रह, आत्मबल या करूणा-बल है।

3- उस बल को अजमाने के लिए स्वदेशी को पूरी तरह अपनाने की जरूरत है।

4-हम जो करना चाहते हैं वह अंग्रेजों के लिए (हमारे मन में) द्वेष है इसलिए करें कि ऐसा करना हमारा कर्तव्य है। मतलब यह कि अंग्रेज अगर नमक-महसूल रद कर दें, लिया हुआ धन वापस कर दें, सब हिन्दुस्तानियों को बड़े-बड़े ओहदे दे दें, और अंग्रेजी लश्कर हटा दें,या उनकी हुनर-कला का उपयोग करेंगे सो बात नहीं है। हमें यह समझना चाहिए कि वह सब दरअसल नहीं करने जैसा है, इसलिए हम उसे नहीं करेंगे।

यथार्थ में, हिन्द स्वराज में महात्मा गांधी ने जो भी लिखा है वह अंग्रेजों के प्रति घृणा, द्वेष होने के कारण नहीं, बल्कि उनकी सभ्यता के प्रतिवाद में कहा है। गांधी का स्वराज्य दरअसल अक वैकल्पिक सभ्यता प्रारूप या ब्लू प्रिंट है। वह राज्य की सत्ता प्राप्त करने की कोई राजनैतिक एजेंडा या घोषणापत्र नहीं है।

प्रथम परिशिष्ट में अतिरिक्त अध्ययन के लिए 20 संदर्भ ग्रंथों की सूची संकलित है जिसमें से 6 टॉल्सटाय के, 2 थोरो के, 2 जान रस्किन के तथा 1-1 प्लेटो (सुकरात मृत्यु व सुरक्षा) ,मैजिन (मनुष्य का कर्त्तव्य), दादा भाई लौरोजी तथा आर.सी.दत्त (औपनिवेशिक भारत की आर्थिक दशा पर) के ग्रंथ शामिल हैं।

हिन्द स्वराज की विषय-वस्तु का सारांश

भारत में अपने मित्र को लिखे पत्र में गांधी ने निम्न शब्दों में हिन्द स्वराज का सारांश प्रस्तुत किया-

1 पूर्व और पश्चिम के बीच कोई अलंघ्य दीवार नहीं है।

2- पाश्चात्य या यूरोपीय सभ्यता जैसी कोई चीज नहीं वरन् एक आधुनिक सभ्यता अस्तित्व में है जो पूर्णत: उपभोगवादी है।

3- आधुनिक सभ्यता के सम्पर्क में आने से पहले यूरोप के लोग अधिकांशत: अपने पूर्व के भाईयों के समान थे और उनमें काफी चीजें सझी थी; और आज भी वे कुछ यूरोपीय, जिन्हें आधुनिकता का रोग नहीं लगा है। आधुनिक सभ्यता के साये में पले-बढ़े लोगों की अपेक्षा कहीं अधिक और बेहतर ढंग से भारतीयों के साथ अपना समायोजन कर सकते हैं और करते भी रहें हैं।

4- भारत में शासन ब्रिटिश लोग नहीं कर रहे हैं वरन् रेलवे, टेलीग्राफ, टेलीफोन, तथा इसी जैसे अन्य अनेक आविष्कारों के माध्यम से आधुनिक सभ्यता भारत के तने-बाने को छिन्न-भिन्न कर रहे हैं. ये वही तत्व हां जो अपने आपको इस तथाकथित सभ्यता का गौरवशाली उत्पाद मानतें हैं और विजय का दंभ भरते हैं।

5- भारत के बंबई, कलकत्ता तथा दूसरे अन्य महानगर बुराईयों की शरणस्थली के रूप में विकसित हुए हैं।

6- यदि वर्तमान ब्रिटिश शासन के स्थान पर आधुनिक तौर-तरीकों पर आधारित भारतीय शासन स्थापित हो जाए तो भी हमारी दशा व दिशा में कोई परिवर्तन नहीं आएगा, सिवाय इसके कि हम इंग्लैंड द्वारा भारतीय धन की निकासी पर कुछ रोक लगा पाएंगे। लेकिन जब तक भारत की स्थिति यूरोप या अमेरिका के दूसरे या पांचवें दर्जे के राष्ट्र के समान ही होगी।

7- यदि पश्चिम आधुनिक सभ्यता से पूरी तरह तौबा कर लें तो पूर्व और पश्चिम का सौहार्द्रपूर्ण मिलन संभव ही नहीं सुनिश्चित भी है। ये अभी भी मिल सकते हैं बशर्ते पूर्व आधुनिक सभ्यता को पूरी तरह अपना लें। लेकिन तब यह मिलन एक सैन्य संधी के समान

होगी। इस मिलन का परिणाम हम जर्मनी और इंग्लैंड के बीज कटुतापूर्ण विद्धंसक रिश्तों के आइने में आसानी से देख सकते हैं।

8- किसी भी व्यक्ति या समूह के लिए सम्पूर्ण विश्व के सुधार की कल्पना या कोशिश नितांत अव्यावहारिक है। और यह प्रयास यदि अत्यंत परिकृष्ट, स्वचालित व त्वरित कृत्रिम साधनों के द्वारा किया जाता है तो इसे असंभव ही माना जाएगा है।

9- भौतिक सुख-सुविधाओं में बढ़ोत्तरी किसी रूप में नैतिकता को प्ररित या समृद्ध नहीं करेगी।

10- चिकित्सा शास्त्र काले जादू का केन्द्रिकृत सारतत्व है। इस तरह उच्च चिकित्सीय कौशल से नीम हकीम अनन्त गुणा बेहतर है।

11- अस्पताल शैतानी साम्राज्य कायम रखने के औजार हैं। ये दुर्बलता, क्षरणता, नैतिक पतन तथा वास्तविक गुलामी लाने वाले मुख्य कारक हैं। चिकत्सीय प्रशिक्षण लेने की अपनी योजना पर जब विचार करता हूं तो पाता हूं कि मैं बहुत बड़ा पाप करने जा रहा था तथा अस्पतालों में हो रहे पापों की भागीदार बनने की राह पर था। यदि यौन रोगों का या क्षय रोगों के वास्ते कोई अस्पताल नहीं होता तो शायद यौन दूराचारों व क्षय रोगियों की संख्या इतनी होती नहीं जितनी कि आज है।

12- भारतीय गुलामी का कारण है कि पिछ्ले पचास सालों के

के घटनाक्रम से सीख न लेने की हमारी प्रवृति है। रेलवे, वकील, डॉक्टर आदि जैसी चीजों का खात्मा नितांत आवश्यक है और इसे जाना होगा। हमारे तथाकथित उच्चवर्गी लोगों को विचारपूर्वक एक सात्विक, सरल व सादे जीवन की कला सीखनी होगी। क्योंकि इसी माध्यम से वे सही मायने में संतुष्ट व सानंद जीवन जी पाएंगे।

13- भारतियों को मशीन निर्मित वस्त्रों को पहनने से पूर्णतया परहेज करना चाहिए, फिर वह वस्त्र यूरोपी मिलों का हो या भारतीय मिलों का।

14- इंगलैंड ऐसा करने में भारत की मदद कर सकता है और तब यह सही मायने में वह अपने शासन को न्यायोचित कहलवा पाएगा। इंगलैंड के बहुत सारे लोग आज इस तरह की सोच रखते हैं।[40]

हमारी प्राचीन सभ्यता आज की अपेक्षा कई गुना अधिक सहज, संतुलित व नियमित थी क्योंकि उपभोगवादी प्रवृति को संयमित व संतुलित कर रखा था। और तब के लोग आज के यूरोपियों के मुकाबले कहीं ज्यादा अधिक लंबा व सुखद जीवन जीते थे। मुझे पूरा विश्वास है कि यदि हम संयम व विवेक से काम लें तो हम फिर से पहले वाली निश्चिन्तता, सरलता व आनंद का उपभोग कर सकेंगे। मेरा ख्याल है कि प्रत्येक प्रबुद्ध व्यक्ति इससे सहमत होंगे और वे ऐसा करना चाहेंगे।

इसी प्रकार आर.पी.मिश्र[41] ने अपनी नवीन पुस्तक "गांधी पुन:खोज खण्ड 1, हिन्द स्वराज" में बहुत सुंदर शब्दों में हिन्द स्वराज का सार संक्षेप में गागर में सागर भरते हुए दिया है-

1 तथाकथित आधुनिक सभ्यता पश्चिम की सभ्यता नहीं है, क्योंकि पश्चिम द्वारा अपनाई गई अद्योगिक सभ्यता जिसे उसने ग्रहण किया है, इससे पूर्व और पश्चिम की सभ्यतों में कोई अंतर नहीं था;

2- पश्चिम द्वारा पूर्व का शोषण करने का ये अर्थ नहीं है कि वे पश्चिम के लोग हैं बल्कि मुख्य कारण यह है कि उन्होंने इस सभ्यता को अपने नियंत्रण में कर लिया है और उसको अपना ग्रास बना लिया है;

3- भारत ब्रिटिश लोगों द्वारा पराजित नहीं किया गया बल्कि भारतीय लोग औद्योगिकी सभ्यता से प्रभावित हो गए और उसके प्रलोभन में उन्होंने स्वयं ब्रिटिश लोगों को अपने ऊपर शासन करने के लिए आमंत्रित कर लिया था;

4- शोषणात्मक शहरीकरण आधुनिक सभ्यता का प्रतीक बन गया;

5- ब्रिटिश लोगों को यहां से हटाने की समस्या नहीं है, उन्हें भारतीयों के द्वारा हटाना है, उन्हें बदलना है परंतु यह देखना है कि वास्तविक आधुनिक सभ्यता लाने के लिए व्यवस्था को किस प्रकार से बदला जाए;

6- भौतिक कल्याण में सुधार होने से किसी भी प्रकार से मनुष्य का नैतिक उत्थान नहीं होता बल्कि जीवन के नैतिक स्तर में सुधार होने से इसे भौतिक प्रगति योग्य बनाया जा सकता है;

7- आधुनिक औषधियां स्वास्थ्य में सुधार नहीं लाती है, ये बीमारियों का सबसे बड़ा कारण है;

8- कानूनी व्यवस्था लोगों में अलगाव पैदा करती है तथा कदाचित ही लोगों में मेल करती है; 9- मशीनों के प्रति आकर्षण से मनुष्य की पुरानी जीवन पद्धति में बदलाव आता है, श्रम बचाने वाली मशीनें तभी भी ठीक हैं जब प्रत्येक व्यक्ति के पास समुचित जीविका कमाने और रचनात्मक कार्य करने के साधन हों;

10- हिंसा, हिंसा को पैदा करती है। सत्याग्रह एक अधिक शक्ति सम्पन्न अस्त्र है। यह शक्तिशाली लोगों का अस्त्र है, शक्तिहीनों का नहीं;

11- साध्य और साधन अविभाज्य है। हम किसी महान साध्य को क्षुद्र साधन द्वारा प्राप्त नहीं कर सकते हैं। उचित साधन सदैव समुचित साध्य की ओर ले जायेगा;

12- केवल " सादा जीवन उच्च विचार" ही शांति और सदभावना

पैदा कर सकते हैं;

13- प्राथमिक शिक्षा का अर्थ नैतिक शिक्षा है;

14- विवेकशील लोगों का कहना था कि वास्तविक बुद्धिमानी यही थी कि उन्होंने लोगों की भौतिक स्थितियों को नियंत्रित करके समाज को व्यवस्था प्रदान की थी;

15- भारत उसी दिन स्वतंत्र हो जागेया जब भारतीय लोग आधुनिक सभ्यता को अपनाने के प्रलोभन का त्याग कर देंगे।

हिंद स्वराज पर गांधी के विचार

22 नवम्बर 1909 को इण्डियन ओपीनियन में अनुदित व प्रकाशित, गुजराती संस्करण की भूमिका लिखते हुए गांधी ने कहा "जिस दृष्टिकोण को पाठकों के सामने रखने का साहस मैं कर रहा हूं वह कहने की जरूरत नहीं कि बहुत सारे भारतीय उससे सुपरिचित हैं परंतु वर्तमान तथाकथित आधुनिक सभ्यता से वह अछूता है लेकिन मैं अपने पाठकों को यह विश्वास दिलाना चाहूंगा कि हजारों की संख्या में यूरोपीय भी इससे सुपरिचित होंगे"[42] यद्यपि जब इसका अंग्रेजी संस्करण प्रकाशित हुआ तो गांधी ने तुलमात्मक रूप से इसकी लंबी प्रस्तावना लिखते हुए 20 मार्च 1910 को कहा "भारत में ब्रिटिश सरकार शैतान के साम्राज्य रूपी आधुनिक सभ्यता तथा ईश्वर के साम्राज्य रूपी प्राचीन सभ्यता के बीच के संघर्ष व द्वंद की साक्षी है।" उसी साल उन्होंने गोखले को लिखे पत्र में कहा कि पुस्तक में व्यक्त उसके विचार संघर्ष के साथ-साथ परिपक्व होते गए हैं... मगन लाल गांधी को उन्होंने लिखा, "मेरे मन-मस्तिष्क की वर्तमान हालत यह है कि यदि संपूर्ण विश्व भी मेरे लिखे विचारों के खिलाफ हो जाए तो भी मैं हार नहीं मानूंगा और मैदान ए जंग में डटे रहूंगा।"[43]

3 मई 1910 को आलोचना भरे स्वर मे लिखी गई मिस्टर वाईवर्ग (Mr. Wybergh) के पत्र को गांधी ने 21 मई 1910 को इण्डियन ओपीनियन में प्रकाशित किया।[44]

10 मई 1910 को लिखे अपने जवाब में गांधी ने अपने आप को मुख्य रूप से निष्क्रिय प्रतिरोध की व्याख्या तक सीमित रखा क्योंकि मिस्टर वाईबर्ग ने अपनी आलोचना को इसी के ईर्द-गिर्द रखा था। तथापि मिस्टर वाईबर्ग द्वारा आधुनिक सभ्यता पर उनके दृष्टिकोण को आलोचना के जवाब में गांधी ने सुस्पष्ट रूप से कहा "आधुनिक सभ्यता की निंदा करने का साहस मैंने इसलिए किया क्योंकि मैं इसके मर्म को बुराई की जड़ मानता हूं। यद्यपि यह संभव है कि इसके कुछ अंशों को अच्छा दिखा दिया जाए लेकिन मैं इसकी प्रकृति की जांच-पड़ताल नैतिकता के आइने में की है।"[45] सन 1919 को जब गुजराती का दूसरा संस्करण आया तो गांधी ने लिखा "मैं पाता हूं कि पुस्तक में व्यक्त मेरे विचार समय के साथ और अधिक मजबूत हो गए हैं"[46] आगे उन्होंने लिखा, "हिन्द स्वराज के बोध की कुंजी सांसारिक इच्छाओं के त्याग व नैतिक जीवन के स्वीकार में छुपी है।"[47] 1919 में मंगन लाल

गांधी को लिखते हुए उन्होंने कहा, "जितना अधिक अनुभव मैं प्राप्त करता जा रहा हूं उतनी अधिक मेरी धारणा दृढ़ होती जा रही है कि मशीनरी हमारी व्यक्तिगत गुलामी का मार्ग प्रशस्त करेगी और मैं यह महसूस करता हूं कि हिन्द स्वराज में व्यक्त मेरे विचार अक्षरश: सत्य हैं।"[48] सन् 1920 में आलोचनाओं का जवाब देते हुए उन्होंने कहा, "मैं भारत से यह नहीं कहता कि वह आज ही हिन्द स्वराज में व्यक्त तौर-तरीकों को अपना ले। यदि वे ऐसा करते हैं तो स्वराज वर्षों में नहीं दिनों में प्राप्त हो जाएगा। मेरे वर्तमान कार्य का मकसद है कि मैं देश को संसदीय स्वराज की उपलब्धि के लिए एक क्षम्य कार्यक्रम दे सकूं।"[49]

1921 में उन्होंने अपनी व्याख्या को और विस्तार दिया। पुस्तक की प्रस्तावना में उन्होंने पाठकों को चेताते हुए कहा, "मैं अपने पाठकों को इस सोच के प्रति अगाह करना चाहूंगा कि जिस स्वराज की बात मैंने की है वह मैं तत्काल ही प्राप्त कर लेना चाहता हूं। मुझे पता है कि हिन्दुस्तान इसके लिए अभी परिपक्व नहीं है। ऐसा कहना अनुपयुक्त संसदीय स्वराज की प्राप्ति हेतु पूरे संकल्प व समर्पण के साथ लगी हुई है। मेरा लक्ष्य रेलवे या अस्पतालों को नष्ट करना नहीं है यद्यपि निश्चित रूप से मैं इसके स्वाभाविक विनाश का स्वागत करूंगा। रेलवे या अस्पताल इसमें से कोई भी उच्च और शुद्ध सभ्यता के मापदंड नहीं हैं। निश्चय ही अपने शवाब पर ये बुराइयों के प्रतीक बनते हैं तथा राष्ट्र के नैतिक उत्थान में इनकी कोई भूमिका नहीं दिखती। न ही मैं अदालतों के स्थायी विनाश को मैं अपना लक्ष्य बना रहा हूं क्योंकि मुझे पता है कि इसके लिए जिस उच्चतर सादगी व त्याग की आवश्यकता है उसके लिए वर्तमान समय के लोग तैयार नहीं हैं।"[50]

1924 में कुछ आपत्तियों का निवारण करते हुए गांधी ने लिखा, "हिन्द स्वराज में लिखे गए एक अंश को भी वापस लेने के लिए मैं तैयार नहीं हूं.... यह याद रखा जना चाहिए कि पुस्तक में वर्णित हिन्द स्वराज यानी भारतीय स्वशासन को हिन्दुस्तान के समक्ष मैं नहीं रख रहा हूं वरन् राष्ट्र के समक्ष मैं संसदीय यानी प्रजातांत्रिक स्वराज के लक्ष्य को रखना चाहता हूं, मैं आज यह सलाह नहीं देता की सभी मशीनों को एक साथ नष्ट कर दिया जाए, वरन इसके वजाए मैं चरखे को मास्टर मशीन बनाना चाह रहा हूं। हिन्द स्वराज एक आदर्श राज्य को चित्रित करता है... और इस बात का मुझे बेहद अवसोस है कि मैं उस आदर्श राज्य के सूत्र ढूढ़ नहीं पाया और इसे में मैं अपनी कमजोरी मानता हूं... अस्पतालों के बारे में जो

कुछ मैंने कहा वह भी सत्य है। और मैं अभी भी इस बात को महसूस करता हूं की काश में कम से कम दवाइयों पर गुजारा कर पाता और शरीर के प्रति अपने मोह को कम से कमतर कर पाता।"[51]

1929 में उन्होंने सतीश चंद्र गुप्त को लिखा, "अगर मुझे दोबारा भी लिखना पड़े तो हिन्द स्वराज में ऐसा कोई शब्द नहीं है जिसे प्रमाणित नहीं किया जा सके। मैं भाषा भले ही बदल दूं लेकिन विचार कभी नहीं बदलूंगा।"[52] 1938 में आर्यन पथ ने हिन्द स्वराज को समर्पित एक विशेष अंक निकाला। इस विशेष अंक के प्रकाशन के अवसर पर आर्यन पथ को संदेश देते हुए गांधी ने स्पष्ट किया-

"यदि मुझे इस पुस्तिका को दोबारा से लिखना पड़े तो यह संभव है... भाषा के स्तर पर थोड़ी.. बहुत मैं इधर-उधर बदलाव करूं। लेकिन तीस सालों के झंझावत से गुजरते और झेलते हुए मुझे अपने द्वारा प्रतिपादित दृष्टिकोण में परिवर्तन की कोई गुंजाइशन नहीं दिखती।"[53]

1939 में गांधी के अनुसार उनके एक मित्र ने हिन्द स्वराज में लिखे उनके विचार और उनके वर्तमान व्यवहार में अंतरविरोध की ओर उनका ध्यान आकृष्ट किया। गांधी ने अपनी सामान्य निष्कपटता के साथ उसका जवाब यों दिया- "अविश्वसनीय रूप से अत्यंत ही साधारण (इतना सरल की मूर्खता का बोध हो) उस पुस्तक को समझने की पूंजी इस बात को महसूस करने में नीहित है कि यह प्रयास तथाकथित अंधकार युग में वापस जाने का कतई नहीं है वरन यह प्रयास है स्वैच्छिक सादगी, गरीबी व मंथरता (विलंबता) के अनुपम सौंदर्य को देखने, अनुभव करने का है। मैंने अपने आदर्श का चित्रण किया है मैं खुद वहां तक कभी नहीं पहुंच पाऊंगा और राष्ट्र से भी ऐसा करने की अपेक्षा कभी नहीं रख सकता। लेकिन वर्तमान युग हवाई किले बनाने का है जिसमें सबकुछ पलक झपकते ही हासिल करने की कोशिश की जाती है और एक के बाद एक कभी न खत्म होने वाली इच्छाओं का अंबार लगा दिया जाता है। सो इसके प्रति मेरा कोई आकर्षण नहीं। ये हमारे आंतरिक सत्व को सुप्त कर देते हैं। मानव अपने कौशल के सहारे जिस आभाषी या कल्पित ऊंचाई को छूने का प्रयास कर रहा है वह हमें अपने रचयिता से दूर ले जा रहा है जो कि हमसे इतना नजदीक है जितना गूदा (मांस) अपने आवरणकर्ता नाखून से भी नहीं। "[54]

अक्टूबर 1939 में गांधी को गांधी सेवा संघ के कार्यकर्ताओं के साथ विचार-विमर्श का अवसर मिला उन्होंने इस अवसर पर मौजूद कार्यकर्ताओं को संबोधित करते हुए कहा, "मैं आप लोगों से कहना चाहूंगा कि आप लोग हिंद स्वराज को मेरी आंखों से पढ़े तथा उन अध्यायों के मर्म तक पहुंचने की कोशिश करें जिसमें भारत को अहिंसक बनाने के रास्ते सुझाए गए हैं। आप अहिंसक समाज का निर्माण फैक्ट्री सभ्यता के आधार पर नहीं कर सकते। इसका निर्माण तो स्वयं पोषित गांवों को आधार बनाकर ही किया जा सकता है। "[55]

हिन्द स्वराज पर उनकी अंतिम घोषणाओं में से दो का उल्लेख व्यापक रूप से करना अत्यन्त जरूरी है दोनों ही पत्र रूप में हैं 14 जून 1945 को अपने पहले पत्र में श्री कृष्ण चंद्र को लिखा, "हिन्द स्वराज में रेलवे आदि के बारे में जो कुछ मैंने कहा, उस पर मैं अभी भी कायम हूं। लेकिन वह लागू होती है एक आदर्श राज्य पर। लेकिन यह संभव है कि उस आदर्श राज्य को हम कभी न प्राप्त कर पाएं। हमें इसके लिए चिंतित होने की आवश्यकता नहीं है साथ ही हमें आदर्श को प्राप्त करने के लिए अपने प्रयास को बिलकुल भी छोड़ नहीं देना चाहिए। हमारे पास उन मुद्दों पर एक स्वतंत्र व व्यापक सोच होनी चाहिए जहां तक संभव हो हमें इन सुविधाओं का कम से कम इस्तेमाल करना चाहिए। समाज में सभी प्रकार के लोग रहेंगे। सो हमें उनके साथ जीना आना चाहिए। अनाशक्ति इस परिस्थितियों में हमारा सबसे उत्तम धर्म है। हमें सिर्फ इस बात का ख्याल रखना चाहिए कि हम अपने आप को धोखे में न रखें। आपने जिस तरह रेलवे की तुलना चोरी, मिलावट, भ्रष्टाचार आदि से करते हुए उससे बचने की वकालत की है, वह सही नहीं है। इसके पीछे मुख्य वजह यह है कि यदि समाज, चोरी, मिलावट, भ्रष्टाचार आदि को अनैतिक मानता भी है तो भी उसकी ऐसी राय रेलवे के प्रति नहीं होती और इसकी कोई जरूरत भी नहीं है हमारे कहने का निचोड़ यही है कि हमें रेल को आनंद की वस्तु नहीं समझनी चाहिए। "[56]

अंतिम पत्र उन्होंने जवाहरलाल नेहरू को लिखा जिसमें उन्होंने हिन्द स्वराज का स्पष्ट रूप से जिक्र किया। उन्होंने लिखा, "हिन्द स्वराज में जिस शासन व्यवस्था का जिक्र मैंने किया है उस पर मैं पूरी तरह कायम हूं...। मैं अपने अनुभव से यह कह सकता हूं कि 1909 में व्यक्त मेरे विचारों की दृढ़ता व प्रमाणिकता आज और अधिक ठोस हुई है। "[57]

आगे उन्होंने लिखा, “यह बेहतर में कि मैं अपने विचारों को अपने ही शब्दों में फिर से व्यक्त करूं। उल्लेखनीय बात यह है कि वर्तमान में मेरे विचार क्या है? मैं यह विश्वास करता हूं कि यदि भारत को या फिर भारत के द्वारा विश्व को आजादी हासिल करनी हो तो देर-सबेर हमें महलों की वजाए गांवों व झोपड़ियों में जाना ही पड़ेगा। लाखों-करोड़ लोगों का गुजर-बसर शहरों व महलों में सुख-शांति से कभी नहीं हो सकता...। हम सत्य व अहिंसा के उस आदर्श की उपलब्धि केवल गांवों की सादगी व सरलता में ही कर सकते हैं। सादगी चरखे व चरखे के उत्पाद में वास करती है। मेरे कहने का निचोड़ यही है कि व्यक्ति का अपने जीवन को पोशित करने वाले तत्वों पर समुचित नियंत्रण रहना चाहिए।“[58]

उपरोक्त विश्लेषण से इस बात का निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि हिंद स्वराज का गांधी का खुद का मूल्यांकन अनेक संशोधनों का साक्षी रहा।

हिंद स्वराज्य की प्रविधि

हिन्द स्वराज को पढते हुए छात्र के समक्ष पहली समस्या प्रविधि की आती है। क्या हिन्द स्वराज को अंतिम दस्तावेज के रूप में स्वीकार कर लेना चाहिए ? जिसके द्वारा महात्मा गांधी भारतीय समाज को पुर्नगठित करने का वीड़ा उठा रहे थे या फिर यह एक ऐसे भारतीय का आक्रोश है जो आधुनिक सभ्यता की बुराइयों तथा उसके संस्थाओं तथा संसद आदि से विरक्त व क्षुब्ध है? या फिर एक संदेश है जो रैखिक विकास के उस संपूर्ण उपागम पर पुन: विचार करने को प्रेरित करता है जो 19वीं वा 20वीं शताब्दी के प्रारंभ का प्रमाणक रहा है ? [59]

ज्यों ही हम हिन्द स्वराज को पढ़ना व समझना शुरु करते हैं त्यों ही ये सारे प्रश्न ये हमारे जेहन में उमड़ने-घुमड़ने लगते हैं। भारत व विश्व के व्यापक संदर्भ में हिन्द स्वराज को समझने के लिए हमें ऐतिहासिक परिदृश्यों पर नजर दौड़ानी पड़ेगी। लेकिन ऐसा करने से पहले हम इसके लिए अपेक्षित प्रविधि यानि मैथोडलॉजी पर एक नजर दौड़ाते हैं।[60]

प्रविधि की दृष्टि से हिन्द स्वराज को वह अंतिम दस्तावेज नहीं माना जा सकता है जिसके आधार पर गांधी भारत सहित पूरे विश्व के समाज का निर्माण करना चाहते थे। हिन्द स्वराज में ‘एक ऐसे आदर्श राज्य को चित्रित किया गया है जिसके लिए गांधी एक आदर्श व

अनिवार्य शर्त है' और पाठकों को खुद आगाह करते हुए गांधी ने कहा कि, "पुस्तक में वर्णित स्वराज मेरा वर्तमान लक्ष्य नहीं है और इस पर कोई गलत फहमी नहीं होना चाहिए। "[61]

वरन् यह जाहिर है कि गांधी के रुख में अखड़त नहीं थी वरन् वो लचीले रुख के हिमायती थे। फिर भी उपरोक्त वर्णित अनेक उद्धरणों से यह स्पष्ट जाहिर होता है कि गांधी पुस्तिका में व्यक्त अपने विचारों से पीछे हटने के लिए तैयार नहीं थे और वह उस पर अन्त तक कायम रहे। नेहरु को लिखे पत्र में, जो शायद उनके विचारों का नवीन रूप था, उन्होंने कहा कि हिन्द स्वराज में वर्णित शासन व्यवस्था के विशिष्ट रूप पर वह पूर्णतया कामय हैं। इसके आगे के भाग में अपने विचारों को उन्होंने फिर से स्पष्ट करने का प्रयास किया।[62]

इन सब को देखकर लगता है कि गांधी द्वारा व्यक्त विचारों में अंतर-विरोध था और ऐसा मानने वालों की अच्छी-खासी संख्या है। यथा गांधी के अपने शब्दों में-

"मेरे विचारों में सुसंगतता है या नहीं इसको लेकर में कतई चिंतित नहीं हूं। सत्य की अपनी खोज के दौरान मैंने कई विचारों को सब के समाने रखा तथा बहुत सी नई चीजें सीखी भी, शारीरिक रूप से मैं भले ही बूढ़ा हो रहा हूं लेकिन आतंरिक प्रगति का मेरा द्वार कभी भी बंद होने वाला नहीं। यह प्रगति उम्र से निर्पेक्ष है तथा शरीर त्याग के बाद भी इसका परिष्करण जारी रहेगा। मेरे जीवन का मुख्य ध्येय है सत्य का अनुसंधान तथा उस सत्य रूपी ईश्वर को प्राप्त करने लिए अपने तन-मन का समर्पण, ऐसा समर्पण जो अपने सत्य की मांग पर अपना सर्वस्व निछावर करने के लिए तत्पर रहे। यदि कोई मेरे लेखन के दो हिस्सों में अंतर्विरोध पाता है... तो उसके लिए श्रेयकर होगा कि एक ही विषय पर उन दोनों रचनाओं में से बाद वाले भाग को वह अपने अध्ययन, मनन व व्यवहार के लिए चुन ले। "।[63]

महादेव देसाई ने इस पर अपनी बहुत ही सटीक टिप्पणी यों कि, "हिंद स्वराज के पहले संस्करण में व्यक्त विचारों की तात्विकता (वास्तविक अर्थ) अपरिवर्तित रही, हां कुछ आवश्यक क्रम विकासों के दौर से उसे अवश्य गुजरना पड़ा।"[64]

इसका मतलब यही निकलता है कि कुछ ऐसे मौलिक व आधार भूत प्रस्ताव थे जिसके आधार पर गांधी ने उनके अपने शब्दों में जीवन के सम्पूर्ण सिद्धांत का निर्माण करने का

प्रयास किया। इन मौलिक तत्वों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ और यह लगभग अछूता रह। मानव व 'सामाजिक परिस्थिति' की सीमा को आधार बनाकर जो चुनौतियां उनके सम्मुख पेश की गई उसके प्रत्युत्तर में ब्यौरेवार समझौता करने को इच्छुक थे।[65] हिन्द स्वराज के लिखे जाने से लेकर 1948 में उनकी मृत्यु तक गांधी के आधारभूत प्रस्तावों को खंगालने का हमारा मकसद यह है कि हम यह दिखाना चाहते हैं कि यद्यपि उनके द्वारा कल्पित मूल मॉडल का स्वरूप ज्यों का त्यों रहा लेकिन व्यवहार में वह अनुकूलन के लिए खुला था और उसमें समयानुकूल आवश्यक परिवर्तनों से कोई परहेज नहीं था।

हिन्द स्वराज का अध्ययन

भारत के बौद्धिक समाज से हिन्द स्वराज का परिचय 1919 तक लगभग अछूता रहा और इसके बाद ही वह व्यापक रूप से जाना गया। यद्यपि सभी ऩे इसे पसंद नहीं किया। एक प्रसिद्ध साम्यवादी नेता एस. ए. डांग ने अपनी पुस्तक गांधी बनाम लेनिन (1921) तथा एम.एन. राय ने अपनी पुस्तक 'इण्डिया इन ट्रान्जीशन ' में इसे खारिज करते हुए इसे वर्ग संघर्ष से अनभिज्ञ मानवतावाद मात्र बताया। यह एक अलग बात है कि कम से कम डांग ने अपने जीवन के उत्तरार्द्ध में अपने विचारों में व्यापक बदलाव किया तथा वह लगभग गांधीवादी बन गए। भारत के एक प्रसिद्ध वकील सर शंकर अय्यर ने (वह भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष भी रहे थे) अपनी पुस्तक 'गांधी और अराजकता' (1922) में सत्याग्रह द्वारा फैलाई जा रही अराजकता वाद के लिए गांधी की कटु आलोचना की। हिन्द स्वराज, जिसमें गांधी के मौलिक चिंतनों का समावेश है तथा जिसमें गांधी ने समकालीन सभ्यता की समस्याओं के प्रति मौलिक विचार व्यक्त किए हैं को अपेक्षाकृत प्रचार-प्रसार नहीं मिला। यह बात उल्लेखनीय है कि सन् 1920-47 के दौरान, जब गांधी राष्ट्रीय आंदोलन पर छाए हुए थे, हिन्द स्वराज की व्यापक रूप से उपेक्षा हुई। विश्वविद्यालयों तथा अन्य शैक्षणिक व शोध संस्थानों के बौद्धिक सामुदायों में भी हिन्द स्वराज को विशेष महत्व नहीं मिला। हमें सिर्फ 8 मुख्य शोध देखने को मिलते हैं। 1938 में सोफिया वाडिया ने पहली बार आर्यनपथ (लंदन) का पूरा अंक हिन्द स्वराज को समर्पित किया। दूसरा प्रयास टी.के.महादेवन ने 1973 में किया जब उन्होंने गांधी मार्ग (नई दिल्ली) का हिन्द स्वराज से

संबंधित विशेषांक निकाला। तीसरे प्रयास 1981 में आशीष नंदी ने एक लंबा लेख जिसका शीर्षक 'From outside Imperialism: Gandhi's Cultural Critique of West' है। चौथा प्रयासके रूप में नागेश्वर प्रसाद ने 1985 में हिन्द स्वराज: एक नवीन दृष्टिकोण नाम से एक पुस्तक सम्पादित की। पांचवा प्रयास 1993 में पार्था चटर्जी ने एक लेख ' The Movement of Manoeuvre: Gandhi and The Critique of Civil Society' है। छठवां अध्ययन हमें 1997 में एन्थनी जे. परेल द्वारा लिखी 'हिन्द स्वराज व अन्य रचनाएं ' नामक पुस्तक तथा वैसी ही उनकी अन्य रचनाओं में देखने को मिलती है। और सातवां प्रयास सन् 2006 में आर.पी. मिश्र के हिन्द स्वराज पर गंभीर अध्ययन है। हाल में ही अनिल दत्त मिश्र कि पुस्तक हिंद स्वराज्य: एक पुनरावलोकन, 2011 को हम इस शोध की अब तक की अंतिम कड़ी मान सकते हैं।

निष्कर्ष

हिन्द स्वराज गांधी द्वारा लिखी उन महत्वपूर्ण रचनाओं में से है जिसे गांधी ने अपने विचार व दर्शन को स्पष्ट करने के लिए लिखा। राज्य, समाज व राष्ट्र पर गांधी के विचारों की शायद यह सबसे परिष्कृत व सुस्पष्ट व्याख्या थी। यद्यपि हिन्द स्वराज एक मौलिक रचना है, तथापि इसे लिखने के क्रम में गांधी कुछ प्रमुख पाश्चात्य विचारकों के साथ-साथ भारतीय दर्शन से अत्यधिक प्रभावित दिखते हैं। इसमें गांधीवादी राजनीति के कुछ अत्यंत ही मौलिक सिद्धांतों[66] का प्रतिपादन हुआ है। दूसरे शब्दों में, गांधी ने अपनी वास्तविक स्थिति को हिन्द स्वराज के माध्यम से स्पष्ट किया तथा अंत तक उस पर कायम रहे। वास्तव में, हिन्द स्वराज में हिन्दुस्तान के स्वराज की उपलब्धि के लिए गांधी क सम्पूर्ण रणनीति का सबसे निर्णायक सैद्धांतिक पहलू उभरकर सामने आता है।[67] इसके अलावा स्वराज व सत्याग्रह से संबंधित गांधी के सामाजिक व राजनीतिक रूप से भारतीय समाज के आध्यात्मिक व नैतिक ताने-बाने तथा यूरोपीय राज्यों के हिंसक तथा राजनीतिक रूप से भ्रष्ट प्रकृति के बीच के मौलिक अंतर व अंतर्विरोध को स्पष्ट किया है।

हिन्द स्वराज का एक लक्ष्य था, अराजकतावादी तथा हिंसा प्रेमी भारतीय राष्ट्रवादियों के सम्मुख एक अहिंसक विकल्प को प्रस्तुत करना जिसकी उत्पत्ति गांधी के सत्याग्रह पर आधारित प्रारंभिक प्रयोगों से हुई थी। हिन्द स्वराज ने दो उद्देश्यों की पूर्ति की-

पहला यह पशु बल पर आधारित पाश्चात्य सभ्यता की एक विस्तृत आलोचना भरी समीक्षा थी; दूसरी ओर इसने गांधी के सामाजिक व राजनीतिक विचारों की आधार शिला रखी।[68]

गांधी व गांधीवादी विचारधारा की समझ के लिए हिन्द स्वराज एक आधारभूत रचना है। भारतीय व पाश्चात्य विचारों के परसंशेचन (पारस्परिक मिलन) के निष्कर्ष के रूप में हिन्द स्वराज शायद गांधीवादी सामाजिक व राजनीतिक विचारों की सबसे दमदार व्याख्या थी।[69] यह एक राजद्रोहात्मक रचना थी या नहीं, यह एक विवाद का विषय हो सकता है लेकिन निश्चित रूप से यह पुर्नगठित विचारों की एक ऐसी महत्वपूर्ण रचना थी जिसके दो सुस्पष्ट आयाम थे- (अ) पाश्चात्य सभ्यता की आलोचना तथा (ब) भारतीय लोगों को बोधगम्य 'कार्यवाही के एक देशी मॉडल' का विकास।[70] गांधी का हिन्द स्वराज, स्वतंत्रता, धार्मिक सहनशीलता, समानता, गरीबीउन्मूलन आदि जैसे आधुनिकता के उदारवादी योगदानों को खारिज या अस्वीकर नहीं करता है। इसके वजाय उनके प्रयास को इन सकारात्मक तत्वों के साथ परंपरा के सकारात्मक तत्वों को समन्वित करने के प्रयास के रूप में देखा जाना ज्यादा उपयुक्त होगा। अपनी अनवरत रचनाओं, समीक्षाओं, आलोचनाओं व वक्तव्यों के द्वारा गांधी ने परंपराओं के बाहरी व भीतरी तत्वों को समन्वयित करने का महान कार्य किया।[71]

गांधी का हिन्द स्वराज, व्यक्ति, समाज व राज्य के आतंरिक व वाह्य द्धन्द्धों से उत्पन्न विभिन्न तात्कालिक व समकालीन समस्यों का जवाब था। लेकिन हिन्द स्वराज समकालीन समस्याओं के साथ-साथ भविष्य में उत्पन्न होने वाली समस्याओं का एक वैकल्पिक व समुचित समाधान भी सुझाता है तथा इसके लिए प्रमाणिक तथा मौलिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। भविष्य की आशा निश्चित रूप से हिन्द स्वराज पर टिकी है।

जेम्स लवलॉक के 'दी एजेज ऑफ गैया' (The Ages of Gaia), फ्रिट जोफ कैपरा (Fritijof capra) के 'दी टर्निंग प्वाइन्ट' (The turning Point), जे. रेमी रेफकिन के 'इन्ट्रोपी: न्यू वर्ल्ड व्यू' (Entropy: New World View of Jeremy Refkin), लिकोम्पटे डू नॉय के ह्यूमन डेस्टिनी (Human Destiny), एस.पी.हन्टिंगटन का क्लैश ऑफ सिविलाइजेशन (Clash of Civilization), एलविन टॉफलर का दी थर्ड वेव (The Third Wave), इवान एलिच (Evan Ellich) का डीस्कूलिंग सोसायटी (Deschooling Society) तथा जॉन नैसविस्ट (John

Naisbistt) का मेगा ट्रेन्ड्स (Mega Trends) जैसे हाल के उल्लेखनीय अध्ययनों में हिन्द स्वराज की वाणी व्यापक रूप से प्रतिध्वनित होती है। समय की मांग है कि हमारे नीति निर्माता तथा हमारी जनता अपने आन्तरिक प्रकाश की खोज करे ताकि हिन्द स्वराज द्वारा सुझाए रास्तों पर चलने की प्रेरणा उन्हें प्राप्त हो सके, यदि किसी अन्य कारण से नहीं तो भारत सहित सम्पूर्ण विश्व की वर्तमान मर्ज के समाधान हेतु इसकी सैद्धांतिक मजबूती के लिए ही सही। गांधीवादी लेखक जिन सार्प की पुस्तक से प्रेरणा लेकर कई राष्ट्रों की आवाम ने अहिंसक क्रांति का रास्ता अपना कर वहां के तानाशाही शासकों को उखाड़ फेंक तथा लोकतंत्र की स्थापना की। गांधी ने हिंद स्वराज्य में प्रजा को सर्वोच्य माना। वर्तमान भारत में भ्रष्टाचार को मिटने के लिए सड़कों पर उतर कर जनता ने गांधी के हिंद स्वराज की प्रासंगिता को एक बार फिर जीवित कर दिया।

संदर्भ

1. आर.पी. मिश्र, हिन्द स्वराज, नई दिल्ली, कंसेप्ट पब्लिशिंग कंपनी, 2006 (प्रकाशनाधीन)।
2. नागेश्वर प्रसाद (संपादित), हिन्द स्वराज: ए फ्रेश लूक, नई दिल्ली, गांधी पीस फाउन्डेशन, 1385, पृष्ठ 1 ।
3. एन्थनी जे. परेल, हिन्द स्वराज एण्ड अदर राइटिंग्स, कैम्ब्रिज, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1997, पृष्ठ xii।
4. वही, पृष्ठ xiii।
5. महात्मा गांधी, हिन्द स्वराज और इण्डियान होमरूल, अहमदाबाद, नवजीवन पब्लिशिंग हाऊस, 1938,पृष्ठ 13।
6. नागेश्वर प्रसाद, 16।
7. वही।
8. वही, पृष्ठ 16-17।
9. डी.जी.तेंदुलकर, महात्मा, खण्ड1, बंबई, विट्ठलभाई के. झावेरी,1951, पृष्ठ 127-28।
10. देवदत्त, हिन्द स्वराज : कंटेस्ट और टेस्ट, नागेश्वर प्रसाद (संपादित), हिन्द स्वराज : ए फ्रेश लूक, नई दिल्ली, गांधी शांति प्रतिष्ठान, 1985, पृष्ठ 30।

11.आर. पी. मिश्र, पूर्व उद्धरित।

12.वही।

13.एन्थनी जे. परेल पूर्व उद्धत, पृष्ठ xvi .

14.सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय्, खण्ड 71, पृष्ठ 238।

15.सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय्, खण्ड10, पृष्ठ 245।

16.सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय्, खण्ड 22,पृष्ठ 260।

17.देवदत्त, पूर्व उद्धत, पृष्ठ33।

18.एम. के. गांधी, पृष्ठ 94।

19.नागेश्वर प्रसाद, पूर्व उद्धत,पृष्ठ 17।

20.वही,पृष्ठ 18-19।

21.वही,पृष्ठ 20-23।

22.वही, पृष्ठ 23।

23.वही, पृष्ठ 23-24।

24.वही,पृष्ठ 24।

25.वही, पृष्ठ 24।

26.देवदत्त, पूर्व उद्धत, पृष्ठ 32।

27.वही।

28.वही, पृष्ठ 35।

29.वही, पृष्ठ 38।

30. विद्युत चक्रवर्ती, सोशल एण्ड पॉलिटिकल थ्योरी आफ महात्मा गांधी, लंदन, रॉटलेज, 2006, पृष्ठ 24।

31.वही।

32.एम. के. गांधी, पूर्व उद्धत, पृष्ठ24।

33.विद्युत चक्रवर्ती, पूर्व उद्धत,पृष्ठ 25।

34.वही।

35.एम. के. गांधी, पृष्ठ 81।

36.वही, पृष्ठ 83-84।

37.वही, पृष्ठ 82।
38.विद्युत चक्रवर्ती, पूर्व उद्धत, पृष्ठ 26।
39. वही, पृष्ठ 26-27।
40.डी. जी. तेंदुलकर, पूर्व उद्धत, पृष्ठ 129-31।
41.आर. पी. मिश्र, पूर्व उद्धत।
42.सम्पूर्ण गांधी वाङ्यम्, खण्ड 10, पृष्ठ 7।
43.सम्पूर्ण गांधी वाङ्यम्, खण्ड 10, पृष्ठ 139।
44.सम्पूर्ण गांधी वाङ्यम्, खण्ड 10, पृष्ठ 507-11।
45.सम्पूर्ण गांधी वाङ्यम्, खण्ड 10, पृष्ठ 247।
46.सम्पूर्ण गांधी वाङ्यम्, खण्ड 12, पृष्ठ 411।
47.सम्पूर्ण गांधी वाङ्यम्, खण्ड 12,पृष्ठ 412।
48.सम्पूर्ण गांधी वाङ्यम्, खण्ड 15, पृष्ठ 390।
49.डी. जी. तेंदुलकर, पूर्व उद्धत, पृष्ठ 17।
50.सम्पूर्ण गांधी वाङ्यम्, खण्ड 19, पृष्ठ 277-78।
51.सम्पूर्ण गांधी वाङ्यम्, खण्ड 24, पृष्ठ 548।
52. सम्पूर्ण गांधी वाङ्यम्, खण्ड 42, पृष्ठ 125।
53. सम्पूर्ण गांधी वाङ्यम्, खण्ड 67, पृष्ठ 169-70।
54. सम्पूर्ण गांधी वाङ्यम्, खण्ड 70, पृष्ठ 242।
55. वही, पृष्ठ 296।
56.सम्पूर्ण गांधी वाङ्यम्, खण्ड 80, पृष्ठ 325।
57.सम्पूर्ण गांधी वाङ्यम्, खण्ड 81, पृष्ठ 319।
58.सम्पूर्ण गांधी वाङ्यम्, खण्ड 81, पृष्ठ 319-20।
59.नागेश्वर प्रसाद, पूर्व उद्धत, पृष्ठ 12।
60.वही।
61.वही।
62.वही, पृष्ठ 12-13।
63.सम्पूर्ण गांधी वाङ्यम्, खण्ड 55, पृष्ठ 61।

64.सम्पूर्ण गांधी वाङ्यम्, पूर्व उद्धत, पृष्ठ 5।
65.नागेश्वर प्रसाद, पृष्ठ 13।
66.विद्युत चक्रवर्ती, पृष्ठ 23।
67.वही।
68.वही, पृष्ठ 24।
69.वही।
70.वही।
71.रूडोल्फ सी. हेरेडिया, इन्टरप्रेटिंग गांधी-हिन्द स्वराज, इकोनोमिक एण्ड पोलिटिकल वीकली, वॉल्यूम XXXIV, नं 24, जून 12-18, 1999, पृष्ठ 150।

अध्याय 3

सत्याग्रह की परिकल्पना एंव सिद्धांत

भूमिका

सत्याग्रह मौलिक रूप से गांधी से संबंधित नहीं था उनसे पहले भी उपनिषदों, रामायण, महाभारत, गीता, कुरान जैसे धार्मिक तथा अन्य अनेक पुस्तकों में सत्याग्रह के विचार का व्यापक उल्लेख मिलता है। इसे व्यवहार में उतारने का काम प्रहलाद, राजा हरिश्चंद्र, सुकरात, प्लेटो, ईसा मसीह, सम्राट अशोक जैसे अनेक भारतीयों और पाश्चात्यवासियों ने समय-समय पर किया है। प्रहलाद शायद ऐसा पहला व्यक्ति सत्याग्रही था जिसने अपने क्रूर पिता के अत्याचारों के खिलाफ सत्याग्रह का अभिनव प्रयोग किया। तब इसे सत्याग्रह के मूल अर्थ में नहीं समझा गया।[1] गांधी के अनुसार ,"सत्याग्रह रूपी सिद्धांत का जन्म इसके नामकरण के पहले ही अस्तित्व में आ गया था। वास्तव में, जब इसका जन्म हुआ था तो मैं खुद भी नहीं जानता था कि यह क्या है।"[2] कुछ पाश्चात्यवासियों का विचार है कि गांधी ने सत्याग्रह के विचार को, ईशा मसीह के 'न्यू टेस्टामेंट', विशेषकर पर्वत पर के उपदेश, से लिया है। कुछ अन्य लोगों का मानना है कि इस विचार को उन्होंने टॉल्सटाय की रचनाओं से लिया, जबकि टॉल्सटाय ने खुद इसे न्यू टेस्टामेंट से लिया था। वास्तव में गांधी के सत्याग्रह के विचार न तो ईशा मसीह और न ही टॉल्सटाय से प्रेरित है, बल्कि उनकी प्रेरणा का मुख्य आधार उनके अपने वैष्णवी मत थे जिन पर उन्हें अटूट विश्वास था।"[3] देखा जाए तो सत्याग्रह भारतीय परंपराओं से ही उपजी प्रतीत होती है।

सत्याग्रह अर्थ और उत्पत्ति

सत्याग्रह शब्द मूल रूप से संस्कृत शब्द है। यह दो शब्दों सत्य और आग्रह के मिश्रण से बना है। जिसका शाब्दिक अर्थ है सत्य के लिए आग्रह। दूसरे शब्दों में सत्य पर टिके रहना तथा सत्य की उपलब्धि हेतु दृढ़तापूर्वक लगे रहना, जमे रहना ही सत्याग्रह है। सत्याग्रह को परिभाषित करते हुए गांधी ने स्वयं लिखा है:[4] "सत्य प्रेमपूर्वक आग्रह की मांग करता है और इस प्रकार यह आग्रह ताकत के एक पर्यायवाची के रूप में बदले जाते हैं। यही

कारण है कि मैंने भारतीय आंदोलन को निष्क्रिय प्रतिरोध के बजाय सत्याग्रह कहना शुरु किया जिसका आशय ऐसी ताकत से है जिसकी बुनियाद सत्य, प्रेम व अहिंसा के मजबूत खंभों पर टिकी है।"

गांधी ने 'इंडियन ओपिनियन' में सत्याग्रह को एक पवित्र उद्देश्य हेतु दृढ़ता[5] के रूप में रेखांकित किया है। यंग इंडिया में वे इस बात की ओर संकेत करते हैं कि सत्याग्रह 'आत्म-दु:खभोग के सिद्धांत'[6] का एक नवीन रूप भर है और हिंद स्वराज में वे इस बात की उद्घोषणा करते हैं कि "दूसरों के बलिदान की तुलना में आत्म बलिदान अनन्त गुना अधिक श्रेयस्कर करते है" तथा एक आत्म-बलिदानी यानि स्व दु:ख भोगी अपनी गलतियों से दूसरों को कष्ट नहीं पहुंचाता है।[7]

सत्याग्रह, जो गांधी की सर्वोच्च आविष्कार, खोज या कृति थी सत्य के ऐसे अनवरत, व अविराम खोज की बात करता है जहां हिंसा, घृणा, ईर्ष्या, दंभ व द्वेष का कोई स्थान नहीं, उसकी अवधारणा का मतलब निष्क्रियता, दुर्बलता, नि:सहायता या स्वार्थपरायणता नहीं था। वास्तव में यह मानवीय मस्तिष्क की ऐसी सोच तथा जीवन दर्शन को इंगित करता है जिसकी बुनियाद पवित्र उद्देश्य की प्राप्ति हेतु दृढ़ इच्छा, घृणा पर प्रेम के विजय के सिद्धांत पर असीम श्रद्धा, हृदय-परिवर्तन हेतु स्वैच्छिक आत्म-दु:खभोग तथा इन उद्देश्यों की प्राप्ति हेतू अहिंसक तथा न्यायपूर्ण तरीकों का धीरता तथा सक्रियता से इस्तेमाल पर टिकी थी। प्रसिद्ध गांधीवादी आचार्य जे. बी. कृपलानी के शब्दों में, "सत्याग्रह प्रहार के अलावा भी कुछ और अधिक की मांग करता है। यह कुछ अधिक संघर्षरत लोगों के सतत नैतिक उत्थान की बात करता है। इसका अर्थ विरोधियों को नैतिक रूप से परास्त करना भी है। एक सत्याग्रही हड़ताली की अपेक्षा कहीं अधिक बेहतर असहयोगी होता है।[8] वास्तविक रूप में सत्याग्रह सत्य के लिए अनवरत कार्याभिमुख खोज तथा असत्य के खिलाफ अहिंसक संघर्ष है"

सत्याग्रह का अर्थ राजनीतिक तथा आर्थिक आधिपत्य के खिलाफ मानवीय आत्मा के शक्ति की दृढ़ता भी है क्योंकि आधिपत्य हमेशा अपने झूठ व स्वार्थ के लिए सत्य को खारिज करता है सो सत्याग्रह मानवीय चेतना की सर्वोत्कृष्ट अभिव्यक्ति है। चेतना मानव के सत्य की प्राप्ति हेतु अहिंसक संघर्ष की ओर जोरदार ढंग से अभिप्रेरित करती है।[9]

सत्याग्रह श्रद्धा, विश्वास, विवेक, प्रेम और विनम्रता की महानतम अभिव्यक्ति है। यह अपने आप में एक महान विजय है।[10] सत्याग्रह सत्य के अनुसंधान तथा उस तक पहुंचने का अनवरत प्रयास है।[11] यह अपना कार्य शांति, स्थिरता लेकिन तीक्ष्णतापूर्वक करता है। वास्तव में संसार में इसके समान लचीला, सौम्य व स्पष्ट कोई भी ताकत नहीं है।[12] यह अन्याय, अनीति, दमन व शोषण के खिलाफ आत्म-बल को खड़ा करता है। शाब्दिक रूप से इसका अर्थ होता है। "सत्य का दबाव" जो अपनी अभिव्यक्ति आत्म-दुखभोग, श्रद्धा, संकल्प, आत्मशुद्धि तथा आत्मविश्वास में साकार करता है।

सत्याग्रह का सिद्धांत कोई नवीन खोज नहीं है। उतना ही पुराना है जितना पातंजलि। गांधी ने इसकी उत्पत्ति को शुद्धता के विचार से जोड़ने का जोरदार प्रयास किया। सत्याग्रह को कामधेनू बताते हुए गांधी ने इसे सत्याग्रही और उसके विरोधी तत्वों दोनों के लिए उपयोगी बताया।[13] सत्याग्रह का संबंध वैदिक आर्य युग के यज्ञों से भी रहा है। 'मानव व पशु बलि' के मौलिक रूप तथा सत्याग्रह में इसके समकालीन अभिव्यक्ति के बीच, (यह उपनिषदों के बौद्धिक शुद्धिकरण तथा जैनों व बौद्धों के मानवतावादी सरोकारों के तीक्ष्ण बदलावों के दौर से यह गुजरा है।)[14]

गांधी ने इस अनुपम हथियार की खोज दक्षिण अफ्रीका में नस्लीय भेदभाव के खिलाफ अपने अहिंसक संघर्ष के दौरान की। 1906 में गांधी के दक्षिण अफ्रीका के प्रवासी भारतीयों को संगठित किया तथा अन्यायपूर्ण कानूनों व सार्वजनिक व्यवहारों के खिलाफ प्रतिरोध के एक नवीन तरीके को ईजाद किया जिसे गांधी ने 'निष्क्रिय प्रतिरोध' का नाम दिया लेकिन समय बीतने तथा संघर्ष के तीक्ष्ण होने के साथ ही यह नाम संदेह व संशय के घेरे में आ गया तथा इसे कमजोरों के हथियार के रूप में माना जाने लगा। परिणामस्वरूप एक ऐसे अंग्रेजी शब्द का इस्तेमाल शर्मनाक माना जाने लगा जो कि आसानी से बोधगम्य नहीं हो। उन्होंने यह महसूस किया कि जिस आंदोलन को उन्होंने शुरु किया था वह निष्क्रिय प्रतिरोध से भिन्न कुछ अधिक गहरे अर्थों वाला था। सो इस नवीन किस्म के प्रतिरोध के पुनर्नामांकन की महती आवश्यकता को महसूस करते हुए गांधी ने अपने साप्ताहिक पत्र इंडियन ओपीनियन में एक नवीन व उपयुक्त शब्द सुझाने हेतु एक छोटे से पुरस्कार की घोषणा की। उनके एक सहयोगी मगन लाल गांधी ने 'सदाग्रह' शब्द सुझाया जिसका अर्थ

होता है, पवित्र उद्देश्य की प्राप्ति हेतु अनवरत प्रयास। गांधी ने इसे पसंद तो किया लेकिन साथ ही यह भी महसूस किया कि यह उनके विचारों को संपूर्ण रूप से अभिव्यक्त नहीं करता है क्योंकि उनकी नजरों में यह एक ऐसा सत्य-बल था जिसकी अभिव्यक्ति, सत्य, प्रेम व अहिंसा जैसे दिव्य गुणों से परिचालित होता था। इसलिए उन्होंने इसमें थोड़ा सा संशोधन किया और इसे 'सत्याग्रह' नाम दिया जिसका शाब्दिक अर्थ 'सत्य के लिए आग्रह' है।

सत्याग्रह की उत्पत्तियों पर जोसफ जे. डॉक के साथ विचार-विमर्श करते हुए गांधी ने निम्न विचार व्यक्त किए।

उन्होंने कहा, 'मैं याद करता हूं कि कैसे अपने स्कूल में सीखे एक गुजराती कविता की एक पंक्ति ने मुझे बेहद आकर्षित किया था।' उसका भावार्थ कुछ यूं था।

यदि कोई व्यक्ति आपकी पिपासा शांत करता है और बदले में यदि आप भी उसकी पिपासा शांत करते हैं तो इसमें उल्लेखनीय कुछ भी नहीं। असली बात तो तब है जब आप किसी की बुराई के बदले भलाई का दान करते हैं।

बचपन की उस अवस्था में उस पंक्ति ने मेरे उपर जबरदस्त प्रभाव डाला और मैंने उसे अपने व्यवहार में परिणित करने का भरसक प्रयत्न किया। फिर पर्वत पर के उपदेश का जिक्र आया।

'लेकिन निश्चित रूप से भगवद् गीता का आप पर पहला प्रभाव पड़ा होगा?' उन्होंने जवाब दिया, 'नहीं' , हां यह जरूर है कि संस्कृत में लिखी भगवद्गीता से मैं पूरी तरह वाकिफ हूं, लेकिन इसकी शिक्षाओं को इस विशेष कार्य हेतु संदर्भ नहीं बनाया। वास्तव में न्यू टेस्टामेण्ट ने मुझे निष्क्रिय प्रतिरोध की उपयुक्तता तथा मूल्य के सही रूप में समझाया। जब मैंने 'पर्वत पर के उपदेश' की इन पंक्तियों को पढ़ा कि बुरे आदमी का नहीं वरन बुराई का प्रतिरोध करो। यदि कोई तुम्हारे दांहिनें गाल पर थप्पड़ मारता है तो झट से अपना बांया गाल भी आगे कर दो तथा अपने दुश्मन को भी अपने प्रियजनों की तरह ही प्रेम करो तथा उसकी भलाई के लिए प्रार्थना करो क्योंकि वह स्वर्ग में रहने वाले तुम्हारे पिता के पुत्रों में कोई एक हो सकता है, तो मैं आनंद और हर्ष से अभिभूत हो गया तथा मुझे लगा कि इसने

मेरे अपने विचारों को वहां पक्का कर दिया जहां इसकी मुझे सबसे कम आशा थी, भगवद् गीता ने इस सोच को गहराई प्रदान की तथा टॉल्सटाय के 'स्वर्ग का साम्राज्य तुम्हारे भीतर है' ने इसे स्थायित्व प्रदान किया।[15]

सत्याग्रह और निष्क्रिय प्रतिरोध

सत्याग्रह की खोज से पहले तब दक्षिण अफ्रिकी आंदोलन को 'निष्क्रिय प्रतिरोध ' ही कहा गया। लेकिन जब तक निष्क्रिय प्रतिरोध का इस्तेमाल किया गया तब तक इंग्लैंड के विस्तारवादियों ने भ्रमवश सत्याग्रह को व्यक्ति और संपत्ति के लिए खतरनाक माना था तथा इसे दुर्गणों का हथियार कह कर इसे सीमित करने का प्रयास किया। गांधी ने दक्षिण अफ्रिकी आंदोलन को नि:सहाय तथा निर्धनों के एक हथियार के रूप में रूपायित करने के संभावित मनोवैज्ञानिक प्रभाव को समझा तथा सत्याग्रह और निष्क्रिय प्रतिरोध के बीच के अंतर को समझने का प्रयास किया।

बारंबार किसी बात को सोचने का फल यह होता है कि मनुष्य अंत में वही बनता है जो वह सोचता है। यहि हम लगातार इस बात पर विचार करें तथा दूसरों को भी यह विचार करते रहने दें कि हम निर्धन हैं, नि:सहाय हैं तथा निष्क्रिय प्रतिरोध ही हमारी मंजिल है तो हमारा प्रतिरोध हमें कभी सबलता प्रदान नहीं कर पाएगा तथा हम हाथ में मौके को यों ही गंवांते रहेंगे...फिर से, निष्क्रिय प्रतिरोध से जहां प्रेम की कोई गुंजाइश नहीं है। वहीं दूसरी ओर सत्याग्रह में न केवल घृणा का कोई स्थान नहीं है वरन् यह इसके मूल सिद्धांतों के बिल्कुल उलट भी है। निष्क्रिय प्रतिरोध में कुछ मौके ऐसे भी आते हैं जहां हथियारों के उपयोग कि गुंजाइश होती है वहीं सत्याग्रह में शारीरिक बल का अत्यंत अनुकूल परिस्थिति में भी निषेध किया जाता है।[16]

इसी प्रकार यदि निष्क्रिय प्रतिरोधी हिंसा का प्रयोग नहीं करता है तो यह वह अपनी असमर्थता या परिस्थितियों के वशीभूत होकर करता है, वहीं एक सत्याग्रही उस जगह भी हिंसा का प्रयोग नहीं करता है जहां वो हिंसा का प्रभावी ढंग से उपयोग करने में सक्षम है। एक सत्याग्रही अपने विरोधियों की दुर्बलता का कभी नाजायज फायदा नहीं उठाता है। सो निष्क्रिय प्रतिरोधी को कभी बल प्रयोग की पूर्व तैयारी के रूप में देखा जा सकता है वहीं

सत्याग्रह को इस तरह से कभी भी इस्तेमाल नहीं किया जा सकता है। सत्याग्रह व पशुबल एक दूसरे का निषेध करते हैं तथा इनका आपस में मिलन कभी संभव नहीं है।

निष्क्रिय प्रतिरोध एक ऐसी नवीन तकनीकी है जिसका इस्तेमाल हथियार विहीन लोग अपेक्षाकृत अधिक ताकतवर लोगों के अन्यायपूर्ण नीतियों के खिलाफ करते हैं। जबकि गांधी के नजरों में सत्याग्रह श्रद्धा व विश्वास का मामला है। अत: यह कहा जा सकता है कि सत्याग्रह की बुनियाद वैश्विक मूल्यों के मौलिक व शाश्वत धरातल पर टिकी है।

निष्क्रिय प्रतिरोध में विरोधियों को परेशान करना या हराना मुख्य लक्ष्य होता है लेकिन सत्याग्रह में विरोधी पक्षों को नुकसान पहुंचाने की जरा सी भी मनसा नहीं होती है। निष्क्रिय प्रतिरोध जहां विरोधियों पर विजय पाने को अपना मुख्य ध्येय मानता है, वहीं सत्याग्रह में विजय या पराजय जैसे शब्दों का कोई अस्तित्व नहीं होता बल्कि इसका लक्ष्य विरोधी पक्षों के नैतिक वा मानसिक परिवर्तन पर क्रेंद्रित रहता है।

निष्क्रिय प्रतिरोध व्यक्तियों के खिलाफ संचालित किया जा सकता है वहीं, सत्याग्रह में व्यक्तियों को कभी निशाना नहीं बनाया जाता। इसके विरोध का केंद्र बिंदु संस्थाओं, व्यवस्थाओं, मान्यताओं, राजनीतिक तथा अन्य निहित स्वार्थों तथा बुराईयों पर केंद्रीत होता है। (बुरे व्यक्तियों को कभी निशाना नहीं बनाया जाता है वरन बुराइयां निशाने पर होती है।)

निष्क्रिय प्रतिरोध का उदय घृणा, क्रोध या कुंठा के परिणाम स्वरुप हो सकता है फलस्वरूप यह बदले की भावना से परिचालित हो सकता है, लेकिन सत्याग्रह में अन्य पक्षों के खिलाफ प्रेम और करुणा को ही मुख्य हथियार बनाया जाता है। तथा व्यक्तिगत क्षति पहुंचाने की इसमें कोई मनसा नहीं होती है वरन इसका कभी विचार भी नहीं किया जाता है।[17]

सत्याग्रह अपने हित मित्रों व अत्यन्त निकट संबंधियों के साथ भी की जा सकती है लेकिन निष्क्रिय प्रतिरोध में ऐसा तभी होता है जब अन्य पक्षों को घृणा का विषय-वस्तु मान लिया जाता है।

सत्याग्रह आध्यात्मिक व नैतिक बलों से पराजित होकर निष्क्रिय प्रतिरोध से परे जाता है क्योंकि सत्याग्रही की आशा व सांत्वना का अंतिम स्त्रोत ईश्वर होता है। इसलिए गांधी लिखते हैं- “सत्याग्रह, निष्क्रिय प्रतिरोध से उसी प्रकार भिन्न है जिस प्रकार उत्तरी ध्रुव, दक्षिणी ध्रुव से भिन्न है। निष्क्रिय प्रतिरोध को दुर्बलों का एक हथियार माना जाता है तथा उद्देश्य प्राप्ति हेतू इसमें शारीरिक बल या हिंसा के प्रयोग का निषेध नहीं किया जाता। जबकि सत्याग्रह बलवालों का हथियार है तथा इसमें हिंसा के किसी भी रूप के प्रयोग की कोई गुजाइश नहीं होती।“[18]

इस प्रकार हम देखते हैं कि गांधी निष्क्रिय प्रतिरोध को एक नकारात्मक अवधारणा मानते हैं तथा सत्याग्रह के प्रेम पर आधारित सिद्धांत से इसे बिल्कुल भिन्न मानते हैं।[19]

सत्याग्रह की मौलिक अवधारणाएं

सत्याग्रह के अनिवार्य तत्वों में शामिल है सत्य, अहिंसा, ईश्वर में श्रद्धा, भाईचारा, नैतिक मूल्यों की सर्वोच्यता तथा साधनों की सुचिता[20] इसका वर्णन नीचे किया गया है-

सत्य

सत्याग्रह के गांधीवादी दर्शन का बीज है, सत्य, सत्याग्रह को यदि सत्य से हटा दें तो वह शून्य के बराबर हो जाएगा। वास्तव में सत्याग्रह की नींव ही सत्या या आत्मबल पर ठिकी है। अतःकरण की आवाज ही सत्या व न्याय की आवाज है, व्यक्ति कितना भी क्रूर व निष्ठुर क्यों न हो सत्याग्रही को इस बात का पूरा विश्वास होता है कि वह सुप्त पड़े सत्य प्रवृत्तियों को जागृत किया जा सकता है।

‘सत्य‘ शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के सत् शब्द से हुई है जिसका अर्थ होता है चेतना का अस्तित्व अर्थात सत्य का अर्थ होता है ‘जो अस्तित्ववान है‘ चूंकि अत्तित्व विहीनता ब्रहमांड को परिचालित करने वाली नियमों से कहीं अधिक स्पष्ट होती है सो गांधी के अनुसार सत्य कुछ नहीं वरन ब्रहमांड में परिचालित होने वाला एक नियम है। गांधी के अनुसार विश्व की नींव सत्य के बुनियाद पर ही टिकी है।[21]

गांधी के लिए सत्य की अवधारणा मात्र कोई मायने नहीं रखती थी। उनकी नजरों में महत्वपूर्ण था सत्य को साकार रूप में जीना, आत्मानुभूति सत्य से साक्षात्कार का एक दूसरा रूप है।

गांधी ने ईश्वर को सत्य के समरूप बताया है इसप्रकार उनकी प्रसिद्ध उक्ति बनी, " ईश्वर ही सत्य है।" इस युक्ति के पीछे गांधी का तर्क था कि ईश्वर ही वह कानून है जो संपूर्ण जीवन को संचालित करता है लेकिन 1929 में उन्होंने अपने ही पूर्व कथन को पलटते हुए कहा, "सत्य ही ईश्वर है।" इस उल्टाव का इसके मौलिक अर्थ पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा लेकिन इस अवधारणात्मक परिवर्तन के पीछे गांधी का अपना तर्क था, "मैंने यह पाया की सत्य तक पहुंचने का सबसे निकट का मार्ग प्रेम से होकर गुजरता है लेकिन अंग्रेजी भाषा में प्रेम (love) के कई अर्थ है लेकिन मैंने सत्य के संबंध में दोहरा अर्थ नहीं पाया और नास्तिकों ने भी सत्य की शक्ति को कभी अस्वीकार नहीं किया। यही कारण था कि मैंने देखा की ' ईश्वर ही सत्य है' कहने की बजाय 'सत्य ही ईश्वर है' कहना अधिक श्रेयकर है तदानुसार सामाजिक परिवर्तन के अपने संघर्ष में हमें सत्य और एक मात्र सत्य पर ही टिका रहना चाहिए।"[22]

अहिंसा

गांधी के अनुसार सत्य का मार्ग जितना सीधा है उतना संकुचित भी है।[23] परिणाम स्वरूप सत्य और अहिंसा अविभाज्य है तथा संपूर्ण सत्य की अनुभूति तब तक असंभव है जब तक हम अहिंसा के बिना नैतिक ढांचे में बंधे हैं। इस प्रकार सत्य और अहिंसा आपस में इस प्रकार गुथे हैं कि उनको अलग करना व्यवहारिक रूप से असंभव है। अत: अहिंसा के बिना सत्याग्रह असंभव है।[24]

शाब्दिक रूप से अहिंसा का अर्थ हत्या नहीं करने या चोट नहीं पहुंचाने से है। गांधी के अनुसार सचेतन प्राणी के प्रति चोट पहुंचाने की कोई भी प्रकृति या उसका समर्थन हिंसा का स्वीकार व अहिंसा का तिरस्कार है।

इतिहास इस बात का गवाह है कि हिंसा रूपी खाइयों को पाटने का काम अहिंसा रूपी पुल ही कर सकता है।[25] गांधी के सक्रिय अहिंसा का उदय, दक्षिण अफ्रिका; विशेषकर पीरटमारित्जबर्ग के उनके अनुभवों के गर्भ से हुआ था। लेकिन सत्य के अनुसंधान कि उनकी प्रबल इच्छा भी इसके पीछे प्रमुख कारक थी। गांधी ने कहा, "अहिंसा के अभाव में सत्या का अनुसंधान संभव नहीं है... वे सिक्के के दो पहलुओं के समान है। सत्य साध्य है।[26] बुराई का प्रत्येक कार्य अहिंसा के सिद्धांत का दमन करता है, फिर व बुराई चाहे झूठ, घृणा, ईष्या, दंभ या अंहकार हो। अहिंसा शारीरिक व मानसिक अनुशासन की एक ऐसी अवस्था है जो प्रत्येक मानवीय हृदय को झकझोर सकता है। तथा तथाकथित शत्रुओं का हृदय-परिवर्तन पूरी सफलता के साथ कर सकता है।"

नैतिक नियमों की सर्वोच्चता

सत्याग्रह शारीरिक या पाशविक ताकत पर निर्भर नहीं करता है। इसकी बुनियाद नैतिक बल के उन तत्वों पर आधारित है जो सत्य तथा न्याय से परिचालित होता है तथा आत्मा दु:खभोग, आत्मशद्धि, प्रेम, सेवा, साहस व आनुशासन को सर्वोच्च तरजीह दी जाती है। गांधी कहतें हैं, "साधनों की पवित्रता नैतिक नियम की सर्वोच्चता की पहचान पर आधारित है।" सो सत्याग्रह का संपूर्ण सिद्धांत इस तथ्य पर आधारित है कि सत्य व नैतिकता ही केवल विजयी हो सकती है तथा हम एक नैतिक समाज की रचना अनैतिक सिद्धांतों की बुनियाद पर नहीं कर सकते हैं। इसलिए गांधी ने सत्याग्रह को युद्ध का नैतिक समरूप बनाया। यह एक ऐसा जीवन-पथ है जो प्रेम व पवित्रता के नियमों पर आधरित है।[27] यद्यपि नैतिक साधनों पर जोर का मतलब यब नहीं है कि अन्याय, अनीति, अत्याचार को बर्दाश्त किया जाए, इसके बजाए गांधी का सोचना था कि बुराईयों का प्रतिकार व उन्मूलन निश्चित रूप से होना इसके लिए जो साधन अपनाएं जाएं वह नैतिकता के मापदंडों को पूरा करने वाला हो न कि घृणा, हिंसा व देव्ष को बढ़ाने वाला।

ईश्वर में श्रद्धा

गांधी इस बात पर जोर डालते हैं कि एक सत्याग्रही को ईश्वर में आगाध श्रद्धा का होना अत्यंत आवश्यक है। एक सत्याग्रही का ईश्वर के अलावा कुछ और ठिकाना नहीं होता

है और जो अपना ठौर कहीं और ढूंढता वह सच्चा सत्याग्रही कभी हो ही नहीं सकता। हां एक निष्क्रिय प्रतिरोधी या एक असहयोगी की भूमिका भले अदा कर सकता है।

मानवीय भलाई हेतु मानव व श्रद्धा का मिलन

गांधी एक वैश्विक आत्मा के सिद्धांत में पूर्ण विश्वास करते थे। गांधी के अनुसार मानवीय भाईचारे का अर्थ होता है "हम एक दूसरे के पूरक हैं। " इसका मतलब है कि तुम अपने आप को नुकसान पहुंचाए बिना दूसरों का नुकसान नहीं कर सकते। सो सत्याग्रह का पूरा ढांचा ही मानवीय भलमनसाहत पर टिका है। सत्याग्रह अहिंसक, उत्कृष्ठ तथा दोसताना कार्यवाही के द्वारा ह्रदय परिवर्तन को अपना उद्देश्य बनाता है।

गांधी ने सफल सत्याग्रह की[28] मूल अवधारणाओं को इस प्रकार चित्रित किया-

(अ) सत्याग्रहियों के बीच आम ईमानदारी की भावना होनी चाहिए।

(ब)- अपने नायक के प्रति अनुशासन की भावना का प्रदर्शन उन्हें करना चाहिए तथा मानसिक रूप से अपने आप को आरक्षित नहीं रखना चाहिए।

(स)- उन्हें अपना सर्वस्व खोने का लिए तैयार रहना चाहिए।इस सर्वस्व न केवल व्यक्तिगत आजादी, संपत्ति भूमि, नकदी आदि शामित है वरन् परिवार से जुदाई भी शामिल है। इस सब के अतिरिक्त उन्हें हर पल हर क्षण अपने सीने पर लाठियां व गोलियां की बौछार सहने के लिए तैयार रहना। हो सकता है कि उन्हों प्रताड़ित करके मौत के घाट उतार दिया जाए सो इसके लिए भी वे अपने आप को तत्पर रखें।

(द)- उन्हें अपनें 'दुश्मन' या सहयोगियों के प्रति हिंसा की भावना का अत्यंत अनुकूल परिस्थति में भी तन-मन से परित्याग करना चाहिए।

सत्याग्रह के व्रत

सत्याग्रह की सफलता तथा सत्याग्रही को विषम परिस्थितियों में कार्य हेतु शारीरिक, मानसिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक रूप से तैयार करने के लिए गांधी ने कुछ विशेष व्रत निर्धारित किये हैं जो एकादश व्रत नाम से प्रसिद्ध हैं, सत्याग्रहियों को उन विशेष व्रतों को

अपने निजी तथा सार्वजनिक जीवन में पूरी तरह अपनानें की अपेक्षा रथी गई। इन व्रतों को मुख्य तथा गौण दो वर्गों में बांटा गया।[29]

मुख्य व्रत

सत्य

सभी व्रतों में सत्य का व्रत सबसे पहले आता है, सत्य के व्रत के अनुपालन को सामान्यत: सत्य बोलने मात्र तक सीमित मान लिया जाता है। लेकिन गांधी के अनुसार इसका वास्तविक अर्थ है विचार, कथन तथा कार्य तीनों में सात्विकता। सत्यता का अनुपालन। इसलिए सत्य के अनुपालन के दौरान, दुराव-छिपाव, चालाकी धोखेबाजी तथा कपट को पूर्णत: परे रखा जाता है। सत्य का अनुपालन अनवरत प्रयास तथा जीवन के अन्य नीहित स्वार्थों के प्रति उदासी के भाव के साथ किया जाना चाहिए। इसका अर्थ है सतत् चाह तथा पूर्ण अनाशक्ति। गांधी के अनुसार सत्य के दर्शन का अनुभव पूर्णअनाशक्ति से ही संभव है। क्रोध, लोभ, डर, दंभ आदि ऐसी बुराइयां है जो साधनों को भटकाने का कार्य करती है।

अहिंसा

अहिंसा का शाब्दिक हिंसा का परित्याग है। किसी जीवित प्राणी का प्राण नहीं लेने ही काफी नहीं है। इस व्रत के अनुपालक उन लोगों को भी शारीरिक या मानसिक नुकसान पहुंचाते हैं या पहुंचाने की चेष्टा नहीं करते हैं। जो उनके विचार में अन्यायी व अत्याचारी हैं। सो एक अहिंसा व्रती से इस बात की अपेक्षा की जाती है कि वह अपने धुरविरोधियों पर भी क्रोध न करे वरन् उसे प्रेम करे। अन्याय व अत्याचार का विरोध करना अहिंसा व्रतियों का धर्म है फिर वह अन्याय माता-पिता का हो सरकार का हो या किसी और का हो लेकिन अन्यायीयों या अत्याचारियों को चोट पहुंचाने की किसी की कार्रवाई अहिंसा व्रत में पूर्णत: निषेध है। अहिंसा व सत्यव्रत के

साधक अत्याचारियों पर प्रेम से विजय पाने की कोशिश करते हैं। वे शोषकों की इच्छा को ढोने की वजाए सजा भोगना पसंद करते हैं। तथा उनकी अवज्ञा तब तक जारी रहती है जब तक शोषक खुद परास्त नहीं हो जाते।

ब्रम्हचर्य व्रत

उपर्युक्त दो व्रतों का अनुपालन तब तक संभव नहीं है जब तक ब्रम्हचर्य व्रत पालन नहीं किया जाए। इस व्रत के लिए सिर्फ यही काफी नहीं है कि कोई किसी औरत को कामुक नजरों से नहीं देखे वरन उसे अपनी पाश्विक इच्छाओं को इस तरह से काबू में रखना चाहिए ताकि वह अपने विचार या कल्पना में भी इन इच्छाओं के वसी भूत नहीं हो पाए। यदि व्यक्ति शादीसुदा है तो उसे अपने पत्नी के प्रति विषयासक्त नहीं रहना चाहिए। वरन इसके वजए उसे अपनी पत्नी को जीवन पर्यंत सखा मानना चाहिए। तथा उसके साथ पूर्णत: संबंध स्थापित करना चाहिए।

जीभ (स्वाद) पर संयम

जीभ पर संयम रखे बिना उपर्युक्त वर्णित व्रतों पर खरा उतरना संभव नहीं है यह शर्त विशेषकर ब्रम्हचर्य को साधने का सबसे पहला मंत्र है। यौन-पिपासा (सेक्स) भी निश्चित रूप से स्वाद से इस तरह जुड़ी हुई है कि बिना इस पर प्रभावी नियंत्रण के पाश्विक इच्छाओं पर नियंत्रण संभव नहीं है। सो एक ब्रम्हचर्य व्रत के साधक को भोजन इस विचार से करना चाहिए वह इसे स्वाद के लिए नहीं वरन शरीर मस्तिष्क व आत्मा को पूर्णत: स्वस्थ रखने के लिए खाता है।

अस्तेय

किसी दूसरे व्यक्ति की संपति उसकी अनुमति या जानकारी के बिना लेना या यह सोच रखना की यह बेनामी संपत्ति है, निश्चित रूप से चोरी है। लेकिन गांधी के अनुसार चोरी में बिना वास्तविक जरूरत के दूसरों से कुछ ग्रहण करना, या तत्काल जरूरत से कहीं अधिक मात्रा में किसी समान को प्राप्त करना या फिर तय

समय सीमा से अधिक उसका उपयोग करना इच्छाओं में बेलगाम गुणोत्तर वृद्धि तथा भविष्य हेतू संचय की असीमित ख्वाहिश जबकि किसी और को इसकी तत्काल जरूरत है। वे सब शामिल हैं। उनके अनुसार अपनी वैध्य जरूरत से अधिक संपत्ति रखना या उसकी चाह करना चोरी है।

अपरिग्रह

सिर्फ यही काफी नहीं है कि संचय अधिक नहीं किया जाय वरन यह भी आवश्यक है कि अपनी शारीरिक जरूरतों के लिए अत्यंत जरूरी सामानों के अलावा कुछ और नहीं रखा जाय। सो यदि कोई कुर्सी के बिना कार्य करता है। तो उसे ऐसा अवश्य करना चाहिए। अतः इस व्रत के अनुपालक अपने जीवन को निरंतर सरलीकृत करेंगे।

गौण व्रत

सामाजिक व धार्मिक सम मानसिकता

गांधी जी के अनुसार एक सत्याग्रही को सामाजिक, धार्मिक तथा लैंगिक समानता में पूर्ण विश्वास होना चाहिए। उसे जाति, रंग, नश्ल, लिंग, व्यवसाय, धर्म, जन्मस्थान तथा वास-स्थान से इतर सभी लोगों के प्रति सम मानसिकता की भावना का विकास करना चाहिए इसके साथ ही उसे सभी धर्मों के प्रति सम-आदर भाव रखना चाहिए। उसे छूआ-छूत सहित समाज की सभी विद्रूपदाओं तथा असंगतियों के उन्मूलन का प्रयास करना चाहिए। उसे सांप्रदायिकता, समरसता कायम रखते हुए समाज के दबे-कुचले तबकों के निरंतर उत्थान में अपने आप को समर्पित कर देना चाहिए।

जीविका श्रम (Bread Labour)

जीविका श्रम के व्रत से आशय है कि प्रत्येक व्यक्ति विशेषकर एक सत्याग्रही को अपुनी जीविका प्रोषण अपने हाथों से उपार्जित श्रम से करना चाहिए। क्योंकि प्रत्येक आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन में

शारीरिक श्रम की पहली भूमिका होती है। “जीविका श्रम उन लोगों के लिए सच्चा आशीर्वाद है जो अहिंसा का पालन करते हैं सत्य की पूजा करते है तथा ब्रह्मचर्य को अपने जीवन का सहज-स्वाभाविक धर्म मानते हैं।“ यह आज्ञा पालन आत्मसम्मान तथा आत्मनिर्भरता, दृढ़ता, दूसरों के साथ

एकत्व की भावना, सहयोग व व्यवस्था, ऊर्जा, साहस, समरसता तथा भौतिक मूल्यों पर दृढ़ रहने जैसी आदतों में निर्णायक भूमिका अदा करता है। गांधी ने जीविकोपार्जन हेतू चरखे को एक मात्र वैश्विक साधन बताया लेकिन उन्होंने कृषि को भी हमेशा आदर्श व सम्मान के भाव से देखा। कटाई के अतिरिक्त गांधी ने कहा कि प्रत्येक व्यक्ति को अपना सफाई कर्मी खुद होना चाहिए।

“उन्होंने महसूस किया कि उस समाज में निश्चित रूप से कुछ भयंकर दोष विद्यमान है जहां सफाई कार्य में संलग्न लोगों को समाज का बहिष्कृत अंग बनने पर मजबूर किया जाता है।“ सो प्रत्येक को एक सफाई कर्मी के रूप में अपनी रोटी कमानी चाहिए। इस प्रकार यदि सफाई-कर्म को सही रूप में किया जाय। तथा उस पर बुद्धिमत्ता पूर्ण विचार किया जाए तो यह मानवीय एकता की वाहक बन सकती है।

स्वदेशी

उन वस्तुओं का उपयोग करना जिसके निर्माता के प्रति यह भाव हो कि वह संभवत: धोखा दे रहा है, सत्य के सरोकारों के विपरीत है। जो सत्य के व्रति मैनचेस्टर, जर्मनी या फिर अपने खुद के देश के मीलों, जहां कि कपट विहीनता के बारे में वे सुनिश्चित नहीं हों में बनी वस्तुओं का प्रयोग किसी प्रकार ने नहीं करेंगे। स्वदेशी व्रत का अनुपालन करने के लिए यह जरूरी है कि वह सादे, सरल तथा फैशन विहीन वस्तुओं का उपयोग करे। उसके कपड़े साधारण ढंग से निर्मित व सादे हों तथा उसमें फैशनेबल बटनों, विदेशी कटावों का भी पूर्णतया निषेध हो। स्वदेशी जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में लागू होगी।

निडरता

सत्य और अहिंसा या प्रेम सत्याग्रह के प्रमुख अस्त्र है तथा इसके लिए अपेक्षित है पूर्ण निडरता। डरपोक यानि डरने वाला सत्य का अन्वेषण नहीं कर सकता है। सो सत्याग्रहियों को राजा,प्रजा, जाति, परिवार, चोर, डकैत, भयानक जानवरों तथा मृत्यु तक के भय से अपने आप को आजाद करने की जरूरत है। साहसी बनने तथा अपने आप को बलिदान तथा पीड़ा-भोग हेतू तत्पर रहने के लिए भी निडरता एक आवश्यक शर्त है क्यों कि एक अहिंसक संघर्ष कर्ता को उनकी जरूरत हर वक्त होती है। "सभी प्रकार के निडर को बिना पूर्णतः त्यागे अहिंसा के व्रत के मूलरूपेण पालन करना संभव नहीं है।30

विनम्रता (विनयशीलता)

अक्खड़ता, अहंकारिता, आत्म महत्व, क्रोध तथा दंभ- सारे सत्य के साधकों के लिए बुराई के प्रतीक हैं। अनाशक्ति, निष्कपटता तथा मन की प्रशांति, पूर्वाग्रहग्रहमुक्ता तथा कार्य में कर्तापन की भावना का अभाव, सौम्यता,उत्कृष्ता, क्षमाशीलता तथा धीरता ये सब सत्य व अहिंसा के साधकों के वास्तविक गुण हैं। इन सब गुणों को मिला दिया जाए तो उसे विनयशीलता कहा जाता है। इसलिए गांधी अपनी आत्मकथा में लिखते हैं "सत्यान्वेषण के सहायक तत्व जितने सरल हैं उतने कठिन भी हैं ये किसी अक्खड़ व्यक्ति के लिए बिलकुल असंभव, लेकिन एक निर्दोष बच्चे को बिल्कुल संभव जान पड़ सकता है। सत्य के साधकों को धूल से भी अधिक विनम्र होना चाहिए"[31]

सत्याग्रह संहिता

पूर्व के पृष्ठों पर सत्याग्रह के व्रतों की विस्तार स चर्चा करने के बाद अब हम सत्याग्रह के नियमों की चर्चा करते हैं-

सत्याग्रही डर को अलविदा कह देता है तथा विरोधियों पर विश्वास करने से कभी भयभीत नहीं होता है। यदि विरोधी पक्ष उसके साथ बीसों बार छल करता है तो भी सत्याग्रही उस पर 21वीं बार विश्वास करने के लिए तत्पर रहता है। मानवीय प्रकृति में पूर्ण विश्वास सत्याग्रही

का मूल धर्म होता है।[32] एक सत्याग्रही का कोई अर्थ नहीं रह जाता यदि वह नैसर्गिक रूप से नियम-निष्ठावान न हो (नियम-पालनकर्ता) और यह उसकी स्वाभाविक नियम- निष्ठा ही है जो सर्वोच्य कानून के प्रति उसकी निर्विवाद निष्ठा को सुस्पष्ट करती है। यह निष्ठा उसके अंत:करण की आवाज है जो सभी कानूनों व नियमों से कहीं अधिक प्रभावी है।[33]

चूंकि प्रत्यक्ष कार्यवाही का सबसे ताकतवर व प्रभावी तरीका सत्याग्रह है, सो एक सत्याग्रही, सत्याग्रह शुरु करने से पहले अन्य सभी साधनों को पृष्ठभूमि में छोड़ देता है वह अनवरत व सतत् रूप से संस्थापित सत्ता के अन्याय पूर्ण कायदे कानूनों को चुनौती पेश करेगा, लोकमत को तैयार करेगा, शिक्षित करेगा तथा उन्हें सुप्तावास्था से जागृतावस्था में लाएगा, वह अपनी बातों को उन सब श्रोताओं तक सौम्य व शांतिपूर्ण तरीके से पहुंचाएगा जो उनमें रुचि रखते हैं तथा पसंद करते हैं। इस प्रकार इन तरीकों को सफलता पूर्वक अजमाने व अपनाने के बाद ही वह सत्याग्रह के पवित्र यज्ञ में होम करेगा। लेकिन जब वह अपनी अंतरआत्मा की आवाज पर सत्याग्रह के पवित्र जंग में कूदेगा तो फिर व इससे पीछे कभी न हटेगा।[34]

एक सत्याग्रही के लिए यह आवश्यक है कि वह संघर्ष के साथ-साथ शांति के प्रति भी अपनी उत्सुकता कायम रखे। उसे शांति के किसी भी अवसर का पुरजोर स्वागत करने के लिए सदैव तत्पर रहना चाहिए।[35]

सत्याग्रह ही मेरी पहली और अंतिम सलाह है आजादी का इससे बेहतर कोई मार्ग नहीं है।[36] सत्याग्रह-संहिता में पाश्विक शक्तियों के समक्ष घुटने टेकने जैसी कोई बात नहीं है। और यदि समर्पण जैसी कोई बात है तो वह समर्पण है पीड़ा का न की संगीन के खौफ के सामने आत्मसमर्पण का।[37]

एक सत्याग्रही के रूप में अपनी समीक्षा की गुंजाइश हमेशा खुली रखनी चाहिए।[38]

सत्याग्रही की योग्यता

सत्याग्रही की निम्म योग्यताएं हैं। मैं भारतवर्ष के प्रत्येक सत्याग्रही के लिए इसे अनिवार्य वा आवश्यक मानता हूं-

1-ईश्वर के प्रति उसके मन में जीवन्त आस्था होनी चाहिए।

2- सत्या के प्रति उसके मन में आगाध आस्था होनी चाहिए। अर्थात उस मानवीय प्रकृति में निहीत भलमनसाहत के प्रति उसके मन में पूरी श्रद्धा होनी चाहिए। जिसे वह अपने प्रेम व सत्य के रंग से सराबोर कर जागृत करने की अपेक्षा रखता है।

3- उसे एक पवित्र जीवन जीने वाला होना चाहिए तथा अपने उद्देश्य हेतु उसे सब कुछ कुर्बान कर देने को हर पल तत्पर रहना चाहिए।

4- स्वभाव से वह खादी बुनने तथा कातने वाला हो। हिन्दुस्तान के लिए यह परम आवश्यक है।

5- किसी भी प्रकार के नशा से उसे मुक्त होना चाहिए।

6- समय-समय पर तय किए जाने वाले सभी अनुशासनात्मक नियमों के प्रति वह वफादार हो।

7- जेल के नियमों को वह तन-मन से तब तक स्वीकार करें जब तक कि वह उसके आत्मसम्मान को विशेष रूप से ठेस पहुंचाने वाला न हो।

ये योग्यताएं सर्वांगीण न होकर दृष्टान्त भर हैं।[39]

सत्याग्रह के रूप तथा तकनीकें

सत्याग्रह के विभिन्न तौर-तरीकों को तथा उनमें से कई को एक समय-समय पर विभिन्न अवस्थाओं व स्तरों पर स्वीकार कर शामिल किया जाता है। इसमें से महत्वपूर्ण है बुनियादी शिक्षा, रचनात्मक कार्यक्रम, युक्तियों के द्वारा रजामंदी, आत्म दुख भोग द्वारा हृदय परिवर्तन तथा अहिंसाक प्रत्यक कार्यवाही या अहिंसक असहयोग के द्वारा

अपनी बात मनवाने की दृढ़ धारणा जो हड़ताल, धरना, बहिष्कार तथा अन्तिम रूप से सविनय अवज्ञा आदि किसी भी रूप में हो सकता है।

बुनियादी शिक्षा

गांधी समाज के प्रत्येक व्यक्ति का सम्पूर्ण विकास चाहते थे तथा उनका उद्देश्य व्यक्ति के व्यक्तित्व के चहुंमुखी विकास से समाज में उसकी पूर्ण भागीदारी सुनिश्चित करना था। व्यक्तित्व के संपूर्ण विकास से उनका तात्पर्य शारीरिक, मानसिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक विकास था। वे जातने थे कि ‘‘मानव सिर्फ बौद्धिक पुतला या पाश्विक शरीर अथवा हृदय या आत्मा मात्र नहीं है। वरन् इन तीनों के समरस व उपयुक्त मिलन से ही व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का निर्माण संभव है’’[40] सो उन्होंने एक ऐसी बुनियादी शिक्षा की रूपरेखा तैयार की जो व्यक्ति के दिव्य गुणों को उभारकर उसे एक संतुलित, समर्थ, चेतना व प्रबुद्ध व्यक्तित्व प्रदान कर सके। उन्होंने ‘‘बुनियादी शिक्षा व्यवस्था को अत्यंत व्यापक व दीर्घगामी परिवर्तन लाने वाला ऐसा सामाजिक आंदोलन बताया।‘‘[41] जो ऐसे सामाजिक व्यवस्था की आधारशिला रखेगा जहां व्यक्तियों के बीच कोई भी अप्राकृतिक विभाजन नहीं होगा।

रचनात्मक कार्यक्रम

रचनात्मक कार्यक्रम गांधी के 1920 के बाद के सत्याग्रह आंदोलन का एक अभिन्न व सकारात्मक पहलू था। इस कार्यक्रम का उद्देश्य आर्थिक आत्मनिर्भरता की प्राप्ति तथा स्वदेशी भावना का प्रसार था। इसे चलाने के पीछे सामाजिक सौहार्द का प्रतिस्थापन तथा छुआछूत, बेरोजगारी व अशिक्षा जैसे सामाजिक बुराइयों के उन्मूलन का निहित उद्देश्य काम कर रहा था।

गांधी के अनुसार रचनात्मक कार्यक्रम का निर्माण, सबसे निचले स्तर से राष्ट्रके चहुंमुखी विकास के लिए किया गया था। इसका अर्थ प्रत्येक दृष्टिकोण से पूर्ण स्वराज की प्राप्ति थी। उनका विश्वास था कि अहिंसक तरीकों से स्वराज्य की प्राप्ति के लिए सविनय

अवज्ञा की अपरिहार्यता नहीं होगी। यदि रचनात्मक कार्यक्रम में संपूर्ण राष्ट्र के सहयोग को सुनिश्चित किया जा सके। गांधी के लिए रचनात्मक कार्यक्रम हृदय से जुड़ा हुआ था उन्होंने इसे अहिंसक अभियान का स्थाई हिस्सा बताया। बिना रचनात्मक कार्यक्रम के सत्यग्रह के अभियान को चलाना उनके शब्दों में, "लकवा ग्रस्त हाथ से चम्मच उठाने की कोशिश करना है।"[42]

गांधी ने 1920 के अहिंसक असहयोग आंदोलन के दौरान पहली बार रचनात्मक कार्यक्रम को सत्याग्रह के अविभाज्य अंक के रूप में अपनाया। इस आंदोलन के दौरान सरकारी स्कूलों, कॉलेजों, न्यायालयों तथा विदेशी सामानों के पूर्ण प्रतिस्थापन के रूप में बड़े पैमाने पर राष्ट्रीय विद्यालयों व संस्थाओं को खोला गया, मध्यस्त न्यायलयों तथा पंचायतों की स्थापना की गई तथा चरखे का व्यापक प्रचार-प्रसार किया गया।

1928 के बारदोली सत्याग्रह के पूरे समय के दौरान कताई व समाजिक कल्याण गतिविधियां पूरे जोर-शोर से जारी रहीं जिसमें पूर्ण खादी कार्यक्रम पर विशेष जोर डाला गया। 1930 के उनके नमक सत्याग्रह के दौरान भी सभी सत्याग्रहियों के लिए हस्त-निर्मित खादी पहनना अनिवार्य था। इसी तरह जनकल्याण तथा आत्म निर्भरता से संबंधित कार्यों को स्वराज की उपलब्धि के एक अभिन्न हिस्से के रूप में चलाया जाता रहा। यद्यपि रचनात्मक कार्यक्रम को पूर्ण स्वराज की उपलब्धि को एक सुनिश्चित तरीके के रूप में पूर्ण व स्पष्ट मान्यता दिसंबर 1941 के व्यक्तिगत सत्याग्रह के उत्तरवर्ती समय में ही मिली।

रचनात्मक कार्यों की परिकल्पना गांधी ने एक दिन में नहीं की वरन इसके ठोस रूप के सामने आने में सालों समय लगा। व्यक्तिगत सत्याग्रह के उत्तरवर्ती काल के दौरान गांधी ने रचनात्मक कार्यक्रम के अपने संपूर्ण दर्शन का प्रतिपादन किया तथा 25 पृष्ठों की 'रचनात्मक कार्यक्रम ' शीर्षक से यह पुस्तिका प्रकाशित की। 1941 में गांधी ने निम्न 13 विषयों को सूचीबद्ध किया-

1-साम्प्रदायिक एकता

2-छूआछूत का उन्मूलन

3-मद्य-निषेध

4-खादी

5-अन्य ग्रामीण उद्य़ोग

6-ग्राम-स्वच्छता

7- नवीन व बुनियादी शिक्षा

8-वयस्क शिक्षा

9- महिला सशक्तिकरण

10- स्वास्थ्य व स्वच्छता शिक्षा
11- देशी भाषाएं

12-राष्ट्रभाषा का प्रचार-प्रसार

13-आर्थिक समान्यता का प्रचार-प्रसार।

15 फरवरी को गांधी ने कस्तूरबा निधि कार्यकर्ताओं को संबोधित किया। रचनात्मक कार्यक्रम की पुस्तिका को संशोधिक करते हुए उसमें मौजूद तेरह चीजों के अलावा कुछ और विषयों को शामिल किया गया। नई शामिल चीजें थीं-

14- किसान

15- श्रम

16- आदिवासी

17-कुष्ठरोगी

18-विद्यार्थी

गांधी की मृत्यु के बाद आंदोलन को और धारदार बनाने के उद्देश्य से उनके सहयोगियों ने निम्न विषयों को पहले से मौजूद सूचियों में जोड़ा-

19- गौ रक्षा

20- प्राकृतिक चिकित्सा

21- भूदान

22- ग्राम दान

23- शांति सेना।[44]

विश्वासोत्पादक युक्तियों के द्वारा परिवर्तन

जनशिक्षा तथा रचनात्मक गतिविधियों के साथ-साथ यह भी आवश्यक है कि किसी अंतिम क्रांति या आमूल-चूल परिवर्तन के लिए व्यक्तियों व समूहों की कुछ निश्चित विचारों, संवेदनाओं तथा अवधारणाओं के प्रति असाक्ति को पहले दूर किया जाए। और यह सिर्फ विश्वासोत्पादक व सौम्य युक्तियों द्वारा परिवर्तन से ही संभव है न कि जबरन या बाध्यकारी तौर-तरीकों से।

सत्याग्रह में रजामंदी का विभिन्न नियमित अवस्थाओं में दो स्वरूप सामने आता है। पहले चरण में मुख्यरूप से युक्तियुक्त तर्क-वितर्क आता है। विरोधी पक्षों को तार्किक विवेचनाओं के द्वारा समझाने की कोशिश की जाती है। गांधी ने कहा, "यदि मैं उसके विवेक को अपील नहीं कर पाता हूं तो मैं एक भी व्यक्ति को अपने साथ ले जाना पसंद नहीं करूंगा। मैं सबसे प्राचीन शास्त्रों की श्रेष्ठता को भी नकार सकता हूं यदि वह मेरे विवेक को अनुकूल नहीं लगे।"[45]

उनके विचार में एक सत्याग्रही नेता के लिए स्वतंत्र सोच तथा विवेकपूर्ण युक्तियों के द्वारा अन्य लोगों को प्रभावित व रजामंद करने की क्षमता का होना परम आवश्यक है तथा

यह उसके सबसे विशिष्ट व महत्वपूर्ण गुणों में आता है। सो सत्याग्रही का पहला कर्तव्य यह है कि वह अपने विरोधियों को विवेक पूर्ण तर्को द्वारा राजी करने की कोशिश करे तथा जिस बुराई को खत्म करने का उसने प्रण किया उसके खिलाफ जनमत तैयार करे। यदि जनमत को किसी बुराई के खिलाफ समुचित रूप से खड़ा कर दिया जाए तो किसी भी विचार, व्यक्ति या संस्था में यह ताकत नहीं है कि वह उसे रोक सके। एक जागृत व प्रबुद्ध जनमत सत्याग्रही का सबसे प्रभावी हथियार है।[46]

आत्म-दुख भोग के द्वारा ह्रदय परिवर्तन

गांधी के अनुसार बुरे को बुराई से दूर करने की दिशा में सत्याग्रही द्वारा उठाए गए कदमें में से दूसरा कदम है, अपने विरोधियों के ह्रदय को धर्यपूर्वक, आत्मदुखभोग, सहानुभूति, सदभाव, निष्कपटता, विनम्रता से मथने की कोशिश करना। "तुम किसी व्यक्ति के सर को काटकर उसके सर में नए विचार नहीं डाल सकते, न ही किसी व्यक्ति के ह्रदय को छुरे से भेद कर उसमें नवीन मत का बीच जाल सकते हो।"[47] स्वैच्छिक आत्म-दुख भोग विरोधी पक्षों के आंखों को खोलने का काम करता है। सो सत्याग्रही को बुराई के उन्मूलन के लिए इसके कार्यकर्ताओं को मस्तिष्क व ह्रदय दोनों को भेदने की कोशिश अनवरत जारी रखनी चाहिए।[48] बुराई के कर्ता-धर्ताओं को समझाने-बुझाने में असफल होने पर या ऐसी परिस्थिति में जबकि विरोधी पक्ष तर्को को सुनने से भी इंकार कर देता है तब सत्याग्रही आत्मदुख भोग का तरीका अपनाता है। तथा विरोधी पक्षों के ह्रदय को मथकर उसे इस तरह लाता है जहां युक्तियों के द्वारा उसे रजामंद करने का काम सफलता पूर्वक किया जा सके।

कठोतम धातुओं को पिघलाने के लिए समुचित ताप आवश्यक है लेकिन निश्चित रूप से कठोरतम ह्रदयों को अहिंसा के पर्याप्तम ताप के मिलने से पहले ही पिघल जाना चाहिए और अहिंसा के द्वारा उत्पन्न ताप की कोई सीमा नहीं है।[49]

उपवास

सत्याग्रह का सबसे नाजुक रूप उपवास है। सत्याग्रह के अन्य स्वरूपों की तुलना में उपवास गांधी का खुदका अपना तरीका था। उपवास मुख्यरूप से व्यक्तिगत शुद्धि व आत्मालोचना का माध्यम है।[50] यह सत्याग्रह के शस्त्रागार का एक प्रभावी व अचूक हथियार है यह एक प्रचंड अस्त्र है।

गांधी ने कुछ विशिष्ट सामान्य सिद्धांतों व शर्तों की रूपरेखा रखी। जिसके अंतर्गत एक सत्याग्रही उपवास का तरीका अपना सकता है। "एक सत्याग्रही को अनशन का इस्तेमाल तभी करना चाहिए जब सारे उपाय निष्प्रभावी व निष्फल हो जाएं। आमरण अनशन व फिर अनवरत उपवास सत्याग्रही का अंतिम हथियार होना चाहिए। यह सत्याग्रही का अंतिम कर्तव्य है जिसे उसे निभाना है।"[51] उनका विचार था कि उपवास उन्हीं लोगों को करना चाहिए जो इसमें समर्थ व सक्षम हों। इसका (उपवास) उद्देश्य आत्मशुद्धि या आत्मसंयम था फिर विरोधी पक्षों के अच्छे पक्षों को उभार कर उसे उसकी गलती का अहसास कराने वाला होना चाहिए। इसे हिंसक गतिविधियों पर विराम लगाने, कटुता मिटाने या राजनीतिक माहौल को शुद्ध करने के लिए भी अजमाया जा सकता है। लेकिन इसका स्वरूप 'त्याग ' हो न की विरोधी पक्षों पर ना जायज रूप से दबाव डालना।[52]

सत्याग्रह के एक विशेषज्ञ के रूप में गांधी ने खुद अपने जीवन में विभिन्न मौकों पर लगभग 17 बार अनशन किया, लेकिन उन्होंने अपने मित्रों व सहयोगियों को अपना अंधानुकरण या भावनात्मक अनुकरण के खिलाफ चेतावनी दी। उनके अनशनों में से 3 शासकी अन्याय के खिलाफ, 4 छुआछूत के व्यवहार के खिलाफ, 3 हिंदू-मुस्लिम दंगों के खिलाफ तथा 4 अन्य हिंसक कार्यों के खिलाफ थे। इसके अतिरिक्त उनके तीन अनशन आत्मशुद्धि तथा प्रायश्चित के उद्देश्य से तथा अहमदाबाद मील कर्मीयों द्वारा वेतन वृद्धि के उद्देश्य से किए जा रहे हड़ताल के समर्थन में किए जा रहे थे।[53]

अहिंसक असहयोग

गांधी ने इस बात को स्वीकार किया कि उन्होंने अहिंस असहयोग के तरीके को लियो टॉल्सटाय से सीखा अहिंसक असहयोग एक पवित्र कर्तव्य है तथा अराजकता का एक बेहतर विकल्प है। यह विश्व को ज्ञात विरोधियों को परास्त करने का सबसे कारगर व

त्वरित माध्यम है किसी बुरे के प्रति असहयोग की रणनीति अधिक सफल भले न हो लेकिन व्यापक जन आंदोलन का रूप देकर इसे अत्यंत सटीक, विश्वस्त व सुनिश्चित माध्यम बनाया जा सकता है। यह घृणा के मुकाबले प्रेम को खड़ा करने का माध्यम है यह अहिंसक सहयोग पिता व पुत्र के बीच भी हो सकता है तथा निरंकुश व निर्दयी शासक तथा शासित वर्ग के बीच भी स्वाभाविक रूप से हो सकता है। असहयोग का निश्चित रूप से यह मतलब है कि जिस व्यवस्था के खिलाफ हम असहय़ोग करते हैं उस व्यवस्था के सारे लाभों से हम किनारा कर लें। एक असहयोगी के लिए यह वांछनीय है कि वह एक बुरी व्यवस्था के अंतर्गत स्कूल, कॉलेज, कॉर्पोरेशन, कोर्ट, उपाधि, विधानपालिका तथा इसी तरह की अन्य संस्थाओं से प्राप्त लाभ का लोभ त्याग दे।

गांधी की असहयोग रणनीति के पीछे यह सिद्तांत था कि सत्याग्रही अपने असहयोग तरीके से बुरी ताकतों को अभिभूत कर पूरी तरह अपने नियंत्रण में कर सकता है। गांधी ने इस बात की भी अपेक्षा की थी कि इस तरीके को अपनाने के दौरान सत्याग्रहियों को पीड़ा सहने व नुकसान सहने के लिए तैयार रहना चाहिए। गांधी के विचारों में, असहयोग,अनुशासन व आत्म-बलिदान का पैमाना है इसके बिना कोई भी राष्ट्र सही अर्थो में प्रगति नहीं कर सकता है।[54]

गांधी ने भारत में अपना पहला असहयोग आंदोलन 1920 में चलाया। इसका प्रारंभिक उद्देश्य खिलाफत तथा पंजाब कि गलतियों को दुरुस्त करना तथा अंतिम उद्देश्य स्वराज की उपलब्धि थी। कार्यक्रम के निम्न हिस्से थे।[55]

(अ)-उपाधियों व सम्मानों का त्याग तथा स्थानीय निकायों के मनोनीत व अवैतनिक पदों से इस्तीफा।

(ब)-सरकारी कार्यालयों या शासकीय संस्थाओं द्वारा या उसके सम्मान में आयोजित सभी प्रकार के सभा, सम्मेलन व दरबारों का पूर्ण बहिष्कार।

(स)-विभिन्न राज्यों में स्कूलों व कॉलेजों से बच्चों का क्रमिक बहिर्गमन।

(द)-वादियों व वकीलों द्वारा अंग्रेजी अदालतों का क्रमिक बहिष्कार तथा निजी विवादों के समाधान हेतु मध्यस्थ न्यायालयों की स्थापना।

(इ)-मेसोपोटामिया में सेवा हेतु मिलिट्री, कलर्क तथा श्रमिक वर्गों की ओर से स्पष्ट इंकार।

(फ)-संशोधित परिषदों के चुनाव से उम्मीदवारों की नाम वापसी तथा मतदाताओं द्वारा ऐसे किसी भी उम्मीदवार के समर्थन में मतदान से इंकार जिसने कांग्रेस की सलाह को नजरअंदाज कर अपनी उम्मीदवारी जनता के सामने रखी।

(ग)-विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार। हथियारों का समर्पण तथा करों का स्थगन असहयोग के अंतिम दो चरण थे।

अहिंसक असहयोग के कई रूप मसलन हड़ताल, धरना, बहिष्कार, तालाबंदी, तथा हिजरत कुछ भी हो सकते हैं। सविनय अवज्ञाओं क रूप में यह अपनी अंतिम परिणति को प्राप्त करता है।

हड़ताल

के एल श्रीधरनी के अनुसार हड़ताल श्रमिकों द्वारा अपने नियोक्ताओं से सेवा व जीविका के बेहतर प्रबंध तथा मानक की मांग का एक प्रभावी उपाय है।[56] राजनीतिक उद्देश्य की प्राप्ति हेतु हड़तालों का आयोजन खुले रूप में किया जा सकता है। उदाहरण के लिए , अपने दक्षिण अफ्रीकी सत्याग्रह आंदोलन के दौरान अपनी सलाह पर उन्होंने स्वयं भारतीय कोयला खान मजदूरों तथा रेलवे कर्मचारियों की हड़ताल 1913ई. के अक्टूबर-नवम्बर महीने में सरकार सरकार के 2-3 कर को खत्म करने के लिए राजी करने के लिए आयोजित करवाई।[57]

यद्यपि हड़ताल का उद्देश्य राजनीतिक हो या आर्थिक उसे सत्याग्रह में शामिल करने के लिए कुछ निश्चित मानदंडों को पूरा करना अनिवार्य है। पहला, एक शांतिपूर्ण हड़ताल के दायरे को पीड़ित समुदाय तक ही सीमित रखना चाहिए तथा उसे अपने खुद के मानदंडों पर खरा होना चाहिए। दूसरा यह स्वत: स्फूर्त हो न कि छल-योजित। अपने अहमदाबाद सत्याग्रह के दौरान, गांधी ने सफल व प्रभावी हड़ताल के लिए कुछ और शर्तों की रूपरेखा रखी। जो निम्म है[58]-

1-हिंसा का हर हालत में परित्याग

2-हड़ताल में शामिल नहीं होने वालों को किसी भी प्रकार की परेशानी से सुरक्षा[59]

3-भिक्षा पर निर्भरता कदापि नहीं, तथा

4-दृढ़ता बनी रहे, चाहे हड़ताल कितनी ही लंबी क्यों न खिंचे तथा इस दौरान अपने श्रम से अपनी रोटी का प्रबंध।

यद्धपि गांधी जी ने जन उपयोग की सेवाओं के दायरे से हड़ताल को मुक्त रखने की वकालत की, क्योंकि उनका मानना था कि आवश्यक वस्तुओं में हड़ताल से उत्पन्न बाधाओं व अनुपस्थितियों से जन समुदाय को बड़े पैमाने पर हानि या असुविधा हो सकती है जो कि सत्याग्रह की मूल आत्मा के विपरीत है। उनका विचार था कि इनके विस्थापन से जनजीवन का विस्थापन होगा।[60]

स्वैच्छिक कार्य-बंदी

स्वैच्छिक कार्य-बंदी या शांतिपूर्ण तरीके से काम रोकना, सत्याग्रह का दूसरा तरीका है। किसी अन्यायपूर्ण सत्ता के खिलाफ कार्य-व्यापार का स्वैच्छिक स्थगन ही स्वैच्छिक कार्य-बंदी है। यह विरोध का संवर्ध्दित रूप है जिसका उद्देश्य जनता तथा सरकार दोनों का ध्यान आकृष्ट करना है। गांधी के अनुसार, "यह आत्म-शुद्धि का एक तरीका है।"[61] यह सरकारी योजनाओं के खिलाफ असहमति जताने का सबसे कारगर माध्यम है। यह राष्ट्रीय मत को अभिव्यक्त करने के उद्देश्य से आयोजित बड़ी-बड़ी सभाओं से कहीं अधिक प्रभावी व सफलताजनक है।[62] यद्यपि इसका स्वरूप पूर्णतया स्वैच्छिक होना चाहिए अनयथा यह हिंसा तथा प्रतिहिंसा में तब्दील हो सकता है। जबरन हड़ताल करना सत्याग्रह की भावना के अनुकूल नहीं है इसे आयोजित करने लिए रजामंदी, सौम्यवाद-संवाद तथा प्रचार प्रसार का तरीका अपनाना चाहिए।

किसी भी परिस्थिति में जोर-जबरदस्ती नहीं होनी चाहिए। इसके अतिरिक्त इसका आयोजन बार-बार नहीं होना चाहिए, अन्यथा इसकी प्रभावशीलता क्षीण हो जाएगी।

बहिष्कार

गांधी के तरकश में सत्याग्रह का यह एक दूसरा प्रभावी तरीका था जिसमें विरोधी पक्षों पर दबाव डालने तथा अपनी बाते मनवाने के लिए आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, शैक्षणिक, वैधानिक तथा इसी प्रकार की अन्य संस्थों का बहिष्कार किया जाना शामिल था इसके पीछे प्रतिशोधात्मक विचार काम करता था जिसमें विरोधी पक्षों को सजा देने का उद्देश्य नीहित था।

आर्थिक बहिष्कार सत्याग्रह के व्रत में शामिल था इससे आशय वैश्विक इस्तेमाल की चीजों का बहिष्कार तथा उसके स्थान पर स्थानीय उत्पादित वस्तुओं का प्रयोग है गांधी के अनुसार, विदेशी वस्त्र बहिष्कार योग्य वस्तुओं में शामिल है इसलिए 1920-22 के दौरान उन्होंने हिंदुस्तान से विदेशी कपड़े के विनाश का आवहन किया। जुलाई 1921 में गांधी ने खुद मुंबई में विदेशी वस्त्रों की होली जलाने के शुभ आरंभ किया।

सामाजिक क्षेत्र में बहिष्कार का अर्थ अहिंसक सामाजिक बहिष्कार था लेकिन गांधी का विचार था कि वर्तमान विश्व की जटिल परिस्थियों में सामाजिक बहिष्कार की अत्यंत सीमित प्रासंगिकता है। इसे अत्यंत विपरीत परिस्थियों मे जबकि उद्धत (विद्रोही), अल्पमत, बहुमत को किसी सिद्धांत के बजाह सिर्फ चुनौती देने के उद्देश्य से खारिज कर दे,[63] तभी अपनाया जाना चाहिए। सामाजिक बहिष्कार को तभी अमल में लाया जाना चाहिए जब इस बात को सुनिश्चिक कर लिया जाए कि बहिष्कार सजा नहीं लगे। "यदि इसके द्वारा लक्षित व्यक्तियों को असुविधा होती है तो उसके दर्द की अनुभूत लक्ष्य साधकों के दिलों में होनी चाहिए।"[64]

राजनीतिक क्षेत्रों, बहिष्कार, सविनय अवज्ञा का स्वरूप ग्रहण कर लेता है इसके अंतर्गत उपाधियों तथा सम्मानों की वापसी तथा लोकप्रिय इच्छओं को अभिव्यक्त नहीं करने वालों से सभी प्रकार की सेवाओं का इंकार शामिल है। मतदाताओं को तथाकथित प्रतिनिधियों के चुनाव प्रक्रिया में शामिल होने से अपने आप को बिल्कुल अलग कर लेना चाहिए। असहयोग में शामिल जनता इन प्रतिनिधियों के राजनीतिक जुलूस या जलसे में शामिल नहीं होगी। इसप्रकार उनके प्रति सम्मान का कोई भाव व्यक्त नहीं करेगी।[65]

शैक्षणिक, वैधानिक तथा इसी प्रकार की अन्य संस्थाओं के बहिष्कार से आशय है कि आदर्श विचारों को केंद्र में रखकर अहिंसक मॉडल पर आधारित इस तरह के समानांतर संस्थाओं की स्थापना।

धरना

शांतिपूर्ण धरना भी अहिंसा का एक वैध व उपयोगी तरीका है। हड़ताल की ही तरह धरने का स्वरूप भी रजामंदी वाला होना चाहिए न कि बल प्रयोग वाला। असहयोग आंदोलन तथा 1930-31 से सविनय अवज्ञा आंदोलन दोनों के दौरान गांधी ने दोनों से विशेषकर महिलों से विदेशी तथा देशी शराब की दुकानों तथा विदेशी वस्त्रों की दुकानों पर धरना देने का आवाह्न किया। यद्‍यपि गांधी ने धरने को पिकेटिंग के एक तरीके के रूप में स्वीकार नहीं किया। उन्होंने धरना को एक, बर्बर, क्रूर तथा बाध्यकारी कायराना कार्रवाई बताया। सत्याग्रह के एक अंग के रूप में पिकेंटिंग का पूर्णरूप से अहिंसक होना अनिवार्य है।

हिजरत

हिजरत या देश त्याग बुराइयों से मुकाबला करने का एक प्राचीन तरीका है जिसका स्वरूप व्यक्तिगत या सामूहिक दोनों होता है। इसका मतलब है कि लोगों द्‍वारा अब तक अपनी समझी जाने वाला भूमि[66] से उस परिस्थिति में स्वैच्छिक उत्प्रवास जबकि अत्याचार, अनाचार व शोषण की पराकाष्ठा हो जाए तथा उनकी आवाज का कोई महत्व नहीं रह जाए। लेकिन गांधी के नियम में सत्याग्रह के शुद्ध स्वरूप में हिजरत की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन शोषक के खिलाफ अहिंसक प्रतिरोध और यहां तक कि हिंसक प्रतिरोध भी नहीं कर सकने की स्थिति में गांधी का विकल्प शोषण व अत्याचार के खिलाफ कायराना समर्पण के बजाय हिजरत था। “ यह बुद्धिमता का काम है कि प्लेग से ग्रस्त घरों या स्थानों को खाली कर दिया जाए। शोषण प्लेग का ही एक रूप है और जब यह हमें क्रूद्ध या कमजोर करने की स्थिति में हो तो ऐसे परिदृश्यों का परित्याग ही बुद्धिमानी है।”[67]

गांधी ने 1939-40 में साम्प्रदायिक दंगों के दौरान सिंध प्रान्त के हिन्दुओं को हिजरत की सलाह दी।[68] उन्होंने द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान विदेशी सैनिकों के आपराधिक आक्रमणों से बचने के लिए नगर में रह रही महिलाओं को भी इसी तरह की सलाह दी।[69] इससे पहले 1928 में बारदोली में सत्याग्रहियों के हिजरत की उन्होंने प्रशंसा की थी। इसके अतिरिक्त 1939 में जूनागढ़ व विट्ठलगढ़ के हिजरत को भी उन्होंने सराहा।[70] फिर हिजरत का अनुकरण अत्यंत अपवाद की स्थितियों में ही किया जाना चाहिए। यह नियोजित हो न कि एक कायराना संघर्ष। लेकिन नियोजित हिजरत के लिए साहस व दूरदर्शिता का जरूरत होती है।[71]

असहयोग के इन सभी अंगों-उपांगों की अंतिम परिणति सविनय अवज्ञा में होती है जो कि अगला तार्किक हथियार है।

सविनय अवज्ञा

यह सत्याग्रह का एक सक्रिय, प्रभावी, सक्षम व उग्र रूप है। गांधी के अनुसार, सविनय अवज्ञा असहयोग का एक अनिवार्य हिस्सा है।[72] गांधी ने इसे हिंसक या सशस्त्र विद्रोह का एक विकल्प बताया। यह एक ऐसा अबाध्यकारी तरीका है जिसे कानून पालन करने वाली कोई भी जनता इस शर्त पर अपना सकत है कि हिंसा की इसमें कोई भूमिका नहीं होगी तथा अंतिम बलिदान के लिए वह सदैव तत्पर रहेगी।[73]

गांधी के अनुसार, "राज्य निर्मित प्रत्येक कानून को अस्वीकार करने वाली पूर्ण सविनय अवज्ञा एक अत्यंत ही प्रभावी व शक्तिशाली आंदोलन का रूप धारण कर सकती है। तथा इसका परिणाम निर्णायक हो सकता है।[74] गांधी की राय में सविनय अवज्ञा इतनी पूर्ण होनी चाहिए कि जब हमें सरकार दाहिने जाने का आदेश दे तो बाएं जाने में हमें कोई हिचकिचाहट नहीं होनी चाहिए।" यह सशस्त्र विद्रोह एक पूर्ण, प्रभावी व पूर्णत: अहिंसक विकल्प है।

सविनय अवज्ञा को कुछ निश्चित अनैतिक वैधानिक व्यवस्थाओं के उल्लंघन या राज्य के खिलाफ सांकेतिक अहिंसक विद्रोह के तौर पर अपनाया जा सकता है।

किसी भी परिस्थिति में यह सत्ता के प्रति सम्मान भाव को व्यक्त करने वाला नहीं होना चाहिए। इसका अंतिम लक्ष्य स्वैच्छिक सहयोग को अनैच्छिक सहयोग तथा इच्छुक आज्ञाकारिता को बाध्य आज्ञापालन के प्रति स्थापित करना है। इस रेखांकित लक्ष्य पर चलकर ही सत्याग्रही अपने अन्तकरण की आवाज पर टिके रह पाएंगे।[75] सविनय अवज्ञा का आश्रय अंतिम परिस्थितियों में ही लिया जाना चाहिए तथा प्रथम दृष्टया यह कुछ चयनित लोगों के माध्यम से होनी चाहिए।[76]

सविनय अवज्ञा के मुख्य रूप से दो रूप होते हैं- आक्रामक तथा सुरक्षात्मक। इन दोनों ही रूपों को व्यक्तिगत या सामूहिक स्तर पर चलाया जा सकता है। लेकिन व्यक्तिगत सविनय अवज्ञा जहां स्वयं प्रेरित होती है, वहीं जन सविनय अवज्ञा के लिए नेतृत्व की जरूरत होती है। गांधी सविनय अवज्ञा को मुख्य रूप से व्यक्तिगत प्रकृति का मानते थे तथा व्यक्तिगत सविनय अवज्ञा को अपेक्षाकृत अधिक प्रभावी व सफलतापरक मानते थे, उनके अनुसार, "आक्रामक समझौता लेन-देन पर आधारित होता है, लेकिन सत्याग्रह में लेनदेन जैसी कोई चीज मौलिकत संभव नहीं है और मौलिकता पर कोई भी समझौता आत्मसमर्पण के सदृश है क्यों कि इसमें सब कुछ देना ही शामिल है लेना नहीं"[77]

यद्यपि अन्य सूचियों की तुलना में यह सूची भी सम्पूर्ण या सर्वांगीम नहीं है। जिस तरह अन्याय, अत्याचार व अनीति के विभिन्न रूप हो सकते हैं। यह सब निर्भर करता है विभिन्न तत्वों की प्रकृति, तीक्ष्णता तथा उसका अन्य तत्वों के साथ संबंध पर। इन्हीं सभी बातों के मद्देनजर गांधी ने अपना अनैच्छिक सहयोग की जगह स्वैच्छिक सहयोग को प्रतिस्थापित करने की बात कही थी। दिवाकर के शब्दों में "गांधी ने सत्याग्रह को नहीं बनाया वरन् सत्याग्रह ने गांधी की रचना की...। यदि दो में से एक चुनने ककी नैतिक बाध्यता हो तो यह सत्याग्रह है जिसने गांधी को उपकृत किया न कि इसके उलट नो।"[78]

सत्याग्रह पर भीखू पारिख के विचार[79]

गांधी के अनुसार तर्कणापरक विवेचन तथा रजामंदी, द्वन्द के समाधान हेतु उत्तम तरीके थे। यह शांतिपूर्ण , अबाध्यकारी तथा प्रत्येक पक्ष की नैतिक दृढ़ता व स्वायत्ता को सम्मान देने वाला तरीका था। उनके दृष्टिकोण से तर्कणापरक विवेचन दो स्थितियों के

तहत कार्य करता है। पहला चूंकि दोनों पक्षों कि दृष्टि एक दूसरे के प्रति संकुचति व पूर्वाग्रह से ग्रस्त होती है, सो प्रत्येक के लिए विवादित विषय़ पर एक दूसर के पक्ष को समझना जरूरी होता है। यदि उनमें से कोई दुराग्रही, दंभी तथा कट्टर मानसिकता वाला निकला तो फिर उसके लिए अपने पक्ष को कठघरे में देखना संभव नहीं हो सकेगा तथा वह दूसरे के दृष्टिकोण के साथ तारतम्य नहीं बिठा पाएगा।

गांधी ने नैतिक आधार पर भी हिंसा को त्याज्य व अस्वीकार बताया कार्यों के नैतिक पक्ष की दृढ़ता के लिए यह आवश्यक है कि सोच व व्यवहार में तारतम्यता हो। चूंकि हिंसा का प्रयोग विरोधी के सत्य की अवधारणा को नहीं बदल सकता, सो यह व्यक्ति को अपने स्वभाव के विरुद्ध कार्य करने के लिए बाध्य करता है जिससे उसकी नैतिक दृढ़ता का पतन होता है।

गांधी ने आगे यह तर्क दिया कि हिंसा से शायद ही अभिष्ट व अंतिम लक्ष्य की प्राप्ति संभव हो पाती है। हिंसा की कार्यवाही तभी सफल मानी जा सकती है जब वह त्वरित व त्तकाल इच्छित लक्ष्यों की उपल्बधि करा दे। यद्‌यपि अगर दीर्घकालीन नतीजों पर निगाह डाले तो हमारा निष्कर्ष बहुत कुछ अलग हो सकता है।

अन्ततः गांधी जी के अनुसार अधिकतर हिंसक सिद्धांतो के मूल में जमा साध्य-साधन का अंतर विरोध गलत था। मानव जीवन के यथाकथित साधन औजार, उपकरण या यंत्र नहीं वरन वो मानवीय क्रियाएं हैं जो निश्चित रूप से नैतिकता के न्याय क्षेत्र के बाहर कदम नहीं रख सकती। इसके अलावा लक्ष्य प्राप्ति हेतू संघर्ष वाह्‌य न होकर इसका ही एक अभिन्न हिस्सा है। तथाकथित साधन वास्तव में भ्रूणीय व्यवस्था में बीजों की तरह साध्य होते हैं। जिसका प्राकृतिक विकसित स्वरूप साध्य सामान्य होता है। सो न्यायपूर्ण समाज के निर्माण हेतु अन्याय पूर्ण साधनों के साथ संघर्ष नहीं किया जा सकता।

गांधी जी ने कहा कि चूंकि अन्याय से लड़ते हुए तर्कनापरख विवेचन तथा रजामंदी दोनों ही त्रुटिपूर्ण व अपर्याप्त साधन है सो हमें एक नए साधन की जरूरत है। यह साधन ऐसा होना चाहिए जो आत्मा को झंकृत करे उसके अतुलनीय उर्जा को संचित कर उसे गतिशील करे तथा एक नवीन प्रकार की अध्यात्मिक ऊर्जा व शक्ति का सृजन करे जो कि

अब तक राजनीतिक जीवन में नदारत रही है या उसे उसका समुचित स्थान नहीं मिला है। इस नए तरीके में ऐसी ताकत होनी चाहिए कि वह विरोधी पक्ष के दिल व दिमाग को खेल दे ताकि युक्ति-संगत विचार-विमर्श कि प्रक्रिया के सहयोग पूर्ण व सुमधुर वातावरण में हो सके। उनके अनुसार उनका सत्याग्रह का तरीका इन आवश्यकताओं की पूर्ती करने में सक्षम ही नहीं योग्य भी था।

गांधी ने सबसे पहले इसकी खोज व इनका व्यवहारिक प्रयोग दक्षिण अफ्रिका में नस्लीय भेदभाव के खिलाफ किया था फिर अनवरत रूप से अपने नवीन हथियार की धार को वो भारत में उपनिवेशवादी शासन के खिलाफ संघर्ष तथा खुद की समाज की बुराईयों के खत्म करने के दौरान तेज व परिपक्व करते रहे। गांधी जी के लिए सत्याग्रह एक ऐसा हथियार था जिसमें सत्य की खोच के प्रति दृढ़ता थी तथा जिसका लक्ष्य था पूर्वाग्रह, वैमनस्य, कट्टरता, संघर्ष व दंभ के घेरे को भेदना तथा विरोधी के हृदय तक पहुंचकर उसे उत्प्रेरित कर देना तथा आत्मत्व को जगा देना। चाहे कोई मनुष्य कितना ही कट्टर व दुर्भावना पूर्ण विचारों वाला क्यों न हो उसमें आत्मा होती है तथा वह अन्य मानवीय प्राणियों की भावनाओं को समझ सकने में समर्थ होता है। इस प्रकार वह अपने साझे मानवता के अर्थ को भी समझने के काबिल होता है।

’सत्याग्रह’ ‘आत्मा कि शैल्य क्रिया है’, यह आत्मा को जगाने वाली प्रभावी तकनीक है गांधी के लिए वेदनासिक्त प्यार इसका सबसे अच्छा तरीका था और यह गांधी के लिए प्रेरक सिद्धांत का आधार भी बना। अन्याय के प्रतिकार के लिए सत्याग्रही अपने विरोधी के साथ सहयोग पूर्ण वार्ता को तबज्जो देता है। वह अपनी न्यायपूर्ण मांग के लिए अपने विरोधियों के साथ सैद्धांतिक दुराग्रह में नहीं उलझता है उसे इस बात की समझ होती है कि वह पूर्वाग्रह से ग्रस्त व दुराग्रही हो सकता है। सो वह विवादित विषय के सत्य तक पहुंचने के लिए अपने विरोधियों को सहयोग पूर्ण वार्ता की मेज पर आमंत्रित करता है, चूंकि उसकी मुख्य चिंता अपने विरोधियों के नैतिक पक्ष को जगाने की होती है सो उनका यथा संभव प्रयास होता है उसे विरोधी (शांतचित) करने की न कि उसे परेशान करने, भयभीत करन या क्रोधित करने की। इस प्रक्रिया में मुख्य लक्ष्य होता है विरोधी पक्ष को आत्मनिरक्षण के

लिए पर्याप्त मौका देना, जो ही उसका विरोधी मन से वार्ता की इच्छा प्रगृट करता है वह संघर्ष को विराम देकर एक सहयोग पूर्ण महौला में वार्ता कि प्रक्रिया में जुट जाता है।

कॉन्ट और जॉन रावल के समान गांधी का विचार था कि प्रत्येक समुदाय को संगठित रहने के लिए एक व्यापक न्यायपूर्ण अनुभूति की जरूरत होती है। लेकिन उसने उलट वह यह सोचते थे कि न्याय कि अनुभूत अत्यंत मूर्धन्य है जिसे एक गहन तथा भावनात्मक रूप से उत्प्रेरित अनुभूति तथा साझी मानवता की जरूरत होती है जो इसे गहराई व उर्जा प्रदान करता है। मानवीय अनुभूति में उन मूलभूत तत्वों का समावेश है जो यह निर्धारित करता है कि मानव कल्याण अविखंडित है, अन्य लोगों को नीचा दिखाना या नुकसान पहुंचाना, अपने आप को नीचा दिखाना तथा नुकसान पहुंचाना है। तथा वे बिना परस्पर प्रेम व दिलचस्पी के सामुदायिक जीवन को संपोषित व कायम नहीं रख सकते।

अपने सत्याग्रह के सभी प्रयोगों में गांधी ने कुछ मौलिक सिद्धांतों का सूक्ष्मता से निरिक्षण किया। यह निरिक्षण परिस्थियों के सावधानी पूर्वक गहन अध्ययन तथा तथ्यात्मक जानकारियों के धार्यपूर्ण संग्रहण पर आधारित तथा जिसमें शामिल था अभिष्ट का युक्तिसंगत बचाव, विरोधियों को सत्याग्रहियों की भावना को समझने के लिए रजामंद करने हेतू लोकप्रतिय आंदोलन के तौर-तरीके तथा उन्हें विचार-विमर्ष हेतू अंतिम मौका देना आदि। पूरे सत्याग्रह के दौरान संवाद को कायम रखा गया तथा किसी भी पक्ष को कट्‌रता की हद तक जाने से रोकने के लिए यथासंभव कोशिश की गई। तथा मध्यस्थों की भूमिका को प्रेरित किया गया। सत्याग्रहियों को इस बात का बचन देना होता था कि वे हिंसा के किसी भी रूप का इस्तेमाल नहीं करेंगे तथा अपनी गिरफ्तारी या संपत्ति जब्ति का विरोध नहीं करेंगे। इसी तरह के नियम गिरफ्तरा सत्याग्रहियों के लिए भी निर्धारित किय गए थे कि वे मृदुभाषी रहेंगे किसी प्रकार के विशेषाधिकार की मांग नहीं करेंगे आदेश का पालन करेंगे तथा पूर्ण सुविधाओं की मांग के लिए आंदोलन नहीं करेंगे। जिससे उनके आत्मसम्मान को कोई ठेस नहीं पहुंचता था।

गांधी ने सत्याग्रह की प्रभावनीयता को “वेदनासिक्त प्यार” के आध्यात्मिक प्रभाव के रूप मे मिमांसा की सत्याग्रहियों की नैतिकता तथा निष्कपट प्यार विरोधियों को नि:शस्त्र कर देता था। विरोधियों का गुस्सा व उनकी नफरत की भावना तिरोहित हो जाती

थी तथा उसके बदले मानवता के उच्चतम तत्वों का उदय होता था जो समस्या के विविध पहलुओं के निष्पक्ष विश्लेषण तथा उसके सर्वस्वीकार्य समाधान का मार्ग प्रस्थत करता था। पीड़ा-भोग के प्रति कोई शिकायत नही कर सत्याग्रही अपने विरोधियों मे विजय की भावना का संचार नहीं होने देते थे। एक ऐसे वातावरण का निर्माण करते थ जो आत्मनिरिक्षण को प्रोत्साहित करने वाला सिद्ध होता था वह आत्म निरिक्षण सत्याग्रहियों का सबसे प्रभावी व विश्वस्नीय हथियार था सिर्फ प्रेम या दुख के भोग ही अपने आप में काफी नही है। प्रेम दुख भोग को अध्यात्मकि उचाई प्रदान करता है और इसी प्रकार वेदना, प्रेम को मनोवैज्ञानिक उर्जा तथा नैतिक शक्ति प्रदान कर्ता है। गांधी के अनुसार आत्मा की शैल्य क्रिया के बारे में हमारा ज्ञान इतना तुझ व नगण्ण है कि हमारे लिए अहिंसा की मिमांषा करना सरल नहीं है। हिंसा में कुछ भी अदृष्य नहीं होता है। दूसरी ओर अहिंसा तीन-चौथाई अदृश्य होता है और चुपचाप बिना दिखावे के अपना काम करता है।

यद्धपि गांधी जी इस बात पर कायम रहे कि वेदनासिक्त प्रेम सर्वशक्तिशाली व सर्व समर्थ होता है तथा यह कठोर से कठोरतम चट्टान को पिघलाने की ताकत रखता है। लेकिन यह वह यह भी जानते थे कि वास्तविकता बिल्कुल अलग थी सो इनमें कोई आश्चर्य नहीं कि गांधी ने इन्हीं तत्वों को मद्देनजर रखते हुए विरोध के अन्य तरीकों जैसे कर भुगतान नहीं करना, असहयोग, आर्थिक बहिष्कार तथा हड़ताल आदि अनेक तरीकों को ईजाद किया तथा उसका सफलतापूर्वक क्रियांवयन सुनिश्चित किया । वेदनासिक्त प्रेम के आध्यात्मिक शक्ति पर टिकी नहीं थी। उनकी समय के साथ उनकी शब्द शक्ति में कई आयाम आ जुड़े। उन्होंने अब अहिंस युद्ध, शांतिपूर्ण विद्रोह, युद्ध के सत्य स्वरूप, सत्याग्रहिय़ों के हथियार आदि के शब्दों का प्रयोग व उपयोग शुरु कर दिया जिसका एक मेव लक्ष्य था विरोधी पक्ष को मेज पर आने के लिए बाध्य करना। गांधी का नैतिक आदर्शवाद हावी हो गया और उनके दावों के बावजूद सत्याग्रह कार्यवाही का आध्यात्मिक तरीका भर नहीं रह गया।

इन सब तौर-तरीकों के अतिरिक्त गांधी ने भूख हड़ताल का एक और काफी विवादपूर्ण तरीका इजाद किया, उन्हें पता था कि उनकी भूख हड़ताल उनके आलोचकों तथा अनुयायीयों को प्रभावित करने में काफी कारगर थी। सो उन्होंने इसका जमकर बचाव किया। उन्होंने तर्क दिया कि उनका उपवास वेदनासिक्त प्रेम का एक अभिन्न हिस्सा था

जो एक साथ चार लक्ष्यों को साधने वाला था। पहला, यह उनके लिए उन लोगों के प्रति जिन्हें वह प्यार करते थे तथा जिनसे अपना पतन कर उन्हें निराश किया था के प्रति दुख व पीड़ा के भाव को व्यक्त करने का एक तरीका था। दूसरा, अपने अनुयायीयों के नेतृत्व कर्ता के रूप में उनका यह दायित्व था कि वे उनके गलत कामों का प्राश्चित करें, तीसरा, यह उनका अंतिम तरीका था जिसके द्वारा वह उनके विवेक को जागृत करना चाहते थे तथा उनके नैतिक उर्जा के सोद्देश्यपूर्ण व सरल प्रवास को सुनिश्चित करना चाहते थे तथा अंत में उपवास का महानतम लक्ष्य था कि दो विरोधी गुटों को एक साथ लाकर उन्हें अपनी शिकायतों को दूर करने तथा झगड़ों के तह तक जाने के लिए प्रेरित व स्पंदित करना ताकि सहयोग पूर्ण व प्रेम पूर्ण माहौल में वे आत्मसंकल्प व आत्म निरिक्षण की भावना से ओतप्रोत होकर समस्या समाधान हेतू ठोस कार्य़ करें।

गांधी इस बात को स्वीकार करते थ कि उनका उपवास दबाव कि भूमिका अदाकरता था लेकिन वे इसे संतुलन साधने का न्यायोचित कदम मानते थे। बुराइयां पैदा होती है सो उसके बाद संघर्ष भी जरूरी है। नैतिक आवाह्नों कि भूमिका असफल हो गई थी । सो या तो बुराइयों को स्वीकार कर लेते जो कि अनैतिक था या मानव के लिए एक मात्र उपलब्ध साधन अहिंसा से उसका मुकाबला करते। उपवास नैतिक दबाव बनाता था लेकिन किसी भी दृष्टिकोण से यह बाध्य या ब्लैकमेल नही करता था क्योंकि इसमें व्यक्तिगत हानि पहुंचने की प्रवृति का बिलकुल अभाव था।

चुंकि उपवास के स्वार्थ पूर्ण दुरुपयोग की पर्याप्त गुजाइंश थी सो गांधी ने इसके लिए कठोर सीमाएं तय कर दी थी। पहला, यह सिर्फ उन्ही के खिलाफ आजमाया जा सकता है जिसके साथ वे प्रेम पूर्ण धागे से बंधे हो, दूसरा, इसका सुस्पष्ट लक्ष्य हो न कि अत्यंत व अस्पष्ट उद्देश्य तीसरा, लक्ष्य था नैतिक बचाव अभिष्ट लक्ष्यों की दृष्टि से संभव हो। चौथा, इसका अभिष्ट स्वार्थ सिद्धि कदापि न हो। पांचवां, यह लोगों को उन चीजों को करने के लिए वाध्य नहीं करे जिसे करने में वो असमर्थ हों अथवा जिसमें बड़ी बलिदानों की आवश्यकता हो। और अंत में यह उन लोगों के द्वारा किया जाना चाहिए जिसकी पहचान एक नेतृत्व कर्ता के रूप में हो जिसके पीछे अपने लोगों के कल्याण हेतु कार्यकरने का व्यापक अनुभव हो तथा जिसके पास बेगाग नैतिक चरित्र हो।

सत्याग्रह की सीमाएं

जहां गांधी के सत्याग्रह का नैतिक तथा राजनीतिक महत्व निर्विवाद है वहीं इसकी अनेक सीमाएं भी हैं। यद्यपि गांधी की तर्क तथा नैतिकता अथवा दिल व दिमाग की एकता जायज थी लेकिन उनकी यह सोच गलत थी कि सभी तथा अत्यंत उलझे सामाजिक द्वंदों का समाधान भी विरोधियों के हृदय-स्पर्श मात्र से संभव है। ऐसा कभी-कभी होता है क्योंकि निष्कपट व भले व्यक्तियों की मानवमात्र के गुणों को अलग दृष्टि से देखने की प्रवृत्ति होती है। मानवीय जीवन के पवित्रता के सिद्धांत के आधार पर कुछ लोग गर्भपात, स्वयंमृत्यु या सुखमृत्यु तथा युद्ध को नैतिक रूप से अस्वीकार मानते हैं जबकि युद्ध का विचार इसके विपरीत है। यह देखना कठिन है कि गांधी का तरीका कैसे इन समस्याओं और अनवरत द्वंदों का समाधान निकाल सकता है।

गांधी का यह तर्क संभवत: सही था कि मानव प्राणी दूसरों की पीड़ाओं से प्रभावित तथा दुखी होता है फिर चाहे भले वह कुछ करने में असमर्थ या अनिच्छुक हो लेकिन उन्होंने इस तथ्य को नजर अंदाज कर दिया कि अगर वह दुख भोग को उचित माने तो फिर उसकी प्रतिक्रिया कुछ अलग होगी। दुख भोग को देखने कि किसी की दृष्टि ही उसकी प्रतिक्रिया को निर्धारित करती है। अत इसका प्रभाव प्रत्येक व्यक्ति पर उसकी सोच व विस्वासों कि भिन्नता के अनुरूप अलग-अलग पड़ता है।

गांधी इस मामले में गलत थे कि सत्याग्रह कभी विफल नहीं होता है तथा यह प्रत्येक परिस्थियों में कार्यकर्ता है अगर उन्होंने कहा होता कि यह मानव का आत्म चयनित तरीका है तथा यह कि वह मारने के वजाए मरना अधिक पसंद करेगा तो उनका दृष्टिकोण नैतिक अधिक व राजनैतिक कम होता। यह श्रेय उनको जाता है कि उन्होंने इनको परिणोनमुख बनाने का जोर दिया यह उनका विश्वास था कि प्रत्येक मानव आत्मीय होता है जिसे जागृति व स्पंदित किया जा सकता है यही कारण था कि उन्होंने इस बात पर ध्यान नहीं दिया कि कुछ आत्माएं गंभीर रूप से रोगजन्य हो सकती हैं। उनके विचार से उलट, सत्याग्रह विरोधियों से शिष्ट व्यवहार कि अपेक्षा रखता है, वह एक ऐसे खुले समाज कि पूर्व धारणा करता है जहां पर उसके (विरोधियों) अत्याचार को प्रगट किया जा सके। तथा इसके अलावा वह उसके खिलाफ एक वैचारिक गोलबंदी की भी पहले से ही अपेक्षा रखता है।

यद्यपि गांधी ने जोर दिया परंतु हिंसा के लिए उसका घृणा व विद्वेश से परिचालति होना या उसका अनियंत्रित होना जरूरी नहीं है। अहिंसा की तरह यह भी सयंमित हो सकता है, नियंत्रित हो सकता है, इसका जन्म भी पीड़ितों के प्रति प्रेम तथा अन्याय के प्रतिकार के लिए हो सकता है और यह भी मानव उत्थान के प्रति समर्पित हो सकता है।

यद्यपि गांधी का सत्याग्रह कई मायनों मे दोषपूर्ण था इसकी अपनी सीमाएं थी तथा “परम-प्रभावोत्पादकता” कि उनकी धारणा गलत थी परंतु फिर भी सामाजिक परिवर्तन के लिए यह एक मजबूत, उत्कृष्ट तथा नैतिक तरीका था इसलिए इसमें आश्चर्य की बात नहीं कि इस तरीके का अनुकरण तथा इसका प्रभावी प्रयोग विभिन्न देशों कि विभिन्न परिस्थियों में अलग-अलग ढंग से स्थानीय विशिष्टताओं को ध्यान में रखते हुए विशिष्ट तरीके से किया गया। संयुक्त राज्य अमेरिका इसका अनुपम उदाहरण है।

निष्कर्ष

वास्तव में सत्याग्रह एक संवर्धित विज्ञान है। गांधी ने अपने जीवन काल में इसकी उपयोगिता व क्षमता का प्रदर्शन न केवल राजनीतिक आजादी हासिल करने के लिए किया वरन शोषण अत्याचार व अन्य बुराइयों के खिलाफ भी इसका प्रयोग सफलता पूर्वक किया इसके अलावा सत्याग्रह कायरों का हथियार नहीं है वरन इसके वजाए यह हथियार है उन साहसी व सबल मानवों का जो मानवता के एक नए संस्कृति को गढ़ना चाहते हैं।

सही मायनों में, सत्याग्रह राजनीति, सामाजिक, आर्थिक साथ ही धार्मिक समस्याओं के सर्व स्वीकार समाधान का सबसे प्रभावी सूक्ष्म तथा नायाब तरीका है। इसकी प्रासंगिकता वर्तमान प्रजातांत्रिक व्यवस्था के अंतर्गत भी बनी हुई है। गांधी ने इस बात की घोषणा की थी कि सर्वोद्य समाज,नैतिक क्षरण, आर्थिक शोषण तथा राजनीतिक दमन से पूर्णतया मुक्त समाज होगा।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत में समय-समय पर सत्याग्रह का सफल प्रयोग कई बार सामने आया। वर्तमान में अन्ना हजारे ने गांधी के सत्याग्रह को अपनाते हुए जनता में भ्रष्टाचार के विरुद्ध आवाज उठाने के प्रेरित किया और जनता में एक नई सोच की ज्योति जगाई। सत्याग्रह कि प्रांसगिकता तब तक रहेगी जब तक की समाज में भेदभाव, अत्याचार,

लिंग भेद, सामाजिक अन्याय, शोषण तथा गरीबी समाज में रहेगी। अरब देशों में तानाशाही सरकारों के विरुद्ध जनता ने गांधी के सत्याग्रह को नए रूप में प्रयोग किया तथा वहां की सरकारों को बदल डाला। सत्याग्रह अहिंसक क्रांति की सार्वभौमिक अस्त्र के रूप में सदैव अपनी उपयोगिता बनाए रखेगा।

संदर्भ

1. गौरीकांत ठाकुर, महात्मा गांधी फिलॉस्फी ऑफ सत्याग्रह, किशोर विद्या निकेतन, वाराणसी, 1988, पृष्ठ 3 ।

2. एम. के. गांधी, द कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी, माई एक्सपेरीमेन्ट्स विद ट्रुथ, अहमदाबाद, 1956, पृष्ठ 239 ।

3. गौरीकांत ठाकुर, महात्मा गांधी फिलॉस्फी ऑफ सत्याग्रह, किशोर विद्या निकेतन, वाराणसी, 1988, पृष्ठ 3 ।

4. एम. के. गांधी, सत्याग्रह इन साउथ अफ्रीका, प्रथम संस्करण, एस. गणेशन, मद्रास, 1928, पृष्ठ 173 ।

5. संपूर्ण गांधी वाङ्मय, खंड VIII, प्रकाशन विभाग, सूचना व प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, दिल्ली, 1962, पृष्ठ 22-23 ।

6. वही, खंड XVIII, 1965, पृष्ठ 133 ।

7. एम. के. गांधी, हिंद स्वराज और इंडियन होम रूल, द्वीतीय संस्करण, नवजीवन, अहमदाबाद, 1958, पृष्ठ 79 ।

8. जे.बी. कृपलानी, गांधीयन टर्मिनलॉजी (अप्रकाशित, एम.एस.एस.) ए.आई.सी.सी. पेपर्स फाइल नंबर 15, 1936, पृष्ठ 27 ।

9. वी. पी. वर्मा, द पॉलिटिकल फिलॉस्फी ऑफ महात्मा गांधी एंड सर्वोदय, लक्ष्मी नारायाण अग्रवाल, चतुर्थ संस्करण, 1980-81, पृष्ठ 162 ।

10. यंग इंडिया, 26-2-1925, पृष्ठ 73 ।

11. यंग इंडिया, 19-3-1925, पृष्ठ 95 ।

12. यंग इंडिया, 4-6-1925, पृष्ठ 189 ।

13. संपूर्ण गांधी वाङ्मय, खंड XIII, पृष्ठ 522 ।

14. के. एल. श्रीधरनी, वार विदाउट वायलेंस, बम्बई, 1962, पृष्ठ 162 ।

15. वी. पी. वर्मा, पूर्व उद्धत, पृष्ठ 163-164 ।

16. एम. के. गांधी, सत्याग्रह इन साउथ अफ्रीका, पूर्व उद्धत, पृष्ठ 114 ।

17. एस. सी. गंगल, गांधीयन थाट्स एंड टेक्किनक्स इन द मार्डन वर्ल्ड, क्राइटेरियन पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1988, पृष्ठ 154-155 ।

18. वी. पी. वर्मा, पूर्व उद्धत, पृष्ठ 168 ।

19. हरिजन, 14-5-1938, पृष्ठ 111 ।

20. राम जी सिंह, गांधी एंड द मार्डन वर्ल्ड, क्लासिकल पब्लिसिंग कंपनी, नई दिल्ली, 1988, पृष्ठ 79 ।

21. एम. के. गांधी, सत्याग्रह इन साउथ अफ्रीका, पूर्व उद्धत, पृष्ठ 433 ।

22. अनिल दत्त मिश्रा, फंडामेन्टल्स ऑफ गांधीज्म, मित्तल पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1995, पृष्ठ 22 ।

23. एम. के. गांधी, सत्याग्रह, नवजीवन , अहमदाबाद, 1954, पृष्ठ 40 ।

24. एम. एल शर्मा, "महात्मा गांधी व्यू ऑफ सत्याग्रह", गांधी भवन न्यूज लेटर, दिल्ली विश्वविद्यालय, खंड II, नं.1, जनवरी 1989, पृष्ठ 52 ।

25. यंग इंडिया, 11-8-1920।

26. एस. सी. गंगल, पूर्व उद्धत, पृष्ठ 152 ।

27. राम जी सिंह, पूर्व उद्धत, पृष्ठ 82-83 ।

28. हरिजन, 22-10-1938 ।

29. आर.आर. दिवाकर, सागा ऑफ सत्याग्रह, गांधी पीस फाउंडेशन, नई दिल्ली, 1969, पृष्ठ 225 ।

30. हरिजन, 1-9-1940 ।

31. एम. के. गांधी, आटोबायोग्राफी, पूर्व उद्धत, पृष्ठ 15 ।

32. एम. के. गांधी, सत्याग्रह इन साउथ अफ्रीका, 1950 संस्करण, पृष्ठ 159 ।

33. स्पीचेस एंड राइटिंग्स ऑफ महात्मा गांधी, जी.ए. नतेसन एंड कंपनी, मद्रास, 1933, चौथा संस्करण, पृष्ठ 465 ।

34. यंग इंडिया, 20-10-1927, पृष्ठ 353 ।

35. यंग इंडिया, 19-3-1931, पी.ए.ओ।

36. हरिजन, 15-9-1946, पृष्ठ 312 ।

37. यंग इंडिया, 30-4-1931, पृष्ठ 93 ।

38. हरिजन, 11-3-1939, पृष्ठ 44 ।

39. हरिजन, 25-3-1939, पृष्ठ 64 ।

40. हरिजन, 8-5-1937 ।

41. हरिजन, 9-10-1937।

42. एम. के. गांधी, रचनात्मक कार्यक्रम, नवजीवन, अहमदाबाद, 1941, पृष्ठ 29।

43. वही पृष्ठ 3 ।

44. अनिल दत्त मिश्रा, पूर्व उद्धत, पृष्ठ 77 ।

45. यंग इंडिया, 14-7-1920 ।

46. यंग इंडिया, 8-8-1929 ।

47. लुइस फिशर, द लाइफ ऑफ महात्मा गांधी, खंड II, पृष्ठ 93 ।

48. क्वोटेड इन डी.जी. तेंदुलकर, महात्मा, खंड I, पृष्ठ 265 ।

49. हरिजन, 7-1-1939 ।

50. एम. के. गांधी, आटोबायोग्राफी, पूर्व उद्धत, पृष्ठ 429 ।

51. हरिजन, 18-2-1937 ।

52. रामरतन, गांधीज थाउट एंड एक्शन, कलिंग पब्लिकेशन, दिल्ली, 1991, पृष्ठ 289-292 ।

53. संपूर्ण गांधी वाड्मय, खंड XIV, पृष्ठ 254 और पृष्ठ 268 ।

54. डी. जी तेंदुलकर, पूर्व उद्धत, पृष्ठ 13 ।

55. वही, , पृष्ठ 12।

56. के. एल. श्रीधनी, वार विदाउट वायलेंस: ए स्टडी ऑफ गांधीज मेथेड एंड इट्स इकाम्पलिसमेंट्स, प्रथम संस्करण, विक्टर गोलानंग लिमिटेड, लंदन, पृष्ठ 36।

57. संपूर्ण गांधी वाड्मय, खंड I, XII, पृष्ठ 658-68।

58. एम. के. गांधी, आटोबायोग्राफी, पूर्व उद्धत, पृष्ठ 27 ।

59. ब्लैक- लेग वह व्यक्ति होता है जो नियमित कर्मियों के हड़ताल की स्थिति में कार्य करने को तत्पर रहता है।

60. हरिजन, 10-8-1947, पृष्ठ 274 ।

61. एम. के. गांधी, आटोबायोग्राफी, पूर्व उद्धत, पृष्ठ 562 ।

62. डी. जी तेंदुलकर, पूर्व उद्धत, खंड I, पृष्ठ 312 ।

63. डी. जी तेंदुलकर, पूर्व उद्धत, खंड I, पृष्ठ 312 ।

64. यंग इंडिया, 16-2-1921 ।

65. यंग इंडिया, 8-12-1920, पृष्ठ 298 ।

66. यंग इंडिया, 31-5-1928 ।

67. एम. के. गांधी, “बारदोली ऑन ट्रायल”, यंग इंडिया, 31-51928।

68. नॉन वायलेंस पीस एंड वॉर, खंड I, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस,अहमदाबाद, 1948, पृष्ठ 253-54 ।

69. वही, खंड II, पृष्ठ 377 ।

70. हरिजन, 20-5-1939।

71. नॉन वायलेंस पीस एंड वॉर, पूर्व उद्धत, पृष्ठ 253 ।

72. यंग इंडिया, 27-3-1920 ।

73. हरिजन, 24-6-1939 पृष्ठ 159-60 ।

74. यंग इंडिया, 4-8-1921 ।

75. हरिजन, 15-10-1938 पृष्ठ 290 ।

76. यंग इंडिया, 23-3-1921 ।

77. हरिजन, 30-4-1940 ।

78. आर.आर. दिवाकर, सत्याग्रह: इट्स टेक्निक एंड हिस्ट्री, हिंद किताब,बम्बई, 1946, पृष्ठ 91 ।

79. भीखू पारिख की रचनाओं से लिया गया उद्धरण, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस,लंदन, 1977 ।

अध्याय 4

आधुनिकता एंव गांधी

भूमिका

आधुनिक विश्व एक अभूतपूर्व संकट का सामना कर रह है। प्रेम के नियम का स्थान हिंसा ने ले लिया है, मनुष्य का स्थान मशीन ने ले लिया है और व्यक्ति सरकारी चक्र का एक दांता भर बनकर रह गया है। पुरानी दुनिया जीर्ण हो कर मृत हो चुकी है किंतु नई दुनिया का अभी जन्म नहीं हुआ है। भौतिकवाद उद्‌योगवाद और उपभोगवाद आदि मूल्यों पर प्रश्न तो उठाए जा रहे हैं किंतु वैकल्पिक सभ्यता का घोषणा पत्र अभी भी धुंधला है। ऐसे परिवेश में गांधी का अधुनिकतावाद और उत्तरआधुनिकतावाद महत्वपूर्ण हो जाता है।

महत्मा गांधी के जीवन, जीवन कार्य, कार्य और विश्व इतिहास में उनके स्थान को पिछ्ली शताब्दी के महानतम वैज्ञानिक अलवर्ट आइंस्टाइन द्‌वारा एक यादगार समीक्षा के रूप में प्रस्तुत किया गया है- "गांधी को जिस सम्मान से पूरे विश्व में देखा जाता है उसकी आधार यह मान्यता है, भले ही अप्रत्यक्ष रूप में आज के नैतिक पतन के रूप में केवल वे ही एक ऐसे राजनेता है जो राजनीतिक क्षेत्र में मानवीय संवेदना के उस स्तर का प्रतिनिधित्व करते हैं जिसकी अभिलाषा सभी अपनी पूरी शक्ति से करते हैं हमें यह कठिन पाठ पढ़ लेना चाहिए की मानवता का भविष्य तभी सहनीय होगा जब विश्व के मुद्दे और अन्य मुद्दों में भी हमारा मार्ग न्याय व कानून पर आधारित न की शुद्ध शक्ति-प्रदर्शन की धमकियों पर। आने वाली पीढ़ी को कठिनता से विश्वास होगा कि ऐसा भी कभी कोई हाड़-मांस में इस धरती पर चला होगा। "[1]

गांधी ने इतिहास को एक निश्चित नई दिशा दी। इस व्यक्ति में ऐसा क्या था जिसने पूरी मानव जाति को अपने बस में कर लिया? कौन था यह व्यक्ति ? और संपूर्ण मानवता पर उसका इतना प्रभाव कैसे था? गांधी स्वयं कहते थे कि वे एक बहुत ही साधारण व्यक्ति हैं। वे स्वीकारते थे कि बैद्धिक रूप से बहुत प्रभावशाली नहीं है किंतु साथ-साथ ये भी कहते थे कि बुद्धि के विकास की सीमाएं हो सकती है किंतु हृदय के विकास की नहीं।

आधुनिकता और गांधी

गांधी 20वीं सदी के आधुनिकता के सर्वाधिक कटिबद्ध आलोचकों में से हैं। उनकी दृष्टि, आधुनिकता, यदि निर्वाद रही तो “विश्व का कार्यभार संभालने” के उसके मार्ग में आने वाली प्रत्येक वस्तु को वह हटाती चलेगी। “विश्व का कार्यभार संभालने “ का अर्थ है हम ही जान सकते हैं कि विश्व को किस प्रकार व्यवस्थित किया जाए (विज्ञान, तार्किक व तटस्थ सैद्धांतिकता के बल पर) और किस प्रकास उन योजनाओं को लागू किया जाए (अनुसंधान, तकनीकि व यांत्रिक तर्क की मदद से) आधुनिकता के अत: हृदय में वर्तमान से एक असंतोष का भाव है और यह विश्वास भी की तर्क और उससे आए परिवर्तन निरंतर बेहतर होते एक भविष्य की ओर ले जाएंगे। इसे चुनौती देते हुए गांधी आधुनिक जगत के मूलभूत सिद्धांतों का सामना करते हैं। इसके स्थान पर वे ग्राम भारत की परंपरागत जीवन शैली की आदर्शात्मक अवधारणा की प्रस्तुती करते हैं, जिसे वे आधुनिक समाज की विषमताओं, भैतिकवाद और निर्धनता के एक विकल्प के रूप में देखते हैं।

गांधी का सामान्य अध्ययन उन्हें एक अथक आधुनिकता विरोधी के रूप में प्रस्तुत करता है परंतु वास्तविकता यह नहीं है। गांधी चाहे धर्म निरपेक्ष समानता और समान अधिकार जैसी अवधारणाओं का कितना ही प्रयोग करें, आधुनिकता से उनका सामना उन्हें उसी परंपरा से समाहित करने को कभी प्रेरित नहीं करता। गांधी आधुनिकता व आधुनिकीकरण की एक ऐसी आलोचना प्रस्तुत करते हैं जो रूढ़ीवादी होने के साथ-साथ परिवर्तनकारी भी है। वे परंपरा को सुधरे रूप में सीधे और संकल्पबद्ध आधुनिकता का सामना करते देखना चाहते हैं। गांधी के अनुसार केवल इसी से आधुनिकता के खतरनाक तत्वों को उखाड़ा जा सकेगा और आधुनिकता की परियोजना को उत्तरदायी बनाया जा सकेगा। अपनी बात कहने में गांधी आधुनिकता से उसकी निश्चिंतता छीनते हैं व उसे घुमावदार बना देते हैं।[2]

गांधी का दर्शन उसके सही परिपेक्ष्य में समझना है तो हमें आधुनिकता का सही अर्थ समझना होगा। आधुनिकता एक जटिल तथ्य है जिसके अर्थों का एक परतदार इतिहास है इसके उद्भव के स्थान व काल को लेकर विवाद है परंतु आमतौर पर इसे 17वीं सदी के यूरोप में प्रगट हुआ माना जाता है। उस दौरान यह दार्शनिकों व वैज्ञानिकों के एक छोटे से समूह तक सीमित था जो कि गुप्त रूप से ही अपने विचार व्यक्त करते थे, सार्वजनिक रूप से तो घूमा फिराकर ही इन विचारों को प्रगट किया जा सकता था। क्योंकि चर्च इस प्रकार की नई

सोच को पसंद नहीं करता था। वैज्ञानिक व दर्शनिक विचार शैली में क्रांतिकारी परिवर्तन लाने वालों में डेकार्ट, बेकन व न्यूटन मुख्य हैं। ये तीनों विश्व का स्वरूप बद डालने वाली नई वैज्ञानिक सोच के प्रतीक माने जाते हैं। इनके मुख्य तत्व हैं- सभी सत्य माने जाने वाले प्रस्तावों को एक दार्शनिक परीक्षा से होकर गुजारा जाए और संसार के विषय में जितने भी सत्य हैं उन्हें एक वास्तविक, परिक्षणिक परीक्षा से होकर गुजारा जाए।

आधुनिकीकरण को निसंदेह एक कभी न समाप्त होने वाली प्रक्रिया की तरह समझा जा सकता है। पश्चिमी समाज बहुत तेजी से आधुनिक हुए और उनके स्तर तक पहुंचने में लगभग उतना ही समय लगेगा जितना की आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को भी लगा था। यही कारण है कि पश्चिमी करण व आधुनीकि करण एक से प्रतीत होते हैं किंतु प्रगतिशील देशों को भी उनता ही समय लगे वे भी उसी मार्ग से आधुनिकता की ओर बढ़े यह कदापि आवश्यक नहीं और यहीं इनका आधुनिकीकरण पश्चिमी करण की प्रक्रिया से भिन्न हो सकता है।

आधुनिकता का अर्थ है तेजी से, व्यापक रूप से आने वाला परिवर्तन, समाजों का परिवर्तन और इसकी कुछ प्रमुख प्रक्रियाएं हैं- आधुनिकीकरण, नगरीकरण व जनसंचार। आधुनिकता के कुछ पर्याय हैं-[3]

1- व्यक्तियों की वचनबद्धा व संबंध स्थानीय न रहकर विश्वस्तर पर हो रहे हैं।

2- समाज की महत्वपूर्ण इकाई अब समूह न होकर व्यक्ति होता जा रहा है।

3- जन्म के आधार के संबंधों से अधिक पसंद के आधार के संबंध होते जा रहे हैं।

4- भाग्य परख सोच का स्थान प्रकृति पर स्वामित्व के भाव ने ले लिया है।

5- व्यक्ति व समूहों की पहचान अब प्रदत्त नहीं वरन अर्जित व स्वयं चुनी हुई होती है।

6- व्यक्ति का व्यवसाय उनके परिवार, समुदाय व निवास स्थान द्वारा कम प्रभावित होता है।

7- भावुकता व अतार्किक विचारों का स्थान तार्किकता व वैज्ञानिक सोच ने ले लिया है।

8- सामाजिक जीवन में एक परिवर्तन आया है वह यह कि सत्ता का निर्धारण आयु या लिंग से नहीं होता; स्त्रियों व युवाओं को समाज में नया स्थान व पहचना मिल रही ही है

9- प्रशासन अब शक्ति का अभिरूप न हो कर समाज का एक भाग की तरह माना जाने लगा है, जो सर्व सम्मति से आता है और जिसका समाज के प्रति एक उत्तरदायित्व भी बनता है। एक आधुनिक समाज विभिन्नताओं से भरा, बहुवादी होता व लोकतांत्रिक भी होता है।

आधुनिकीकरण की प्रक्रिया कई मार्गों से पदार्पण कर सकती है, कभी परंपराएं बनी रहती है, कभी उनमें से कुछ बदल जाती है, कभी उनमें से वास्तव में आधुनिकीकरण में मदद ही करती है। एक सामाजिक प्रक्रिया के रूप में आधुनिकीकरण एक निरंतरता के नियम द्वारा गतिवृद्ध होत है जिसमें पुरानी परंपराओं को आगे ले जाया जाता है और एक नया ही समीकरण उपस्थित होता है। आधुनिकीकरण अपने साथ संरचनात्मक परिवर्तन लाता है और नवीनता का पक्ष उसमें होता ही है। नव परिवर्तन लाना और उसे बनाए रखने की इच्छा व प्रयास आधुनीकीकरण की नींव होते हैं।

गांधी के नेतृत्व में भारतीय परंपराओं को पुर्नसृजित सक्रिय व पुर्नजागृति किया गया ताकि वे नए उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायक हों। गांधी की नवपरिवर्तन की क्षमता अभूतपूर्व थी। वास्तव में वे एक महान निर्माता थे, उन्होंने महिला संस्थाओं मजदूर संस्थाओं का आदि का निर्माण किया, भारतीय राष्ट्रवादी कांग्रेस, हरिजन सेवक संघ, हिंदी भाषा प्रचारणी सभा, खादी ग्रामोद्योग संघ आदि का निर्माण किया। इन सब में उन्होंने भारत के लाखों लोगों के साथ सत्त संपर्क भी रखा। गांधी कृषि व गृह उद्योगों में सर्वाधिक सटीक तकनीकी का प्रयोग करने के इच्छुक थे। वे अपने कार्यकर्ताओं के गांवों का सामाजिक व आर्थिक सर्वेक्षण करने को कहते थे जिससे वे तथ्य इकट्ठे किए जा सके जो बताए की ग्राम विकास को सर्वाधिक सफल कैसे बनाया जा सकता है। डेविड हार्डिमैन का मानना है कि गांधी तार्किक व वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विरोधी नहीं थे। जब तक की (वह दृष्टिकोण उनके नैतिक मूल्यों से मेल नहीं खाए)[4]

आत्म अनुशासन और आत्म विकास के व्यक्तिगत उदाहरण द्वारा अपने में भारतीय परंपरा की प्रवृत्तियों व सांस्कृतिक समीकरण को मूर्तरूप देते हुए गांधी ने निस्तेज व ठहरे हुए समाज में आधुनिकता का सफल आवाह्न किया। उनके आगमन से भारतीय राजनीति का महत्व बढ़ा। उनमें बहुत से लोग आकर जुड़े। गांधी की आने से राजनीति में भागीदारी बढ़ी वह राष्ट्रवादी हुई व धर्मनिर्पेक्षय हुई। उन्होंने भारत के करोड़ों लोगों को एक ऐसा ध्येय दिया जो राष्ट्रियता से तो भरा ही था संपूर्ण भी था। संकीर्ण, पंथवादी दृष्टिकोण को भी चुनौती दी गई व नए संकल्प सामने लाए। लोगों के हृदय राष्ट्रीय पहनचान के नए प्रतीकों के लिए धड़कने लगे। राष्ट्रनिर्मणा व राष्ट्रीय स्वतंत्रता के आधुनिक लक्ष्यों की प्राप्ति हेतू भारत की परंपराएं गांधी में समाहित, परिवर्तित व पुर्नजागृत होकर कार्यशील होने लगी। गांधी ने अपने लिए एक विस्तृत व विश्वसनीय वैधयता प्राप्त कर ली थी उन्होंने राष्ट्रीय पहचना को पुनः स्थापित किया भारत के जनमानस में एक विशिष्ट, अदभूत राजनैतिक पैठ कर ली और लोक भागीदारी का एक अभूतपूर्व चलन प्रस्तुत किया जो कि संवेदना व सक्रियता से प्रेरित था यह सब आधुनिकीकरण के तेज गति का परिचायक थे।

गांधी अपने पूर्वतियों विशेषकर रूढ़वादियों से कितना आगे थे इसका पता उनके द्वारा ब्रिटिश व भारत के बीच सांस्कृतिक मुठभेड़ की परिभाषा द्वारा चलता है। जहां उन लोगों का यह मानना था कि यह संघर्ष भारत व यूरोप अथवा पूर्वी व पश्चिमी सभ्यता के बीच था, गांधी का मानना था कि यह संघर्ष वास्तव में प्राचीनता व आधुनिकता के बीच था। जैसा की उन्होंने कहा है “पश्चिम या यूरोप सभ्यता जैसा कुछ नहीं है, एक आधुनिक सभ्यता जैसा अवश्य है।“

भीखू पारेख के अनुसार उनकी साधारण सी दिखने वाली नई परिभाषा विवाद को उनके पक्ष में मोड़ देने वाली थी और उन्हें कई राजनैतिक व वैचारिक लाभ हुए। पहला यह है कि वे उस समय के प्रचलित विचार, जो मानता था कि पूर्व व पश्चिम परस्पर विपरीत है और उनमें कुछ भी समान नहीं को निरस्त कर पाए। गांधी के लिए ऐसी विचारधारा तथ्यों पर आधारित नहीं थी वह मानवजाति की मौलिक एकता को नकारती है और सांस्कृतिक संकीर्णता को बढ़ावा देती है। दूसरा यह कि इसके द्वारा वो पश्चिम पर प्रहार किए बिना ही

आधुनिक सभ्यता की आलोचना कर सके। वे सुकरात, ईसाई धर्म के प्रशंसक थे, टॉल्सटाय, रस्किन, थोरो जैसे आधुनिक विचारकों कई पश्चमी मूल्यों व प्रथाओं को पसंद करते थे और उनकी आलोचना नहीं करना चाहते थे। तीसरा यह कि इस भेद द्वारा गांधी यह बता पाए कि सभ्यता अभी कुछ ही समय पूर्व पश्चिम में प्रगट हुई और इससे पूर्व पश्चिम में जो सभ्यता थी वह बहुत हद तक भारत जैसी ही थी। ऐसा करके वे पश्चिम को उसकी पुरानी परंपराओं व मूल्यों की याद दिलाना चाहते थे। वे, उसकी दब चुकी ऐतिहासिक स्मृतियों को जागृत करना चाहते थे और आधुनिक सभ्यता के विरुद्ध संघर्ष में उसका सहयोग चाहते थे। वे यह भी कह पाए क्योंकि भारतीय सभ्यता उसी प्रकार के मूल्यों पर आधारित है जिसमें पश्चिम कई सौ सालों तक विश्वास रखता था। और वह अब भी उस समान विरासत को सहेजने का प्रयत्न कर रही है। उसका हनन कर पश्चिम न केवल अपने उज्जल अतीत की अवमानना कर रहा है बल्कि भविष्य में अपने उद्धार की संभावनाओं को भी समाप्त कर रहा है। चौथा यह कि ऐसा कह कर कि आधुनिक सभ्यता आधुनिक है, और “अभी बहुत छोट है” वे यह कहना चाह रहे थे कि उसमें आयु के साथ आने वाली अकलमंदी व पौढ़ता का अभाव है यह भाव ऐसे देश में विशेष महत्व का है जहां उम्र को बहुत आदर दिया जाता है। अंततः इसके द्वारा गांधी अपने देशवासियों को यह विश्वास दिलाना चाह रहे थे कि आधुनिक सभ्यता से संघर्ष करने में वे प्रतिकारी नहीं हुए। वे केवल एक ऐतिहासिक घमंडों के दंभ और दृष्टता को परास्त कर रहे थे और संपूर्ण मानव जाति, पश्चिम की भी, के सनातन मूल्यों की रक्षा कर रहे थे, अपने दिशा भ्रमित शासकों की आत्म की रक्षा के विचार ने भारतीय सम्मान को प्रेरित किया और गांधी के कड़े संदेश को अधिक स्वीकार भी बनाया।[5]

गांधी की आधुनिक सभ्यता की आलोचना जैसी मान्यता है जिससे अधिक जटिल है और यह रूसो, कलाइल, रस्किन, टॉल्सटाय और थोरो सरीखे विचारों के बहुत भिन्न है। रस्किन, टॉल्सटाय और थोरो ने गांधी को प्रभावित किया। गांधी के विचार में आधुनिकत सभ्यता मनुष्य के विषय में एक अति त्रुटिपूर्ण सिद्धांत पर आधारित है। यह प्राचीन सभ्यताओं से सर्वथा भिन्न है, वे तो आत्म केंद्रित थी, यह शरीर केंद्रित है भौतिकवादी है। गांधी के अनुसार शरीर के दो लक्षण हैं पहला शरीर का अपना सिमटा हुआ अस्तित्व होता है

वह अपनी आत्म निष्ठा को दूसरे शरीरों से मित्रता मे ही दर्शा पाता है। शरीर को स्व मानने की प्रवृति यह भ्रम पैदा करती है कि प्रत्येक व्यक्ति एक स्वतंत्र वा आत्म केंद्रित अहम है जो कि केवल बाहरी तौर पर दूसरों से संबंधित है और अपनी पहचान कि रक्षा हेतू दूसरों के हावी होने की प्रवृत्ति से दूर होता है। दूसरा, शरीर इंद्रियों का गढ़ है अत इच्छाओं व कामनाओं का भी। कामनाओं की प्रवृत्ति बार-बार उभरने की होती है। और उनको कभी संतुष्ट नहीं किया जा सकता। वे परस्पर संबंधित होती है। एक कामना दूसरी को जन्म देती है। इंद्रिय परख होने के कारण मानव इन्हीं अंत हीन कामनाओं द्वारा धकेला रहता जाता है। और सदा ही संतुष्ट व व्याकुल रहता है।

गांधी द्वारा प्रस्तुत आलोचना रूसो, रस्किन, क्लाइल, टॉल्सटाय, नीत्शे और काल मार्क्स जैसे विचारकों से मेल खाती है किंतु उनके मुकाबले गांधी ने कुछ मौलिक व महत्वपूर्ण बाते कहीं जो उनकी दो विशेषताओं के कारण संभव हो पाई। एक उपनिवेशवाद से त्रस्त एक प्रताड़ित देश के नागरिक होने के नाते आधुनिक सभ्यता का वह कलुसपूर्ण पक्ष देखा था जो उन यूरोपीय विचारकों की पहुंच से परे था। दूसरा एक महत्वपूर्ण भिन्न व एश्वर्य शाली भारतीय सभ्यता को विरासत में पाने के कारण वे अपनी आलोचना में वह बौद्धिक दृष्टिकोण व नैतिक संवेदनशीलता ला पाएं जो पश्चिमी आलोचकों के पास नहीं थी।

सवाल यह उठता है कि क्या गांधी आधुनिक थे। इसका उत्तर प्रसिद्ध इतिहासकार एंव गांधीवादी आचार्य जे बी कृपनाली ने बिल्कुल सही है कहा कि यदि सत्य निष्ठा व नैतिक नियम आधुनिक हैं तो गांधी आधुनिक थे। यदि अपने वचन का पालन करना और अपने कार्यों को पूर्ण करना स्वाद के लिए न खा कर शरीर को स्वस्थ्य रखने के लिए भोजन करना, श्रम की गरीमा को मानना, सहनशीलता व शुद्ध बुद्धि, अपने से भिन्न यहां तक की अपने विरोधियों से भी बैर न रखना, गिरे हुए हुओं व भटके हुए को अपने समान मानकर व्यवहार करना, किसी उत्तम प्रयोजन के हेतू मृत्यु वरण करना यदि आधुनिकता है तो गांधी अवश्य ही आधुनिक थे। किंतु यदि पश्चिमी पहनावे, भोजन को मध्यपान, धूमपान,

महंगे होटलों में भोजन करना, रात्रि क्लबों में जाना, षंडयत्रों, परनिंदा में समय व्यतीत करने को आधुनिकता कहें तो गांधी आधुनिक नहीं थे।

भीखू पारेख की आधुनिक सभ्यता पर आलोचना[6]

आधुनिक औद्योगिक सभ्यता उन्नीसवीं सदी के प्रारंभिक वर्षों में प्रकट हुई। इसके मूल तत्व तार्किकता, धर्मनिरपेक्षता, औद्योगिकीकरण, वैज्ञानिक सोच, व्यक्तिकरण, प्रकृति पर तकनीकी प्रभुत्व, भूमंडलीकरण व स्वतंत्र लोकतंत्र। यह अच्छे के लिए आई या बुरे के लिए यह आज भी विवाद का विषय है। टिप्पणीकारों के दृष्टिकोणों के आधार पर इसके विभिन्न उत्तर हुए। जे.एस.मिल,टॉक्विल, थोरो, टॉलस्टाय, मार्क्स, मैक्स वेबर व एमिल दरखाइम जैसे विचारकों ने इसे अपने दृष्टिकोण से देखा है किंतु इन सभी का दृष्टिकोण यूरोपीय था।

गांधी यूरोपीय व गैर-यूरोपीय दोनों ही दृष्टिकोणों के ज्ञाता थे, किंतु उन्हें गैर-यूरोपीय पक्ष अधिक उचित लगता था। गांधी ने पश्चिम व आधुनिकता-इन दोनों शब्दों में भेद किया है, भले ही आधुनिकता पश्चिम में आई थी, उससे पूर्व पश्चिम में एक अन्य प्रकार की सभ्यता थी। आधुनिकता एक युग है जो पश्चिम में एक समय विशेष में आया, पश्चिम सदा से ही आधुनिक रहा हो ऐसा नहीं है।

आत्म नियंत्रण का अभाव

गांधी आधुनिक सभ्यता को मूलतः त्रुटिपूर्ण मानते थे क्योंकि वह व्यक्तियों की मूल प्रकृति, उनके गुणों व उनके 'स्वभाव' को कोई महत्व नहीं देती। वह शरीर को आत्मा से अधिक महत्वपूर्ण मानती थी। वह उपनिवेशवादी, हिंसक, शोषक, अशांत व लक्ष्यहीन थी।

शरीर को अधिक महत्व देने के कारण आधुनिक सभ्यता व्यक्तिवाद व लोभ को बढ़ावा देती थी। वह असीमित कामनाओं, भौतिक वस्तुओं की सतत् इच्छा को प्रोत्साहित करती थी और नैतिकता को कोई महत्व नहीं देती थी। इस भौतिकवादी सभ्यता के केंद्र में

पूंजीवादी अर्थव्यवस्था है जो बाजार के दिए उत्पादन करती है, जहां लोगों को आत्मनियंत्रण-विहीन हो और खरीदने के लिए लोभ दिया जाता है।

पूंजीवादी मशीनों के प्रयोग को प्रोत्साहन देता है। मशीनीकरण स्वागत योग्य था यदि वह मनुष्य जीवन को बेहतर बनाने का प्रयास होता, किंतु नैतिकता के अभाव में और मुनाफा कमाने के एकमात्र ध्येय के कारण इनसे बहुतों को कष्ट दिए। जब मशीनीकरण वहां लाया गया जहां मजदूर बहुत थे, इनसे बहुतों को बेरोजगार कर दिया। मशीनीकरण व आधुनिक अर्थव्यवस्था ने भौतिक पदार्थों को गुलामी पैदा की।

आधुनिक सभ्यता सदा आगे बढ़ते रहने में विश्वास करती है। अपनी एक पहचान, जो सामाजिक जड़ों, स्थापित समुदायों से मिलती है, उसका स्थान यहां निरंतर एक रिक्कता, परस्पर विमुखता व वैमनस्य ले रहा है।

नैतिक जीवन को एक बोझ की तरह देखा जा रहा है, केवल उस साधन के रूप में, जिससे मनुष्य एक-दूसरे को चोट न पहुंचाए। नैतिकता के इससे कहीं गहरे अर्थ होते हैं। वह मानवीय गरिमा का मार्ग दिखाती है किंतु आधुनिक समय में उसे मात्र एक नियमावली की तरह देखा जाता है। नैतिकता का आधार परस्पर प्रेम व सद्भावना होना चाहिए किंतु अब वह भय पर आधारित है, जो कि एक अनैतिक तत्व है। नैतिकता को आधुनिक समय में स्वार्थसिद्धि का साधन माना जाता है। आधुनिकता ने नैतिकता को उसके मुख्य तत्व – आत्मिक गुण-से दूर कर दिया है। आधुनिक मानव का एक मात्र लक्ष्य इस संसार में किसी तरह जीवन चलाना है चाहे उसके लिए आत्मा की शुद्धता की बलि ही क्यों न देनी पड़े। संवेदनशीलता, उदारता, कोमल हृदयता आदि गुणों को महत्वहीन माना जाता है, उनके स्थान पर उग्रता, उच्चाभिलाषा, कठोरता, स्वार्थपरकता, अधिक महत्वपूर्ण हो गए हैं।

आधुनिक सभ्यता गरीबों व कमजोरों का शोषण करती है। यूरोपीय उपनिवेशवाद उस उग्र व शोषक आधुनिकता का एक मुख्य प्रकटीकरण थी। वह व्यक्तिगत व सामूहिक दोनों स्तरों पर हिंसा पर आधारित थी। यह हिंसक प्रवृति प्रकृति पर भी प्रहार करती थी। गांधी को यह चिंता थी कि एक समय आएगा जब आधुनिक मानव हिंसा का इतना आदी हो चलेगा कि वह उसके विध्वंसक प्रभाव के प्रति संवेदनाहीन हो जाएगा। आधुनिकता भले ही

स्वतंत्रता, समानता जैसे मूल्यों पर आधारित होने का दावा करे, वह वास्तव में हिंसक व शोषक थी।

तार्किकता की सीमाएं

गांधी तर्क के महत्व को जानते व समझते थे किन्तु आधुनिक समय में तर्क को जो स्थान दे दिया गया था वे उसके आलोचक थे। आधुनिकता तर्क को सब प्रकार के ज्ञान की अंतिम कसौटी के रूप में मान्यता देती थी जबकि उसकी स्वयं की त्रुटियों व सीमाओं को पूरी तरह अनदेखा कर दिया गया था। तर्क क्योंकि प्रश्न उठाता है अत: महत्व रखता है किंतु मानव जीवन के सभी पक्ष तर्क द्वारा संचालित नहीं होते हैं। विश्वास तर्क से परे जाता है। नैतिकता, विवेक, परंपरा, अंत:प्रज्ञा, अंतर्मन आदि कई ऐसे गुण, ज्ञान के स्वरूप हैं जो तर्क की ही भांति महत्वपूर्ण होते हैं। वास्तव में कभी तो वे तर्क को भ पीछे छोड़ देते हैं।

आधुनिकता तर्क से परे क सभी ज्ञान व्यवस्थाओं को नगण्य, महत्वहीन, निम्न मानती है। उसमें ज्ञान परंपराओं की विभिन्ता के प्रति की आदरभाव नहीं है। वह विश्वास करती है कि तार्किक बोध ही सर्वोत्तम है और अन्य सभी विचार प्रणालियां निम्म व निकृष्ट हैं।

राज्य संस्कृति

चूंकि आधुनिकता हर कीमत पर स्वार्थ सिद्धि को प्रोत्साहित करती है अत: ऐसी व्यवस्था का पालन करने के लिए एक उतनी ही कठोर, हिंसक राज्यतंत्र की आवश्यकता होत है। ऐसी व्यवस्था को चलाने के लिए लिखित नियमों द्वारा एक बलशाली प्रशासनतंत्र कार्यशील रहता है।

केन्द्रीकृत अर्थव्यवस्था न उच्चतर स्तर की समस्याएं उत्पन्न कीं जिनसे निपटने के लिए एक केन्द्रीकृत राजनैतिक शक्ति की अवशकता हुई। State(राज्य/प्रशासन) सर्वशक्तिमान बन बैठता है और व्यक्तियों और समूहों के पास अपनी समस्या को स्वयं ही सुलझा पाने का विकल्प नहीं छोड़ता। वह बड़ी समस्याएं पैदा करके दर्शा देता है कि कोई बड़ी शक्ति ही उन्हें सुलझा सकती है। वह नैतिकता पर भी पूर्णाधिकार स्थापित कर लेता है। क्योंकि आधुनिक समय में व्यक्ति नैतिक मूलों से असंबद्ध होते हैं अत: उन्हें

राज्य/प्रशासन ही नियंत्रित करता है। राज्य ही नैतिकता का सर्वोत्तम प्रतिनिधि बन बैठता है,फिर जो इसके नियम माने वह भला और जो न माने वह बुरा।गांधी का कहना था कि राज्य भले ही स्वयं को सर्वसामान्य की भलाई में प्रयुक्त सर्वोपरि शक्ति माने किंतु वह मात्र एक अखाड़ा है जहां शक्तिशाली गुट आपस में सत्ता के लिए कुश्ती करते रहते हैं। वह सत्ता के लोभी, नैतिक रूप से छिछले लोगों के हाथों में है। आधुनिक लोकतंत्र कहीं से भी लोकतांत्रिक नहीं है। जनता के नाम पर, कुछ लोग सत्ता हथियाकर, उसका दुरुपयोग करने में लगे हैं और आम आदमी की चिंता किसी को नहीं है।

गांधी के विचार में आधुनिकता की तीन प्रमुख उपलब्धियां

आधुनिकता के आलोचक होने के बावजूद गांधी उसके तीन गुणों के प्रशंसक थे। एक, उसकी वैज्ञानिक भावना, दो, मानव का प्रकृति पर अधिक नियंत्रण, तीन, नियमों को महत्व देने की संस्कृति।

गांधी को आधुनिकता से यह शिकायत थी कि वह इन गुणों को असीमित प्रभाव वाला मानती थी। वह इनकी सीमितता कि अनदेखी करती थी। यह जानना बहुत महत्वपूर्ण है कि किस प्रकार और कहां ये गुण कमजोर साबित हो सकते हैं। उदाहरण के लिए, नियमों कि महत्ता का गुणगान सही है किंतु यह एक भूल होगी यदि हम यह न देखें कि मून नैतिक व्यवस्था, मूल नैतिक आधार बिना इन नियमों का होना न होना बराबर होगा।

गांधी आधुनिक सभ्यता से होने वाले समस्याओं को बेहतर देख सकते थे। क्योंकि वे विश्व के उस भाग से थे जिसने इसके दुष्प्रभावों को झेला था। उन्हें स्पष्ट दिख रहा था कि यूरोपीय लोग स्वतंत्रता, समानता, गरिमा आदि महान मानवीय मूल्यों के पालन में उनको लागू करने में एक पक्षीय व्यवहार करते थे। वे मानते थे कि यूरोपीय लोगों के इन मूल्यों द्वारा सुख लेने का अधिकार है।

गांधी का दृष्टिकोण एक अन्य कारण से भी विशिष्ट था-

वह यह कि वे एक नितांत भिन्न सभ्यता, संस्कृति की उपज थे।

निष्कर्ष

गांधी की विचारधारा उनके विशिष्ट स्थान के कारण अनूठी थी। किन्तु उनका गैर-यूरोपीय होने अपने आप में एक कमी भी प्रस्तुत करता है। गैर-यूरोपीय होने के कारण उन्होंने आधुनिक सभ्यता को पूरी तरह से नहीं समझा। क्योंकि यदि आधुनिक सभ्यता भौतिकवादी है तो वह व्यक्तिगत स्वतंत्रता की खोज कि भी छूट देती है, वह सामाजिक न्याय को प्रोत्साहन देती है, वह अपने तरीके से ही सही समाजिक असमानता का विरोध करती है। वह लोभ को बढ़ावा देती है तो सृजनात्मकता, समानता, स्वतंत्रता और मानव के सर्वांगीण विकास का मार्ग भी तो प्रशस्त करती है। आधुनिकता की अपनी ही नैतिकता है।

गांधी यह नहीं देख पाए कि आधुनिकता के गुण भी आधुनिकता की संपूर्ण संरचना का नतीजा थे, वे केवल यू ही अकस्मात प्रगट नहीं हो गए थे। आधुनिकता की सही भावना को समझने के लिए उसके गुणों और दोषों दोनों को ही पूर्ण संदर्भ में देखना होगा। वे एक-दूसरे से अलग नहीं है। आधुनिक सभ्यता की केवल आलोचना करना उचित नहीं है, उसकी अन्य सकारात्मक संभावनाओं का भी आदर दिया जाना चाहिए।

संदर्भ

1- बी.आर. नंदा, इन सर्च ऑफ गांधी:ऐसेज एंड रिफ्लेक्शन, नई दिल्ली, ऑक्सफोर्ड, 2002, पृ-26

2- रोनाल्ड, जे, टचैंक, गांधी: स्ट्रगल फॉर ऑटोनामी, नई दिल्ली, विस्टर पब्लिकेशंस, 2000, पृ-78

3- लॉयड रुडोल्फ एंड सूजैन होबर रूडोल्फ, द मॉडर्निटी ऑफ ट्रेडीशन, शिकागो, यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस, 1967, पृ-3

4- डेविड हार्डिमैन, गांधी इन हिज टाइम एंड ऑवर्स, नई दिल्ली, परमानेंट ब्लैक, 2003, पृ-77

5- भीखू पारेख, गांधीज पॉलिटिकल फिलॉसॉफी: ए क्रिटिकल एग्जामिनेशन, नई दिल्ली, अजंता, 1995, पृ-20

6- भीखू पारेख द्‌वारा लिखित अध्याय 'द क्रिटिक ऑफ माडर्निटि' का भावानुवाद।

अध्याय 5

सर्वोदय:एक मानवतावादी विकल्प

आज सर्वोदय मात्र एक विचार का स्वप्नलोकीन धारणा का प्रतिनिधित्व नहीं करता है बल्कि मानवीय मस्तिष्क को मानवीय समाज की पुर्नसंरचना के लिए पुनर्भिमुख करन का प्रयास करता है। इसके एक आंदोलन के आयाम और एक सामाजिक-आर्थिक शक्ति की महान संभावनाओं को मान लिया है। यह एक गतिशील दर्शन है जिसने मानवीयता में मूलभूत परिवर्तन के आगमन को संभव किया है। सर्वोदय भारत के प्राचीन आध्यात्मिक और नैतिक मूल्यों की नींव पर आधारित एक नया समाज बनाना चाहता है और समकालीन समस्याओं की चुनौतियों को पूरा करने का प्रयास करता है।[1]

विश्व समय-समय पर विभिन्न सामाजिक-आर्थिक विचारधाराओं-पूंजीवादी, समाजवादी और साम्यवादी-के प्रचार , प्रयोग और क्रियान्वयन का साक्षी रहा है। लेकिन, समस्त दृष्टिकोणों से सर्वोदय नि:संदेह गुणी प्रारुपों से बहुत अधिक श्रेष्ठ है। यह एक राष्ट्र के संतुलित और एकीकृत विकास को सामने रखता है जिसमें धनी और निर्धन विशेषाधिकार संपन्न और विशेषाधिकारहीन शासक और शासितों के बीच कोई अंतर नहीं होता है। सर्वोदय के चिंतन का सारांश भावना की शक्ति द्वारा विषयों के सामाजीकरण में निवास करता है। सर्वोदय में हठधर्मिता का कोई स्थान नहीं है। “सर्वोदय का दर्शन हठधर्मिताओं का समुच्चय नहीं है। इसके सारांश में, यह स्वयं को विषय के ऊपर फैल जाते की भावना के प्रयास और सामाजीकरण के अनुकूल है।”[2]

सर्वोदय सामाजिक और राजनीतिक अभिमुखीकरण के मुक्तिदाता का दर्शन है, जहां पीड़ा है सर्वोदय उसका शमन करता है। यह मानवीय भावनात्मक एकीकरण और सर्वोच्य बौद्धिक आकांक्षा का चरमोत्कर्ष है। एक प्लेटोवादी अलगाव एंव गीता की अनासक्ति का संकेत है।[3] यह लोगों के मानसिक रूपांतरण का प्रयास करता है और यह प्रेम की सर्वोच्च अभिव्यक्ति है। गांधी ने उपयोगितावादी सिद्धांत अधिकतम लोगों की अधिकतम भलाई की निंदा की और सर्वोदय के दर्शन की वकालत की।

गांधी ने मूलतः 'सर्वोदय ' शब्द की रचना नहीं की। उनसे भी पहले, सर्वोदय के विचार धार्मिक पुस्तकों-वेद,उपनिषद, रामायण, गीता, कुरान और अन्य में पाये जाते हैं। भारतीय और पश्चिमी संतों द्वारा भी इसका उपदेश दिया गया है। लेकिन गांधी ने इस युगों पुराने सिद्धांतों एंव आदर्शों को विस्तृत अर्थ एंव प्रयोग दिया। वास्तव में गांधी के निधन के बाद 'सर्वोदय ' शब्द वृहद प्रधानता से आया। जब उनके अनुयायी-कार्यकर्ताओं ने मार्च 1984 में सेवाग्राम (वर्धा) में एकत्रित होकर 'सर्वोदय समाज' नामक संगठन को स्थापति करने का निर्णय किया। यह नाम सत्याग्रह मंडल की प्रधानता देने के लिए चुना गया क्योंकि 'सर्वोदय ' शब्द का एक प्रतिबंधित अर्थ था जिसमें रचनात्मक कार्य शामिल नहीं थे। तत्कालीन चिंतन की धारा, जिसने गांधी के दर्शन को इसके समग्र रूप से स्वीकार किया और जिसके केंद्र में विनोबा भावे है, सर्वोदय की धारा के रूप में जानी जाती है।[4] इस धारा के प्रमुख चिंतक थे- आचार्य शंकर राव देव, धीरेन्द्र मजूमदार, जयप्रकाश नारायण। ये सभी गांधी के साथ उनके रचनात्मक कार्यों में संलग्न थे।

सर्वोदय: अर्थ एवं उत्पत्ति

सर्वोदय की उत्पत्ति संस्कृत में हुई है जो 'सर्व' यानि सभी और 'उदम' यानि उत्थान से मिलकर बना है। सर्वोदय का उत्पत्तिमूलक अर्थ सभी का विकास है। इसमें सभी जीवित प्राणी शामिल हैं।[5] अन्य शब्दों में शाब्दिक अर्थ में सर्वोदय का अर्थ सभी का जनकल्याण है। यह शब्द पहली बार गुजराती में अनुवाद के लिए शीर्षक के रूप में जॉन रस्किन की पुस्तक 'अन टू द लास्ट ' में प्रकट हुआ।[6] सर्वोदय नौ आलेखों की श्रृंखला का शीर्षक था जिसे गांधी ने लिखा और जिसे 1908 में दक्षिण अफ्रीका की साप्ताहिक इंडियन ओपिनियन में गुजराती में प्रकाशित किया।[7]

आवश्यक रूप से सर्वोदय एक आध्यात्मिक क्रिया है जिसके दो अर्थ हैं, नकारात्मक और सकारात्मक। नकारात्मक अर्थ में, कोई भी अन्य से किसी चीज का आनंद प्राप्त करने से बाहर नहीं है।[8] "यह वैसी वस्तु नहीं है जिसे एक व्यक्ति या व्यक्ति समूह अन्य को बाहर कर प्राप्त करता है"[9] सकारात्मक अर्थ में. सर्वोदय सभी प्रकार के लोगों की भागेदारी को शामिल करता है- वर्ग, जाति, नस्ल या धर्म से परे। इसका अर्थ मानव के सभी संकायों-

भौतिक, मानसिक और आध्यात्मिक का पूरा खिलना है। यह एक ऐसी क्रिया है जिसमें सभी भाग ले सकते हैं।[10] आचार्य विनोवा भावे के अनुसार, सर्वोदय शब्द दो स्तरीय अर्थ पर नियंत्रण रखता है, पहला, सर्वोदय का अर्थ वैज्ञानिक ज्ञान से पीड़ा और गरीबी को दूर कर सभी को प्रसन्न करना है। दूसरा, देवत्व, दया और समानता से पूर्ण विश्व राज्य की स्थापना सर्वोदय कहा जाता है।[11] सर्वोदय का लक्ष्य कुछ का बहुतों का उदय नहीं है, या अधिकाधिक संख्या का भी उदय नहीं है। यह उपयोगितावाद नहीं है जिसका अर्थ अधिकतम लोगों की अधिकतम भलाई है।

यह बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक के जीव को शामिल करता है। उपभोगतावाद के विपरीत मत-एक और सभी की भलाई, ऊपर और नीचे, मजबूत एंव कमजोर तथा बुद्धिमान एवं मूर्ख-सभी के लिए लागू होता है। अहस्तक्षेप नीति के विपरीत, जो "सर्वोत्तम ही जीवित रहता है " सर्वोदय सभ के अस्तित्व और विकास में विश्वास करता है। विनोवा के लिए, "सर्वोदय का विचार" गीता के उपदेश के अनुसार एक व्यक्ति को सभी की भलाई क लिए स्वयं मे समाविष्ट होना है।[12]

सबों के जनकल्याण के संकेत के अतिरिक्त सर्वोदय दो और अर्थों को बताता है, पहला, वैश्विक जनकल्याण और दूसरा सभी का एकीकृत विकास। अहस्तक्षेप का दर्शन कुछ के द्वारा बहुतों के शोषण पर आधारित है। उपयोगितावादी विचारधारा अल्पसंख्यक की पूरी तरह उपेक्षा करते हुए बहुसंख्यक का समर्थन करता है। सर्वोदय इन सिद्धांतों को अस्वीकार करता है जो कुछ के आनंद के लिए हैं और वर्ग, वंश, रंग, प्रजाति क्षेत्र और धर्म से परे सभी के जनकल्याण की वकालत करता है। सर्वोदय का दर्शन मानवीय समाज की पुर्नसंरचना का प्रयास करता है। या मानवीय मस्तिष्क को पुनराभिमुख करता है। इसका अर्थ जनकल्याण एंव सौभाग्य सबके लिए है। सभी हितों की टकराहट के बिना एक साथ विकास करें।[13]

सर्वोदय के अर्थ की व्याख्या करते हुए दादा धर्माधिकारी न कहा कि, "सर्वोदय एक वृहद संकेत वाला शब्द है और यह न केवल बहुतों या अधिकांश-बल्कि सबों को आत्मसात करता है।"[14] सर्वोदय एक दर्शन है जो मानवीय मस्तिष्क और आत्मा की अपूर्णता के विरुद्ध रोक लगाता है। सर्वोदय शब्द के अर्थ के संबंध में, वृहद तौर पर दृष्टिकोण हैं- पहला, यह

सूक्ष्म रूप है, जिसका सामान्य अर्थ है-एक और सबों का उदय, दूसरा, इसका वृहद रूप सभी के उदय का संकेत देता है, वैश्विक जनकल्याण सबों के सर्वांगीण विकास का संकेत देता है।[15] लेकिन यह कई अन्य अर्थों का भी संकेत देता है। इसके नकारात्मक अर्थ में, यह कभी भी किसी एक व्यक्ति को शेष मानव जाति से अलग आनंद के लिए नहीं छोड़ता है। एक सकारात्मक अर्थ में, यह व्यक्ति के विकास के सभी संकायों को प्रोन्नत करता है। विनोवा भावे के अनुसार, इसका अर्थ सब पीड़ाओं को दूर, सभी को प्रसन्न करना ही नहीं है, बल्कि समानता पर आधारित एक विश्व-स्थिति को लाना है। गांधी के लिए, सर्वोदय वृहद अर्थों में स्व-त्याग एंव स्वार्थहीन सेवा सहित एक का सभी में समाविष्ट होना है। इसका उद्देश्य न केवल न्यूनतम भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति है, बल्कि सभी व्यक्तियों के नैतिक-आध्यात्मिक आशय का विकास करना है।

सर्वोदय के स्त्रोत

निम्नांकित स्त्रोतों ने गांधी को उनके सर्वोदय के आशय को विकसित करने में सहयोग किया। ये थे- रस्किन की पुस्तक, अन टू द लास्ट, टॉल्सटाय की- द किंगडम ऑफ गॉड विद इन यू, थोरो की सविनय अवज्ञा, भगवद् गीता, ईश्वस्योपनिषद, बुद्ध, जैन और इस्लाम।

रस्किन की 'अन टू द लॉस्ट'

गांधीवादी का दर्शन का सर्वोदय की खोज भारतीय आध्यात्म और धार्मिक विरासत की शिक्षाओं में की जा सकती है यद्यापि गांधी इस तथ्य को स्वीकारते हैं कि उन्हें तात्कालिक प्रेरणा रस्किन के 'अन टू द लॉस्ट' से मिली, जिसमें सर्वोदय का अर्थ चित्रित था।[16] सर्व-जनकल्याण गांधी के दर्शन का मूलाधार उसी दिन से बन गया, जब उन्होंने गुजराती में पने सर्वाधिक प्रसिद्ध 30 हजार शब्दों वाली पुस्तक "हिन्द स्वराज या इण्डियन होमरूल" 1909 में लिखी।

अपनी आत्मकथा 'द मैजिक स्पेल ऑफ बुक' के अध्याय में रस्किन के 'अन टू द लॉस्ट' (अंतिम का उदय) के प्रभाव का वर्णन करते हैं। उन्होंने सर्वोदय होने का दावा किया।

इसी पुस्तक से गांधी ने गहरी प्रेरणा ग्रहण की और वह तुरंत ही अपने जीवन के प्रति दृष्टिकोण को रस्किन क पुस्तक 'अन टू द लॉस्ट' में वर्णित आदर्शों के रेखा पर परिवर्तन करने का निश्चय किया।[17]

गांधी के अनुसार 'अन टू द लास्ट' की मुख्य शिक्षाएं है-

1- व्यक्ति की भलाई सबों की भलाई में निहित है।
2- एक वकील के कार्य का मूल्य एक नाई के कार्य के बराबर है इसी प्रकार सबों को अपने कार्यों द्वारा जीविकोपार्जन का अधिकार है।
3- एक श्रमिक का जीवन, जैसे खेत को जोतने वाला और दस्तकारों का जीवन अन्य जीवों की तरह है।

'अन टू द लास्ट' और 'सर्वोदय' के अर्थों के संबंध में विवाद है। गांधी ने स्वयं मत ज्ञापित किया कि उन्होंने इसे बाद में 'सर्वोदय' शीर्षक से गुजराती में अनुवाद किया। एक और बेनुधर प्रधान कहते हैं कि सर्व जनकल्याण का उनके दिमाक में इस पुस्तक के पढ़ने के पहले ही आ चुका था।[18] इस विचार को आगे बल तब मिला जब गांधी ने अपने शब्दों ये व्यक्त किया कि- "इनमें पहला मैं जानता था।"[19] दूसरी ओर, जो. फ्री. एशे को शंका थी कि सर्वोदय का विकास पूरी तरह से रस्किन की 'अन टू द लास्ट' में समाहित है। बेजुधर जैसे व्यक्ति यह समर्थन करते हैं, "यह कहना सच्ची की विडम्बना है कि 'सर्व जन-कल्याण' का उद्देश्य रस्किन के 'अन टू द लास्ट' के पृष्ठों में नहीं किया है।"[20]

रस्किन और गांधी दोनों ही गंभीरतापूर्वक समाजिक जनकल्याण से संबंधित थे। यद्दापि रस्किन ने "अधिकतम संख्या" के सामाजिक जनकल्याण को लक्ष्य बनाया वहीं गांधी ने सर्व जनकल्याण को लक्ष्य माना। अत: विनोवा भावे यह अनुभव करते हैं कि गांधी सर्वोदय के अर्थ के सच्चे लेखक हैं। जबकि 'अन टू द लास्ट' का अर्थ केवल अंतिम उदय है (अंत्योदय)। वास्तव में यह स्वीकार करना होगा कि रस्किन की 'अन टू द लास्ट' का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रीप से गांधी पर मजबूत प्रभाव है कि वह सर्वोदय के आर्दश को पूरा करें, जिसका कि उन्होंने अपने जीवन के मिशन में बनाये रखा।

लियो टॉलस्टाय "द किंगडम ऑफ गॉड विन यू" गांधी

गांधी लियो टॉलस्टाय की पुस्तक 'द किंगडम ऑफ गॉड विद यू' और "क्रिस्चिनिटी एंड पैट्रीयोटिज्म" के लेखों से अत्यधिक प्रभावित थे। टॉलस्टाय के जीवन की सादगी और उद्देश्यों की शुद्धता ने गांधी को गहराई से प्रभावित किया। उनका ईसाईवाद, चर्च और शिक्षाऔं ने गांधी की भावनाओं को जगाया। टॉलस्टाय ने प्रेम को जीवन का कानून बताया। अहिंसा का सिद्धांत समूचे मानव जाति के लिए प्रेम के आधार पर टिका है। टॉलस्टाय और गांधी दोनों ने अपने जीवन की सारी बाधाओं को दूर करने के लिए प्रेम के उपकरण को अपनाया। उनकी सम्मानित पुस्तक "द किंगडम ऑफ गॉड विद यू" में हम गांधी पर एक राजनीतिक शक्ति के अमिट चिह्न को उत्पन्न करते पाते हैं। गांधी ने इसे स्वीकार किया कि इसको पढ़ने से उन्हें अलगाववाद को दूर करने में सहायता मिली और उन्हें इसने अहिंसा का विश्वास दिया। गांधी और टॉलस्टाय, दोनों ने ही यह दृढ़ विश्वास किया कि अहिंसा सभी व्याधियों का उपचार है, राजनीतिक बीमारियों को हटाता है, और धरती पर शांति स्थापित करता है तथा मानव जाति की भलाई करता है। वास्तव में गांधी और टॉलस्टाय, दोनों ही इस विश्व की बुराईयों और पीड़ा को दूर करने के लिए प्रेम की महत्ता पर विश्वास करते थे। टॉलस्टाय ने सत्य, प्रेम और अहिंसा का अनुभव कियाऐर गांधी ने इन सदगुणों को ग्रहण किया एवं अपने जीवन को इन मार्गों की ओर निर्देशित किया।[21]

टॉलस्टाय गांधी के श्रमिक की महत्ता पर भी ध्यान देने से प्रभावित हुए। टॉलस्टाय के लिए जो भी व्यक्ति मानवीय श्रम से अलग रहता है वह समाज का चोर है। गांधी ने अपने कर्ज को टॉलस्टाय के प्रति ज्ञापित किया। वह कहते हैं की "जिस नियम रहना है, आदमी को अवश्य कार्य करना चाहिए। टॉलस्टाय के लेख 'ऑन ब्रेड लेबर' को पढ़ने के बाद मेरे मन में ये आया कि केवल उन्हीं व्यक्तियों को रोटी खाने

का अधिकार है जो धरती को जोतते हैं, कपड़ा बुनते हैं और वस्तुओं का उत्पादन करते हैं।" टॉलस्टाय कहते हैं कि, "चलिए अपने पड़ोसियों के कंधों को मुक्ति दें।" और गांधी जोड़ते हैं कि प्रत्येक अपना सामान्य कार्य करेगा तो ईश्वर उसे सभी आवश्यक कार्य प्रदान करेंगे। यद्दापि प्रत्येक व्यक्ति पर उसका सवयं के लिए औऱ समाज के लिए दायित्व है, रोटी के लिए मेहनत उसका अत्यावश्यक कर्तव्य बन जाता है, जिसे प्रत्येक व्यक्ति द्वारा प्रदर्शित किया जाना चाहिए।[22]

गांधी के सर्वोदय का सिद्धांत टॉलस्टाय के अराजकतावाद के दर्शन से अत्यंत निकट है। गांधी के सर्वोदय से आशय का शुद्ध आर्दश दार्शनिक अराजकतावाद का आदर्श है- एक राज्यविहीन समाज को स्वैच्छिक सहयोग द्वारा चिन्हित है। ईश्वर में अटूट आस्था, शोषित के प्रति सहानुभूति, हिंसा के प्रति विमुखता, मानव-सम्मान की गहरी आस्था इत्यादि ने इन दोनों दार्शनिकों को समान उद्देश्यों एवं लक्ष्यों के लिए प्ररित किया। लेकिन गांधी टॉलस्टाय के ही संपूर्ण रास्ते पर नहीं थे। दोनों दार्शनिकों में अंतर इस बात पर है कि गांधी टॉलस्टाय से बहुत अधिक व्यावहारिक थे। टॉलस्टाय हिंसा के सभी अभिव्यक्तियों से पीछे हटते थे। गांधी ने हिंसा की अनुमती दी, लेकिन, हिंसा का उद्देश्य क्रोध नहीं बल्कि सच्चा प्रेम था। इस प्रकार गांधी के अहिंसा के सिद्धांतों का नैतिक विषय, जो एक आलम्ब का निर्माँण करता है इसके चारों ओर सर्वोदय के विचारधारा का सिद्धांत आधारित है, टॉलस्टाय की तुलना अधिक महत्त्वपूर्ण है। यह इस कारण है चूंकि गांधी गीता के 'निष्काम' से अत्यधिक प्रभावित थे। जिसका अर्थ है कि बिना किसी लगाव के कार्य करना।[23]

थोरो का सविनय अवज्ञा

अमरीकी शांतिवादी एक उन्मुक्त आत्मा का विजेता था। और तत्कालीन राजनीतिक और आर्थिक शक्तियों द्वारा अस्वीकृत था। उसमें हम नैतिक व्यक्तिवाद के तत्व को आविष्कृत करते हैं जो उसके 'सविनय अवज्ञा' के अर्थ का चरमोत्कर्ष है। थोरो ने अपने भाषाणों में 1849 में इस शब्द का प्रयोग किया। यह अवश्यक है कि गांधी ने अपने 'सविनय अवज्ञा' के विचारों को थोरो के लेख से नहीं ग्रहण किया। वास्तव में दक्षिण अफ्रीका की सत्ता के विरोध ने गांधी को थोरो के

'सविनय अवज्ञा' के लेख को आगे रखा। तब इस आंदोलन को निष्क्रिय विरोध के रूप में जाना गया। गांधी संविधान अवज्ञा के शब्द से संतुष्ट नहीं थे, क्योंकि यह संघर्ष के पूरे अर्थ को प्रसारित करने में असफल था। इसलिए उन्होंने 'सविनय विरोध' शब्द को ग्रहण किया।[24]

थोरो ने संकीर्ण सांप्रदायिकतावाद में विश्वास नहीं किया और यह महसूस किया कि मानव का अर्थ ईश्वर की अनुभूति करना है, न की उसके बारे में ज्ञान प्राप्त करना। थोरो के अनुसार मानव एक सामाजिक प्राणी है जो सामान्यत: सामाजिक भलाई के लिए अपने सहयोगियों के साथ सहयोग से व्यवस्थित करता है। उन्होंने यह महसूस किया कि दमनात्मक सत्ता द्वारा समर्पित राज्य की नैतिक संस्थायें व्यक्ति की नैतिक और आध्यात्मिक स्वतंत्रता को बाधित करती है। इसलिए, उन्होंनें एक ऐसे समाज का विचार किया जिसमें सरकार लुप्त हो जायेगी। "वह सरकार उत्तम जो शासन बिल्कुल नहीं करती या कम से कम करती है। " थोरो की भांति गांधी ने यह कहा कि प्रजातंत्र का अनुभव सत्य और अहिंसा पर आधारित स्थिर समाज में ही हो सकता है। इसका वर्णन गांधी ने सर्वोदय के रूप में किया जो न केवल सामाजिक जन-कल्याण को बढ़ावा देती है बल्कि उन्नति भी करती है। इस प्रकार गांधी ने अपने चिंतन की प्रतिध्वनि थोरो से सुनी।[25]

भगवद् गीता

गांधी ने अपनी प्राथमिक शक्ति और प्रेरणा भगवत गीता से ही ग्रहण की। गांधी के लिए गीता 'शाश्वत मां' है। उनके अनुसार, गीता का सार आत्म-अनुभव है। वह कहते हैं कि "आत्म-अनुभव और इसका अर्थ गीता की विषय-वस्तु है।"[26] वह आगे की पुष्टि करते हैं कि, "जो गीता के भावना को पढ़ता है वह अहिंसा के रहस्य, वह स्वयं को अनुभव करने का रहस्य-भौतिक शरीर के द्वारा- करने की शिक्षा देती है।"[27]

गीता का मुख्य उद्देश्य अधार्मिक को दबाना और धर्म की स्थापना करना। यह सभी के लिए शांति और सौभाग्य लाना चाहता है। यह संक्षिप्त रूप में हिन्दू विचारधारा को प्रस्तुत करता है, जो बदले में, सभी प्राणियों के लिए भाई-चारे की बात करता है। जैसा कि ईश्वर और इसकी सभी रचनायें एक हैं। यह सभी स्वार्थहीन

सेवाओं को सभी जीवों के जन-कल्याण को बढ़ावा देने के महत्ता देने को रेखांकित करता है। सर्व धर्म के द्वारा गीता का लक्ष्य "सर्वभूतहित" या सभी प्राणियों की भलाई भी है।[28] इस प्रकार, गीता सर्व जनकल्याण या सर्वोदय का उपदेश देती है, जिसने गांधी के विचार और क्रिया को प्रभावित किया।

ईश्वस्योपनिषद

ईश्वस्योपनिषद का पहला छंद सर्वोदय की विचारधारा से संबंधित है। छंद का पहला हिस्सा समानता और भ्रतृत्व को समाविष्ट करते हैं और दूसरा हिस्सा समाज के लिए समाज के लिए त्याग, अ-ग्रहणशीलता, अशोषण के विचार पर आधारित है। गांधी के अनुसार, ईश्वर पूरे विश्व में फैले हैं, छंद समानता और भ्रातृत्व ही उपदेश देते हैं, जो सर्वजन कल्याण के मौलिक सिद्धांत हैं। वे जोर देते हैं कि, "विश्व-बंधुत्व केवल मानवीय प्राणियों का भारतृत्व नहीं है बल्कि यह सभी जीवित प्राणियों का है। मैं इस मंत्र को प्राप्त करता हूं।"[29]

बुद्धवाद

महात्मा बुद्ध के अनुसार, सभी का जीवन दुःखों को समाप्त करना होगा ताकि निर्वाण के परमानंद की प्राप्ति हो सके, जो बुद्धवाद का सर्वोच्च लक्ष्य है। निर्वारण व्यक्तिवादी और वैश्विक दोनों है। यह उनके जीवन में यहां और वहां अनुभव किया जा सकता है। यह सभी प्राणियों के पूर्ण और निश्चित ज्ञान के लिए जाना जाता है। यदि सावधानीपूर्वक बुद्ध के पवित्र आठ स्तरीय पथों का अनुमान करें तो सभी को निर्वारण की प्राप्ति हो सकती है। गांधी बुद्ध के दर्शन से अत्यधिक प्रभावित और गहराई से हत्प्रभ हुए थे। जिसने विश्व-प्रेम ,जीवित प्राणियों के प्रति अहिंसा, त्याग और संन्यास को सभी के लिए जनकल्याण को बढ़ावा देने के लिए उपदेश दिया। बुद्ध ने पवित्रता पर जोर दिया।[30] जिसने बदले में गांधी को प्रभावित किया, जिन्होंने स्थिर भाव से कहा कि साहस और साधन में गहरा संबंध होता है। बुद्ध ने मध्यम मार्ग का संदेश दिया। इसी प्रकार सर्वोदय में, यह माना गया कि कोई भी चरम कदम नहीं उठा सकता है।

जैनवाद

सभी रूपों के आदर्शों का जनकल्याण जैन धर्म की शिला है। पांच महाव्रतों में एक का निर्माण अहिंसा करता है। अहिंसा का सकारात्मक पक्ष सभी प्राणियों के लिए प्रेम है, न केवल मनुष्य बल्कि सभी के लिए। एक जैन तीर्थकर का यह कर्तव्य है कि वह अपना संपूर्ण जीवन पूरे ब्रहमांड के जीवों की प्रसन्नता के लिए समर्पित कर दे। जैन धर्म में सर्वोदय के स्थान के बारे में, बेनुधर प्रधान कहते हैं, “जनकल्याण का आशय जैन दर्शन का इतना एकीकृत हिस्सा था कि ‘सर्वोदय‘ शब्द का प्रयोग एक जैन शिक्षक सामंतभट्ट द्वारा ईसाई युग के पूर्व ही किया जा चुका था।[33] बेनुधर प्रधान आगे तर्क देते हैं कि, यद्यपि ‘सर्वोदय ‘ शब्द पहली बार जैन संत सामंतभट्ट द्वारा प्रयोग किया गया, तथापि गांधी द्वारा इसका प्रयोग स्वयं का था,[32] उनके अनुसार सर्वोदय शब्द गांधी के लिए एक कौंध के रूप में आया। इसलिए वह कहते हैं कि ‘सर्वोद्य’ शब्द शुद्ध रूप से उनके गढ़े हैं।“[33]

इस्लाम

गांधी के पास इस्लाम के लिए गहरा आदर था। उन्होंने विश्व-बंधुत्व का संदेश इसी से सीखा। इस्लाम के लिए, गांधी ने अपने विचारों में उदघोषित किया कि, “भ्रातृत्व का बिंदु की घोषणा इस्लाम के जितना किसी अन्य धर्म में नहीं की गई है। “पवित्र कुरान के पाठ ने गांधी को यह विश्वास दिलाया कि इस्लाम का आधार हिंस नहीं है।[34] वास्तव में गांधी ने विश्व के सभी धर्मों के प्रति महत्वपूर्ण उदारता, सहानुभूति और आदरणीय दृष्टिकोण को दिखाया।

अन टू द लास्ट, द किंगडम ऑफ गॉड विदइन यू , उपनिषद, गीता, बुद्ध धर्म, जैन धर्म के अतिरिक्त गांधी ने सर्वोदय का आशय वैष्णववाद, जरथ्रुस्टवाद और ईसाईयत से भी प्रभावित था। गांधी द्वारा प्राचीन शिक्षा की पुनर्जन्म और उनको सर्वोदय के दर्शन में शामिल कराना शायद चिंतन की दुनिया को महानतम योगदान है। गांधी ने वेदांत, बुद्धवाद, जैनवाद, ईसाईवाद और तुलसीदास, टॉलस्टाय, थोरो, रस्किन और भारतीय पुनर्जागरण आंदोलन के नेताओं के विचारों के सार के लिए प्रयत्न किये। सर्वोदय का दर्शन गांधी के सार को ग्रहण करता है और उनके विचारों को अधिक आलोचनात्मक और विश्लेषणात्मक स्तरों पर प्रयोग करना चाहता है।[35]

साध्य-साधन विवाद

आध्यात्मिक और सभ्य समाज या सभ्य साध्य प्राप्त करने का आवश्यक अर्थ नैतिकता है। लेकिन मैक्यावलि जैसे साम्यवादी यह कहते हैं कि साध्य ही साधन को न्यायोचित करता है। इससे यह उद्‌घाटित होता है कि कोई भी अशुद्ध साधन जैसे धूर्त्तता, झूठ, घृणा, या हिंसा द्‌वारा कोई भी अपने इच्छित साध्य को प्राप्त कर सकता है। उसके लिए, साध्य और साधन जलरोधी खंड है। साध्य ही सब कुछ है। साध्य कैसा और क्या है, कोई विषय नहीं है। यदि साधन साध्य को प्राप्त कर लेता है तो अच्छा है। जयप्रकाश नारायण निष्पक्षता से कहते हैं कि "मार्क्सवाद में सामाजिक क्रांति के साध्य को पूरा करने वाला कोई भी साधन अच्छा साधन है। "[36]

गांधी के लिए साधन ही साध्य को निर्धारित करता है। वह कहते हैं कि जैसा साधन होगा वैसे ही साध्य होंगे।[37] साधन-साध्य की तरह ही महत्वपूर्ण हैं। इस प्रकार, विश्व को उनका अद्‌वितीय योगदान यह है कि साधन-साध्य से अधिक महत्वपूर्ण है।[38] साध्य की तुलना में साधन पर उनका जोर देना निष्काम कर्म के सिद्धांतों पर आधारित है। जिसके अनुसार एक व्यक्ति का नियंत्रण क्रियाओं पर होता है उसके फल पर नहीं। गांधी पूरी तरह आस्वस्थ थे कि एक व्यक्ति केवल प्रयत्न कर सकता है लेकिन परिणाम पर नियंत्रण नहीं कर सकता। वह कहते हैं कि,"साधन ही अंततः सबकुछ है। "साध्य और साधन के बीच विभाजन की कोई दीवार नहीं है। वास्तव में, ईश्वर हमें साधन के ऊपर नियंत्रण का अधिकार देते हैं, साध्य के ऊपर नहीं। उचित अनुपात में लक्ष्य की अनुभूति साधन है। यह अनुपात कोई अपवाद स्वीकार नहीं करता है।[39] गांधी साधन की शक्ति पर दबाव निम्नांकित आधारों पर देते हैं-

1 वह व्यक्ति के विकासवादी मूल्यांकन में विश्वास करते हैं।
2 वह व्यक्ति के साध्य के रूप आत्मा-पूर्णता को मानते हैं।
3 वह महसूस करते हैं कि साध्य हमेशा प्राप्त होने से पहले व्यक्ति के नियंत्रण से बाहर है।
4 वह मानते हैं कि यदि साधन साध्य से अनुशासित होगा तो साध्य कम प्रभावशाली हो सकता है।

उपरोक्त सभी धारणाओँ ने गांधी के विचार को धारण करने के योग्य बनाया कि व्यक्ति को साधन के ऊपर पूर्ण नियंत्रण अवश्य होना चाहिए, इसके बावजूद कि साधन और साहस दोनों ही भिन्न और विरोधाभासी हैं।[40]

गांधी के अनुसार व्यवहार में साध्य द्वारा साधन का न्यायोचित्त निश्चित करना खतरनाक है और नैतिकता के स्तर से भी कमजोर है। यदि यह स्वीकार किया जाए कि यह हिंसा धोखाधड़ी, असत्य, अवसरवादिता इत्यादि जैसे स्त्रोंतों को आज्ञा देता है।

गांधी ने मानव को सर्वोच्च माना। वह स्वयं में साध्य है। यदि साधन पवित्र है तो साध्य पवित्र होता है। जब हम साधन की चिंता करते हैं तो साध्य अपना चिंता स्वयं करता है।[41] केवल साधन पर बल देने से गांधी का साध्य को दिव्तीयक स्थान देने का कोई इरादा नहीं है। उनके लिए, साधन और साध्य अपृथक रूप से संबद्ध हैं, जैसे बीज और वृक्ष जुड़ा है।[42]

साध्य और साधन को एक सतत् प्रक्रिया के रूप में निर्धारित कर गांधी ने इन दोनों को जलरोधी खानों के रूप में दोनों को देखने की युगों पुरानी राय को भंग कर दिया। उन दोनों के हीच अंतर काल्पनिक है।[43] अतः वे दोनों को एक जीव के समान संपूर्ण मानते हैं। इस प्रकार वे साधन और साध्य-दोनों को एक ही प्रणाली का हताते हैं। वह कहते हैं कि साधन का चरमोत्कर्ष स्वयं साध्य है। इस प्रकार, साध्य वृद्धि होकर साधन द्वारा स्वयं अनुभव किया जाता है। साध्य कभी भी अचानक साधन से बाहर परिणाम नहीं दे सकता है। साधन-साध्य को नेतृत्व करने के अतिरिक्त साध्य को आकार भी देता है। गांधीवादी दर्शन में, आत्म-अनुभूति का आध्यात्मिक स्वतंत्रता सभी मानवीय क्रियाओँ का साध्य है। गांधी ने अपने संपूर्ण जीवन क्रम में आध्यात्मिक स्वतंत्रता की उपलब्धि के लिए सर्वोदय के सामाजिक क्रम को प्रयोग करने का अथक प्रयास किया। बदले में, यह नैतिक स्वतंत्रता स्वयं आध्यात्मिक स्वतंत्रता में प्रगति करती है। जब सावधानीपूर्वक ईश्वर की सर्वोच्चता में विश्वास करती है, साधन के रूप में नैतिक स्वतंत्रता और साध्य के रूप में आध्यात्मिक स्वतंत्रता एक सतत् प्रक्रिया का निर्माण करते हैं। इन्हें अलग-अलग अंगों में विभाजित नहीं किया जा सकता है। इनका अंतर काल्पनिक है। दोनों परिवर्तनीय अर्थ हैं। जिसे गांधी भी प्रकट करते हैं। ईश्वर द्वारा दिए गए नीतिशास्त्र को समझने और व्यवहार

करने की आवश्यकता है। नैतिक-आध्यात्मिक आनंद का आधार वाला सर्वोदय स्वतंत्रता और आध्यात्मिक स्वतंत्रता के आधार पर औचित्यपूर्ण है। इस प्रकार, साध्य एवं साधन की समस्या, एक जीव के रूप में, गांधीवादी विचारधारा में एक अदिव्तीय स्थान पाता है। यह सर्वोदय को नैतिक स्वतंत्रता, आध्यात्मिक स्वतंत्रता, राजनीतिक स्वतंत्रता और आध्यात्मिक आर्थिक स्वतंत्रता का योगदान देता है।

सर्वोदय सामाजिक व्यवस्था

गांधी के बहु-आयामी व्यक्तित्व के पास समस्याओँ के संबंध में स्पष्ट विचार एवं निश्चित दृषटिकोण था, जो उनके समय में भारत ने सामना किया। भारतीय समाज गहरी बुराइयों से पूर्ण था। इसने स्वयं को सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और शैक्षणिक तौर पर नीचे गिरा दिया था। दरिद्रता ने भारत की सामाजिक,स्थिति को बर्बाद कर दिया था, जिसने जाति-संघर्ष, बाल-विवाह, छुआछूत, सती प्रथा, स्त्रियों को शिक्षा की मनाही, दहेज, बहुविवाह, भ्रष्टाचार, शोषण इत्यादि क्षति पहुंचाई थी। गांधी ने इन समस्याओँ के शीर्ष हल का प्रयास किया।[44]

सर्वोदय समाज में, शौषण, भेद-भाव, असमानता और हिंसा का कोई स्थान नहीं है। गांधी ने[45] यह सामने रखा कि सर्वोदय इन आंशकित बुराइयों से भी मुक्त होना चाहिए। सिद्धांतहीन, राजनीति, श्रम बिना धन, चरित्र बिना ज्ञान, नैतिकता विहीन व्यापार, मानवताविहीन विज्ञान और त्याग बिना सेवा। यह सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक अवरोधों के आधार पर विभाजित नहीं होना चाहिए जहां यह सभी एक-दूसरे के प्रति कार्य और प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं। सर्वोदय के प्रति उनके उद्देश्य ने इन समस्याओँ के बीच एक अंतसंबंध स्थापित करने के लिए योग्य बनाया। सर्वोदय समाज पूर्णता में अविभाजित है। एक प्रजातांत्रिक और मुक्त समाज की स्थापना के क्रम में गांधी ने सभी व्यक्तियों को सलाह दी कि वे प्रेम की भावना, धैर्य,दया, भयहीनता, अहिंसा इत्यादि को आत्मसात करें। फिर भी एक अहिंसक समाज छोटा होते हुए भी सर्वाधिक शक्तिशाली है। जीवन के कानून के रूप में, अहिंसा व्यक्ति, समाज और राषट्रों को शामिल करती है। उनके लिए हिंसा सामाजिक और सामाजिक सदगुण है। पूर्ण अहिंसा पर निर्मित समाज शुद्धतम अराजक है।[46]

सर्वोदय की मानसिकता के कुछ विशेषतायें आवश्यक हैं। गांधी ने एक व्यक्ति को ग्यारह प्रतीकों को आत्म अनुशासन हेतु प्रस्तुत किया, ताकि एक अनुशासित समाज उभर सके। स्व-त्याग सर्वोदय के सामाजिक-व्यवस्था का सार है। प्रत्येक व्यक्ति को अन्य व्यक्तियों की प्रसन्नता के लिए त्याग करने को तैयार एवं इच्छुक रहना चाहिए उसे अन्य के लिए कार्य करना चाहिए और इसके बदले में प्राप्ति की आशा नहीं करनी चाहिए। सर्वोदय द्वारा वह 'नीचे से ऊपर की ओर' राष्ट्र का निर्माण चाहते थे और स्वतंत्रता, न्याय, समानता और भाईचारा पर आधारित नई सामाजिक व्यवस्था का निर्माण चाहते थे। गांधी का आदर्श (सर्वोदय) समाज निम्नांकित विशेषताओं द्वारा चिन्हित किया गया है[47]-

. इसमें कोई दमनात्मक राज्य-शक्ति नहीं होनी चाहिए और नागरिकों की सामाजिक बाध्यता जैसे प्राचीन भारत की वर्णाश्रम-व्यवस्था से संगत होनी चाहिए।

. इसमें ग्रामीण कृषि व्यवस्था शामिल होनी चाहिए जिसमें इच्छाएं कम हों और सहयोग, संकीर्णता इत्यादि सामाजिक नागरिक और आर्थिक क्रियाओँ की शासन पद्धति हो।

. कृषि के अतिरिक्त, अन्य उत्पादन कुटीर उद्योग और दस्तकारी पर आधारित होने चाहिए। शिक्षा हस्तशिल्प पर केन्द्रित होनी चाहिए।

. विकेन्द्रीकरण और हस्तशिल्प उत्पादन आधारित शासित सिद्वांतों के अतिरिक्त तीन अन्य आर्थिक नियमों का पालन या अभ्यास करना चाहिए- ग्रामीण आत्म-निर्भरता, जीविकापार्जन (स्वयं के शरीरिक श्रम द्वारा जीविकोपार्जन), अपरिग्रह (न्यूनतम उपयोग की वस्तुओं का प्रयोग या संग्रह)। भारी मशानों या भारी वाहनों का इस समाज में कोई स्थान नहीं है।

. इस प्रकार के समाज में, विवाद या संघर्ष (सामान्यत: शक्ति, संपत्ति का संग्रहण के द्वारा उत्पन्न) कम या कुछ ही लोगों के हीच होगा। लेकिन इस प्रकार के विवादों को हल करने के लिए, जो संभवत: आकस्मिक तौर पर प्रकट होंगे, ग्राम पंचायतों को आयोजित करने चाहिए। पंचायतों के असफल होने पर सत्याग्रह का साधन है।

गांधी ने पहला सत्याग्रह समुदाय डरबन के निकट एक फर्म पर बनाया और इसे फीनिक्स कहा (1904) । तत्पश्चात् 1910 में जोहान्सबर्ग में लियो टॉलस्टाय के नाम पर

दूसरा सत्याग्रह समाज बनाया। इन दोनों फर्मों की स्थापना के पीछे विचार था कि इसके निवासियों को फर्म को चलाने के लिए सभी कार्य करने होंगे, चाहे उनका पेशा कुछ भी हो ताकि वे स्व निर्भर एंव संतोषी हो सके। वास्तव में, सर्वोदय के आदर्शों के अनुसरण द्वारा, गांधी एक विकल्प का निर्माण चाहते थे। सर्वोदय के सामाजिक व्यवस्था के आधार पर विचारधाराएं अपने रचनात्मक कार्य-क्रमों की पूर्ण अभिव्यक्ति पाते हैं। जो दक्षिण अफ्रीका से उनके भारत आगमन पर प्रारंभ हुआ। खादी साम्प्रदायिक एकता, छुआछूत की समाप्ति, ग्राम-उद्योगों का विकास, ग्राम सफाई, आधारभूत शिक्षा इत्यादि एक के बाद दूसरे के क्रम से आते गए और संगठन के समर्थन में कार्य किया। ये कुछ संगठन थे- अखिल भारतीय बुनकर संघ, अखिल भारतीय हरिजन सेवक संघ, हिन्दुस्तानी प्रचार सभा, हिन्दुस्तानी तालीमी सभा और आखिल भारतीय सेवा संघ। सर्वोदय समाज एक आदर्शात्मक समाज है एक आदर्श की पूर्ण अनुभूति नहीं हो सकती है। गांधी यह विश्वास करते थे कि एक आदर्श का जीवन में अनुभव नहीं किया जा सकता है।[48]

सर्वोदय राजनीतिक-व्यवस्था

एक राजनीतिक सिद्धांत के रूप में सर्वोदय एक विनम्र अराजकतावाद है। वास्तव में, सर्वोदय का राजनीतिक विचारधारा अपने में एक प्रकार का अराजकतावाद है। यह स्वीकार करता है कि एक पूर्णतः राज्यविहीन समाज एक व्यक्ति की पहुंच के बाहर है और मानवीय उद्दाम का लक्ष्य मात्र शक्ति को कम करना और राज्य के क्रियाकलाप को न्यूनतम करना है। सर्वोदय की राजनीति, लोकनीति की राजनीति है। लोकनीति एक व्यापक शब्द है। जो एक साथ जीवन एक पथ, एक सामाजिक क्रम और एक विधि का संकेत करती है। जीवन के एक पथ के रूप में यह व्यक्ति के आचरण के स्व-संचालन और व्यक्ति के स्व-क्रियाओं पर कार्य करने की आदत है। एक सामाजिक व्यवस्था के रूप में, यह एक ऐसे समाज को रखता है जिसमें पुलिस और सेना को न्यूनतम कार्य की करना और जीवनके साथ विधि का हस्तक्षेप न्यूनतम होगा। एक व्यक्ति के पास कार्य की सर्वोच्च स्वतंत्रता होगी। एक विधि रूप में यह उस प्रकार के व्यक्ति के सामाजिक आचरण में परिवर्तन चाहता है, जिस प्रकार मानव की क्रियाओं की स्वतंत्रता बनी रहे।[49]

सर्वोदय की राजनीतिक व्यवस्था कुछ मौलिक राजनीतिक मान्यताओं पर आधारित है-

(1) सभी व्यक्ति समान रूप से जन्म लेते हैं।

(2) जनता राज्य की सभी सर्वोदय शक्तियों की स्वामिनी है।

(3) राजनीतिक शक्ति व्यक्तिगत और ग्रामीण स्तर पर विकेन्द्रित होनी चाहिए।

(4) सभी को स्व-शासन का प्रशिक्षण मिलना चाहिए।

(5) सभी को प्रत्येक व्यक्ति के दैवीय-शक्ति में विश्वास करना चाहिए और जनकल्याण के लिए प्रयास करना चाहिए।[50]

गांधी के लिए अंतिम लक्ष्य सभी व्यक्तियों की अधिकतम भलाई है। उऩके लिए भलाई का अर्थ मात्र स्व-अनुभूति है न कि व्यक्तियों या समाज के लिए भौतिकता। सर्वोदय के राजनीतिक व्यवस्था पर हुए एक अध्ययन में उनके विचारों पर संक्षिप्त सर्वेक्षण की मांग की गई– स्वराज, सत्याग्रह, प्रजातंत्र, राष्ट्रवाद, अंतर्राष्ट्रीयवाद और राम राज।[51]

विनोवा भावे[52] के अनुसार, एक आदर्श राजनीति के लिए 10 आधार हैं-

(1) अंतर्राष्ट्रीय बंधुत्व।

(2) देश के सभी निवासियों की चेतनशील, स्वतःस्फूर्ति (यथासंभव) एवं हार्दिक सहयोग।

(3) सक्षम अल्पसंख्यक एवं सामान्य बहुसंख्यक की भलाई की पहचान।

(4) वैश्विक एवं समान विकाश के लिए अभिमुखीकरण।

(5) राजनीतिक संप्रभुता का वृहद बिखराव।

(6) सरकार की न्यूनतम मात्रा।

(7) न्याय की आसान उपलब्धि (सुलभतम तंत्र) ।

(8) बाह्य सुरक्षा की न्यूनतम मात्रा।

(9) न्यूनतम संभव व्यय।

(10) एक वैश्विक, अबाधित और प्राकृतिक ज्ञान का प्रसार।

सर्वोदय की आर्थिक व्यवस्था

गांधी ने मानवीय समस्याओं के प्रति एकीकृत दृष्टिकोण अपनाया। उनका मूल उद्देश्य अर्थशास्त्र को कम करना और धर्म तथा आध्यात्मिकता को बढ़ाना था। उनके लिए

नीतिशास्त्र और अर्थशास्त्र दो अलग अस्तित्व वाले नहीं है। अर्थशास्त्र जो एक राष्ट्र या व्यक्ति के नैतिकता को क्षति पहुंचाता है, अनैतिक है और इसलिए यह पापमय है।[53] सच्चा अर्थशास्त्र गांधी के अनुसार, सामाजिक न्याय के लिए के होता है, यह सबसे कमजोर सहित सभी की समान रूप से भलाई करता है और सुंदर जीवन के लिए अपरिहार्य है।[54] वह मुख्य रूप से भारत और विश्व के लिए एक ऐसे आर्थिक संविधान को बनाना चाहते थे जिसमें कोई भी रोटी, कपड़ा और मकान की पीड़ा से न गुजरे। जीवन की सभी आवश्यकताएं सभी को मुफ्त में उपलब्ध होनी चाहिए, जैसे कि ईश्वर की हवा-पानी है।[55] वैसी आर्थिक संविधान की रचना, भौतिक धन पर नहीं बल्कि अध्यात्मिक पर करना चाहते थे। यह तभी संभव है जब प्रत्येक सोने से अधिक सच्चाई, शक्ति एवं संपदा की शान से अधिक भयहीनता, स्वयं के प्रेम से अधिक उदारता दिखाए।

गांधी की सर्वोदय की आर्थिक व्यवस्था साधारण, विकेन्द्रीयकरण, स्व-आत्मनिर्भरता, सहयोग, समानता, अहिंसा, श्रम की महत्ता, मानवीय मूल्य, स्व-निर्भर ग्राम इकाईयां, मूलभूत उद्योगों का राष्ट्रीकरण, स्वदेशी और ट्रस्टीशिप के सिद्धांतों पर आधारित है। बदले में, यह सभी श्रम, पूंजी, उत्पादन, वितरण और लाभ इत्यादि के अतिरिक्त सभी समस्याओं का समाधान करेंगे।

गांधीवादी आर्थिक क्रम में अन्य पर आश्रित होना दासता है और आत्म- निर्भरता स्वतंत्रता है। क्षेत्रीय आत्म-निर्भरता सर्वोदय के आर्थिक व्यवस्था में अत्यावश्यक है। लोगों को अपनी जीवन की आवश्यकताओं को स्वयं पैदा करना चाहिए। उत्पादन आवश्यक रूप से जीवन की आवश्यकताओं के अनुकूल होनी चाहिए।

सर्वोदय की आर्थिक व्यवस्था में, मनुष्य भौतिक बंधनों से मुक्त है। वह भौतिक आवश्यकताओं का दास नहीं होता है। वह अपनी इच्छाओं लालच से ऊपर होता है और धन के संग्रह से से दूर होता है। वह कार्य को सेवा के रूप में देखते हैं। यह उनके लिए दैवीय है। वह आत्म-पीड़ा, त्याग, समर्पण और एकीकरण को हृदय में संजोए रखता है। वह धनी और निर्धन में कोई अंतर नहीं पाता है। उसका खाना, पहनना और रहन-सहन कोई उच्चता या निम्नता का प्रदर्शन नहीं करता। वास्तव में सर्वोदय की आर्थिक व्यवस्था व्यावहारिक, यथार्थवादी और मानवीय है।

समाजवाद, साम्यवाद और सर्वोदय

गांधी ने स्वयं को समाजवादी एवं साम्यवादी कहा। लेकिन उनके लिए समाजवाद एवं साम्यवाद समतावादी सामाजिक दर्शन का रुखवादी प्रकार है जो अपनी पूर्णता सर्वोदय में पाता है।[56] सर्वोदय एवं समाजवाद की उत्पत्ति की स्थिति का पृष्ठभूमि विभिन्न हैं। जबकि उनके मानवीय आदर्शवाद प्रायः समान है।[57] जयप्रकाश नारायण के अनुसार, सर्वोदय सर्वोच्च सामाजिक मूल्यों का प्रतिनिधित्व करता है। पूरे पश्चिम से दर्शन के रूप में समाजवाद का उदय औद्योगिक सर्वहारा वर्ग के रूप में हुआ और समकालीन राज्य के दावे को चुनौती दी, जिसने उद्योगपतियों के हितों को सहारा दिया।[58]

प्राकृतिक तौर पर, समाजवाद और साम्यवाद मूलतः आदर्शवादी और नैतिक हैं। वे लाखों लोगों की दयनीय अवस्था का चित्रण करते हैं, गरीबों की स्थिति को ऊपर उठाने

में सहायता करते हैं और आर्थिक समानता और सामाजिक न्याय पर आधारित समाज की रचना करते हैं। सर्वोदय सभी प्रकार के शोषण और मानवीय परेशानियों से मुक्त समाज के लिए खड़ा होता है। राजेन्द्र प्रसाद[59] के अनुसार, सर्वोदय एक आकांक्षा का प्रतिनिधितित्व करता है। “एक सत्य एवं अहिंसा आधारित समाज जहां जाति एवं वंश के आधार पर भेदभाव नहीं है, शोषण के लिए कोई अवसर नहीं है, और व्यक्ति एवं समूहों के विकास के लिए पूरा क्षेत्र है।” जयप्रकाश नारायण[60] सर्वोदय के बारे में लिखते हैं, “हम वैसे समाज की स्थापना के इच्छुक हैं जहां कोई शोषण नहीं होगा, जहां पूर्ण समानता होगी और प्रत्येक व्यक्ति को विकास के लिए समान अवसर होंगे।”[61] सर्वोदय एक वर्गविहीन, जातिविहीन और शोषण रहित समाज का लक्ष्य रखता है।[62] विनोवा कहते हैं कि, ”मार्क्सवाद एवं सर्वोदय जैसी दो विचारधाराओं के बीच कोई स्थायी संघर्ष नहीं है चाहे गांधीवाद और साम्यवाद के बीच में कोई अंतर हो। इन दोनों के बीच समान बिंदु हैं और यह समानता महत्त्वपूर्ण है। सर्वहारा वर्ग का कारण दोनों ही विचारधाराओं के लिए समान है। गांधीवाद और साम्यवाद गरीब की भलाई का सम्मान करते हैं और मां के प्रति तीव्र प्रेम का दमन करते हैं।”

प्रमुख गांधीवादी के. जी. मशरूवाला कहते हैं, “गांधी और मार्क्स के बीच समान बिंदु हैं- दोनों के बीच तीव्र चिंता- दमन एवं दमित की, साधनहीन और लापरवाह और मानवता की मूर्ख भुखमरी के शिकार वर्ग- के लिए है।” इसी प्रकार जयप्रकाश नारायण कहतें हैं कि, “यदि हम सच्चे समाजवादी हैं तब हम सर्वोदय के भी सच्चे अनुयायी होंगे।”

सर्वोदय एवं समाजवाद के बीच मौलिक समानता होने के बावजूद, इन दोनों के बीच साधन एवं विधि के आधार पर वृहद अंतर है। सर्वोदय के दृष्टिकोण से- समाजवादी दर्शन में दो कमियां हैं, पहला,स माजवाद को प्रभावित करने वाली तकनीकि राष्ट्रीयकरण मानी जाती है। लेकिन राष्ट्रीयकरण नौकरशाहों के नियंत्रण की घेराबंदी करता है और यह राज्य पूंजीवाद का दूसरा नाम है। सर्वोदय के अनुसार, राज्य के सकारात्मक कार्य में समाजवादी विश्वास, मानवीय बुराइयों के उपचार के रूप में, नहीं पाया जाता है। सर्वोदय ग्रामीणकरण की वकालत करता है जबकि समाजवाद राष्ट्रीकरण पर विश्वास करता है। सर्वोदय ग्रामीण स्वामित्व को स्वीकार करता है। दूसरा समाजवाद कुछ मामलों से जुड़ा है। खासकर हिंसक क्रांति के अर्थ से। लेकिन सर्वोदय के दर्शन और तकनीक में हिंसा का कोई स्थान नहीं है।[65]

सर्वोदय एवं साम्यवाद के बीच का अंतर आधारभूत एवं मौलिक है। साम्यवाद समतावादी समाज के पक्ष में परिवर्तन के लिए हिंसक तकनीक की वकालत करता है। वैसा समाज जो शोषण एवं विशेषाधिकार से मुक्त हो। इसके विपरीत मान्यताओं में सर्वोदय हृदय परिवर्तन में विश्वास करता है। मार्क्स एवं एजेंल्स, दोनों ने ही अपना दृढ़ विश्वास व्यक्त किया कि, “हिंसक चक्का अथवा बुर्जुआ के आधार को हिला देता है।” लेनिन और माओ ने क्रमश: सोवियत संघ और चीन में परिवर्तन लाने के लिए हिंसा का सहारा लिय़ा। जबकि गांधी ने विरोधी के परिवर्तन के लिए आत्म-पीड़ा का नैतिकता का पाठ पढ़ाया।[66] क्योंकि हिंसा एक न्यायोचित एवं समान समाज का आधार नहीं हो सकती है और हिंसा के आधार पर, एक सामाजिक व्यवस्था को स्थापित करना संभव नहीं है। हिंसा से प्रति-हिंसा का जन्म होता है। वास्तव में, मानवीय शोषण का एक नया प्रकार अस्तित्व में आया है, वह है- पार्टी, पदाधिकारियों और राज्य मशीनरी द्वारा शोषण।

लोकतांत्रिक समाजवाद में सर्वोदय विधायिका या कानूनी दमन की बुराइयों की उपेक्षा करता है और हिंसा तथा शारीरिक दमन साम्यवाद में शामिल रहते हैं। यह एक गैर

शोषण और समतामूलक समाज के सामाजिक रूपांतरण के निर्देशन के लिए परिवर्तन की तकनीक में विश्वास करता है। गांधी सभी के जनकल्याण के लिए चिंतित थे और इस विचार को अस्वीकार कर दिया कि सबों का जनकल्याण शारीरिक, बौद्धिक, नैतिक मजबूरी के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। गांधी यह मानते थे कि सर्वोदय की अनुभूति केवल नैतिक नीतिगत विधियों से ही अनुभव किया जा सकता है। गांधी को यह विश्वास था कि प्रार्थना एवं अपील धनी एवं विशेषाधिकार संपन्न लोगों के करने पर संभवतः वे अपने विशंषाधिकार को त्याग सकते हैं और वे अपनी आकूत संपत्ति को जनता के जनकल्याण के लिए प्रयोग कर सकेंगे। धन और विशेषाधिकारों का इस प्रकार से त्याग करना गरीब और अमीर सभी की भलाई के लिए होगा। सर्वोदय द्वारा अवलोकित आंदोलन का सार यह है कि यह अपना विश्वास मानवीय दृष्टिकोण से बनाता है जिसके आधार पर मानवीय मूल्यों एंव सद्गुणों के मानवीय आंदोलन का आशय स्पष्ट हो सके और इसकी विधि मानवीय होनी चाहिए।[67]

सर्वोदय के पैरोकार राज्य की भूमिका के संदर्भ में भी समाजवाद और साम्यवाद से अंतर रखते हैं। साम्यवादियों एवं समाजवादियों को राज्य की सामाजिक समानता को लाने की क्षमता में विश्वास है। आर्थिक क्षेत्र में साम्यवादी और समाजवादी केन्द्रीयकरण एवं राज्य के हाथों में आर्थिक शक्तियों के केन्द्र और राज्य की आर्थिक क्रियाओं के प्रसार की वकालत करते हैं। जयप्रकाश नारायण[68] के शब्दों में, “प्रजातांत्रिक समाजवादी साथ ही साथ साम्यवादी सभी राज्यवादी हैं “ राजनीतिक एवं आर्थिक शक्तियों को राज्य के हाथों में सौंप देने से अत्यधिक नौकरशाही, अमानवीयता और व्यक्तिगत स्वतंत्रता की क्षति होती है। जयप्रकाश नारायण [69] के शब्दों में, “लोकतांत्रिक राज्य एक दैत्याकार रूप में रहता है जो जनता की स्वतंत्रता पर जमकर बैठ जाता है।” साम्यवाद के अंतर्गत राज्य बुरे हालत में है। यह सत्य है कि साम्यवादी एक लंबे समय के बाद राज्य के समाप्त हो जाने की बातें करते हैं, लेकिन संक्रमणकाल में, राज्य न केवल वांछनीय है, बल्कि अधिकाधिक शक्तिशाली हो जाता है। यह राज्यविहीन समाज के आदर्शों को निगल जाता है- स्वतंत्रता, समानता, भ्रातृत्व और अनुयायी।“ जयप्रकाश नारायण निखते हैं कि, “इसका उपचार है कि समाजवादी जीवन की स्थापना और विकास लोगों के प्रयत्न से हो न कि राज्य की शक्ति

के प्रयोग के आधार पर समाजवाद की स्थापना हो। दूसरे शब्दों में राज्य समाजवाद की जगह जनता के समाजवाद की स्थापना ही उपचार है। “[70]

सभी दृष्टिकोणों से निर्धारण के बाद, सर्वोदय एक पवित्र सूक्ष्म अक्खड़, वृहद, गहरा एवं दुर्बोध आशय समाजवाद या साम्यवाद की तुलना में है। विनोवा के अनुसार, “समाजवाद की तुलना में सर्वोदय एक बेहतर दुनिया है। यह हमारा निवासी विश्व भी है, यह हमारी मिट्टी से जन्मा एक पवित्र अर्थ को वहन कर रहा है। “ हम इस शब्द का प्रयोग किंचित संदेह के लिए नहीं करते हैं। अतः हम सर्वोदय ‘शब्द’ को पसंद करते हैं। लेकिन हमारा लक्ष्य सर्वोदय है और हमारी जनता सर्वोदय के सागर में समाने के लिए तैयार है।“ यह सत्य है कि समाजवाद एंव साम्यवाद अपने सच्चे अर्थ को प्रकट करते हैं और अपने उद्देश्यों को सर्वोदय में मिलाकर पूरा करते हैं। जयप्रकाश नारायण[71] लिखते है, “आज हम जिस समाजवाद को समझते हैं वह मानवता के लिए स्वतंत्रता, समानता, बंधुत्व एवं शांति के लक्ष्यों को पूरा नहीं कर सकता है। नि:संदेह समाजवाद मानव जाति को इन लक्ष्यों के निकट लाने का वायदा किसी अन्य दर्शन की तुलना में करता है। लेकिन मैं यह मानता हूं कि जब तक समाजवाद को सर्वोदय में रूपांतरित नहीं किया जायेगा तब तक वे लक्ष्य इनकी पहुंच से दूर रहेंगे।” विनोवा लिखते हैं कि, “दोनों विचारधाराओं-मार्क्सवाद और सर्वोदय के बीच कोई स्थायी संघर्ष नहीं है। जैसे गंगा चौड़ी से चौड़ी होती जाती है और घूमकर संकुचित होकर सागर में मिल जाती है, मैं आशा करता हूं कि मार्क्सवाद भी एक दिन सर्वोदय में मिल जायेगा। “[72]

सर्वोदय एवं समकालीन समस्याएं

सर्वोदय के सिद्धांत वर्तमान समय के व्यापकतम चुनौतियों को पूरा करने में सक्षम है। आज की सर्वोधिक तीव्र आवश्यकता मानवीय पीड़ा की समाप्ति के साथ-साथ युद्ध की समाप्ति है। मानवीय व्यवहार की जटिलता के कारण सर्वोदय भी 21वीं शताब्दी में अत्यधिक महत्वपूर्ण हो गया है। सर्वोदय मानवीय स्वभाव की अच्छाई पर बल देकर मानव जाति को एकता, अंतर-राज्यीय संबंध और व्यक्ति का समूहों से संबंध निर्धारण के लिए नैतिक सिद्धांतों के प्रयोग, परिवर्तन की अहिंसक प्रक्रिया, सामाजिक और आर्थिक

समानता, आर्थिक और राजनीतिक विकेन्द्रीकरण, घरेलू और अंतर्राष्ट्रीय सद्भाव को बाधित करने वाले विभिन्न प्रकार के तनावों को हल करने की कोशिशें करता है। सर्वोदय प्रेम, रचनात्मकता और जीवन के आनंद शक्ति को मजबूत करने में सक्षम है। आधुनिक प्रसंगों में, सर्वोदय के अर्थ को "एक और सबों की जागृति" के रूप में व्याख्या की जा सकती है। इस प्रकार, प्रत्येक की जागृति के साथ-साथ यह संपूर्ण मानवीय भावनाएं और व्यक्तित्व की जागृति को भी संदर्भित करता है। सर्वोदय आत्म-अनुभव के सर्वोच्च स्तर को प्राप्त करने से भी संबंधित है, जिसमें एक व्यक्ति अन्य में अपना प्रदर्शन देखता है।

हमारा राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक जीवन समस्याओं से ग्रस्त है। हमारे समय या सभी समय को बीमारी सत्ता के लिए तलाश है, चाहे यह राजनीतिक, सामाजिक या आर्थिक हो। सेवा को व्यक्तिगत प्रशंसा की तलाश में छोड़ा जा रहा है। मानवता प्रायः एक नैतिक विध्वंस और नीतिगत शून्यता के अंतर्गत है। सत्ता के लिए पागल दौड़ के युग में सर्वोदय की महत्ता आत्म-वर्जना के स्थायी मूल्यों में दबाव देने में निवास करती है। सर्वोदय आधारभूत महत्व वाले नैतिक सिद्धांतों को अभिव्यक्त कर रही है क्योंकि यह धोखाधड़ी की कुशलता एंव स्वकथन की जगह भलाई और चरित्र की प्रमुखता को सुरक्षित रखना चाहता है। सर्वोदय ह्रदय एवं मस्तिष्क को लक्षेय एवं मूल्य के अर्थों में अपील करता है। अवनति और भ्रष्टाचार, जो संगठित सामाजिक मशीनीकरण की सच्चाई है, को केवल नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों के पुनर्कथन और इनका राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक जीवन में वृद्धिकारी सम्मिलन से दूर किया जा सकता है। सर्वोदय बेरोजगारी, धन का असमान वितरण, बढ़ता भ्रष्टाचार इत्यादि के हल का एकमात्र उपाय है। नैतिक विध्वंस और विश्व की पराजय नैतिक आदर्श के पुर्जीवन की मांग करता है और सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं के प्रति नैतिक दृष्टिकोण पर बल देता है। जिसे सर्वोदय प्रस्तुत करता है।

निष्कर्ष

सर्वोदय का दर्शन जो गांधी की अंतर्दृष्टि और अनुभवों पर आधारित है, यह मानव जाति की समस्याओं के पर्ति मूल्यांकन और नैतिक दृष्टिकोण का पुनर्कथन है। जो युग से प्राचीन भारतीय संस्कृति का हिस्सा रही है। विनोवा भावे ने ठीक कहा है कि "सर्वोदय सभी

की पीड़ा की समाप्ति द्वारा सबों को प्रसन्न करने का अर्थ है बल्कि समानता पर आधारित एक विश्व स्थित को भी लाता है।"[73] गांधी के लिए, सर्वोदय स्व-त्याग और स्वार्थरहित सेवा में एक का सब में समा जाने का अर्थ है। उनका सर्वोदय का आदर्श, सबके जनकल्याण के अर्थ के अतिरिक्त, विश्व जनकल्याण एवं सबों का एकीकृत जनकल्याण के अर्थ को शामिल करता है। एक विश्व आदर्श के रूप में, यह केवल न्यूनतम भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति का ही लक्ष्य नहीं रखता, सभी लोगों की नैतिक-आध्यात्मिक पक्षों को भी विकसित कर रहा है। वर्तमान शताब्दी में सर्वोदय का महान योगदान गांधीवादी नैतिक दृष्टिकोण के पुनर्कथन एवं राज्य एवं समाज के जनकल्याण के लिए दृष्टिकोण निर्माण में संरक्षित हैं।

संदर्भ

1. वी.पी वर्मा, द पोलिटिकल फिलॉस्फी ऑफ महात्मा गांधी एण्ड सर्वोदय, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल,पृ.279।
2. जो.एन. मोहंती, सर्वोदय एण्ड अरविंदो-ए एप्रोचमेंट ।, गांधी मार्ग, खण्ड 4, पृ.30।
3. बी.पी. पांडेय, गांधी सर्वोदय एण्ड ऑग्रेनाइजेशन, चुग पब्लिकेशन, इलाहाबाद, 1988, पृ.20-21/जुलाई 1906, पृ.211।
4. विश्वनाथ टंडन-द सोशल एण्ड पोलिटिकल फिलॉस्फी ऑफ सर्वोदय, आफ्टर गांधी, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणासी, 1965,पृ.21।
5. अनिल दत्त मिश्रा-फंडामेंटल्स ऑफ गांधीज्म, मित्तल पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1995, पृ.5।
6. महाजन पी. मणी एण्ड के.एस. भारती, फाउंडेशन ऑफ गांधीयन थॉट, डॉटशन्स, नागपुर, 1987, पृ.68।
7. द कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी, वॉल्युम-8, पब्लिकेशन, डिवीजन, गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, नई दिल्ली, 1962, पृ.239-41।
8. के.एम. रथनाम चेट्टी, सर्वोदया एण्ड फ्रीडम, ए गांधीयन एप्रेजल, डिस्कवरी पब्लिकेशन हाऊस, नई दिल्ली, 1991, पृ. 46 ।

9. बी.एस. शर्मा, द फिलॉस्फिकल बेसिस ऑफ सर्वोदय, गांधी मार्ग, खण्ड 4,सं. 3, जुलाई 1960, पृ. 259 ।
10.वही।
11.के.एम. रथनाम चेट्टी, ऑप सिट, पृ. 47।
12.हरीजन, 13-2-1949।
13.बी.पी. पाण्डेय, ऑप सिट, पृ.14।
14.दादा धर्माधिकारी, सर्वोदया दर्शन, सेवा संघ प्रकाशन, वाराणासी, पृ. 18 ।
15.के.एम.रथनाम चेट्टी, ऑप सिट, पृ. 48 ।
16.वही पृ.38।
17.वही।
18.बेनुधर प्रधान-द सोशियलिस्ट थॉट ऑफ महात्मा गांधी, जे.डी.के. पब्लिकेशन, दिल्ली,1980, खण्ड 1, पृ. 284 .
19.एम.के. गांधी-एन ऑटोबायोग्राफी, द स्टोरी ऑफ माई एक्सपेरीमेंट विद ट्रुथ, नवजीवन पब्लिकेशन हाऊस, अहमदाबाद, 1948, पृ.365 ।
20.बेनुधर प्रधान, ऑप सिट, पृ. 285 ।
21.के.एम. रथनाम चेट्टी, ऑप सिट, पृ. 39-40।
22. वही, पृ. 40 ।
23.वही, पृ.40-41 ।
24.वही, पृ. 41।
25.वही।
26.एम.के. गांधी, यंग इंडिया, 12-11-1925 ।
27.वही।
28.के.एम. रथनाम चेट्टी, ऑप सिट, पृ. 42-43 ।
29.अनिल दत्त मिश्रा, ऑप सिट,पृ. 11।
30.वही, पृ. 11 ।
31.बेनुधर प्रधान, ऑप सिट, पृ. 244।
32.वही पृ. 301।

33.वही, पृ.302।
34.के.एम. रथनाम चेट्टी, ऑप सिट, पृ. 45।
35.वही।
36.जयपर्काश नारायण, सोशियलिज्म, सर्वोदय एण्ड कम्युनिज्म, ए.पी.एच, बॉम्बे, 1964, पृ.149 ।
37.एम. के गांधी, यंग इंडिया, 12 नवंबर, 1925, पृ.364 ।
38.एस. गोपालन, मिन्स एण्ड एण्डस : द गांधीयन वियू, गांधी सेटीनेरी वॉल्यूम, 1969, पृ. 149 ।
39.यंग इंडिया, 17-7-1924 ।
40.डी.जी. तेंदुलकर, महात्मा, वॉल्यूम II, नई दिल्ली, पब्लिकेशन डिवीजन, 1951, पृ. 299 ।
41.हरिजन, 27.12.1949 ।
42.एम.के. गांधी हिन्द स्वराज और इंडियन होमरूल, अहमदाबाद, नवजीवन पब्लिकेशन हाऊस, 1946, पृ. 60 ।
43.हरिजन, 27 फरवरी, 1949 ।
44.अनिस दत्त मिश्रा, ऑप सिट, पृ. 14 ।
45.वही ।
46.वही,पृ. 15।
47.ए.सी. गंगल, गांधीयन थॉट एण्ड टेक्नीक्स इन द मॉर्डन वर्ल्ड, क्राइटेरीयन पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1988, पृ. 158-59 ।
48.वही, पृ. 159 .
49.विश्वनाथ टंडन, ऑप सिट, 124-125 ।
50.के.एम. रथनाम चेट्टी, ऑप सिट, पृ. 66।
51.अनिल दत्त मिश्रा, ऑप ,सिट, पृ. 16-17।
52.वी.पी. वर्मा, द पॉलिटिकल फिलॉस्फी ऑफ महात्मा गांधी एण्ड सर्वोदया, आगरा, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल,1980, पृ.295.

53.एन.के. बोस, सेलेक्शन ऑफ गांधी, नवजीवन पब्लिकेशन हाऊस, अहमदाबाद, 1994, पृ. 40।
54.हरिजन, 9 अक्टूबर, 1937 ।
55.यंग इंडिया, 15 जुलाई,1928
56.वी.डी. महाजन, मॉर्डन इंडियन पॉलिटिकल थॉट, पृ. 569।
57.जयप्रकाश नारायण, फ्रॉम सोशियलिज्म टू सर्वोदय, मद्रास, सोशियलिस्ट बुक सेंटर, 1956, पृ.96 .
58.वी.पी. वर्मा, ऑप सिट, पृ.283।
59.वी.डी. महाजन, ऑप सिट, पृ. 569।
60.वही।
61.वही, पृ. 569-70।
62.वही, पृ. 570।
63.वही।
64.वही।
65.वी.पी. वर्मा ऑप सिट, पृ. 285।
66.विनोबा भावे, स्वराज शास्त्र, नई दिल्ली, सस्ता साहित्य मंडल, 1953, पृ. 58-68 .
67.वी.डी. महाजन, ऑप सिट, पृ. 573-74।
68.जयप्रकाश नारायण, ऑप सिट, पृ. 33।
69.वही, पृ. 34।
70.वही, पृ. 34।
71.वही,पृ. 21।
72.वी.डी. महाजन, ऑप सिट, पृ. 574।
73.अनिल दत्त मिश्रा, ऑप सिट, पृ. 17।

सारांश

*सर्वोदय भारत के प्राचीन आध्यात्मिक और नैतिक मूल्यों की नींव पर आधारित एक नया समाज बनाना चाहता है और समकालीन समस्याओं की चुनौतियों को पूरा करने का प्रयास करता है।

*सर्वोदय सामाजिक और राजनीतिक अभिमुखीकरण के मुक्तिदाता का दर्शन है, जहां पीड़ा है सर्वोदय उसका शमन करता है। यह मानवीय भावनात्मक एकीकरण और सर्वोच्य बौद्धिक आकांक्षा का चरमोत्कर्ष है।

*गांधी ने मूलत: 'सर्वोदय ' शब्द की रचना नहीं की। उनसे भी पहले, सर्वोदय के विचार धार्मिक पुस्तकों-वेद,उपनिषद, रामायण, गीता, कुरान और अन्य में पाये जाते हैं।

*सर्वोदय की उत्पत्ति संस्कृत में हुई है जो 'सर्व' यानि सभी और 'उदम' यानि उत्थान से मिलकर बना है। सर्वोदय का उत्पत्तिमूलक अर्थ सभी का विकास है। इसमें सभी जीवित प्राणी शामिल हैं।

*आवश्यक रूप से सर्वोदय एक आध्यात्मिक क्रिया है जिसके दो अर्थ हैं, नकारात्मक और सकारात्मक। नकारात्मक अर्थ में, कोई भी अन्य से किसी चीज का आनंद प्राप्त करने से बाहर नहीं है। "यह वैसी वस्तु नहीं है जिसे एक व्यक्ति या व्यक्ति समूह अन्य को बाहर कर प्राप्त करता है" सकारात्मक अर्थ में. सर्वोदय सभी प्रकार के लोगों की भागेदारी को शामिल करता है- वर्ग, जाति, नस्ल या धर्म से परे।

*सबों के जनकल्याण के संकेत के अतिरिक्त सर्वोदय दो और अर्थों को बताता है, पहला, वैश्विक जनकल्याण और दूसरा सभी का एकीकृत विकास।

*गांधी को उनके सर्वोदय के आशय को विकसित करने में - रस्किन की पुस्तक, अन टू द लास्ट, टॉल्सटाय की- द किंगडम ऑफ गॉड विद इन यू, थोरो की सविनय अवज्ञा, भगवद् गीता, ईश्वस्योपनिषद, बुद्ध, जैन और इस्लाम की भूमिका रही है।

*गांधी के लिए साधन ही साध्य को निर्धारित करता है। वह कहते हैं कि जैसा साधन होगा वैसे ही साध्य होंगे। साधन-साध्य की तरह ही महत्वपूर्ण हैं।

*सर्वोदय के सिद्धांत वर्तमान समय के व्यापकतम चुनौतियों को पूरा करने में सक्षम है। आज की सर्वोधिक तीव्र आवश्यकता मानवीय पीड़ा की समाप्ति के साथ-साथ युद्ध की समाप्ति है।

*सर्वोदय का दर्शन जो गांधी की अंतर्दृष्टि और अनुभवों पर आधारित है, यह मानव जाति की समस्याओं के पर्ति मूल्यांकन और नैतिक दृष्टिकोण का पुनर्कथन है।

अध्याय 6

गांधी और उत्तर आधुनिकता

भूमिका

आधुनिक सभ्यता व उसके उद्धरण आधुनिकता पर छिड़े विवाद में महात्मा गांधी का योगदान प्रस्तुत लेख की विषयवस्तु है। यूरोप-केन्द्रित विचारक यूरोप में ज्ञानोदय (एनलाईटेनमेंट) (सत्रहवीं व अठारहनीं शताब्दी) काल को और द्वीतीय विश्व युद्ध को 'आधुनिक' मानते हैं और उस दौरान जो भी कुछ हुआ उसे 'आधुनिकता' की उपज मानते हैं। 'आधुनिकता' से पहले के एक लंबे युग को 'पूर्व-आधुनिक' नाम दिया गया व द्वितीय युद्ध के पश्चात प्रगति आदि पर जो नया चिंतन प्रारंभ हुआ उसे 'आधुनिकोत्तर' कहा गया।

गांधी आधुनिक कहे जाने वाले युग में हुए। यह वह युग था जो अनंतकाल से इतिहास का मार्गदर्शन करने वाले मूल्यों में आए एक बड़े परिवर्तन का साक्षी था। आधुनिक युग को अब तक के युग से पृथक कर पाने के उद्धेश्य व एंग्लों-अमेरिका को आधुनिक व बाकी के पूरे विश्व को पूर्व-आधुनिक घोषित कर दिया गया। आधुनिक का अर्थ था, और अब भी है- सामाजिक, आर्थिक, व तकनीकी प्रगतीशीलता, कृषि प्रधानता से उत्पादन प्रधानता की ओर परिवर्तन, ग्रामीण से शहरी जीवन की ओर और अनुभवात्मक ज्ञान के स्थान पर वैज्ञानिक ज्ञान को महत्त्व। पूर्व-आधुनिक काल को पुराने, पिछड़ेपन से ग्रस्त व पारंपरिक समझा जाता था। ये विश्लेषण कुछ छिपे हुए अर्थ प्रस्तुत करते हैं। अतः इनके गूढ़तर अर्थों का पता लगाना प्रासंगिक होगा।

पूर्व आधुनिकतावाद

आधुनिकतावादियों के शब्दकोश में पूर्व-आधुनिक का अर्थ था एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था जो सामूहिक रूप से सत्ता के आधीन थी- सर्वशक्तिमान शासकों, राजाओं, धर्मगुरुओं, ग्राम मुखियाओं आदि द्वारा शासित, और जहां व्यक्ति परंपरा व बड़ों द्वारा दमित जीवन बिताते थे। पूर्वाधुनिक काल में सभी को समयातीत परंपराओं का पालन करना होता था। इस पर प्रश्न उठाना अधर्म माना जाता था। अतः पूर्वाधुनिकता ग्रंथों, परंपराओं व रूढ़ीयों की सत्ता पर आधारित थी। प्रत्येक को समाज में एक स्थान दिया

जाता था जो अपरिवर्तनीय व स्थिर होता था। ऐसा नहीं है कि परिवर्तन नहीं होता था, होता तो था किंतु बहुत धीमी गति से। परंपरएं भी बदलती थीं, पुरानी चली जाती थीं, नई आ जाती थीं किंतु यह कोई नहीं जानता था कि पुरानी कह गईं और नई कब आ गईं। जो भी परंपरागत हो उसका पालन करना व्यक्तियों का कर्त्तव्य समझा जाता था और यह भावना परंपरा का क्या स्वरूप है इससे भी अधिक महत्त्व की थी।

पूर्वाधुनिक काल में अधिकारों से अधिक कर्त्तव्य महत्त्वपूर्ण थे, व्यक्ति महत्त्व रखते थे किंतु केवल परिवार व सामुदाय के अभिन्न अंगों के रूप में ही। पूर्वाधुनिक समाज मुख्य रूप से कृषि व ग्राम प्रधान समाज था, शहर भी होते थे किंतु वे प्रशासन व व्यापार के केन्द्र थे। कृषि व उद्योग दोनों प्रकार के उत्पादन ग्राम आधारित थे।

अठारहवीं शताब्दी के दौरान वैज्ञानिक खोजों की श्रृंखला व नए स्थानों की खोज के कारण आए ज्ञानोदय ने यूरोप में एक धारणा स्थापित कर दी कि प्रगति मूलत: एक सीधी रेखा की दशा में होती है और वह भौतिक होती है। जो भी व्यक्ति को उसकी इच्छानुसार कार्य करने की स्वतंत्रता नहीं देती उसका त्याग कर दिया जाता था। धर्म, विश्वास व श्रध्दा आदि को अतार्किक अत: अनैज्ञानिक करार दे दिया गया। ऐसे प्रतिमानात्मक परिवर्तन के गौर में जो भी बातें तर्क के पैमाने पर खैरी नहीं उतरती थीं उन सबका त्याग कर दिया गया। इस प्रकार आधुनिकता की अवधारणा का जन्म हुआ।

आधुनिकतावाद

जैसा कि पहले कहा गया, आधुनिकतावाद का संबंध यूरोपीय ज्ञानोदय (पूनर्जागरण काल) से है, वह परंपरा व सत्ता को अस्वीकार कर तर्क व विज्ञान को स्वीकारने का प्रतीक है। वह व्यक्ति को ही सत्य का एकमात्र स्त्रोत मानता है। इतिहास रेखीय है अत: प्रगति भी रेखीय होती बै। वह प्रोटेस्टेंट विचारशैली से संबंधित था जो जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सत्ता को अस्वीकार करती है। यह औद्योगिकीकरण, वैज्ञानिक व तकनीकि खोजों और पूंजीवाद से संबंधित है। आधुनिकता का मूल कार्य परंपराओं, मान्यताओं आदि द्वारा प्रस्तुत पुरातन ज्ञान की आधारशिला पर प्रश्नचिह्न लगाना है।

आधुनिकता अव्यवस्था में से व तर्क व्यवहार निकलना चाहती है और इस विश्वास पर चलती है कि तार्किकता व तर्कपूर्ण व्यवहार ही व्यवस्था ला सकते हैं। वह मानती है कि जितना अधिक तार्किक समाज होगा वह उतना ही व्यवस्थित होगा और जितना अधिक व्यवस्थित होगा उतना ही वह सुचारू रूप से कार्य करेगा। आधुनिक समाज अव्यवस्था फैलाने वाली सभी चीजों का परित्याग करने में विश्वास रखते हैं। अतः हर वह चीज जो उनके आधुनिकता के प्रतिमान से बाहर हो उसे वे अव्यवस्था की संज्ञा दे देते हैं, व्यवहारिक रूप में इसका अर्थ हुआ, वे सब वस्तुएं व विचार “अन्य विचार” हैं “किसी और सभ्यता के” । अतः जो अश्वेत हैं, पुरुष नहीं है, अस्वच्छ हैं, अतार्किक हैं उस सबको अव्यवस्था का भाग समझकर उसे ’व्यवस्थित तार्किक, आधुनिक समाज’ से हटा दिया जाना चाहिए। आधुनिकतावाद इस विश्वास पर आधारित है कि तर्क ही सत्य को जानने के मायने नहीं होंगे, यदि तर्क की कसौटी पर खरे न उतरें। वह मानता है कि एक स्थिर, अचल, सुगठित, जाना जा सकने वाला आत्म होता है जो चेतन, तार्किक, स्वायत्त व आत्म-विज्ञान द्वारा सर्वमान्य हैं। आत्म स्वयं को व संसार को तार्किकता द्वारा जानता है। तटस्थ, तार्किक आत्म-विज्ञान द्वारा सर्वमान्य व सनातन सत्य को जानता है। विज्ञान द्वारा प्रकट किया गया ज्ञान अथवा सत्य सदा ही प्रगति व श्रेष्ठता की र ले जाएगा। विज्ञान तटस्थ व वस्तुनिष्ठ होता है। ज्ञान की उपज व प्रसार की भाषा तार्किक होनी चाहिए, वह तर्कयुक्त मस्तिष्क द्वारा अवलाकित वास्तविक, इंद्रियपरक संसार की प्रतिनिधि होनी चाहिए।

आधुनिक समाज ‘व्यवस्था’ को ‘अव्यवस्था’ से पृथक कर, स्थिरता व एकसारता पाने हेतु बड़े-बड़े कथानक तैयार करते हैं। उदाहरणतः, अमेरिका संस्कृति का एक बृहत कथानक ‘लोकतंत्र’ है जिसे सर्वाधिक तर्कयुक्त व ज्ञानोदित प्रकार की प्रशासनिक व्यवस्था माना जाता है। पूंजीवाद द्वारा पोषित लोकतंत्र प्रशासन व सामाजिक व्यवस्था का सर्वश्रेष्ठ स्वरूप माना जाता है। केवल यही संपूर्ण विश्व में आनंद ला सकता है। जो भी अलोकतांत्रिक हो उसे बाहर निकाल फेंकना चाहिए। सोवियत रूस का वृहत कथानक ‘मार्क्सवाद’ था जो कि इस सिद्धांत पर आधारित था कि पूंजीवाद नष्ट हो जाएगा और एक समाजवादी विश्व का उदय होगा। पूंजीवादियों व श्रृमिक वर्ग में संघर्ष होगा व श्रमिक विजयी होंगे और तब एक सुव्यवस्थित समाज का निर्माण होगा।

आधुनिकतावाद के उत्पादों व प्रति उत्पादों ने की विचारकों के मन में की प्रकार की प्रतिक्रियाओं को जन्म दिया है। आधुनिकतावाद के कारण उपजी हिंसा, विध्वंसकता और इसके प्राकृतिक दुष्प्रभावों ने कुछ ऐसे विचारकों को सामने आने का बाध्य किया है जो इसके मूल आधार पर ही प्रश्नचिह्न लगाते हैं। इस प्रतिक्रियात्मक चिंतन को द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् अधिक बल मिला किंतु इसकी जड़ें कुछ उन्नीसवीं व प्रारंभिक बीसवीं सदी के विचारकों तक जाती हैं। इस प्रतिमान को आधुनिकोत्तरवाद कहा जाता है।

आधुनिकोत्तरवाद

ऑक्सफोर्ड शब्दकोश के अनुसार, आधुनिकोत्तरवाद एक दार्शनिक दृष्टिकोण है जो मानता है कि समाज की संरचना अथवा एतिहासिक कारणों के बृहत कथानक बना पाना असंभव होता है क्योंकि जो भी हम देखते, समझते, व्यक्त,और जानते हैं वह सब हमारी पृष्ठभूमि (जैसे लिंग, वर्ग, संस्कृति) द्वारा प्रभावित होता है। अत: कोई एक व्याख्या किसी अन्य व्याख्या से श्रेष्ठ नहीं हो सकती।

उदाहरण के लिए अहिंसा करने वालों कि दृष्टि में सच क्या है, यह हिंसा सहने वालों की दृष्टि के सच से सर्वथा भिन्न ही होगा। तर्क भी हमारे देखने और सोचने के प्रतिमानों द्वारा निर्धारित होता है। यूं तो ‘लोकतंत्र’ सरीखे बृहत् कथानक भी भिन्न-भिन्न व्यक्तियों द्वारा भिन्न महत्त्व रख सकते हैं। तो आदर्श संसार वह होगा तो एक रेखीय मार्ग पर ही न चले, जो एकसारता को अत्यधिक महत्त्व न दे व जो समाज के पीड़तों की रक्षा करें। मोटे तौर पर आधुनिकोत्तरवाद-

1. मानव क्रियाओं की तार्किकता को अस्वीकार करता है,
2. विभिन्नता व अनेकता को सम्मान देता है,
3. बृहत् कथानकों की निंदा करता व उन्हें व्यर्थ बताता है,
4. निर्धनों, पीड़तों, शोषितों के हितों की बात करता है,
5. राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के संरचनात्मक परिवर्तन में विकास जैसी अवधारणाओं पर प्रश्नचिह्न लगाता है व सामाजिक परिवर्तन के ले धारणीय विकास को प्रोत्साहन देता है,

6. सत्य तक पहुंचने के लिए के लिए समय और स्थान को भी महत्त्व देने की गुहार लगाता है,
7. व्यवहार आधारित, प्रयोगात्मक व भागीदारी पर आधारित व्याख्यों को महत्त्व देता है,न कि सांख्यिकीय व्यवस्थाओं को महत्त्व देता है, न कि वृहत् को,
8. सूक्ष्म को महत्त्व देता है न कि वृहत को,
9. स्वतंत्र स्वायत्त व्यक्ति की अवदारणा को नकारता है और अराजक, सामूहिक, अनाम अनुभवों, विभिन्नता आदि को महत्त्व देता है।
10. आधुनिकता से जुड़े सामाजिक कायदों, व्यवस्थाओं को समाप्त कर देने पर बल देता है।

सबसे पहले तो आधुनिकोत्तरवाद वृहत् कथानक की अवधारणा का खंडन करत है क्योंकि ऐसे कथानक उन विषमताओं व विरोधाभासों के ढक देते हैं जो किसी भी सामाजिक व्यवस्था में होते ही हैं. दूसरे शब्दों में, 'व्यवस्था' तैयार करने की ललक में उतनी ही बड़ी 'अव्यवस्था' को जन्म देना पड़ता है। आधुनिकोत्तरवाद छोटे कथानकों के पक्ष में हैं, वे कथाएं जो छोटी प्रक्रियाओं को समझाएं, स्थानीय घटनाओं की बात करें न कि बड़े स्तर की भूमण्डलीय अवधारणाओं की। ये छोटे कथानक परिस्थितियों पर आधारित, अंतरकालीन, अस्थाई व तात्कालिक महत्त्व के होते हैं व सार्वभौमिकता का कोई दावा नहीं करते। यह पश्चिमी आधुनिकतावाद व व्यक्तिवाद का एक कटाक्षपूर्ण नाटकीय पैरोडी है, मनुष्य को परिभाषित करने, उसकी स्तुति करने, उसकी परिभाषा प्रस्तुत करने के सभी प्रयासों को नकारती हुईं।

आधुनिकोत्तर समाजों में ज्ञान प्रकार्यात्मक होता है- आप ज्ञान पाने के लिए नहीम सीखते हैं। अत: विद्यालयों व विश्वविद्यालयों में कौशल व प्रशिक्षण पर बल दिया जाना चाहिए न कि गूढ़ मानवतावादी आदर्शों की शिक्षा पर। प्रश्न यह नहीं है कि उपाधि किस तरह से मिले, प्रश्न यह है कि उस उपाधि का उपयोग किस तरह से होगा। उत्पादन, भंडारण, वितरण के तरीके और जानकारी की व्यवस्था आई.सी.टी. आधारित है। तो ऐसे में ज्ञान का विपरीतार्थक शब्द अज्ञान नहीं, ज्ञान को डिजिटल खांचो में न डाल पाने की असमर्थता को कहेंगे।

आधुनिकोत्तरवाद के विषय में कोई प्रश्न पूछे जाने बाकी हैं- क्या विखंडन की प्रक्रिया, अंतरकालिकता व अस्थिरता मानव व समाज के हित में है? वृहत् कथानकों पर प्रश्नचिह्न लगाने के फलस्वरूप धार्मिक कट्टरवाद प्रतिक्रिया स्वरूप उभरा है यह आधुनिकोत्तरवाद का एक परिणाम लगता है। सलमान रश्दी की 'सेटेनिक वर्सेस' को इस्लामी देशों में प्रतिबंधित कर दिया गया तथा तसलीमा नसरीन की पुस्तक को बांग्लादेश में प्रतिबंधित कर दिया गया क्योंकि वे एक वृहत् इस्लामी कथानक को विखण्डित करके प्रस्तुत कर रहे थे।

गांधी द्वारा प्रस्तुत विकल्प

गांधी ने तथाकथित आधुनिक युग में कार्य किया। जब उन्होंने 1908 में हिन्द स्वराज लिखी उन दिनों संपूर्ण यूरोप व अमेरिका में आधुनिकतावाद का लहर चल रही थी जिसने बाकी के विश्व को बंधक बना रखा था। गांधी ने आधुनिकता की अवधारणा के कई पक्षों पर प्रश्न लगाए। उन्होंने एक ऐसा मार्ग दिखाया जो आधुनिकोत्तरवाद से भी परे था और उसने मानवता के समक्ष यह चुनौती रखी कि जीवित रहना और अपने भविष्य की ओर अग्रसर होना चाहती है तो उसे उन चुनौतियों का ससामना करना होगा।

अब मैं आपके सामने गांधी की कुछ मान्यताएं प्रस्तुत करता हूं जो उन्हें आधुनिकतावाद व आधुनिकोत्तरवादी के संदर्भ में समझने में सहायक होंगी।

1. गांधी मनुष्य व प्रकृति में भेद नहीं मानते थे, मनुष्य प्रकृति का एक अभिन्न अंग है। एक वैश्विक नियम है जिसने संपूर्ण ब्रम्हाण्य को संतुलन में रखा हुआ है। यह नियम सर्वव्यापी है और इसका पालन सभी को करना चाहिए, मनुष्यों को भी।
2. गांधी ने डार्विन के प्रजातियों के उद्विकास के सिद्धांत को भी नकार दिया क्योंकि वह योग्यतम की उत्तरजीविता पर आधारित था। वे प्रजातियों में परस्पर सहयोग को उनमें प्रतिस्पर्धा से अधिक शक्तिशाली तत्व मानते थे। साथ ही वे सहयोग व प्रतिस्पर्धा पर हल देता है और सहयोग के पक्ष की अनगेखी करता है। तो यह देखने वाले की दृष्टि है जो दोनों एक दूसरे के पूरक तत्वों को भिन्न मानती है।

3. मानव शरीर केवल कोशिकाओं, ऊतकों व अंगों का एक संकलन मात्र नहीं होता। उसमें शरीर, मानस व आत्मा होते हैं और वे तीनों आपस में जुड़कर संपूर्ण मानव का निर्माण करते हैं। मानस बिना मनुष्य पशु समान होंगे और आत्माहीन पशुओं से भी निकृष्ट।
4. मानव की प्रगति व भौतिक प्रगति एक बात नहीं है। मानव की प्रगति तो उसकी नैतिक प्रगति में है जिसके द्वारा वह चेतना के उच्च स्तरों पर पहुंचता है। भौतिक प्रगति तभी तक आवश्यकता है जब तक वह नैतिक प्रगति में सहायक हो। अतः पश्चिम में प्रचलित प्रगति की अवधारणा, जो कि भौतिक व तकनीकि प्रगति का पर्याय है, को मानवता का ध्येय नहीम माना जा सकता। अधिक से अधिक इसे केवल साधन माना जाना चाहिए और इसलिए इसे वास्तविक मानवीय प्रगति के ध्येय के अनुरूप संचलित किया जाना चाहिए। साथ ही, जब नैतिक प्रगति के मार्ग में बाधक सिद्ध होने लगे तब इसे छोड़ देना चाहिए।
5. मानव प्रगति न ही रेखीय है जैसा कि पश्चिम में मान्यता है और न ही यह चक्रीय है जैसा कि पूर्व-आधुनिक व आधुनिकोत्तर में विभाजन सर्वथा मनमाना व अवैज्ञानिक है।
6. पश्चिम में जो इतिहास लिख दिया गया है वह मानव प्रगति का सत्य इतिहास नहीं है। वह तो केवल मानव द्वारा की गई प्रगति की मुख्य तरंगों से जहां-जहां भी पथभ्रष्टता हुई वहां-वहां का विवरण मात्र है और कुछ नहीं। यह तो युद्धों, राजाओं, महाराजाओं का इतिहास है, यह मानव समाज का इतिहास नहीं है।
7. मानवता के जीवित रहने व उसके विकास के लिए स्वराज ही ध्येय होना चाहिए, व्यक्तियों, सामुदायों, समाजों व राष्ट्र का स्वराज। स्वराज केवल सर्वोदय द्वारा ही पाया जा सकेगा अर्थात् सभी के सर्वांगीण विकास द्वारा। स्वराज का अर्थ है आत्मनियंत्रण और सर्वोदय का अर्थ है सभी का नैतिक व भौतिक विकास : सबको उनकी क्षमता के आधार से सबको उनकी आवश्यकता के अनुसार तक।

आधुनिक सभ्यता के विषय में उनके विचार पूछे जाने पर एक प्रश्न के उत्तर में गांधी ने कहा, ‘यह एक अच्छा विचार है’ वे आधुनिक सभ्यता को एक ऐसी सभ्यता मानते थे

जिसने मनुष्यों को एक ऊंचे नैतिक मंच पर रख दिया था। और क्योंकि वैसा नैतिक उत्थान हो नहीं पाया था अत: उसे एक 'विचार' ही कहा जाएगा।

गांधी ने 'आधुनिक सभ्यता' पर टिप्पणी करते हे उसे रोग की संज्ञा दी जिसका इलाज होना चाहिए। वे 'पूर्व आधुनिक भारतीय सभ्यता' को बीसवीं सदी की 'आधुनिक सभ्यता' से अधिक आधुनिक मानते थे क्योंकि उनमें आधुनिकता के रोग का इलाज छिपा था। वे शारीरिक कल्याण को जीवन का मुख्य ध्येय मानने वालों में नहीं थे। अत: भौतिक प्रगति, जो कि आधुनिकता का मूल समझी जाती है, जीवन का अंतिम ध्येय नहीं हो सकती। अधिक से अधिक वह केवल जीवन के उच्चतर लक्ष्यों की प्राप्ति का साधन मात्र हो सकती है। इसी प्रकार, वैज्ञानिक व तकनीकी प्रगति के विध्वंसकारक नकारात्मक पत्र की अनदेखी खतरनाक हो सकती है। उनके शब्दों में-

"यह सभ्यता न तो नैतिकता और न ही धर्म पर ध्यान देती है। इसके समर्थक शांतिपूर्वक कह देते हैं कि धर्म सिखाना उनका काम नहीं है। कुछ तो उसे अंधविश्वास की उपज मानते हैं। अन्य धर्म का लबादा ओढ़कर नैतिकता पर भाषण देते हैं। किंतु हीस वर्षों के अनुभव से मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि अनैतिकता बहुत बार नैतिकता के नाम पर सिखाई जाती है...सभ्यता शारीरिक आराम के साधन बढ़ाने का प्रयास करती है और वैसा भी कर पाने में पूरी तरह असफल रहती है।[1]

यह सभ्यता ऐसी है कि इसे केवल धैर्यपूर्वक इंतजार करने की आवश्यकता है यह स्वयं ही नष्ट हो जाएगी। मोहम्मद के उपदेशों के अनुसार तो इसे एक शैतानियत की सभ्यता माना जाएगा। हिंदु धर्म इसे कलियुग कहता है.....यह अंग्रेज राष्ट्र के महत्त्वपूर्ण अंगों को खा रही है... सभ्यता एक लाइलाज बीमारी नहीं है, किंतु यह कभी नहीं भूलना चाहे कि इस समय अंग्रेज जनता इससे ग्रसित है।"[2]

गांधी ने आधुनिकता के साथ चलने वाले संस्थाओं पर भी कुठाराघात किया। उन्होंने संसद, रेल यातायात, वकीलों, डॉक्टरों, मशीनों व शिक्षा व्यवस्था का विशेष रूप से नाम लिया। उनकी टिप्पणीयां हमारे आज की संसद व राज्य विधानमंडलों पर कितनी सटीक

बैठती है। यह निश्चित ही हमारा दुर्भाग्य है कि गांधी की चेतावनियों के बावजूद हमने ब्रिटिश सरकार को तो उखाड़ फेंका किंतु ब्रिटिश समस्थाओं को हृदय से लगे रखा।[3]

रेलगाड़ी गति का प्रतीक थीं, उनमें हमारी गतिशीलता बढ़ी, शहरों की संख्या बढ़ी और वे अधिकाधिक शोषक होते गए, ग्राम निर्धन होते गए व वह मानवीय पक्ष जिसे भारतीय सभ्यता की आत्मा माना जाता था, आधुनिकता की आश्चर्यचकित कर देने वाली दुनिया में कहीं खो गया। वे न तो रेल व्यवस्था के विरुद्ध थे न ही गति के। एक निर्माणकारी योजना द्वारा लोगों को करीब लाकर वे इन दोनों के दुष्प्रभावों को कम करना चाहते थे। यदि लोगों का जीवन स्तर बेहतर होगा, आत्मा-शासन को हल मिलेगा और सहयोग के कार्यों में लोगों को संलग्न करने वाली संस्थाओं को यदि बल मिलेगा तो स्वराज के लिए आवश्यक आधार की स्थापना हो सकेगी।

गांधी के कानून, व्यवस्था, चिकित्सकों, शिक्षा, तकनीक आदि 'आधुनिक सभ्यता' के साधनों पर की गईं टिप्पणियां आज भी उतनी ही सटीक बैठती हैं जितनी वे 1908 में थीं। देखिए वकीलों और डॉक्टरों के विषय में उनका क्या कहना था।

"यह मेरी दृढ़ मान्यता है कि वकीलों ने भारत को गुलाम बना रखा है...जो अपनी शक्ति को बढ़ाना चाहते हैं वे ऐसा अदालतों द्वारा करते हैं...डॉक्टरों ने तो हमें लगभग विक्षिप्त ही कर डाला है। कभी-कभी तो मैं सोचता हूं कि नीम हकीम ही इन ऊंची योग्यता प्राप्य डॉक्टरों से बेहतर हैं....अस्पताल तो पाप को बढ़ावा देने वाली संस्थाएं हैं।"[4]

शिक्षा व मशीनों पर उनके विचार इतने ही रूढ़िमुक्त, परिवर्तनवादी व आज के संदर्भ में भी प्रासंगिक हैं, "चरित्र निर्माण का (शिक्षा में) प्रथम स्थान होना चाहिए और यही प्रारंभिक शिक्षा हैं। उस नींव पर खड़ी इमारत अधिक समय तक टिकी रहेगी।" गांधी उदारवादी शिक्षा के प्रोफेसर ऑल्डस हक्स्ले की परिभाषा की सराहना करते हुए उद्धरण करते हैं।[5]

"मेरे विचार में, उस इंसान ने उदारवादी शिक्षा प्राप्त की है जिसके शरीर को युवावस्था में ऐसे प्रशिक्षण मिल गया है कि वह उसकी इच्छा का पालक है और एक यंत्र का भांति वह सभी कार्य आराम व प्रसन्नता से करता है जिनकी उसमें क्षमता है, जिसकी बुद्धि स्पष्ट व शांत है, एक युक्तिसंगत इंजन की भांति जिसके सभी भाग बराबर क्षमता वाले व सुचारु

रूप से चलने वाले हैं...जिसकी मस्तिष्क में प्रकृति के मूल सत्य का ज्ञान भरा है...जिसकी कामनाएं एक शक्तिशाली इच्छाशक्ति द्वारा संचालित होने के लिए प्रशिक्षित हैं, एक मृदुचित्त के सेवकों की भांति...जो सब प्रकार की कुटिलताओं से घृणा करता व औरों को अपने सा जान सम्मान करता है क्योंकि वह प्रकृति के साथ तारतम्य बैठाया हुआ (व्यक्ति) है। वह प्रकृति को सर्वोत्तम बना देगा व प्रकृति उसे।"

गांधी ने सच्ची सभ्यता की परिभाषा निम्नलिखित शब्दों में दी।

"सभ्यता वह आचार संहिता हा जो मनुष्य को कर्तव्य का मार्ग दिखाती है। कर्तव्य का पालन व नैतिकता का पालन करना पर्यायवाची शब्द हैं। नैतिकता के पालन का अर्थ है अपने मन व कामनाओं पर प्रभुत्व पा लेना। ऐसा करने में हम स्वयं को जान पाते हैं[6]...भारतीय सभ्यता की प्रवृत्ति नैतिकता को उच्चता प्रदान करने की है, पश्चिमी सभ्यता की अनैतिकता को बढ़ावा देने की... प्रत्येक भारत प्रेमी को शोभा देता है कि वह भारत की प्राचीन सभ्यता से इसी प्रकार चिपटा रहे जैसे एक शिशु अपनी मां की छाती से।"[7]

क्या गांधी एक आधुनिकोत्तरवादी थे?

गांधी के समय-काल के दौरान आधुनिकोत्तरवाद एक प्रतिमान के रूप में उभरा नहीं था। यहां-वहां विरोध की आवाजें उठने के बावजूद बीसवीं सदी का पूर्वाद्ध आधुनिकतावाद के अंतिम चरण की परकाष्ठा थी. गांधी ने धुनिकतावाद के मूल विचारों पर जो प्रश्न उठाए वे आधुनिकता की आलोचना विध्वंसकारक थी, का प्रतिनिधि तक मानने से इंकार कर दिया इसे उन्होंने अवनतिशील, अदोगामी करार दिया। वे आधुनिक सभ्यता को अधोगामी इसलिए मानते थे क्योंकि वह वास्तविक मानव प्रगति के मार्ग में रुकावट थी, जो कि और कुछ नहीं बल्कि नैतिक प्रगति की। तथाकथित आधुनिक सभ्यता मानव को प्रकृति व अन्य मनुष्यों को दमित करने की, दूसरों की गरिमा, जीवन धार व मौलिक मानवीय आधिकारों को नष्ट करने की शक्ति प्रदान करता है। गांधी के अनुसार, आधुनिकता वह पथभ्रष्टता है जो मानव ने अपनी परम नियति की ओर ले जाने वाले मार्ग को त्याग कर अपनाई है।

जिस दुनिया में हम आज जी रहे हैं वह दुनिया हिंसा, घृणा, लोभ व स्वार्थपरकता से भरी है. यह सत्य है कि यह वह दुनिया है जिसमें बहुत-सी वस्तुएं मनुष्य के लिए सुलभ है, जिनकी हमारे पूर्वज केवल कल्पना ही कर सकते थे किंतु इस भौतिक संपन्नता के दिखावे के पीछे एक टूट कर बिखरी हुई मानवता व एक अनिश्चित भविष्य है। यह एक भगौड़ी दुनिया है: एक ऐसी दुनिया जिसे संभालना अकेले या सामूहिक रूप से भी असंभव है। हम स्वीकारते हैं कि हमें अपने जीवन का, समय की नई आवश्यकता के साथ, सामंजस्य बिठाते रहना पड़ेगा जब वह एक विपदा से दूसरी में जा पड़ता रहेगा। गांदी ने इस असहायताभाव को चुनौती दी और यह साबित कर दिया कि आधुनिकोत्तरवाद और कुछ नहीं बल्कि आधुनिकतावाद का ही विस्तार है जो उसे संपूर्ण ग्रहण लगनो से बचने का एक प्रयास उन्होंने मनुष्यों में मानवता को पुनर्जागृत करने का मार्ग दिखाया और उसे एक नए भविष्य की ओर निर्देशित किया- हिंसा, घृणा, असमानता व शोषण रहित भविष्य का। उन्होंने मार्ग ही नहीं दिखाया उस पर चलना कैसे, यह भी सिखाया।

यहां यह बता देना उचित होगा कि गांधी ने पश्चिमी सभ्यता को नहीं नकारा था। उनका प्रहार आधुनिक औद्योगिक सभ्यता पर केन्द्रित था जो प्रकट अवश्य यूरोप (पश्चिम) में हुई थी किन्तु उसकी जड़ें पश्चिमी सभ्यता में नहीं थीं। वे पश्चिमी सभ्यता के कई गुणों के प्रशंसक थे जैसे उदारवाद, लोकतंत्र, व्यक्ति की गरिमा आदि। गांधी उसके घोर आलोचक इसलिए थे क्योंकि जब दूसरी सभ्यताओं व समाजों के संबंध की बात आई तो वह (पश्चिम) अपने सिद्धांतों से मुकर गया। नहीं तो कैसे उसने इतनी प्रजातियों, लोगों व सभ्यताओं को नष्ट करने में योगदान दिया (जो बाद में लैटिन अमेरिका कहलाए)? अन्यथा कैसे उसने यूरोप व एंग्लो-अमेरिका के अलावा बाकी के पूरे विश्व की महान् सांस्कृतिक विरासतों को दो सदियों तक अपने पांव तले दबाए रखा? अन्यथा कैसे उसने गैर-यूरोपियों से स्व-शासन के अधिकार के छीना?

आधुनिकोत्तरवाद पश्चिम द्वारा मानवता पर किए गए अन्याय की भरपाई करने में कोई विशेष कार्यशील नहीं रहा है। वह मात्र एक क्षमा प्रार्थना थी, केवल एक बौद्धिक कार्यवाही जो अब तक के त्रस्त लोगों द्वारा सिर उठाने पर प्रस्तुत कर दी गई। उसे समानता, सम्मान व न्यायोचितता लाने के लिए कभी वास्तव में कार्यांवित नहीं किया

गया। गांधी की उन बौद्धिक आंदोलनों में कोई रुची नहीं थी जो तिरस्कृत, पिछड़े हुए और भौतिक अथवा आध्यात्मिक रूप से हीन व्यक्तियों का उद्धार न करे। वे आधुनिकोत्तरवादियों से कहीं आगे थे और एक ऐसा प्रतिमान प्रस्तुत किया जो न केवल राजनैतिक रूप से बंधक पड़े गैर-यूरोपियों को बल्कि आध्यात्मिक रूप से पिछड़े यूरोपियों को भी मुक्ति दिला सकता था।

गांधी को पश्चिम सभ्यता से, जो उनके समय में औद्योगिक सभ्यता के रूप में प्रकट हुआ थी, दो प्रमुख शिकायतें थीं। वह सच्चे अर्थ में आधुनिक नहीं थी। वह प्रगति के वास्तविक मार्ग, जो कि नैतिक प्रगति का ही मार्ग है, को त्याग कर पथभ्रष्ट हो गई थी। मनुष्य तब सही मायनों में मनुष्य कहलाएग जब वे नैतिकता व आचार की कसौटी पर खरा उतरे. दूसरा, वह दूसरी सभ्यताओं, लोगों व प्रजातियों से व्यवहार करते समय अपने ही मूल्यों व सिद्धातों पर टिकी नहीं रहती। वास्तव में उन्हें नियमों, मुल्यों की अवमानना के लिए अधिक जाना जाता है, बजाए कि उनके पालन के लिए। गांधी के आधुनिकतावाद के प्रतिमान की जड़ें अहिंसा (मनसा-वाचा-कर्मणा), सर्वोदय अर्थात् सभी का सर्वांगीण उत्थान स्वराज अर्थात आत्म-नियंत्रण में थी। वह केवल एक विचार मात्र न होकर एक व्यवहारिक कार्य योजना थी जिसे उन्होंने कार्यांवित भी किया। वे बौद्धिक वाद-विवाद के मुकाबले में कार्य करने में विशवास रखते थे। वे तार्किक व बौद्धिक के परे नैतिक रूपरेखा के भीतर तार्किक व बौद्धिक की ओर ले चले। जैसे को तैसे का सिद्धांत ऐन्द्रिक प्रतिक्रिया के तर्क अनुसार तो सही है किंतु यह एक प्रबुद्ध मनुष्य की प्रतिक्रिया नहीं होनी चाहिए। गांधी हिंसा के स्थान पर नैतिक सुधार का मार्ग कहीं उचित मानते थे, उनका दर्शन फलसफा एक शांतिपूर्ण विश्व व्यवस्था के निर्माण में प्रयत्नशील था व वह वास्तविक मानव प्रगति का मार्ग सुझाता था।

इस संदर्भ में मैं डेविल हार्डिमैन की पुस्तक “गांधी इन हिज टाइम्स एंड अवर्स” (2003) से उनके गांधी की आधुनिकता की आलोचना पर कुछ शब्दों को प्रस्तुत करना चाहूंगा।[8]

“आमतौर पर जिसे गांधी की ‘आधुनिकता की आलोचना’ कहा जाता है वह आलोचना उन्होंने भौतिकवाद व यांत्रिक तार्किकता की विचारधारा, वैज्ञानिक व तकनीकी

प्रगति, बड़े स्तरों पर उत्पादन, तेज यातायात, ऐलोपैथिक दवाओं, लोकतंत्र की संसदीय व्यवस्था आदि की है। इसके साथ-साथ ऐसा विश्वास कि जो इन मूल्यों में विश्वास करते हैं उनका कर्तव्य है कि इन मूल्यों को बाकी के विश्व पर भी लादा जाए। इसके विपरीत उन्होंने एक परिभाषा प्रस्तुत की जिसमें उन्होंने एक वास्तविक सभ्यता के लक्षण बताए व कहा कि (ऐसी सभ्यता) एक वैकल्पिक नैतिकता में पनप सकती है। इस विषय में उनके विचार हिन्द स्वराज में स्पष्ट रूप से दिए गए हैं।"

अब हम इस विवेचन के उस स्तर पर पहुंच चुके हैं जहां हम आधुनिक सभ्यता द्वारा हमारे सामने खड़ी की गई कुछ बड़ी चुनौतियों पर विचार करेंगे और देखेंगे कि गांधी की वौकल्पिक आधुनिकता का प्रतिमान इनका सफलतापूर्वक सामना करने में किस प्रकार प्रयुक्त किया जा सकता है।

आधुनिकता के नए आयाम

भूमंडलीकरण

आज भूमंडलीककरण विश्व के सर्वाधिक लोकप्रिय शब्दों में से एक है। प्रत्येक भाषा में इसका एक प्रतिरूप अंकित किया जा चुका है।जीवन के किसी भी पक्ष को ले लें, भूमंडलीकरण का प्रभाव सभी पर मिलेगा। किंतु दो क्षेत्रों में यह विशेष रूप से प्रदर्शित होता है-सूचना संचार तकनीकि व अंतर्राष्ट्रीय व्यापार और उससे जुड़े वित्तीय लेन-देन में। सूचना संचार तकनीकी ने विश्व को एक ग्राम में परिवर्तित कर दिया है। हम एक दूसरे के इतने निकट हैं, दूरी महत्त्व नहीं रखती। दुर्भाग्य से, आधुनिक तकनीकी की इस भेंट का सदुपयोग से अधिक दुरुपयोग किया गया है। हम एक-दूसरे के निकट हैं किंतु आध्यात्मिक स्तर पर एक-दूसरे से बहुत दूर हैं। तकनीकी तटस्थ होती है, उसे निर्माणकारक या विध्वंसकारक किसी भी रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है। सब इस पर निर्भर करता है कि हम मनुष्य किस तरह के हैं?

अब देखें कि इलेक्ट्रानिकी संचार कितनी रफ्तार से चलता है। 1849 में मॉर्स ने बिंदुओम व रेखाओं वाली एक व्यवस्था का अविष्कार किया था जिसे समुद्री जहाजों पर संदेश भेजने के लिए प्रयोग किया जाता था। फरवरी 1999 में उसने अपना अंतिम संदेश

प्रसारित किया, “सभी के लिए संदेश। सदा के लिए शांत हो जाने से पहले की हमारी यह अंतिम पुकार है।” नई संचार व्यवस्था ने हमारे जीवन को बदल डाला है, चाहे हम कहीं भी रहते हों। अभी पीछे विध्वसंकारी सुनामी की आपदा में फसें लोग जैसे-तैसे बचा-खुचा बटोरने की कोशिश में लगे थे, मैंने टेलिविजन स्क्रीन पर एक स्त्री को देखा जो अपना सब कुछ गवां चुकी थी , परिवारजनों को भी, वह टेलिविजन सेट को लेकर अपने बच्चों समेत सहायता-शिविर की ओर बढ़ रही थी। इलेक्ट्रोनिक संचार हमारे जीवन का एक अंग बन गया है। उसमें संयुक्त सोवियत राज की ‘बंद’ व्यवस्था को गिराने में भूमिका निभाई और लोकतांत्रिक व अलोकतांत्रिक, उन सभी प्रशासनों को भी सशंकित कर रही है जो जनतापरक व पारदर्शी नहीं है। भूमंडलीकरण केवल अर्थव्यवस्था तक ही सीमित नहीं है, उसने तो हमारे घरों व हृदयों के अंतरतम क्षेत्रों में प्रवेश कर लिया है।

विश्व-व्यापार का स्तर का स्तर आज सर्वाधिक ऊंचा चल रहा है और भूमंडलीय वित्तीय लेन-देन की मात्रा भी बहुत बढ़ गई है। भूमंडलीय मुद्रा बाजार में प्रतिदिन एक लाख करोड़ से अधिक का विनिमय होता है। इसका एक अंदाज दें तो यूं कह सकते हैं कि हजार रुपये वाले डॉलर के नोटों को यदि एक के ऊपर एक रखते जाएं तो एक लाख करोड़ होने के लिए वह ढेर 195 किमी. ऊंचा होगा, माउंट ऐवरेस्ट से बीस गुना ऊंचा। यह विनिमय हमारे जेबों में और हमारे बैंक खातों में रखे धन का मूल्य निर्धारित करता है।

भूमंडलीकरण का एक प्रभाव और है जिसे हममें से बहुत लोग देख नहीं पाते। यह संपन्न को ऊंचा उठाता है और विपन्न को नीचे ढ़केलता है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि उन दोनों के लिए समान अवसर नहीं है। जैसे-जैसे राष्ट्र बड़ी भूमंडलीय समस्याओं को सुलझाने में बहुत छोटे पड़ जाते हैं वैसे ही वे स्थानीय समस्याओं को सुलझाने के हिसाब से बहुत छोटे पड़ जाते हैं। साथ ही भूमंडलीकरण के कुछ अप्रत्यक्ष प्रभाव भी पड़ते हैं- यह श्रेष्ठता व अभाव का क्षेत्र बना देता है, जो धनी व निर्धन व्यक्तियों, समूहों व इलाकों में दूरियों को और बढ़ा देते हैं। तो बैंगलोर भारत की ‘सिलिकॉन वैली’ बन जाता है और उसी के कुछ किलोमीटर की दूरी पर किसानों को आत्महत्या के लिए बाध्य होना पड़ रहा है क्योंकि खेती अब उनका भरण-पोषण करने योग्य आमदनी नहीं देती। विश्व के निर्धनतम लोगों

का भूमंडलीय आमदनी में हिस्सा निरंतर कम होता जा रहा है। 1990 में 2.30 प्रतिशत से गिरकर 2000 में 1.4 प्रतिशत तक आ चुका है और आज यह कुछ और नीचे आ गया होगा।

विश्व श्रम संगठन के अनुसार, 120 करोड़ लोग बेरोजगार हैं व 700 करोड़ अल्प रोजगार प्राप्त हैं। 1300 करोड़ लोग नितांत निर्धनता में जीते हैं, वे प्रतिदिन एक अमेरिका डॉलर से कम आमदनी पर निर्वाह करती है। यदि हम अभी के मानव विकास ब्यौरा के आंकड़ों पर नजर डालें तो 1990 से अब तक विश्व के 46 देश पहले से निर्धन हो गए हैं। विश्व की आमदनी का मात्र एक प्रतिशत विश्व के निर्धनतम बीस प्रतिशत लोगों के हिस्से में आते है। 1990 में यह 1.4 प्रतिशत था। साथ ही 358 अरबपतियों की सारी संपत्ति को जोड़ दें तो यह 2300 करोड़ लोगों अर्थात विश्व के चालीस प्रतिशत लोगों की सालाना आमदनी से अधिक है।

भारत के आंकड़ें भी विचलित कर देते है। संकटग्रस्त होकर आत्महत्या कर लेने वाले किसानों की संख्या असाधारण रूप से बढ़ी है। बेरोजगारी व अल्परोजगारी की दर भी लगातार बढ़ रही है और गरीबी रेखा से नीचे लोगों की संख्या तेजी से बढ़ी है। साथ ही भारत में अरबपतियों की संख्या 1995 में 71 से बढ़कर 2005 में 311 तक पहुंच गई है। सामाजिक क्षेत्र में भी स्थिति उतनी ही भयानक है। भारत की आधी आबादी अनपढ़ है। विश्व-स्तरीय विश्वविद्दालयों की धरती (आई आई एम व आई आई टी) पर उच्च शिक्षा बुरी हालत में है। उसकी देश की बेरोजगारी व अल्परोजगारी जैसी समस्याओं के लिए कोई प्रासंगिकता नहीं है। जैसे अस्पतालों और डॉक्टरों की संख्या बढी है तो लोगों के स्वास्थ्य में गिरावट आई है। हैजा, महामारी, चेचक जैसे प्रमुख घातक रोगों पर नियंत्रण से मृत्यु दर तो घटी है किंतु अस्वस्थता की दर नहीं घटी है।

और इन सबके साथ ही देश का पर्यावरण व पारिस्थितिक संतुलन जिन खतरों का सामना कर रहा है वे भी बढ़ गए हैं। यह केवल समाप्त होते प्राकृतिक संसाधनों का ही प्रश्न नहीं, जो संसाधन हैं उनका दुरुपयोग हो रहा है। प्रकृति, राष्ट्र, परंपरा,विवाह, परिवार, काम आदि के अर्थ बदल रहे हैं जिससे कई अप्रत्याशित नुकसान हुए हैं। पंचभूत (पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि व आकाश) संकट में हैं। जैसे-जैसे भूमंडलीकरण विकेन्द्रित होता जा रहा है, उससे होने वाले खतरे भी समाज व अर्थव्यवस्था में व्यापक रूप से फैलते जा रहे हैं। हमारे

पास उनका सामना करने वाली योग्य प्रबंधकीय प्रणाली का अभाव है। जो संस्थाएं कभी अच्छा काम कर रही थीं वे अब मंद पड़ गई है, वे आज की उभरती समस्याओं को सुलझाने में असमर्थ हैं। वे खोखली बन गई हैं, बाहर से चमक और मजबूत बरकरार है, किंतु अंदर से सब सड़-गल गया है।

हमारी दुनिया आज पहले से कहीं हानिकारक हो गई है। प्राकृतिक आपदा जिन संकटों को साथ लाती है वे तो सदा से जीवन का एक अंग रही है। भारत, श्रीलंका, इंडोनेशिया, मलेशिया व थाईलैण्ड आदि शहरों में हाल में ही आये सुनामी को एक संकेत माने तो प्राकृतिक आपदाओं का रोष बढ़ ही है। बीते दिनों में लोग प्रकृति के साथ काम करते थे, वे सामंजस्य के प्राकृतिक सिद्धांत के अनुरूप चलते थे। जब आपदाएं आती भी तो वे कम विध्वंसक होतीं थीं। लोग इनसे निपटने के लिए भौतिक व मानसिक रूप से तैयार होते थे। आपदा आने पर लोग आपस में सहयोग का भाव रखते थे। कोआ भी सरकार पर दोष नहीं मढ़ता था न ही सरकारी सहायता की प्रतीक्षा करते थे। इससे खतरा तो घयता ही था, सामुदायिक भाईचारा भी प्रशस्त होता था।

'आधुनिकीकरण' ने समस्याएं सुलझाने के पुराने तरीकों में अधिकांश को बदल डाला। भाग्य की अवधारणा का स्थान भविष्य के चिंतन ने ले लिया। मनुष्य प्रत्येक दृश्य वस्तु का मालिक बन बैठा। वह प्रकृति पर प्रभुत्व पाने की इच्छा रखा रहा था। विज्ञान व तकनीक से लैस होने के कारण उसने इच्छानुसार प्रकृति से छेड़छाड़ शुरु कर दी। औद्योगिकीकरण, नगरीकरण, व गतिवान वाहनों के लिए प्रकृति को काबू करने की एक भागम-भाग सी मच गई। प्रकृति पर नियंत्रण की ओर बढ़े मानव के प्रत्येक कदम ने उसे अल्पकालिक भौतिक लाभ प्रतीत हो रहा था वह वास्तव में हानि निकली। जिसे हम कुछ वर्ष पूर्व प्रगति की ओर बढ़ा एक मानव कदम मानते थे अब उसके द्वारा हुआ हानि की क्षतिपूर्ति के लिए हम करोड़ों डॉलर खर्च कर रहे हैं।

अब भविष्य मानो लौटकर आकर हमें उसे संभालने के नए तरीके ढूंढ़ने को बाध्य कर रहा है। हम एक नए खतरे का सामना कर रहे हैं, वह खतरा जो स्व-निर्मित है। ये पर्यावण व वातावरण से संबंधित खतरें हैं, जो गरीबी, असमानता व गरिमा के हनन के खतरों के सत्रहवीं हैं। हमारी रुची यह जानने में कम है कि प्रकृति हमारे साथ क्या कर सकती है और

हमारे लिए क्या कर सकती है और इसमें ज्यादा है कि हम प्रकृति का क्या कर सकते हैं ताकि वह हमारे आदेशों के अनुरूप चले। हम जानते ही नहीं कि प्रकृति से खिलवाड़ के क्या दुष्परिणाम हो सकते हैं,-जीन संवर्ध्दन, जीवाश्म ईंधन के उपयोग, बढ़े स्तर पर शहरीकरण और बढते परमाणु अस्त्रों आदि के क्या दुष्परिणाम हो सकते हैं। हम वैज्ञानिकों पर भी निर्भर नहीं हो सकते क्योंकि वैज्ञानिक खोज कभी भी निर्णयात्मक नहीं होती। और बहुत बार विज्ञान के पास पमारी समस्याओं का कोई उपाय नहीं होता।

ये स्वनिर्मित खतरे केवल पर्यावरण तक सीमित नहीं हैं। हम उतना या उससे भी बढ़ा खतरा मोल लेते हैं जब हम पारिवारिक नातों, विवाह की परंपरा व अन्य पारंपरिकताओं का त्याग करते हैं। आप ही सोचिए कि शारीरिक संबंधों में स्वच्छंदता से क्या सामने आया? विज्ञान ने तो कभी नहीं बताया कि एड्स जंगल की आग की तरह फैल जाएगा। हम यह जानते ही नहीं हैं हमारी सेहत के साथ और क्या हो सकता है। बहुत-सी परंपराएं हजारों वर्षों के वास्तविक जीवन के अनुभवात्मक ज्ञान पर आधारित होती हैं। आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञान प्रयोगशाला में नियंत्रित प्रयोगों से प्राप्त हुआ होता है। दोनों ही महत्त्वपूर्ण हैं, उन्हें एक-दूसरे को प्रति-परीक्षण कर मनुष्य को चेतनता की अगली ऊंचाइयों तक जाने में सहायता देनी चाहिए।

यह वह दुनिया है जिसमें मानव निर्मित खतरे प्राकृतिक संकटों से भी अधिक डरावने हैं। ये मानव निर्मित खतरे दोमुहें होते हैं, वे सभी को प्रभावित करते हैं। प्राकृतिक आपदओं, जैसे मौसम के परिवर्तनों, परमाणु संकटों, आतंकवाद व अन्य प्रकार की हिंसाओं के रूप में, सब ओर फैली निर्धनता के रूप में और फैलती-फूलती अर्थव्यवस्था के बीच असमानता के रूप में। यह सब हमें व्यक्तिगत स्तर पर भी प्रभावित करता है- हम जो भोजन करते हैं उसके द्वारा, जो दवाएं हम लेते हैं उनके द्वारा, जो शिक्षा हम प्राप्त करते हैं और जो काम हम कर सकते हैं उसके द्वारा।

मानवीय मूल्यों का ह्रास

हम अपारंपरिक होने में गर्व का अनुभव करते हैं। किसी की पारंपरिक कहना गाली देने जैसा हो गया है क्योंकि उसका अर्थ होता है वह व्यक्ति रहस्यमय धार्मिक रीतियों को

संदेह रहित ही मानवता हो। परंपराएं भी जीवन, जिन्दगी व क्रियाओं की रूपरेखा प्रदान करती हैं। ऐसे लोग हैं जो परंपराओं की रक्षा करते हैं- ज्ञानी, वृद्ध, पंडित, संत आदि। उन्हीं के पास समझने की शक्ति व सौभाग्य है। प्रत्येक परंपरा किसी न किसी समस्या के समाधान के रूप में उभरी थी। जब परिस्थितियां बदलीं तब परंपराएं भी तदानुसार बदलीं हालांकि वे धीरे-धीरे ही बदलती हैं। इस प्रकार परंपराओं का भी आविष्कार व पुनः आविष्कार होता रहता है। वे मानव संबंधों की एक रूपरेखा प्रस्तुत करती हैं।

अठारहवीं सदी के यूरोप में आए ज्ञानोदय ने परंपरा का दुष्प्रचार किया। वह उसकी पकड़ ढीली करने में तो सफल रहीं किंतु पूरी तरह उखाड़ नहीं सकी। यूरोप व अमेरिका तक की परंपराएं हैं, जो सदियों से चली आ रही हैं। ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि आधुनिक सभ्यता लोगों के हृदय में स्थान न बना सकी थी, वह केवल सार्वजनिक संस्थाओं जैसे राजनीतिक, प्रशासन व अर्थव्यवस्था के क्षेत्रों तक ही सीमित रही। परिवार, जेंडर व लैंगिकता के क्षेत्रों में परंपरागत व्यवहार मान्य था जब तक कि आधुनिकोत्तर युग का प्रारंभ नहीं हुआ था अर्थात् अभी कुछ वर्ष पूर्व तक।

किंतु भूमंडलीकरण ने स्थिति के पूरी तरह से बदल डाला है। उसने एक ऐसे समाज का निर्माण कर दिया है जो न केवल प्रकृति के अंत पर जी रहा है बल्कि परंपरा के अंत पर भी। एक नया भूमंडलीय समाज उठान पर है, ऐसा जैसा पहले कभी नहीं देखा गया। भारतवर्ष में ऐसे कई वैज्ञानिक हैं जो श्रद्धालु हिंदू भी हैं। शैक्षिक जगत की ओर ही देख लीजिए। सभी विषय एक परंपरागत तरीके से चलते हैं। किंतु यह शैक्षिक जीवन का ही एक भाग है कि नई दिशाएं भी खोजी जाएं।

यह मान्यता प्रबल हो रही है कि कोई मनुष्य श्रद्धा, विश्वास के बिना जीवित व सुखी नहीं रह सकता। गांधी ने दिखाया कि श्रद्धा व तर्क दोनों को साथ रहना चाहिए। जब उनकी तर्क-बुद्धि किसी समस्या का हल प्रदान करने में अक्षम होती, तब वे अपनी अंतरात्मा से मार्गदर्शन मांगते थे। परंपराएं विचारशीलता से उपजा अनुभवात्मक ज्ञान होती है उन्हें तब भी त्यागना चाहिए जब वह नया व विश्वसनीय ज्ञान उपलब्ध हो जाए। रीति-रिवाजों के भी सामाजिक अर्थ होते हैं, यदि उनका त्याग तक दें तो नए रिवाजों का निर्माण करना होगा जो नई परंपराओं के लिए भूमि तैयार करेंगे। यदि परंपराएं हटा दी जाएं तो लोग अधिक खुले,

चिंतनशील, स्वतंत्र माहौल में जीते हैं। किंतु वे स्वयं को एक ऐसे दुनिया में खोया हुआ पाते हैं जहां कुछ भी सुनिश्चित नहीं है, जीवन जीने के कोई कायदे भी नहीं हैं। वहां सर्व ओर अनिश्चितता होती है।

इस परिस्थिति का परिणाम चिंता व विभिन्न लतों का पडना है। लत अर्थात नशीली वस्तुओं, कामुकता, काम, भोजन व हिंसा के प्रति आकर्षण व झुकाव। परंपरा सामूहिकता द्वारा संभाली जाती है, लत व्यक्ति द्वारा। चिंताएं, अनैतिकता और स्वयं को जानने का प्रयत्न व इस अनिश्चितता पूर्ण संसार में अपनी पहचान की फिक्र मन की विक्षिप्तताओं को पैदा करते हैं और मनोरोगी चिकित्सा की आवश्यकता महसूस होती है।

वैज्ञानिकता व परंपरा के बीच के टकराव के दो ज्वलंत परिणाम है- कट्टवाद व उग्रवाद। यह एक ओर विज्ञान की सीमितताओं और दूसरी ओर अभाव की गहरी भावना की ओर इंगित करता है। कट्टरवाद आवश्यक नहीं कि धार्मिक ही हो या धार्मिक भी हो सकता है। माओ के दौरान के चीन के लाल सिपाहियों का उदाहरण लें। वे धार्मिक कट्टरपंथी नहीं थे। मैं कहना चाहूंगा कि कट्टरवाद आधुनिकतावाद व आधुनिकोत्तरवाद की संतान है। ओसामा बिन लादेन द्वारा आधुनिक संचार तकनीक का प्रयोग ही देख लीजिए। कट्टवाद में हिंसा तो निहित ही है। और हम जानते हैं कि हिंसा को हिंसा से काबू नहीं किया जा सकता। यह हमें स्वयं से यह पूछने को बाध्य करता है कि क्या हम एक ऐसी दुनिया में जी सकते हैं जहां कुछ भी पवित्र न हो? जब तक सर्वमान्य मूल्यों द्वारा मार्गदर्शन का अभाव रहेगा तब तक किसी न प्रकार का कट्टरवाद सिर उठाता रहेगा।

मित्रों, यहां गांधी एक मुक्तिदाता के रूप में सामने आते हैं। हमें परंपराओं, तकनीक व विज्ञान, प्रगति व विकास, सभ्यता व लय व साधन संबंधी विचारों पर गांधी द्वारा समय-समय पर प्रश्नों के प्रकाश में पुनर्विचार करने की आवश्यकता है। "हम सबको नैतिक प्रतिबद्धताओं की आवश्यकता है जो छोट-मोटे स्वार्थों और रोजमर्रा की जिंदगी के झगड़ों से ऊंची हों। हमें वहां इन मूल्यों की रक्षा के लिए कर्तव्यशील रहना चाहिए जहां भी ये संकटग्रस्त या अविकसित दिखें। हममें से किसी के पास भी जीवित रहने का कोई अर्थ नहीं रहेगा यदि हम किसी बात पर मिट जाने के लिए तैयार नहीं है।" गांधी के पास निट जाने को बहुत कुछ था और तभी वे मृत्यु के पश्चात् बी जीते हैं।

अलोकतांत्रिक लोकतंत्र

अब में बीसवीं सदी के सर्वाधिक शक्तिवर्धक विचार की ओर आता हूं। वह लोकतंत्र है। साऊदी अरब के सरीखे कुछ अर्थ-सामंती देश को छोड़ दें तो आज शायद ही कोई ऐसा राष्ट्र हो जो स्वयं को लोकतांत्रिक न बताता हो। संयुक्त सोवियत रूस वचीन तक स्वयं को लोकतंत्र बताते हैं।

ज्यादा गूढ़ परिभाषाओं में न जाते हुए हम सरल शब्दों में लोकतंत्र को इस तरह से परिभाषित कर सकते है- यह प्रशासन की वह व्यवस्था होती है जिसमें सत्ता प्राप्ति के लिए राजनैतिक दल प्रतिस्पर्धा करते हैं और न्यायपूर्वक हुए चुनावों में वयस्क मताधिकारियों द्वारा चुने जाने पर सत्ता में आते हैं। यह चुनावी प्रक्रिया कई नागरिक अधिकारों को भी प्रदर्शित करती है जैसे- लिंग, धर्म ,वर्ग के भेद बिना सभी वयस्कों को मत देने का अधिकार, अपने विचार रखने व उन्हें भयरहित हो प्रकट करने की छूट, राजनैतिक दलों का गठन करने व उसमें सम्मिलित होने की स्वतंत्रता आदि। यह ध्यान देने योग्य बात है कि ये सब स्वतंत्रता आदि। यह ध्यान देने योग्य बात है कि ये सब स्वतंत्रताएं ये अधिकार आसानी से नहीं मिले थे। 19वीं सदी में अभिजात्य वर्गों ने इसका बहुत विरोध किया था, क्योंकि तब सत्ता उनके हाथ में थी।

बहुत समय तक, कुछ ही देशों में लोकतांत्रिक प्रशासन था। आश्चर्य की बात है कि वह लोकतांत्रिक यूरोप था जिसने एशिया, अफ्रिका,व लैटिन अमेरिका में लोकतंत्र का 1940 तक दसन किया था। किंतु यूरोप में भी लोकतंत्र आंशिक रूप से विकसित था। प्रथम विश्व युद्ध से पूर्व केवल फिनलैंड, नार्वे, ऑस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड में ही महिलाओं को मतदान का अधिकार था। स्वीटजरलैंड में उन्हें ये अधिकार 1974 में मिला। जर्मनी, स्पेन, इटली, ऑस्ट्रिया व पुर्तगाल जैसे देश को लोकतंत्र से सत्तावादिता की ओर वापस मुड़ गए। 1970 के दशक से लोकतंत्र पूरे विश्व में फैल गया था, केवल कुछ सैनिक तानाशाहियों व सामंती राजतंत्रों को छोड़कर।

यह कुछ आशा की किरण दिखाता है किंतु तथाकथित परिपक्व लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं से विचलित करने वाले तथ्य प्रकट हो रहे हैं। लोग अपनी सरकारों से निराश

होते दिख रहे हैं। आधुनिक सूचना तकनीक पर आधारित विश्व में, ऊपरी सतह से नीचे पहुंचने तक शक्ति अपना तेज खो बैठती है। रूढीवादी लेकतंत्रों में, ऊपरी तह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हो वहीं सिमटी हुई है, नीचे की तहों में साधारण जनता के जीवन में आ रपे परिवर्तनों के प्रति उसमें संवेदनशीलता है। जनता राजनेताओं व राजनैतिक संस्थाओं में अपनी पहले वाली आस्था खो बैठती है। फिर भी अन्य उचित विकल्प के अभाव में उसी लोकतंत्र को समर्थन देते रहते हैं। तो लोकतंत्र लोकप्रिय बना हुआ है किंतु राजनेता अपनी लोकप्रियता खोते जा रहे हैं। राजनीति अब एक भ्रष्ट व्यापार बन गई है और राजनेता स्वार्थपरक होते जा रहे हैं व जनता के भले की ओर उनकी सोच नहीं है। नई पीढ़ी विशेष रूप से सरकारों द्वारा भूमंडलीय आर्थिक मुद्दों व स्थानीय पर्यावरण, जैंडर, मानवाधिकार संबंधी मुद्दों के प्रति रवैये से निराश हुई है। उग्रवाद की लहर ने लोगों में उनकी सरकारों के प्रति अलगाव बढ़ाया है।

सूचना संचार तकनीक के भूमंडलीय फैलाव ने लोकतंत्र पपर सकारात्मक व नकारात्मक दोनों ही प्रभाव छोंड़े हैं। एक ओर जहां इसने सरकारों को अधिक पारदर्शी बनाया है वहीं बहुराष्ट्रीय कंपनियों के इन संचार साधनों पर सर्वस्व के चलते ये जनमानस को राजनेताओं से भी अधिक नियंत्रित कर रही हैं। इससे बचाव के लिए लोकतंत्र का लोकतांत्रिकीकरण आवश्यकता है। स्वतंत्र राष्ट्र अपनी स्वतंत्रता का कुछ भाग भूमण्डलीय शक्तियों के हाथों खो रहे है। पर्यावरण संबंध संकट, भूमंडलीय अर्थव्यस्था के उतार-चढ़ाव और भूमंडलीय तकनीक परिवर्तन व राष्ट्रीय सीमाओं को महत्त्व नहीं देते । इसी के साथ ही इन भूमंडलीय व राष्ट्रीय संस्थाओं के बीच में एक नया दायरा उभर कर आ रहा है जिसे भरने के लिए यूरोपीय संघ जैसी बहुराष्ट्रीय ईकाइओं की आवश्यकता है। इसी प्रकार व्यक्ति व राष्ट्र के बीट के दायरे को भरने के लिए छोटी लोकतांत्रिक संस्थाओं की आवश्यकता है। आम भाषा में इसे विकेन्द्रीकरण कहा जाता है। भारत के संदर्भ में यह गांधी का ग्राम स्वराज होगा। केवल तभी लोकतंत्र की जड़ें गहरी हो पाएंगी।

पारिवारिक एकता का विघटन

एक अन्य संस्था जो आधुनिकीकरण का घोर दबाव झेल रही है वह है परिवार। कट्टरवादी व तानाशाह सरकारों को छोड़ दें जो शायद ही ऐसा कोई देश होगा जहां परिवार के

भविष्य को एक सामाजिक महत्त्व का प्रश्न नहीं समजा जाता हो। पुरानी पारिवारिक व्यवस्थाएं कुछ भावनात्मक व आर्थिक पारस्परिक निर्भरताओं पर आधारित होती थीं। इन निर्भरताओं से कमजोर पड़ने के साथ ही परिवार की संरचना बिखर रही है। विवाह शारीरिक आवश्यकताओं द्वारा निर्देशित प्रतिबंधात्मक संबंध नहीं हुआ करता था। स्त्री-पुरुष में असमानता व्यवस्था में निहित थी। स्त्रियों व बालकों को उतने मानवाधिकार नहीं थी जितवनी की आज मांग की जाती है। बच्चों का पालन-पोषण किया जाता था क्योंकि वे कुल की परंपरा को आगे बढ़ाने का कार्य करते हैं। उनका एक भूमिका समझी जाती थी। शारीरिक संबंध केवल प्रजनन के लिए होते थे। पुरुषों में स्वछंद कामुकता को पौरुष का चिह्न माना जाता था, स्त्रियों में इसे पाप व अपराद माना जाता था। समलैंगिकता को भी सदा ही न केवल अप्राकृतिक अपितु विकृत समझा जाता था, भले छोटे अल्पसंख्यक समूह के कृत्य के रूप में उसे सहन कर लिया जाता था।

पारंपरिक परिवारों में विवाहित युगल को परिवार का केवल एक और छोटा-सा भाग समझा जाता रहा है। वे परिवार से अलग होंगे या नहीं होंगे यह निर्णय उन पर नहीं बल्कि परिवार के निर्णय पर निर्भर करता है।

इस नई पारिवारिक संस्कृति में जेंडर समानता व पारदर्शिता उसे एक रखती है। विवादों को बातचीत द्वारा सुलझाया जाता है। अत: एक अच्छे स्वस्थ संबंध का आधार परस्पर आदर व पारदर्शिता ही होती है। दूसरे शब्दों में, परिवार कितना लोकतांत्रिक है। यही सिद्धांत बच्चों के संबंधों पर भी लागू होता है। माता-पिता का बच्चों पर अधिकार होता है किंतु उनकी सत्ता का अधिकार लोकतांत्रिक होता है जिससे बच्चों को ये समझ में आये की उनके माता-पिता अनके प्रति जैसा व्यवहार रखते हैं उसके पीछे क्या कारण है और वह कितना तर्कसंगत है।

पारंपरिक परिवार समाप्त हो रहे हैं किंतु जेंडर समानता पर आधारित परिवार व्यवस्था अभी पूर्णतया प्रभावी नहीं हुई हैं। जेंडर समानता का अर्थ स्वछंद कामुकता, हिंसा व घृणा करने का समानाधिकार नहीं है। जैसे-जैसे परिवार विघटन का शिकार हो रहे हैं व अनीति बड़ों व बच्चों सभी को जक़ड़ रही है, पारिवारिक जीवन पर नई परियोजनाओं, विवाह विच्छेद पर लगाम व काम प्रदर्शन पर रोक-टोक की आवश्यकता है। प्रेम व त्याग के

बिना परिवार कभी नहीं टिक सकता। और जहां प्रेम व त्याग हो वहां लोकतंत्र अवश्य होगा। यह गांधी ने 1908 में ही बता दिया था।

गांधी को आधुनिकता के सभी स्वरूपों का विरोधी माना जाता है। किंतु गांधी कि विचारों और कृत्यों का एक गहन विवेचन यह दिखाता है कि वे आधुनिकता के प्रत्येक पक्ष के विरोध में नहीं थे। वास्तव में आधुनिकता के कई मूल तत्वों, जैसे समानता, लोकतांत्रिक प्रतिनिधित्व, स्वीकृति सहित प्रशासन आदि को गांधी द्वारा स्वीकार किया गया।

वे पूर्णतया आधुनिकता के पक्ष में नहीं थे केवल उसके कुछ एक पक्ष की आलोचना करते थे। वे मान्यता के विरुद्ध थे की केवल पश्चिम सभ्यता ही जीवन जीने की सर्वोत्तम शैली है और जिसे भी सभ्य कहलाना हो तो वह इसका पालन करें। उन्होंने एक अन्य प्रकार की नैतिकता पर आधारित वास्तविक सभ्यता की अपनी परिभाषा प्रस्तुत की। उन्होंने 'हिंद स्वराज' में उसका वर्णन किया है।

हिंद स्वराज

गांधी द्वारा इस पुस्तक को सर्वप्रथम गुजराती में 1909 में लिखा गया, फिर उसका अंग्रेजी अनुवाद 1910 में हुआ। यह भगवद् गीता के समान संवाद-शैली में लिखी गआ है. गांधी ने इस हिंसा की अनुपयोगिता (निरर्थकता) पर अपने विचार प्रस्तुत किये हैं।

वे किसी सभ्यता को उसकी भौतिक उपलब्धियों से तौलने के भी विरुद्ध थे। रेल-सेव, मशीनें, प्रेस, शास्त्र, नई तकनीक आदि जो ब्रिटिश भारत में लाये उससे भारत का भला नहीं हुरा हुआ है। इसके माध्यम से अंग्रेजों को भारत में अपना नियंत्रण बढ़ाने में मदद मिली।

गांधी ने सभ्यता के लिए एक गुजराती शब्द प्रयुक्त किया, 'सुधरो' जिसका शाब्दिक अर्थ है, 'जीवन का अच्छा मार्ग' । उसके अनुसार, सभ्यता की प्रगति का परिणाम नैतिक उपलब्धियां होनी चाहिए। अपनी कामनाओं पर नियंत्रण व लोभहीनता ही सभ्य जीवन के सर्वश्रेष्ठ लक्षण हैं। वे कहते हैं कि ब्रिटिश पूर्व की भारतीय सभ्यता ऐसी ही थी और प्रत्येक को उन्हीं मूल्यों पर वापस जाने का प्रयत्न करना चाहिए।

ब्रिटिश सरकार ने अपना प्रतिक्रिया स्वरूप हिंद स्वराज को प्रतिबंधित कर दिया। गांधी अपनी इस विचारधारा पर 1914 तक अड़े रहे। 1914 में उन्होंने अपनी टिप्पणियों में थोड़ा-सा परिवर्तन किया और स्पष्ट किया कि हिंद स्वराज में उन्होंने ब्रिटिश लोगों को नहीं अपितु आधुनिक यूरोपीय सभ्यता की आलोचना की है।

अपने अंतिम वर्षों में गांधी ने व्यवहारिक होते हुए यह माना कि आधुनिक सभ्यता के कुछ तत्व तो अब जीवन से अविभाज्य हो गए हैं जैसे रेल, अस्पताल, मिलें आदि। परंतु यह अवश्य कह सकते हैं कि इन तत्वों को स्वयं पर हावी होने न दें। इनका सदुपयोग होना चाहिए ना कि इन्हें आनंद का साधन मान लेना चाहिए। यूं वे पश्चिम संस्कृति के विरुद्ध नहीं थे किंतु आधुनिक जीवनशैली के विरुद्ध अवश्य थे। वे अंग्रेजों के विरुद्ध इसलिए थे क्योंकि वे भी उस शैली का उपयोग करते थे, वे उतने ही विरोधी उन भारतीय स्वतंत्रता सेनानियों के भी थे जो हिंसा के लक्ष्य प्राप्ति का साधन मानते थे।

हालांकि गांधी की उनके आधुनिकता विरोधी विचारों के लिए बहुत आलोचना ही किंतु बाद में उन्हीं का पक्ष सही साबित हुआ। उनके विचार काफी कठोर थे किंतु उन्होंन अपनी छाप छोड़ी व सरल बीतने के साथ सत्य साबित होते गए।

गांधी के विचार में सभ्यता

गांधी का आधुनिक सभ्यता का विरोध उसकी उपभोगवाद, प्रतिस्पर्धात्मकता, इच्छाओं की गुलामी व तकनीक की आधीनता पर लक्षित था। गांधी एक ऐसी सभ्यता के समर्थक थे जो विज्ञान व तकनीक को इस्तेमाल जो करे किंतु मानव के हित के लिए न कि कुछ धनी पूंजीपतियों के लोभ को संतुष्ट करने के लिए।

डोनाल्ड वोस्टर ने इस भेद को दो प्रकार की प्रचलित विचार शैलियों द्वारा समझाया है। एक है उपनिवेशिवादी वैज्ञानिक सोच दुसरी है आर्केडियन संवेदनशीलता। सरल शब्दों में, पहली तो प्रकृति पर आक्रामक नियंत्रण की प्रतिनिधि है जो जीवन व संसार के प्रति एक भौतिकवादी सोच रखती है, दूसरी प्रकृति में ही एक सद्भावपूर्ण सहअस्तित्व में विश्वास रखती है व प्रकृति, संसार व मनुष्यों को एक नैतिक, आध्यात्मिक करीके से समझती, जानती है। गांधी इस दूसरी विचारशैली के पक्षधर थे। उनकी प्रकृति की अवधारणा का

विवेचन यही दर्शाता है। प्रकृति के विषय में उनके विचार प्रकृति की उस अवधारणा से प्रेरित हैं जो केवल एक भौतिक रूप में ही प्रकट नहीं किन्तु स्वयं ईश्वर का एक विस्तार, स्वरूप है। औरों की भांति वे प्रकृति व संस्कृति में भेद नहीं मानते थे। उनके लिए प्रकृति का अर्थ था, "किसी भी चीज का मौलिक, प्राकृतिक, स्वभाविक स्वरूप "। तो इस दृष्टि से भौतिक शक्ति व दैनिक शक्ति में संस्कृति व प्रकृति में कोई भेद नहीं है।

गांधी को आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण पथभ्रष्ट-सा लगता था, जब वह प्रकृति पर नियंत्रण का दंभ भरता था। वे मानते थे कि ऐसा सोचना ईश्वर प्रकृति की असीमित, अंतहीन शक्तियों को चुनौती देने जैसा है। वे एक ऐसे वैज्ञानिक दृष्टिकोण को बढ़ावा देते थे जो विनम्र हो, जो प्रकृति पर नियंत्रण के सपने न देखे और जो प्रकृति से केवल उतना ही ले जितने की आवश्यकता है। वे कहत थे कि यदि मनुष्य अपने लोभ (साधन) है। गांधी को आधुनिक शहर अपने शोर, भागदौड़ व धुएं के कारण नापसंद थे। उनका आदर्श था एक लघु-स्तर का कृषक समुदाय, जो आत्मनिर्भर, धारणीय तरीके से सामुदायिक धरती पर खेती करता हो। वे अपने आश्रमों में ऐसी जीवनशैली रखने का प्रयास करते थे। वे वैज्ञानिक दृष्टिकोण की तार्किकता के पक्ष में थे किंतु तभी जब वह नैतिक मूल्यों द्वारा मार्ग दर्शन प्राप्त किया हुआ हो।

उनकी निर्माणकारी परियोजना

उनकी यह योजना, जिसमें तकनीक को जनहित के ध्येय से जोड़ा जा सके, तीन सिद्धांतों पर टिकी था- स्वदेशी (गृह उद्योग), सर्वोदय (जन कल्याण) व अपरिगृह (उपभोगवाद का विरोध) । यह योजना 1920-21 के दौरान प्रारंभ की गई व यह गांधी को अधिक प्रिय थी। जनता की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उचित तकनीक को बढ़ावा देना आवश्यक था। भारत के लिए श्रम-आधारित तकनीक अधिक उपयुक्त थी क्योंकि यहां बहुत जनता थी जो मशीनीकरण लाए जाने पर बेरोजगार हो जाती। श्रम द्वारा आत्मा-निर्भरता पाना भी भारतीयों के लिए महत्त्वपूर्ण था। चरखा इसका एक मुख्य कारण उदाहरण है। इसका प्रचार 1919 में प्रारंभ किया गया। चरखे के एक छोटे, हल्के डिजाइन को लोकप्रिय बना दिया गया, जनता को अपने प्रयोग के लिए भी खादी बनाने के लिए प्रोत्साहित किया गया। किंतु खादी की परियोजना आर्थिक स्तर पर उतनी लाभकारी सिद्ध

नहीं हुई। वह मिलों में बने कपड़े से मंहगी पड़ती थी। इस कारण गांधी के आर्थिक सिद्धांत की आलोचना भी हुई। उन पर समय नष्ट करने वाले, थका देने वाले यंत्रों को बढ़ावा देने व श्रम बचाने वाली मशीनों के तिरस्कार के आरोप लगाए गए। एक तरह से उनका यह आलोचना गलत भी नहीं थीं क्योंकि वास्तव में तकनीक ने लोगों का जीव न कई प्रकार , सरल कर दिया था और यह हितकर भी था। उदाहरण के लिए- संशोधित चूल्हे, गोबर गैस संयंत्र, हैंडपंप, हल के नए डिजाइन, बीजों की नवीन किस्में, संशोधित प्रजनन योजनाएं, पानी की बचत के नये तरीके आदि सभी जनता के लिए लाभकारी सिद्ध हो रहे थे।

खादी भी इतनी ही सफल थी किंतु समस्या यह थी कि खादी-निर्माण को एक बहुत ऊंचे प्रतीक के रूप में बना दिया गया जबकि उतने ही महत्त्वपूर्ण पक्ष, दीर्घकालिक कपास-उत्पादन अर्थव्यवस्था की अनदेखी कर दी गई।

एक परोपकारी विचार को बने रहने व प्रभाव छोड़ने के लिए एक खुले, स्पष्ट, अन्वेषणकारी दृष्टिकोण की आवश्यकता होती थी। गांधी ने इस बात के महत्त्व को समझा और ब्रिटेन के महान विक्टोरिआई खोजकर्ताओं का अनुकरण करते हुए, भारत की जनता की समस्याओं के विषय में आंकड़ों, स्थानीय खोजबीन व क्षेत्रीय अध्ययन द्वारा जानने का प्रयास किया।

विभिन्न क्षेत्रों के स्थानीय लोगों की समस्याओं में रुचि ने गांधी की राष्ट्रवादी सोच को अप्रत्यक्ष रुप से लोकप्रिय बनाने में मदद की।

साम्यवाद पर गांधी के विचार

गांधी की आदर्श सभ्यता की रूप रेखा में मार्क्सवादी साम्यवाद का कोई विशेष महत्त्व नहीं था। उसके समानता, गरीबी उन्मूलन जैसे विचारों से गांधी सहमत थे, किंतु मार्क्सवाद के संघर्ष के मूल महत्त्व को गांधी स्वीकार नहीं करते थे।

भारत के स्वतंत्रता आंदोलन के अधिकांश नेता साम्यवाद से प्रभावित थे। गांधी ने उनसे संवाद, प्रश्नोत्तर किया। साम्यवाद के उच्च लक्ष्यों जैसे जीविकोपार्जन का सबका अधिकार, गरीबी हटाने आदि का सम्मान करते थे किंतु उनका दावा था कि साम्यवादियों का तरीका त्रुटिपूर्ण है। वह बहुत ही राजनैतिक तरीका है जो हिंसा को महत्त्वपूर्ण मानता व

अपनी लक्ष्य प्राप्ति हेतु पूंजीवादी को नष्ट करना चाहता है। गांधी एक नितांत भिन्न तरीके के पक्ष में थे। उनके तरीके मं गरीबों के लिए ही नहीं बल्कि पूंजीपति के लिए भी करुणा थी। वे मानते थे कि शत्रु पूंजीपति नहीं वरन् पूंजीवाद है। आधुनिक पूंजीवाद के दुर्गुणों को दूर करने में पूंजीपतियों का सहयोग लेना आवश्यक होगा।

उनके मतानुसार हिंसा से तो केवल घृणा ही बढ़ती है। वर्ग-संघर्ष के स्थान पर उन्होंने 'सत्याग्रह' का उपाय सुझाया।

पूंजीपति व श्रमिक दोनों को ही यह समझ लेना चाहिए कि एक-दूसरे की सहायता के बिना वे दोनों की नष्ट हो जाएंगे। वास्तव में पूंजीपति को सामाजिक संपत्ति के ट्रस्टी के समान व्यवहार करने को प्रोत्साहित किया जाना चाहे। गांधी का मानना था कि चाहे कोई कितना भी दमनकारी, आततायी क्यों न हो उसमें छिपी अच्छाई का आह्वन् विफल नहीं जाता। उससे भी भलाई का आग्रह करना संभव है।

सभी को अपरिग्रह का पालन करना चाहिए अर्थात् लोभ, उपभोगवाद का त्याग करना चाहिए। सबको अपनी वस्तुओं का सामाजिक कल्याम हेतु प्रयोग करना चाहिए। मालिकों को एक सुविधाजनक जीवन जीने के साधनों के अतिरिक्त नहीं लेना चाहिए व श्रमिकों को परिवार के सदस्यों के समान मानना चाहिए।

गांधी के इस दृष्टिकोण की साम्यवादियों ने आलोचना का क्योंकि इससे वर्ग-संघर्ष का महत्त्व घटता था। किंतु यह सत्य है कि भले ही गांधी हिंसात्मक तरीकों के प्रयोग के विरुद्ध रहें हों, गरीबों के उत्थान के प्रति वे गहराई से कर्त्तव्यनिष्ठ थे।

यह क्षोभ का विषय है कि जमनालाल बजाज व जे.आर.डी टाटा को छोड़कर अन्य किससी भी उद्योगपति ने सामाजिक कल्याण की इस भावना का कद्र नहीं की।

वर्ग संघर्ष पर गांधी के विचार पॉल रिकर के विचारों जैसे हैं, जो यह मानते थे कि भाषा, संस्कृति, राष्ट्रीयता जैसे बहुत तत्व हैं जो वर्ग की सीमाओं के परे हैं और जो एकीकरण करते हैं। अर्थात् अन्य कई तत्व ऐसे हैं जो लोगों को निकट लाते हैं। तो प्रयत्न किया जाना चाहिए कि सबको एकीकृत किया जा सके न कि शत्रु के विनाश की

परियोजनाएं बनाई जाएं।

गांधी के विचारों का दुनियाभर असर

सामाजिक व आर्थिक क्षेत्र की समस्याओं को सुलझाने के गांधीवादी तरीकों को भारत के बाहर भी अपनाया जा रहा है। इसका प्रचलन सर्वप्रथम ई.एफ. शूमाकर (1911-1977) द्वारा प्रारंभ किया गया। वे एक जर्मन अर्थशास्त्री थे जो चालीस व पचास के दशक में ब्रिटिश प्रशासन के सलाहकार रहे। वे महसूस करते थे कि तथाकथित 'विकासशील' देश एक ऐसी आर्थिक योजना पर चल रहे थे जो कि उनकी अर्थव्यवस्था व संसाधनों को नष्ट कर डालेगी। इन क्षेत्रों की स्थानीय स्थितियां पूंजी आधारित आर्थिक मॉडल की मांग के अनुरूप कतई नहीं थीं। इन क्षेत्रों को एक ऐसी तकनीक की आवश्यकता थी जो उनकी परिस्थितियों के अनुरूप हो, उपयुक्त हो। अधिककांश मामलों में इसका अर्थ मॉडल की मांग के अनुरूप कतई नहीं थीं। इन क्षेत्रों को एक ऐसी तकनीक की आवश्यकता थी जो उनकी परिस्थितियों के अनुरूप हो, उपयुक्त हो। अधिककांश मामलों में इसका अर्थ मॉडल की मांग के अनुरूप कतई नहीं थीं। इन क्षेत्रों को एक ऐसी तकनीक की आवश्यकता थी जो उनकी परिस्थितियों के अनुरूप हो, उपयुक्त हो। अधिककांश मामलों में इसका अर्थ था श्रम-आधारित, लघु स्तर की, कम निवेश वाली तकनीक।

वे गांधी विचारधारा के पक्षधर थे जो उचित तकनीक की, मध्यवर्ती तकनाक की पैरवी करती थी। मध्यवर्ती अर्थात् वह आदिम तकनीक से उच्चतर हो किंतु साथ ही आधुनिक तकनीक से सरलतर, स्वतंत्र व सस्ती हो।

गांधी के विचारों का प्रयोग करते हुए उन्होंने "अधिक उत्पादन" व "अधिक (व्यक्तियों) द्वारा उत्पादन" में भेद किया। अधिक उत्पादन की व्यवस्था पूंजी आधारित होती है, बहुत शक्ति द्वारा चलती है, हिंसक व पर्यावरण को नष्ट करती है। अधिक द्वारा उत्पादन मानव संसाधनों जैसे कुशलता, रचनात्मकता का प्रयोग करता है, वह स्थानीय संसाधनों के अनुकूल उत्पादन करता है, पर्यावरण के हित में होता है व मानव को मशीनों की दासता से मुक्त करता है।

तकनीकों की नकल नहीं करनी चाहिए बल्कि उन्हें प्रत्येक सामाजिक-आर्थिक संदर्भ के अनुरूप ढाल लेना चाहिए। ऐसा करने में कहीं अधिक रचनात्मक की आवश्यकता होती है।

वैकल्पिक आर्थिक व्यवस्था के एक और प्रवर्तक इवान इलिक (1926) थे। वे एक ऑस्ट्रियाई थे, जिन्होंने पचास के दशक में एक कैथोलिक पादरी का काम किया। 1970-1975 के बीच उन्होंने चार पुस्तकें लिखीं जिनमें से एक विकेन्द्रिकरण की बात कर रही थी और विकास की सीमाओं के ज्ञान के महत्त्व को समझाने का प्रयास कर रही थी। वे भी गांधी की तरह पश्चिमी दवाओं के आलोचक थे। उन्होंने पाया था कि पश्चिमी प्रणाली के चिकित्सक रोगियों को वास्तव में निरोगी नहीं बना पाते थे। वे कभी भी भोजन पर नियंत्रण की सलाह अथवा आत्म-अनुशासन की सलाह नहीं देते थे।

वे तीव्र यातायात साधनों के भी विरोधी थे। उन्हें उसमें भले से ज्यादा बुरा दिखता था। ऐसी यातायात प्रणाली न केवल बहुत से ईंधन की खपत से चलती थी बल्कि मनुष्यों को अपना दास भी बनाती थी क्योंकि उन्हें प्राप्त करने व प्रयोग करने के लिए घंटो मेहनत में लगे रहना होता था।

एक अन्य अंतर्राष्ट्रीय संस्था जो गांधी के आर्थिक व्यवस्था संबंधी विचारों से प्रभावित थी वह है ऑक्सफैम। यह गरीबों देशों के उत्थान में लगी एक गैर-सरकारी संस्था है। 1966-67 के दौरान ऑक्सफैम के कुछ राहतकर्मी गांधीवादी राहतकर्मियों के संपर्क में आए। ऐसा कहा जाता है कि यह पहली बार था कि एक पूर्णतया सच्ची व प्रेरक भारतीय विचारधारा कार्यन्वित होती देखी जा रही थी । उसी संपर्क द्वारा ऑक्सफैम के उच्चाधिकारियों को ज्ञात हुआ कि जिस परित क्रांति को वे गरीब देशों के लिए हितकारी समझ रहे थे वह वास्तव में उतनी हितकारक थी नहीं। वह उच्च उत्पादक क्षमता वाले संकर पौधों के प्रयोग पर बल देती थी जिन्हें बहुराष्ट्रीय एजेंसियां विकसित करती थीं, इन्हें बहुत से पानी, खाद व कीटनाशकों की आवश्यकता होती थी, जिसे कारण किसानों की उन बहुराष्ट्रीय कंपनियों पर निर्भरता बढ़ दिया था। यह ग्राम विकास के हित में नहीं हो सकता था।

1970 के दशक ऑक्सफैम ऐसी बृहत योजनाओं के विरुद्ध आवाज उठाने के लिए प्रसिद्ध हो गए जो गरीब, विकासशील देशों के लिए अनुपयुक्त थीं। उसने स्थानीय लोगों के साथ मिलकर काम करने पर ध्यान केन्द्रित करना प्रारम्भ किया व स्थानीय तरीकों व आवश्यकताओं के प्रति संवेदनशीलता रखने का प्रयास किया। उचित तकनीक को प्रोत्साहित किया गया जिसमें अधिकाधिक ग्राम आत्मनिर्भरता का लक्ष्य रखा गया।

गांधी अधिकतर समस्याओं के मूल में नैतिकता के अभाव को पाते थे, सिद्धांतहीनता का दुष्परिणाम। उन्होंने भौतिकतावाद व उपभोगवाद को आज के समाज की अधिकतर कुरीतियों का दोषी बताया।

निष्कर्ष

निष्कर्ष स्वरूप हम यह सकते हैं कि गांधी एक परंपरावादी थे किंतु साथ ही एक आधुनिकतावादी भी थे। वे परंपराओं के प्रशंसक थे जो मानव को नैतिकता के विराटतम दृष्टिकोणों के मार्ग पर ले जाती हैं। वे एक आधुनिकतावादी नहीं भी थे क्योंकि जीवनपर्यन्त उन्होंनें आधुनिकता जनित व्यवस्थाओं के विरुद्ध संघर्ष किया- उपनिवेशवाद, असमानता, प्रकृति व मनुष्यों का मनुष्यों द्वारा शोषण, जेंडर असमानता व युद्ध। गांधी आधुनिकोत्तरवादी थे क्योंकि उन्होंने किसी भी ग्रंथ को ईश्वर उच्चारित शब्द और इसलिए अंतिम सत्य मानने से इंकार किया, क्योंकि न्होंने विज्ञान की तार्कीकता व सर्व समस्या समाधान के उसके दावे पर प्रश्न उठाये़, क्योंकि उन्होंने जेंडर समानता के हेतु प्रयत्न किए और क्योंकि उन्होंने शांति और सौहाद्र के लिए कार् किया।किंतु वे आधुनिकोत्तरवादी नहीं भी थे क्योंकि उन्होंने व्यक्ति की स्वतंत्रता का विरोध किया, क्योंकि उन्होंने भौतिक प्रगति को मानवता ध्येय नहीं समझा और क्योंकि उन्होंने ईश्वर के अस्तित्व को कभी नहीं नकारा। उनका जीवन उनकी चिंता के समीप बोले गए वृहदआरण्यका उपनिषद् का मानवीयकरण था, जो इस प्रकार हैं-

असतो मा सद्गमय,

तमसो मा ज्योतिर्गमय

मृत्योर्मा अमृतं गमय।

गांधी अपनी मृत्यु में अमरत्व को प्राप्त हुए।

तो गांधी क्या थे? गांधी अपनी तरह के एक ही थे। वे समय व स्थान पर आधारित वैज्ञानिक तार्किकता के वर्गीकरण को पार कर गए थे। उनकी दुनिया ऐसी थी कि मूलतः मानवी., आध्यात्मिक व वैज्ञानिक सभी कुछ एक साथ थी। यदि मानव आत्मा एक है तो गांधी को किसी भी प्रकार के कृत्रिम श्रेणियों व वर्गों में नहीं बांधा जा सकता। महात्मा की मृत्यु पर आंइस्टाइन ने अपनी श्रद्धांजली दी तो उनके शब्दों ने उनके पूरे व्यक्तित्व का सटीक प्रस्तुतीकरण कर दिया, "आने वाली पीढ़ियां आसानी से विश्वास न कर पाएंगी कि ऐसा भी कोइ हाड़-मांस में कभी इस पृथ्वी पर चला होगा।"

संदर्भ

1. महत्मा गांधी, हिंद स्वराज और इंडियन होमरूल, अहमदाबाद, नवजीवन पब्लिशिंग हाऊस,1938, पृ.32-33।
2. पूर्व उद्धत, पृ. 33।
3. पूर्व उद्धत, पृ. 27।
4. पूर्व उद्धत, पृ. 47-50।
5. पूर्व उद्धत, पृ. 51।
6. पूर्व उद्धत, पृ. 53।
7. पूर्व उद्धत, पृ.55.
8. डेविड हार्डिसन की पुस्तक 'गांधी इन हिज टाइम एण्ड आवर्स' नई दिल्ली, परमानेंट ब्लॉक, 2003 का भावानुवाद।

अध्याय – 7

न्यासिता : अर्थशास्त्र का नैतिक व आध्यात्मिक सिद्धान्त

गांधी ने अपने आर्थिक विचारों व सिद्धांतों को एक आदर्श, अहिंसक, शोषणमुक्त, मानवतावादी तथा समतावादी समाज के सांचे में ढाला। समाज की यह आदर्श व्यवस्था उनके जीवन के मौलिक दर्शन को परिभाषित करती थी। उन्होंने इस सामातजक व्यवस्था के हर पहलू पर अपने मौलिक व क्रांतिकारी विचार रखे जिसमें सत्य व अहिंसा का स्थान सर्वोपरि था और जिसके द्वारा वह जीवन को सुसंगत, सुव्यवस्थित वह अर्थपूर्ण बनाने का हौसला रखते थे। वह अर्थव्यवस्था व नैतिकता के बीच किसी तरह की दीवार के खिलाफ थे। ''मुझे यह स्वीकार करने में कोई संकोच नहीं है कि अर्थव्यवस्था व नैतिकता के बीच किसी भी तरह की दीवार खड़ी नहीं की जा सकती है। नैतिक मूल्यों को अस्वीकार करने वाले अर्थतंत्र का कोई मूल्य नहीं है। अर्थव्यवस्था के अंदर अहिंसक नियमों को समाहित करने का स्पष्ट अर्थ है कि अंतर्राष्ट्रीय व्यापार व वाणिज्य को नियमित व नियंत्रित करने वाले तत्त्वों में नैतिक मूल्यों की भूमिका सर्वोपरि होनी चाहिए।''[1]

महात्मा गांधी ने आर्थिक दर्शन के सबसे महत्त्वपूर्ण व विवादित प्रश्न, यानी निजी संपत्ति का अधिकार, के मार्क्सवादी हल को यह कहते हुए अस्वीकार कर दिया कि यह हिंसा व अराजकता को बढ़ावा देगी। उन्होंने पूंजीवादी समाधान को भी इसके शोषक, प्रतिस्पर्द्धी एवं अराजक प्रवृत्ति के कारण खारिज कर दिया। सम्पत्तिगत संबंधों का महत्त्व उनके लिए बहुत मायने रखता था और वह यह विचार करते थे कि सम्पत्तिगत संबंधों को परिवर्तित करने के बजाय यदि इसके उपयोग के तौर–तरीकों को दिया जाए तो इच्छित परिणाम हासिल किए जा सकते हैं।

इसी उद्देश्य हेतु उन्होंने ट्रस्टीशिप यानी न्यासिता का सिद्धांत समाज के सामने रखा जो पूंजीवादी व अराजकतावादी समाधानों के बीच का एक न्यायोचित व सर्वस्वीकार्य समाधान था। उनका विचार था कि जहां तक सम्पत्ति के वर्तमान मालिकों का प्रश्न है उन्हें युद्ध व अपने आपको अपनी सम्पत्ति के स्वैच्छिक ट्रस्टी (न्यासी) में बदलने के बीच में से एक रास्ते का चयन करना है। सो वह आर्थिक सम्बन्धों को समन्वित व समरस कर उसके द्वारा एक सर्वोदयी समाज की नींव को पक्का करना चाहते थे। महात्मा गांधी ने अपनी नजरों से इस बात को कीाी ओझल नहीं होने दिया कि 'जीव हमेशा शिव का एक रूप होता है' और इसलिए मानव को मानव से भिन्न व विशिष्ट नहीं किया जा सकता। मानवता के इसी दिव्य व आध्यात्मिक अनुभूति के आलोक में गांधी ने ट्रस्टीशिप के आर्थिक–सामाजिक सिद्धांतों का निर्माण किया।

उन्होंने लिखा, ''प्रत्येक चीज का संबंध ईश्वर से है तथा वह ईश्वरीय सम्पत्ति है। सो वह संपूर्ण मानवता की थाती है न कि किसी विशेष व्यक्ति की। जब किसी व्यक्ति विशेष के पास उसकी आवश्यकता से अधिक संपत्ति

इकट्ठी हो जाती है तो वह अपनी सम्पत्ति का ट्रस्टी हो जाता है।''[2] यही कारण था कि उन्होंने राष्ट्रीय सम्पत्ति के समान बंटवारे की बात कही।

ट्रस्टीशिप (न्यासिता) के स्रोत

ट्रस्टीशिप गांधी के लिए आर्थिक युक्ति मात्र नहीं था। यह एक जीवन मार्ग था। उनके अपने शब्दों में, ''ट्रस्टीशिप का मेरा सिद्धांत कोई काम चलाऊ चीज नहीं है वरन् मैं तो इस बात पर दृढ़ हूं कि यह अन्य सिद्धांतों के साथ–साथ अपनी पहचान को दुरुस्त रख सकेगा और भविष्य में उसे और मजबूत व चिरस्थायी करेगा। इस दर्शन में धर्म की शक्ति निहित है।''[3] भारतीय दर्शन के धार्मिक व नैतिक तत्त्वों से यह दर्शन पूर्णतया परिपूर्ण है। प्राचीन भारत में राजाओं की अवधारणा एक ट्रस्टी के रूप में की जाती थी। राम राज्य इस बात का गवाह है कि शास्कों की शक्ति उसके अपने स्वार्थ में निहित न होकर जन कल्याण में निहित है। भरत ने राम की अनुपस्थिति में अयोध्या का शासन एक ट्रस्टी की भांति चलाया। भगवान कृष्ण ने महाभारत के युद्ध में अर्जुन के सारथि की भूमिका किसी निहित स्वार्थ या लाभ के लिए नहीं निभाई। वरन् उनकी भूमिका अर्जुन के ट्रस्टी के रूप थी जिसका उद्देश्य अर्जुन को कर्म, ज्ञान व भक्ति के मार्ग पर प्रतिष्ठित करना था।

उन दिनों हिन्दू संयुक्त परिवारों के मुखिया ट्रस्टी के रूप में कार्य करते थे। के.एस. मुंशी के अनुसार, ''उन्होंने पारिवारिक सम्पत्ति ग्रहण की तथा उनसे इस बात की अपेक्षा रखी गई की वह उसका प्रबंधन व संचालन परिवार के प्रत्येक सदस्यों के कल्याण के लिए सचेत, सजग व सतर्क रहेंगे तथा बच्चों, विधवाओं व वंचितों का विशेष ख्याल रखेंगे और उसके कल्याण के लिए हर संभव प्रयत्न करेंगे।''[4] संपत्ति के संबंध में विशेष रूप से जिक्र करते हुए डॉ. राधाकृष्णन ने इस बात को रेखांकित किया कि, ''हिन्दू दृष्टिकोण के अनुसार सम्पत्ति का स्वामित्व रखने वालों के लिए यह आवश्यक है कि वह उसका उपयोग सबके कल्याण व लाभ को सुनिश्चित करने के लिए करें। भगवद्गीता यह बताती है कि हमें उतने की ही कामना करनी चाहिए जितने में हमारी क्षुधा शांत हो जाए। यदि कोई इससे अधिक की चाह करता है तो वह चोर है।''[5]

सो ट्रस्टीशिप के अवधारणा को इसमें निहित मूल्यों से जोड़ कर देखा जाना चाहिए। यह सिद्धांत उतना ही पुराना है जितना कि युग। परन्तु महात्मा गांधी ने इस सिद्धांत को आदर्श के धरातल से उतारकर व्यवहार के धरातल पर खड़ा कर दिया तथा इसके द्वारा सभी विद्यमान आर्थिक विषमताओं व विद्रुपताओं के ठोस समाधान का मार्ग सुझाया।

प्यारे लाल ने इस बात का उल्लेख किया, ''गांधी के अपने ट्रस्टीशिप के सिद्धांत को एक प्राचीन हिन्दू दार्शनिक ग्रंथ 'ईशोपनिषद्' के एक प्रसिद्ध व पवित्र पद्य के आधार पर तय किया जिसमें कहा गया है कि, ''ब्रह्माण्ड

की प्रत्येक वस्तु ईश्वर से सर्वव्याप्त है सो लोभ का परित्याग कर प्रत्येक चीज में ईश्वरीय तत्व की पहचान करनी चाहिए।''[6]

'अपरिग्रह' व 'समभाव' जैसे शब्दों ने उनके मनोमस्तिष्क को गहराई से प्रभावित किया था[7] और वह इस निष्कर्ष पर पहुंचे थे कि गीता में दिए गए अपरिग्रह व सम्पत्ति के स्वामित्व के त्याग के संदेश को ट्रस्टीशिप द्वारा मूर्तवान किया जा सकता है तथा साथ ही त्यागकर्त्ता (सम्पत्ति का) अपने सम्पत्ति पर ट्रस्टी के रूप में स्वामित्व रख सकता है ताकि उसका उपयोग व योग्य लाभार्थियों के हितों के लिए कर सके। अंग्रेजी कानून के अध्ययन ने भी उनकी इस दिशा में राह आसान की। अपनी आत्मकथा में उन्होंने लिखा, ''अंग्रेजी कानून के मेरे अध्ययन ने मुझे सहायता पहुंचाई। और मैं गीता के आलोक में ट्रस्टी शब्द के अर्थ को अधिक अच्छी तरह समझ सका तथा वैश्विक परिप्रेक्ष्य में उसके व्यावहारिक उपयोग की महत्ता को सबके सामने प्रभावी ढंग से रख सका। स्नेल ै;दमससद्ध के समता के सिद्धांत ने मेरे मन को आलोकित किया। गीता द्वारा प्रसारित अपरिग्रह के सिद्धांत का अर्थ था कि हमें अपनी सम्पत्ति का उपयोग अपना निजी हित साधने की बजाय ट्रस्टी के रूप में सर्वहित को सुनिश्चित करने के लिए करना चाहिए और इस अर्थ की मेरी समझ अंग्रेजी कानून के अध्ययन के कारण और अधिक स्पष्ट हो पाई।''[8]

14 अक्टूबर 1909 को पोलोक ;च्वसवाद्धए जो उस समय भारत में प्रवास कर रहे थे, को लिखे गए पत्र में गांधी ने सर्वप्रथम 'ट्रस्टी' शब्द का व्यवहार किया। उन्होंने लिखा, ''और इस तरह ब्रिटिश शासकों की स्थिति सेवकों के रूप में होगी न कि मालिकों की। वे ट्रस्टी होंगे न कि अत्याचारी और वे भारतीय जनता के साथ एक शांतिपूर्ण सद्भाव के वातावरण में रहेंगे।''[9] 4 फरवरी 1916 को बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के उद्घाटन के अवसर पर उपस्थित भव्य सभा को संबोधित करते हुए उन्होंने अपने उद्गार व्यक्त किए, ''मैं मंच पर उपस्थित महानुभावों से अपील और अपेक्षा करता हूं कि वे अपनी प्रतिभा, ज्ञान और धन का उपयोग ट्रस्टी के रूप में इस देश के जनकल्याण के लिए करेंगे।''[10]

गांधी ने सम्पत्ति को दो भागों में बांटा, प्रकृति का उपहार तथा सामाजिक जीवन का उत्पाद। प्रकृति के उपहार में सम्मिलित हैं भूमि, खानें तथा अन्य प्राकृतिक संसाधन, जबकि सामाजिक जीवन के उत्पाद के अन्तर्गत मानव द्वारा अर्जित धन को शामिल किया गया है। ''सर्व भूमि गोपाल की तो फिर सीमा रेखा कहां है?'' उन्होंने प्रश्न किया?[11] भूमि, खानें तथा अन्य प्राकृतिक संसाधन प्रकृति द्वारा प्रदत्तत उपहार हैं। किसी व्यक्ति विशेष ने उसका निर्माण नहीं किया। ईश्वर ने इसका निर्माण किसी व्यक्ति, समूह या जाति विशेष के लिए नहीं किया। मानव भूमि के मात्र एक अंश को ग्रहण कर उसका सीमांकन करता है। वह सीमा रेखा का निर्माता मात्र है। उसे भूमि का असली मालिक नहीं कहा जा सकता है।

बिल्कुल यही मानव निर्मित सम्पत्ति के साथ भी लागू होता है। एक पूंजीपति बेहिसाब धन व उद्योगों का सृजन करता है। वह अकेले ही यह सारी चीजें नहीं कर सकता है। इस कार्य हेतु उसे अन्य लोगों के सहयोग व समर्थन की भी जरूरत होती है। चूंकि गरीब लोगों की सहायता से ही पूंजीपति अकूत सम्पत्ति का सृजन करता है। सो इस सम्पत्ति में गरीब लोगों का भी समान हक बनता है। किसी को भी अपनी जरूरत से अधिक सम्पत्ति को अर्जित करने का अधिकार नहीं है, विशेषकर उस परिस्थिति में जबकि लाखों–करोड़ों लोगों की बुनियादी आवश्यकताएं भी पूरी नहीं हो पा रही हों।

उन्होंने ट्रस्टीशिप को एक ऐसी व्यावहारिक अवधारणा के रूप में विकास किया जिसका उपयोग धनियों को उसके द्वारा अर्जित आवश्यकता से अधिक सम्पत्तियों व लोगों के पाप से मुकत करने के लिए किया जा सकेगा तथा इस प्रकार इन उपायों से एक समतामूलक व सर्वोदयी समाज की बुनियाद रखी जा सकेगी।

ट्रस्टीशिप की उत्पत्ति

ट्रस्टीशिप के सिद्धांत की रूपरेखा किशोरीलाल मशरूवाला, नरहरि पारिख तथा अन्य लोगों की सहायता से तय की गई। प्रोफेसर दांतवाला ;क्ंदजूंसंद्ध ने बम्बई से अपने द्वारा तैयार किए गए ट्रस्टीशिप के एक सरल व व्यावहारिक सूत्र की रूपरेखा तैयार करने भेजी। इसे गांधी के समक्ष प्रस्तुत किया गया जिसमें गांधी ने कुछ फेरबदल किया।[12]

ट्रस्टीशिप के संशोधित व स्वीकृत मसौदे के छः बिन्दु, जिसे उसका बुनियादी तत्त्व माना जाता है, निम्न थे––

(1) ट्रस्टीशिप, वर्तमान पूंजीवादी व्यवस्था के एक समतामूलक सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन के लिए आवश्यक संसाधनों व स्रोतों को मुहैय्या कराता है। यह पूंजीवादी व्यवस्था को किसी भी तरह का कोना उपलब्ध नहीं कराता वरन् उसके बजाय यह पूंजीपति वर्गों को अपने आपको बदलने काएक मौका उपलब्ध कराता है। यह मानवीय प्रकृति में व्याप्त भलमनसाहत में श्रद्धा पर आधारित है।

(2) यह सम्पत्ति के निजी मालिकाना हक को स्वीकृत नहीं करता है, हां यदि समाज अपने कल्याण हेतु ऐसा करने की स्वीकृति प्रदान करता है तो वह स्वीकार्य हो सकती है।

(3) यह स्वामित्व व सम्पत्ति के उपयोग के वैधानिक नियमन को अस्वीकार नहीं करता।

(4) जो राज्य–नियमित ट्रस्टीशिप के अंतर्गत आता है वहां कोई व्यक्ति अपने निजी स्वार्थ या सामाजिक हित के विरुद्ध अपनी सम्पत्ति का इस्तेमाल करने के लिए स्वतंत्र नहीं होगा।

(5) जिस तरह समुचित जीवन स्तर के लिए न्यूनतम आय की बात की जाती है उसी तरह महत्तम आय को भी निश्चित किया जाना चाहिए। न्यूनतम और महत्तम आय के बीच एक साम्य व न्यायसंगत अंतर होना चाहिए ताकि समतामूलक समाज की स्थापना का मार्ग प्रशस्त हो।

(6) गांधीवादी आर्थिक व्यवस्था के अन्तर्गत उत्पादन का लक्ष्य सामाजिक आवश्यकता की पूर्ति होगी न कि व्यक्तिगत लालसा या लोभ का पोषण।

ट्रस्टीशिप का आधार

प्रसिद्ध अर्थशास्त्री जे.डी. सेठी के अनुसार ट्रस्टीशिप का सिद्धांत तीन गांधीवादी अवधारणाओं, यथा अहिंसा, स्वराज व समता जो कि एक–दूसरे से अंतर्गुंथित हैं, पर आधारित है। स्पष्ट रूप में कहें तो गांधी के ट्रस्टीशिप का मूल आधार सत्य, अहिंसा, शारीरिक श्रम व अपरिग्रह पर टिका था। अब हम संक्षेप में इन सबका ट्रस्टीशिप की अवधारणा के साथ संबंधों पर चर्चा करेंगे।

सत्य

गांधी के लिए सत्य का प्रथम तथा अहिंसा का द्वितीय स्थान था। सत्य के अपने अन्वेषण के क्रम में उन्होंने अहिंसा की खोज की। उनका लक्ष्य सत्य था। वह सत्य की अनुभूति अहिंसा के माध्यम से करना चाहते थे। उनके लिए सत्य का अर्थ विचारों के साथ शब्दों तथा शब्दों के साथ व्यवहारों (क्रियाओं) का समुचित समन्वय था। 'सत्य ही ईश्वर', यह कथन सर्वव्यापी और सर्वअन्तर्वेशित है। सामाजिक कार्यकर्ता सत्य की खोज अपनी सेवा के माध्यम से करते हैं, शिल्पकार यह काम अपने शिल्पकला के माध्यम से करते हैं, दार्शनिक द्वारा सत्य की खोज प्रयोजनमूलक होती है वहीं वैज्ञानिक सत्य की खोज अनुभूतमूलक प्रयोगों के द्वारा करते हैं।

इस प्रकार गांधी के अनुसार इनमें से प्रत्येक यद्यपि भिन्न–भिन्न राह अपनाता है, लेकिन उद्देश्य सबका एक होता है––सत्य की अनुभूति। गांधी की नजर में सत्य का स्थान सर्वोपरि था। वह सत्य के लिए कोई भी बलिदान करने के लिए तत्पर रहते थे। गांधी कहते हैं, ''पत्नी, बच्चे, दोस्त, सम्पत्ति––इनमें से कोई भी सत्य'' से बड़ा नहीं है तथा इनमें से प्रत्येक को सत्य के सहायक की भूमिका निभानी चाहिए और यदि इसके लिए किसी के बलिदान की भी जरूरत है तो उसके लिए सदैव तत्पर रहना चाहिए।[13]

अहिंसा

गांधी ने देखा कि ट्रस्टीशिप का विचार अहिंसा की विचारधारा में निहित था, ''अहिंसा मानव जाति का नियम है तथा यह किसी भी तरह की पाशविक ताकत से अनंत गुना शक्तिशाली और प्रभावी है।''[14] उनके अनुसार अहिंसामूलक क्रांति के मार्ग में ट्रस्टीशिप रूपी सहायक की भूमिका अपरिहार्य है। यह कोई कामचलाऊ उपक्रम नहीं था वरन् यह एक ऐसी अवस्था है जो इच्छित फल की प्राप्ति को सुनिश्चित करती है। इस तरह यह साध्य व साधन दोनों हैं। सो गांधी ने दावा किया, ''कोई भी सिद्धांत अहिंसा के जोड़ का नहीं है।''[15] जहां हिंसा अधिग्रहण से जुड़ी हुई है वहीं अहिंसा इसके निषेध से सम्बद्ध है। अहिंसा–व्रती अपने आपको भाग की उपासना से दूर रखता है। किसी

भी तरह का आधिपत्य शोषण पर टिका होता है जो कि हिंसा का एक रूप है। एक अहिंसक समाज शोषणविहीन समाज होता है जहां सबकी आवाज का महत्त्व होता है और सबका हित प्रासंगिक होता है। लेकिन एक अहिंसक समाज के निर्माण के लिए आर्थिक समता पहली शर्त है। संसाधनों के समान वितरण को सुनिश्चित कर आर्थिक समता की बुनियाद रखी जा सकती है।

शारीरिक श्रम

''प्रत्येक आदमी को अपने जीविकोपार्जन के लिए श्रम करना चाहिए'',16 टॉलस्टाय के शारीरिक श्रम की इस अवधारणा से गांधी बहुत प्रभावित थे। गांधी के अनुसार श्रम संपूर्ण सृष्टि का मूलाधार है। ''शारीरिक श्रम द्वारा ही ईश्वर के करीब पहुंचा जा सकता है।'' सो कर्म ही पूजा है। उनका यह विश्वास था कि किसी को भी बिना समुचित श्रम के अपनी रोटी खाने का कोई अधिकार नहीं है। कहने का तात्पर्य यह है कि प्रत्येक स्वस्थ व्यक्ति को अपने भोजन के लिए पर्याप्त श्रम का निष्पादन करना चाहिए तथा जो ऐसा करता है वही अपनी रोटी का वैधानिक हकदार हो सकता है। अपनी जरूरतों से अधिक की चाह व अर्जन को हमेशा रोका जाना चाहिए। दूसरे शब्दों में जरूरत आधारिक अधिग्रहण ही समतामूलक समाज की बुनियाद है।

शारीकिर श्रम की महत्ता स्थापित कर सामाजिक संरचना में एक मौन क्रांति की नीवं रखी जा सकती है। लेकिन इसके लिए किसी भी तरह की बाध्यकारी व्यवस्था सिर्फ गरीबी, बीमारी व असंतोष का ही पोषण करेगी। यह दासत्व का रूप होगा। स्वैच्छिक पालन मात्र से ही इस तरह की मौन क्रांति के मार्ग को प्रशस्त किया जा सकता है। वास्तव में शारीरिक श्रम की गांधीवादी अवधारणा, ''प्रत्येक को उसकी योग्यता के अनुसार तथा प्रत्येक को उसकी जरूरत के अनुसार के सिद्धांत पर आधारित था। जब प्रत्येक व्यक्ति श्रम करता है तथा अपने श्रम का ट्रस्टी बनता है तो फिर धनी या गरीब की प्रासंगिकता समाप्त हो जाती है।''17

अपरिग्रह

अपरिग्रह का अर्थ है स्वामित्व का त्याग यानी सूक्ष्म व स्थूल दोनों तरह के बंधनों से आजादी। इस आदर्श को प्रत्येक धर्म ने पवित्र स्थान दिया हुआ है।18 ईशोपनिषद के सारगर्भित श्लोक में यह उक्ति प्रभावी रूप से वर्णित है–

तेन त्यक्तेन भुंजीथा : मागृद्ध : कस्यस्विद्धनम्।

(अर्थात् त्याग से ही सम्पत्ति का वास्तविक आनन्द लिया जा सकता है न कि आसक्तिपूर्ण लोभ या लालसा से)।19

गांधी के अनुसार, ''अपरिग्रह का अर्थ भौतिक चीजों पर निर्भरता का नहीं होना है। यह किसी भी तरह की निजी सम्पत्ति का पूर्ण निषेध करता है जो कि उग्र कम्युनिस्टी विचारों से अधिक क्रांतिकारी है।'' गांधी के विचार में

चोरी का अर्थ है उन वस्तुओं की प्राप्ति जिसकी तत्काल जरूरत नहीं है। अपरिग्रह चोरी के अभाव का सूचक है। उन्होंने कहा, ''मैं सोचता हूं कि हम सब किसी न किसी मायने में चोर हैं यदि मैं बिना किसी तत्काल आवश्यकता के किसी चीज को लेता हूं या उसे धारण करता हूं तो वह चोरी है,

मैं इस बात को दृढ़ता से कहना चाहूंगा कि यह प्रकृति का आधारभूत नियम है कि उसके पास हमारी जरूरत को पूरा करने के लिए पर्याप्त संसाधन है लेकिन भोगवादी मानसिकता को तुष्ट करने के लिए वह अपर्याप्त है।''[20]

पूर्ण अपरिग्रह एक अमूर्त्त कल्पना है। यह अपने पूर्णता में अप्राप्य है। अपरिग्रह का अर्थ गरीबी से संतुष्ट रहने की प्रवृत्ति नहीं है। भारतीयय लोग पहले से ही गरीबी व भूख की मार से त्रस्त हैं। उन्हें स्वैच्छिक गरीबी को भोगने की जरूरत नहीं है। उनके लिए यह अपेक्षित है कि वे श्रम करें और अपने लिय पर्याप्त भोजन की व्यवस्था करें। गांधी का आशय उन अनावश्यक अधिग्रहण को रोकने से है जो व्यक्ति व समाज की जरूरत की चीजों से वंचित करता है।

अपरिग्रह मानव को प्रत्येक चीज का खुला रखने का संदेश देता है। ट्रस्टीशियन में छुपाव की कोई गुंजाईश नहीं होती है। आवश्यकता से अधिक किसी की भी सम्पत्ति ट्रस्ट को समर्पित हो जाती है और वह प्रत्येक की जरूरत को पूरा करने के ध्येय में सुनिश्चित हो जाती है।

गांधी ने मानव के लिए अपरिग्रह की अपरिहार्यता के पांच निम्न कारण गिनाए[21]——

(1) स्वामित्व प्रकृति की मूल प्रवृत्ति नहीं है। ईश्वर हमारी जरूरत के अनुरूप प्रत्येक चीज की सृष्टि करता है। सो जरूरत से अधिक सामान या धन को इकट्ठा करने की प्रवृत्ति चौर्य वृत्ति का सूचक है।

(2) जन्म के साथ ही मानव प्रकृति व समाज द्वारा निर्मित वस्तुओं पर आश्रित हो जाता है। बिना स्थानान्तरण के इसके उपयोग से मानव की चौर्य वृत्ति पुष्ट होती हे। इसके अतिरिक्त वह प्रकृति व समाज दोनों का ऋणी होता है। सो उसका यह पावन कर्त्तव्य है कि वह इसके बदले में अपना यथोचित योगदान करे। जब कभी वह किसी चीज को ग्रहण करता है या उसका उपभोग करता है तो उसका यह कर्त्तवय है कि वह उसके बदले अपने शारीरिक, मानसकि व आध्यात्मिक श्रम का प्रतिदान करे।

(3) भविष्य के लिए संग्रह की प्रवृत्ति जरूरतमंद को उसकी वर्तमान जरूरतों से वंचित करती है।

(4) लालसा के वशीभूत होकर अधिक से अधिक संग्रह करने की प्रवृत्ति व्यक्ति व समाज दोनों की शांति को भंग करती है।

(5) संग्रहवृत्ति प्रत्येक प्रकार की समस्याओं की जनक होती है। इसकी पूर्ति हेतु बल प्रयोग अपेक्षित होता है। अहिंसा–वृत्ति या उसमें श्रद्धा रखने वाला व्यक्ति संग्रह वृत्ति व बल प्रयोग दोनों का सर्वथा निषेध करता है और उससे अपने आपको दूर रखता है।

अपरिग्रह की अवधारणा में कुछ सामाजिक निहितार्थ होते हैं, जिसके द्वारा ही ट्रस्टीशिप की बुनियाद मजबूत होती है––

(1) जिस समाज में अपरिग्रह की धारणा प्रचलित होती है वहां धन सम्मानसूचक नहीं होती है।

(2) लालसा (संग्रह) वृत्ति सभ्यता का मापदंड नहीं होता है।

(3) चूंकि प्रत्येक जरूरत की तुष्टि श्रम द्वारा होती है।

(4) श्रम में रत व्यक्ति ही एक सम्मानजनक जीवनयापन का वास्तविक अधिकार होता है।

(5) जिस तरह प्रत्येक श्रम का समान मूल्य होता है उसी तरह उसके एवज में समान पारिश्रमिक भी सुनिश्चित होता है।

(6) साधन हमेशा सत्य और अहिंसा पर आधारिक होते हैं।

(7) इस तरह के नैतिक जीवन से आत्मानुभूति का मार्ग प्रशस्त होता है।

अपरिग्रह गांधी के लिए एक उत्कृष्ट व पावन विचार था। इसमें कोई शक नहीं कि उन्होंने व्यवहार में स्वयं अपनी सम्पत्ति का परित्याग किया। लेकिन स्वामित्त्व मानव को संतुष्टि व सुरक्षा का एक भाव प्रदान करता है। सो गांधी ने इसका भी एक बुद्धिमत्तापूर्ण समाधान सुझाया। तद्नुसार उन्होंने यदि स्वामित्व नही ंतो स्वामित्वता तथा यदि धन नही ंतो धन का लालच छोड़ने की बात कही। धनी अपने धन को सामुदायिक सम्पत्ति मानकर उसकी हिफाजत कर सकता और उसे अपने पास रख सकता है। वह धन के उस पूर्णतया स्वामित्व का त्याग एक दूर की संभावना है सो गांधी ने सुझाव दिया, ''मैं इस धारणा को स्वीकार करता हूं कि धन की लालसा का त्याग उसके संग्रह व ट्रस्टी बनने की अपेक्षा अधिक बेहतर है। लेकिन उन लोगों के लिए जिनके पास पहले से ही धन का आधिक्य है तथा जो अपनी धन–लालसा को छोड़ नहीं पाते उनके लिए मेरा एकमात्र सुझाव यही होगा कि वे अपने धन को सेवा के लिए समर्पित कर दें।''[22]

इस तरह गांधी ने व्यक्ति व समाज के सर्वांगपूर्ण विकास हेतु ट्रस्टीशिप का एक व्यावहारिक व यथार्थवीद समाधान सुझाया।

ट्रस्टीशिप का अर्थ

ट्रस्टीशिप गांधी द्वारा स्वयं निर्मित अवधारणा नहीं थी। इसकी उत्पत्ति ईशोपनिषद् से हुई। भारतीय संदर्भ में 'ट्रस्टी' (न्यासी) का उपयोग मन्दिरों व मठों के संदर्भ में किया जाता है। ट्रस्टी (न्यासी) का मतलब किसी ऐसे व्यक्ति से होता है जो मंदिर की सम्पत्ति का संचालन व प्रशासन बिना किसी निहित स्वार्थ के करता है। देवदत्त दाभोलकर के अनुसार, ''बिना किसी प्रतिदान की अपेक्षा के विशेषाधिकार, शक्ति, पद व प्रतिष्ठा का स्वैच्छिक परित्याग ही ट्रस्टीशित है।''[23] के. अरूणाचलम के अनुसार, ''ट्रस्टीशिप का आशय मानव का अपने धन में अवलम्बित उस आत्मविश्वास से है जो उसे उसका उपयोग अपने से हटकर लोगों के कल्याग के लिए प्रेरित व अधिकृत करता है।''[24] वी.के.आर.वी. राव ने 1910 में गांधी के ट्रस्टीशिप विचार को 'विश्व के लिए पूंजीवादी व साम्यवादी अवधारणाओं सहित अन्य आर्थिक अवधारणाओं की उपस्थिति में एक भव्य, प्रभावी व सक्षम विकल्प लोगों के समक्ष रखा।

ट्रस्टीशिप की अवधारणा में एक साथ कई अर्थ निहित हैं, इन अर्थों का संक्षिप्त विश्लेषण निम्नांकित है––

विचार के रूप में ट्रस्टीशिप

ट्रस्टीशिप एक ऐसा विचार है जो मानव को समूची मानवता के साथ समन्वित व सहृदय करता है। जी. एस. श्रॉफ के अनुसार, ''ट्रस्टीशिप एक विचार है, एक सोच है। इसके विचार की पुष्टि स्वयं के अंदर से होती है। इसे बाहर से आरोपित नहीं किया जा सकता है। इसे लोगों पर होने समय तक के लिए कभी भी आरोपित नहीं किया जा सकता है। यह स्वतः स्फूर्त होता है।''[25]

एच.के. परांजपे ने ट्रस्टीशिप की व्याख्या एक विचार के रूप में इन शब्दों में की, ''यह कहना कि ट्रस्टीशिप ऐ मानसिक सोच को इंगित करती है। इस बात का सूचक है कि कुछ ऐसे नैतिक मूल्य हैं जो औपचारिक रूप से ही सही मानवता द्वारा समर्थित है। सत्य, शोषणमुक्तता, ईमानदारी, पर दुख, कायरता, सहभागिता आदि ऐसे ही नैतिक मूल्यों की सूची में आते हैं।''[26]

वास्तव में एक वैचारिक सोच के रूप में ट्रस्टीशिप विभिन्न उत्पादक तत्वों के बीच एक संतुलित संबंध को सुनिश्चत करता है। श्रम का निष्पादन करने वाले तथा श्रम को संचाालित करने वालों के बीच का संबंध उनकी सोच पर ही निर्भर करता है। ट्रस्टीशिप एक आर्थिक व्यवस्था के अंतर्गत प्रत्येक भागीदार से एक निश्चित जिम्मेदारी पूर्ण सोच की अपेक्षा रखता है। ट्रस्टीशिप द्वारा गांधी ने सभी के लिए एक आधारभूत नैतिक सोच या भाव पर जोर दिया।[27]

अरिवंद ए. देशपाण्डे कहते हैं, ''ट्रस्टीशिप की गांधीवादी अवधारणा कामगारों, शेयरधारकों, उपभोक्ताओं तथा समाज के उद्यम तथा उनके बीच पारस्परिक जिम्मेवारिता को अभिव्यक्त करता है। व्यक्ति व समाज के बीच संतुलित व समन्वित संबंधों क बिना कोई भी लोकतंत्र जिंदा नहीं रह सकता।''[28]

एक उपाय (तरीका) के रूप में ट्रस्टीशिप

ट्रस्टीशिप धन के समाजीकरण का तरीका है। धन व संसाधन पर सबका समान स्वामित्व होता है। ईश्वर सर्वशक्तिमान होता है तथा सम्पूर्ण चीजों पर एक उसी का स्वामित्व होता है। सिर्फ किसी लालसा या स्वार्थ के वशीभूत होकर इसका धारण, पाप है। ट्रस्टीशिप प्रत्येक चीज के समाजीकरण को सुनिश्चित करता है। ट्रस्टी के रूप में पूंजीपति की भूमिका सह–साझीदार की हो जाती है। इस स्थिति में प्रत्येक एक–दूसरे से ट्रस्टी के रूप में सम्बद्ध हो जाता है। अनावश्यक व्यक्तिगत दावे का यहां कोई औचित्य नहीं होता है। यह प्रत्येक व्यक्ति को सर्वोदय की उपलब्धि के लिए प्रेरित, स्पंदित व अनुप्राणित करता है।

आंदोलन के रूप में ट्रस्टीशिप

ट्रस्टीशिप किसी पूंजीपति या स्वार्थी नौकरशाह के लिए एक चयन मात्र नहीं है। यह उद्यागों के सामाजिक स्वप्रबंधन का एक आंदोलन है। एक आंदोलन क रूप में इसका ध्येय सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक व्यवस्था को दुरुस्त करना होता है। व्यक्तिगत स्तर पर एक आंदोलन के रूप में ट्रस्टीशिप मानव को भीतर से मजबूत व आश्वस्त करता है। अंतर–व्यक्गित स्तर पर एक आंदोलन के रूप में ट्रस्टीशिप की भूमिका हमेशा एक साहचर्यपूर्ण संबंध स्थापित करनी होती है। यह व्यक्तियों के बीच के संबंध को सुमधुर व सुव्यवस्थित करता है। संस्थागत स्तर पर ट्रस्टीशिप की भूमिका प्रशंसनीय होती है। एक संस्था के रूप में इसका उद्देश्य एक सर्व उद्देश्य की पूर्ति होता है। ट्रस्टीशिप एक ऐसा आंदोलन है जो आर्थिक, राजनीतिक या सामाजिक किसी भी प्रकार के प्राधिकार का निषेध करता है। यह निर्णय–प्रक्रिया की एकाधिकारिता को खारिज करता है। वास्तव में ट्रस्टीशिप प्रत्येक मानव की भूमिका को समान स्तर पर सुनिश्चित करता है।

एक वैधानिक संस्था के रूप में ट्रस्टीशिप

गांधी ट्रस्टीशिप को एक वैधानिक संस्था के रूप में ढालने को तैयार थे। वह इसे वैधानिक चैनल के माध्यम से सांविधानिक रूप प्रदान करना चाहते थे, उन्होंने धनिकों के हृदय परिवर्तन हेतु निम्न उपाय सुझाए––

(1) धनिकों के पावन भावों को जागृत करना,

(2) रजामंदी,

(3) परिवर्तन की अपरिहार्यता हेतु शिक्षण,

(4) हिंसा द्वारा परिवर्तन के विकल्प की अनाकर्षणता का बोध करना,

(5) शोषितों द्वारा अहिंसक असहयोग का उपयोग ताकि शोषकों की कार्यप्रणाली ठप्प पड़ जाए, तथा

(6) वैधानिक व्यवस्था।

ट्रस्टीशिप कानून में निम्न चीजों की सुरक्षा का समुचित प्रबंध करना चाहिए––

(1) असामाजिक प्रवृत्ति वाले वस्तुओं या सेवाओं का अनुत्पादन,

(2) आधुनिक अधःपतन को प्रेरित करने वाले समानों या सेवाओं का अनुत्पादन,

(3) आध्यात्मिक विकास के मार्ग को अवरुद्ध करने वाले तत्वों का अनुत्पादन,

(4) व्यक्तिगत उपभोगताओं के नैतिक, मानसिक व शारीरिक विकास की अवरुद्ध करने वाली सेवाओं व समानों का अनुत्पादन।

ट्रस्टीशिप कानून में आधुनिक तकनीक व प्रौद्योगिकी के लिए समुचित स्थान होना चाहिए। लेकिन यह प्राकृतिक साहचर्य तथा पर्यावरण संतुलन को सुसाध्य करने वाला होना चाहिए, इसके अलावा इसमें आने वाली पीढियों के हितों का संरक्षण सुनिश्चि होना चाहिए।

ट्रस्टीशिप कानून में उत्पादन व वितरण में सांस्कृतिक व नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा सुनिश्चित होना चाहिए। कार्य (श्रम) को आनंद व आत्म–संतुष्टि को अभिव्यक्त करने वाला होना चाहिए। न कि दर्द व निराशा को बढ़ाने वाला। ट्रस्टीशिप कानून में सभी आर्थिक गतिविधियों के लिए भिन्न पंजीकरण की व्यवस्था होनी चाहिए।

ट्रस्टीशिप व्यवस्था में सहकारी संस्थाओं तथा मानववादी संस्थाओं के प्रेरित व त्वरित विकास को सुनिश्चित करने वाले प्रबंध होने चाहिए।

केन्द्र व राज्य दोनों स्तरों पर ट्रस्टीशिप के अलग–अलग विभागों की स्थापना होनी चाहिए तथा इसके लिए अलग मंत्रालयों को प्रबंध होना चाहिए।

मंत्रियों की रिपोर्टों को जनता तथा विधानसभाओं के समक्ष स्वंतत्र बहस के लिए प्रस्तुत किया जाना चाहिए।

उन ट्रस्टी उद्यमों को विशेष पहचान सुनिश्चित की जानी चाहिए जिन्होंने विकास व आध्यात्मिक जागरण में अपना विशेष योगदान दिया हो। किसी उद्यम को ट्रस्टीशिप कानून के तहत बाध्य रूप में पंजीकृत करना जरूरी नहीं है।[29]

समुचित पंजीकरण के बिना किसी भी उद्यम को किसी भी प्रकार के विशेषाधिकार से वंचित रखा जाना चाहिए। गांधी का मत ट्रस्टीशिप को वैधानिक संस्था के रूप में देखना था। तद्नुसार राज्य के निम्न प्रकार्य हैं––

(1) इसके द्वारा ट्रस्टीशिप संस्था को सांविधानिक या वैधानिक रूप प्रदान करना,

(2) इसके द्वारा ट्रस्टीशिप के लिए कमीशन की दर निर्धारित किया जाना,

(3) इसके द्वारा ट्रस्टीशिप की शर्तों की पूर्ति का पर्यवेक्षण,

(4) ध्येय को ध्यान में रखकर इसके द्वारा उत्तराधिकारी ट्रस्टी की नियुक्ति का नियमन व प्रमाणन तथा,

(5) इसके द्वारा ट्रस्टियों की मान्यता रद्द करना जो अपना दायित्व निभा पाने में असफल होते हैं।

ट्रस्टीशिप के संविधान का कानून द्वारा संचालन जरूरी नहीं है क्योंकि प्रत्येक कानून में हिंसा का कुछ न कुछ अंश होता है। लेकिन गांधी लोकमत द्वारा पारित कानूनों को स्वीकार करते हैं, यू.एन.वेबर ने गांधीवादी रुख की

इन शब्दों में व्याख्या की, ''ट्रस्टीशिप की मौलिक अवधारणा, जो कि सम्पत्ति के कानून का अभिन्न अंग है, का एक मात्र अर्थ है कि सम्पत्ति का इसके धारकों के हित में कुछ सामाजिक बाध्यताओं के साथ समुचित उपयोग सुनिश्चि होना।''

सिद्धांत के रूप में ट्रस्टीशिप

इसमें कोई संदेह नहीं कि ट्रस्टीशिप का सिद्धांत हमारे महाकाव्यों में उपस्थित रहा है तथा उसका उपयोग हमारे राजाओं द्वारा प्राचीन समय में किया जाता रहा है। आधुनिक संसार में, जीवन अपने लालची प्रवृत्ति के कारण काफी विकृत व प्रदूषित होता जा रहा है। गांधी के पास ट्रस्टीशिप को मानवीय जीवन में लाने के अलावा और कोई विकल्प नहीं था। सिद्धांत के रूप में गांधी का ट्रस्टीशिप सर्वस्वीकृत है। लेकिन व्यवहार रूप में कोई इसे अपनाने के लिए आगे नहीं आता। प्रत्येक व्यक्ति आजादी तो चाहता है लेकिन जिम्मेदारी से दूर भागता है। चुंकि आजादी जिम्मेदारी है सो कोई इसे पसंद नहीं करता है। स्वतंत्रता आत्म–शासन में निहित होती है। प्रत्येक क्षेत्र में मालिक–सेवक की समस्या कायम रहती है। आर्थिक क्षेत्र भी इसका कोई अपवाद नहीं है। गांधी ने इस समस्या का एक प्रभावी व उपयोगी समाधान प्रस्तुत किया। यह ट्रस्टीशिप था जो श्रम या कार्य सीधे उत्पादन से जोड़ता है न कि इसके मूल्य व खपत से। प्रत्येक मनुष्य में कुछ न कुछ गुण होता है और इस तरह वह अपनी प्रतिभा के बलबूते उत्पादन–आधिक्य का सृजन करता है। इस आधिक्य का वह ट्रस्टी बने, इसकी अपेक्षा उससे की जाती है उसका प्राथमिक कर्त्तव्य उत्पादन में निहित है। लेकिन उत्पादन का लक्ष्य किसी भी तरीके से स्वार्थ के दृष्टिकोण से नहीं होना चाहिए। इसकी मिसाल हमें अपने परिवार में देखने को मिलती है। मां परिवार के प्रत्येक सदस्य के लिए भोजन तैयार करती है। इसका उत्पादन समता के आधार पर नहीं किया जाता है वरना प्रत्येक की जरूरत के अनुसार उसका निर्धारण होता है।[31]

एक आदर्श के रूप में ट्रस्टीशिप

प्रत्येक सुविज्ञ व सुचिंतित व्यक्ति अपने लिए प्राथमिक या द्वितीयक रूप में कुछ लक्ष्यों को निर्धारित करता है। तद्नुसान उसे उसकी उपलब्धि हेतु श्रम करना पड़ता है। ट्रस्टीशिप एक ऐसा आदर्श है जो इस धरती पर प्रत्येक व्यक्ति के मानवीय जीवन को पूर्णत्व की ओर अग्रसारित करता है। यह मानव के मन व शरीर मे ंअनुशासन, समर्पण व भक्ति का बीज बोता है। एक सुशिक्षित व्यक्तित्व के लिए प्रत्येक मानव के लिए निर्धारित अंतिम लक्ष्य की अनुभूति अपेक्षित होती है। सो ट्रस्टीशिप सर्वोत्तम द्वितीयक आदर्श है जो मानव का श्रेष्ठ व्यक्ति के रूप में आत्मानुभूति के लिए प्रेरित व सक्षम करता है।

विश्वास (ट्रस्ट) की प्रकृति

जब व्यक्तियों का एक समूल आपस में मिलकर अपने आधिक्यों को बांटता है तो एक ट्रस्ट का जन्म होता है। प्रतिभा या सम्पत्ति या धन किसी के भी आधिक्य को एक साथ लाकर उसका समुचित प्रबंधन व उपयोग समाज की जरूरतों को पूरा करने के लिए किया जाता है। ट्रस्ट पूरी मानव जाति के लिए एक वरदान है। ट्रस्ट का योगकर्त्ता (दानकर्त्ता) जाति, धर्म, संप्रदाय, रंग, उम्र व लिंग से ऊपर होता है। ट्रस्ट पर किसी का एकाधिकार नहीं होता है। यह सबका सम्मिलित धरोहर होता है। इस ट्रस्ट के समुचित देखभाल की आवश्यकता होती है। जो इस कार्य को प्रभावी व निःस्वार्थ तरीके से निभा पाने में सक्षम होता है। उसे ट्रस्टी कहा जाता है। ट्रस्टी का उद्देश्य निःस्वार्थ सेवा होता हे। बिना ट्रस्ट के इस पृथ्वी पर किसी तरह का मानवीय विनिमय असंभव है।

गांधी ने कहा, ''इस संसार में आगे बढ़ने का सबसे व्यावहारिक व सबसे गरिमामय तरीका यह है कि यदि हमारे पास हठ का कोई सकारात्मक करण नहीं है तो हमं मानव व उसके द्वारा उच्चारित शब्दों पर विश्वास करना चाहिए।''[32] उन्होंने आगे कहा, ''मैं ट्रस्ट (यानी विश्वास करने में) करने में विश्वास रखता हूं। ट्रस्ट, ट्रस्ट की उत्पत्ति का कारण बनता है। संदेह विद्वोष की नींव रखता है तथा ज्यों–ज्यों संदेह बढ़ता जाता है त्यों–त्यों विद्वेष, घृणा आदि की नींव भी पुख्ता होती जाती है। ट्रस्ट करने वालों की संसार में कभी पराजय नहीं होती।''[33] वह इतना सावधान होता है कि वह अपने समझौते को कभी नहीं तोड़ता। उनके लिए समझौते का उल्लंघन ट्रस्ट की धुमिल करने वाला होता है।

ट्रस्टी के गुण

ट्रस्टी वह होता है जो आत्म–विवके से प्रेरित होकर स्वतः अपने द्वारा अर्जित सम्पत्ति या धन का ग्रहण, संरक्षण व उपयोग कल्याणकारी कार्यों के लिए करने की जिम्मेदारी उठाता है।[34] वह हमेशा नैतिकता का एक श्रेष्ठ उदाहरण होता है। ट्रस्टी का जनता के सिवा कोई उत्तराधिकारी नहीं होता।

राघवन अय्यर[35] ने टस्ट्री के निम्न अनिवार्य गुणों को वर्णन किया––

(क) वह आत्म–शासित होता है।

(ख) वह नैतिक रूप से संवेदनशील होता है।

(ग) वह हमेशा दूसरों की जरूरतों के प्रति जागरूक होता है।

(घ) वह अपनी प्रवृत्तियों को नियंत्रित व प्रसारित करने में सक्षम होता है।

(प) वह हमेशा अपनी उदारमना छवि व परहितवादी प्रवृत्ति संवारता व परिष्कृत करता रहता है।

(फ) वह पूरे मन से सभी शोषणपरक विचारों व संबंधों से अपने आपको दूर रखता है।

(ब) उसकी मनोवृत्ति हमेशा आत्म–परिचालित, भरोसेमन्द व त्यागी की होती है।

(भ) वह परहितों के संबंध में सोचना सीखता है।

(म) वह मन–वचन व कर्म से पूर्णतया अपने आप को शुद्ध व पाक रखता है। वह आन्तरिक व बाह्य सभी स्थितियों से हमेशा अपने आपको अवगत रखता है। वह इस बात में श्रद्धा रखता है कि प्रत्येक चीज ईश्वर, मानवजाति व आगे आने वाली पीढ़ियों की विरासत है।

(त) वह कभी अपनी सम्पत्तियों, प्रतिभाओं व उपहारों के वर्द्धन के भय का प्रदर्शन नहीं करता है।

(थ) वह कभी अपनी स्वार्थपूर्ण मंशाओं का प्रदर्शन नहीं करता है।

(द) वह संचय वृत्ति का हमेशा परित्याग करता है।

(घ) वह अपने आपको मानवता के एक सेवक के रूप में प्रशिक्षित करता है।

(न) वह आन्तरिक नैतिक संतुलन का आनंद उठाता है।

(ट) वह अनासक्त होकर रहता है।

(ठ) वह प्रकृति की सात्त्विक वृत्ति व मानव की असीम उद्यमता में अदम्य विश्वास रखता है।

(ड.) वह सदैव कल्याणकारी योजनाएं बनाने की असीम प्रयत्नशील रहता है।

आर. बी. उपाध्याय ने भी प्रभावी रूप से ट्रस्टी के 24 गुण बताएं हैं, ''जो ट्रस्टियों के व्यक्तित्व को सही दिशा प्रदान करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।''[36] ये गुण निम्नांकित हैं––

(1) एक ट्रस्टी को उच्च्य चरित्र का व्यक्ति होना चाहिए। पूर्ण ईमानदारी उसकी वास्तविक प्रवृत्ति होनी चाहिए।

(2) अपने ऊपर विश्वास व्यक्त करने वाली पार्टी के हित के लिए उसे सर्वोत्तम नीयत के साथ अपनी भूमिका अदा करनी चाहिए।

(3) उसके द्वारा उठाए गए कदम दोषरहित व बेदाग होने चाहिए।

(4) अगर जरा–सी संदेह होने की गुंजाइश हो तो उसे जन संवीक्षा के कठोरतम मापदंडों पर खरा उतरने के लिए सदैव तत्पर रहना चाहिए।

(5) उसे ट्रस्ट की प्राप्ति व भुगतान तथा लेनदारी व देनदारी का साफ–सुथरा व सही रिकार्ड बनाए रखना चाहिए। उसे इन रिकार्डों के किसी स्वतंत्र व तटस्थ अधिकरण से मूल्यांकन व परीक्षण के लिए सदैव तैयार रहना चाहिए।

(6) उसे ट्रस्ट व पैसे के संबंध में अत्यंत सावधानी के साथ व्यवहार करना चाहिए।

(7) उसे ट्रस्ट व पैसे या सम्पत्ति से अपना निजी स्वार्थ नहीं साधना चाहिए।

(8) उसे अपने धन का भद्दा व विलासितापूर्ण प्रदर्शन नहीं करना चाहिए तथा समाज के रहन–सहन के स्तर के समान ही अपनी जिंदगी बितानी चाहिए।

(9) उसमें वाणिज्यिक (बिजनेस) कार्य कुशलता तथा प्रबंधकीय कौशल का समावेश होना चाहिए।

(10) अपने स्वभाव व सिद्धांत में उसे शारीकिर श्रम की गरिमा व महत्ता में विश्वास करने वाला होना चाहिए तथा उसे स्वयं भी थोड़ा–बहुत शारीरिक श्रम प्रतिदिन करना चाहिए।

(11) उसमें दंभ, अभिमान, घृणा, द्वेष आदि का सर्वथा अभाव होना चाहिए तथा उसे निरंतर आत्म–परिष्कार के मार्ग पर चलना चाहिए।

(12) उसे इस बात की अनुभति होनी चाहिए कि उसकी भूमिका सहयोगी की है न कि मालिक की।

(13) उसे अपने व्यवहार व तौर–तरीकों में किसी लाग–लपेट को स्थान नहीं देना चाहिए वरन् उसके जगह उसे सच्चा, निष्कपट व विचारवान होना चाहिए।

(14) उसे अपने समूह को नेतृत्व प्रदान करने वाला होना चाहिए।

(15) उसे मानवीय गरिमा व स्वतंत्रता में पूर्ण विश्वास होना चाहिए तथा चाटुकारिता से परहेज करना चाहिए।

(16) उसे सामाजिक जिम्मेदारी के प्रति सचेत व सतर्क होना चाहिए तथा व्यापारिक व्यवहारों में न्यायपूर्ण व समुचित तौर–तरीकों को शामिल करना चाहिए।

(17) उसे जरूरत आधारित रुख अपनाना चाहिए ताकि वह सामाजिक व आत्मानुभूति के लक्ष्य से निरंतर प्रेरित रह सके।

(18) एक समतामूलक समाज के निर्माण में उसकी आस्था दृढ़ होनी चाहिए तथा उसे अपने व्यवहार में सबके प्रति विशेषकर विरोधियों के प्रति समतापूर्ण व गरिमापूर्ण आचरण करना चाहिए।

(19) यद्यति वह भौतिक महत्त्वकांक्षाओं से प्रेरित हो सकता है लेकिन भौतिक समृद्धि को उसे साध्य के साधन के बतौर समझना चाहिए न कि खुद में एक साध्य। जीवन के प्रति उसका दृष्टिकोण सर्वांगपूर्ण होना चाहिए।

(20) उसे जीवन के प्रति दार्शनिक विचारों को प्राथमिकता देनी चाहिए तथा अपने आचरण में अत्यधिक लोभ या लालसा का परित्याग करना चाहिए।

(21) उसे यद्यपि जीवन के आधारभूत सिद्धांतों के प्रति ठोस व दृढ़तापूर्ण रुख अपनाना चाहिए लेकिन साथ ही समाज का एक संवेदशील प्राणी होनेके नाते जरूरत के अनुरूप महती उद्देश्य हेतु समझौते करने से भी पीछे नहीं हटना चाहिए।

(22) उसके कार्य–निष्पादन में चपलता, गति, उत्साह व समर्पण दिखना चाहिए।

(23) परिस्थितियों व्यक्तियों के प्रति सही बोध के विकास के लिए उसमें परानुभूति का गुण भी होना चाहिए ताकि वह परिस्थितियों के अनुरूप श्रेष्ठ प्रतिक्रिया व्यक्त कर सके।

(24) उसे इस सिद्धांत में विश्वास करना चाहिए कि 'सेवा पहले तथा लाभ बाद में'।

ट्रस्टीशिप के सिद्धांत की आलोचना

ट्रस्टीशिप का सिद्धांत अधिकतर अविचारित तथा अनुपयुक्त आलोचनाओं का शिकार रहा है। इसे साधारणतया कामचलाऊ चीज माना गया। इसे धन–कुबेरों की दानशीलता का प्रदर्शन करने का तंत्र भी कहा गया। इसकी आलोचना मुख्यता इस आधार पर की गई कि इसमें सामाजिक परिवर्तन को सुनिश्चित करने वाले ठोस कारकों का अभाव है। प्रोफेसर एम. एल. दांतवाला ने अपने 'गांधीज्म रिकन्सिडर्ड' में इस सिद्धांत का मार्क्सवादी मूल्यांकन प्रस्तुत किया है। धनहीन व धनवान के बीच की खाई में बंटा समाज, जो कि पूंजीवाद का मौलिक रूप है, की निरन्तरता गांधीवादी अवधारणा में भी कायम रहने की बात कही गयी। गांधीवादी में सिर्फ इतना अन्तर है कि अब तक के पूंजीपति अपने आपको सर्वहारा वर्ग की ओर से ट्रस्टी मानना शुरू कर देंगे। परिवर्तन का यह रूप पूर्णतः विषयपरक होगा। उत्पादन का स्वरूप पूर्व की तरह व्यक्तिगत ट्रस्टियों के बीच अनियोजि निजी प्रतिस्पर्द्धा की प्रकृति वाला होगा। उत्पादन के इन तौर–तरीकों का परिणाम यह होगा कि वर्तमान पूंजीवादी व्यवस्था की प्रतिकूलताएं यथावत कायम रहेगी। पूंजीपति वर्गों के द्वारा ट्रस्ट के उदारमना चोले में उत्पादन के आधिक्य का अधिकाधिक संचयन जारी रहेगा तथा सर्वहारा वर्ग पहले की तरह वंचित, शोषित व पीड़ित व दूसरों पर निर्भर बनी रहेगी। इन बुराइयों का अन्त हृदय परिवर्तन या मानसिक परिवर्तन के द्वारा संभव नहीं है।[37]

ई.एम.एस नम्बूदरीपाद के केवल उनके दर्शन पर वरन् उनकी नीयत पर भी सवाल उठाया। उनके अपने शब्दों में, ''केवल ग्रामीण गरीबों वरन् कामकाजी वर्ग तथा उनकी अवधारणा बुर्जुआ वर्ग को तुष्ट करने वाली थी..... उनकी ट्रस्टीशिप की अवधारणा, निरंतर जोर एक ऐसा कौशलपूर्ण तरीका था जिसमें उन्होंने अपने सहयोगियों के संसदीय (राजनीतिक) गतिविधियों के साथ अपने विशेष संसदीय (राजनीतिक) गतिविधियों (रचनात्मक कार्यक्रम तथा सत्याग्रह) को शामिल किया जो कि गांधीवादी तरीकों की खास विशेषता है जिसमें एक तरफ तो शत्रु पक्ष के खिलाफ प्रत्यक्ष जन आंदोलन चलाया जाता है वहीं दूसरी तरफ शत्रु पक्ष से वार्ता भी साथ–साथ चलायी जाती है। यानी एक तरफ तो सर्वसाधारण का साम्राज्यवाद के खिलाफ भड़काया जाता है, वहीं दूसरी ओर क्रांतिकारी जन कार्यवाही की धार को भी कुंद करने का प्रयास किया जाता है–– ये सब गतिविधियां व्यवहार में बुर्जुआ वर्ग को बेहिसाब फायदा पहुंचाने वाली साबित हुई। जन समुदाय को उत्तेजित करने तथा उन्हें नियंत्रित करने, साम्राज्यवादी विरोधी प्रत्यक्ष कार्यवाही करने तथा साथ ही साम्राज्यवादी शासकों के साथ वार्ता प्रक्रिया में भी रत रहने की उनकी योग्यता ने उन्हें बुर्जुआ वर्ग का अविवादित नेता घोषित किया।''[38]

उनके सिद्धांतों की आलोचना सिर्फ मार्क्सवादियों ने ही नहीं की। गांधीवादी अर्थशास्त्र में सहानुभूति रखने वाले प्रोफेसर जे.जे. अंजारिया (Anjaria) ने भी इसकी दीर्घकालीन वैधता पर सवाल उठाया, ''अल्पकालीन तौर–तरीकों के रूप में तो इसकी सक्षमता असंदिग्ध है, किसी भी बड़े स्तर पर जबरदस्ती का व्यवहार नैतिक रूप से

गलत है, यह समयोचित भी नहीं है। लेकिन दीर्घकालीन परिस्थितयों में धनिक वर्गों से कुछ दानशीलता को मांग मात्र करने से किसी भी प्रकार के ठोस समाधान की गुंजाइश नहीं बनती।''[39]

यहां तक कि गांधी के राजनीतिक उत्तराधिकारी तथा सबसे विश्वसनीय शिष्य पंडित जवाहरलाल नेहरू ने भी अपनी आत्मकथा में लिखा, ''फिर से मैं गांधी में व्याप्त विरोधाभास पर विचार करता हूं। पिछड़ों, पीड़ितों व शोषितों के प्रति अपनी उत्कृष्ट संवेदनशीलता के बावजूद आखिर क्यों वह एक ऐसी व्यवस्था का समर्थन करते हैं जो स्पष्ट रूप से क्षरण का शिकार हो रही है, जो इस दुर्दशा व उजाड़ का पोषण करने वाली है? वह एक समाधान की तलाश में है, यह सत्य है परन्तु क्या यह इतिहास के कूड़े में फेंक दिया गया समाधान नहीं है? और इसी बीच वह पुरानी व्यवस्था के हर उस प्रतीक को संरक्षण व पोषण करते नजर आते हैं जो विकास के मार्ग में रोड़ा अटकाने का काम करता है––यथा सामंतवादी राज्य, बड़े जमींदार तथा ताल्लुकेदार, वर्तमान पूंजीवादी व्यवस्था, क्या ट्रस्टीशिप के इस सिद्धांत में विश्वास किया जा सकता है कि किसी को अबाधित की जाए िकवह अपनी सम्पत्ति का उपयोग जन कल्याण के लिए करेगा? क्या हममें से श्रेष्ठतम भी इतना पूर्ण है कि उस पर इस तरह का भरोसा किया जा सके?...... और क्या अन्य के लिए यह उचित है कि उसे इस तरह के किसी दानवीर का मोहताज बना दिया जाए।''[40]

ट्रस्टीशिप के सिद्धांत की मुख्य व्यवस्था काफी व्यापक व गहरे अर्थों वाली है सो उसका बोध आसान नहीं है। इसका कोई ऐतिहासिक उदाहरण सामने नजर नहीं आता है। इसके अतिरिक्त ट्रस्टीशिप के सिद्धांत का पूर्णतः व्यावहारिक उपयोग कहीं नहीं किया गया है। इस सिद्धांत के साथ मुख्य समस्या यह है कि या तो इस सिद्धांत की आलोचना की गई है या उसका महिमांडन किया गया है। लेकिन इसका व्यावहारिक प्रयोग कहीं नहीं हुआ। गांधी ने सामाजिक बीमारियों के हल के लिए चीनी पुती कुनैन की गोली दवा रूप में दी। लेकिन उनके सहयोगियों व अनुयायियों ने चीनी को चाट लिया और कुनैन को थूक दिया। ट्रस्टीशिप के सिद्धांत को भी कुछ इसी रूप में लिया गया। और यही कारण है कि देश में अब तक अनेक प्रयासों के बावजूद भी ट्रस्टीशिप की बुनियाद नहीं रखी जा सकी, न ही इसके लिए कोई कानूनी प्रावधान किया जा सका।

स्वर्गीय डॉ. राम मनोहर लोहिया ने मार्च 1967 में लोकसभा में 'इंडियन ट्रस्टीशिप बिल' प्रस्तुत करने की अपनी मंशा जाहिर की थी। इसमें स्वैच्छिक परिवर्तन को उद्योगों, बागों, बैंकों, व्यापार व यातायात आदि से संबंधित ट्रस्ट कॉरपोरेशनों का रूप देने का प्रस्ताव निहित था। विधेयक में गांधी के ट्रस्टीशिप विचार के अनुरूप ट्रस्ट कॉरपोरेशनों के प्रभावी प्रबंधन हेतु विस्तृत दिशा–निर्देश निर्धारित थे। भारते के राष्ट्रपति ने इस विधेयक को लोकसभा में प्रस्तुत होने से इस आधार पर रोक दिया कि उक्त प्रावधान इस धन विधेयक (Money Bill) बनाते हैं। डॉ. लोहिया ने इस हेतु राष्ट्रपति से अपील की थी लेकिन मृत्यु के ग्रास ने उन्हें इस मामले को आगे बढ़ाने से रोक दिया।

21 नवम्बर 1969 का जाजग फर्नांडिस ने लोकसभा में उसी विधेयक को 'इण्डियन ट्रस्टीशिप बिल' के नाम से लोकसभा में प्रस्तुत किया लेकिन यह बिना चर्चा के ही रद्द हो गया। इस क्रम को आगे बढ़ाते हुए अटल बिहारी वाजपेयी ने उसी विधेयक को 18 अप्रैल 1975 में चर्चा के लिए सदन के पटल पर रखा, लेकिन यह भी 1977 में लोकसभा के भंग होने के साथ समाप्त हो गया, 20 अप्रैल 1978 को प्रोफेसर रामजी सिंह द्वारा प्रस्तुत ''जनता ट्रस्टीशिप बिल' की भी वही गति हुई।[41]

गांधी ने आशा व्यक्त की थी कि सांविधिक ट्रस्टीशिप भारत का विश्व को उपहार होगा लेकिन अब तक इन नैतिक जिम्मेदारी का पूर्ण होना बाकी है। गडरे (हंकतम) ने लिखा, ''ट्रस्टीशिप मंत्र'' गांधीवाद में पुनर्चेतना पैदा कर सकता है जो यदि जीवित हो गया तो हमें अपने आरामदायक कुर्सियों समेत निगल जाएगा।[42] इस भय के कारण ही हम इसके कार्यान्वयन में यहां–वहां बलि का बकरा ढूंढ लेते हैं। यह हुक्मरानों, नेताओं, उद्योगपतियों, नौकरशाहों तथा अन्य विशेष वर्गों से उनका विलासितापूर्ण जीवन छीन लेगा और उसे आम जनता में वितरित कर देगा। हम गांधी के स्वप्न की अनुभूति तभी कर सकते हैं जब सत्य की खोज के क्रम में हम आत्म–रक्षा के बजाय आत्म–बलिदान का चयन करें।

यह सुखद है कि हाल–फिलहाल कुछ नामचीन सामाजिक विज्ञानियों ने ट्रस्टीशिप के सिद्धांत में उत्साह पुनर्रुचि दिखायी है। प्रोफेसर एस.एल. मल्होत्रा, प्रोफेसर रामजी सिंह, प्रोफेसर एन.राधा कृष्णन और डॉ. जे.डी. शॉ ने इस क्षेत्र में विशेष रुचि दिखायी है। डॉ. जे.डी. सेठी ने अपने 'गांधी टुडे' में ट्रस्टीशिप को एक उत्कृष्ट विकल्प की संबा प्रदान की है।

वर्तमान समय में भारत के लिए इसकी प्रासंगिकता और अधिक बढ़ गई है। हमने अपने यहां मिश्रित अर्थव्यवस्था का मॉडल अपनाया है। जिसमें वृहद सार्वजनिक व निजी दोनों उद्योगों को मिश्रण है। लेकिन संसाधनों का वितरण दोषपूर्ण है और वह कृषि के बजाय उद्योगों की तरफ अधिक झुका हुआ है। सो विशाल व वृहद औद्योगिक फर्म देश की अर्थव्यवस्था के वृहत्तर भाग को नियंत्रित करते हैं। और आर्थिक शक्तियों का केन्द्रीकरण लगातार इन फर्मों के हाथों में होता जाना स्थिति को और भी भयावह बनाया है। राष्ट्रीयकरण की प्रक्रिया ने ऐसे नौकरशाहों की फौज तैयार की जिसके हाथों में बेहिसाब शक्ति सकेंद्रित हो गई हैं श्रमिक वर्ग उच्चतर वेतनमान, पद, यूनियन आदि के अपने प्राथमिक अधिकारों को भी लगातार खोते जा रहे हैं।

ट्रस्टीशिप आर्थिक शक्ति के संकेन्द्रण को कम करने के लिए एक प्रभावी वैकल्पिक तंत्र को मुहैया कराता है। प्रो. जे.डी. सेठी ने इसके लिए तीन चरणों का सुझाव दिया है।[43]

पहले, वृहत्त औद्योगिक घरानों के एक निश्चित भाग को ट्रस्ट के रूप में परिवर्तित करना होगा।

दूसरे चरण में सभी अन्य नव उद्योगों व फर्मों को ट्रस्टीशिप के सिद्धांत का पालन करना होगा।

तथा तीसरे चरण के रूप में मूल्यों, वितरणों, वेतनमानों तथा लाभों आदि के बारे में ट्रस्टीशिप फर्मों के लिए कुछ आधारभूत सिद्धांतों की नींव रखी जानी चाहिए। यह सही है कि प्रत्येक विचार शुरुआत में कल्पना यानी दूर की कौड़ी नजर आती है। लेकिन समुचित ध्यान वह सावधानीपूर्ण व्यवहार से असंभव कुछ भी नहीं रह जाता है तथा प्रत्येक चीज मानवीय क्षमताओं की परिधि में आ जाती है। गांधी ने मानवीय संभागों की उस विकट स्थिति का गहन अध्ययन किया जिसमें शोषक व शोषिक तथा सधन और निर्धन के बीच को खाई लगातार बढ़ती जा रही है तथा एक वर्गवादी समाज की स्थापना कायम होती जा रही है। एक महान मनोवैज्ञानिक के रूप में गांधी ने यह विचार किया कि विश्वास पर आधारित समाधान मात्र से ही मानवता की सेवा की जा सकती है और उसका संरक्षण व पोषण किया जा सकता है। उन्होंने इस बात का अनुभव किया कि सत्य व अहिंसा की चाशनी में डूबे मानवीय विश्वास मात्र से ही सम्पूर्ण मानवता को उसके विविध आयामों व भिन्नताओं के बावजूद एक सूत्र में पिरोया जा सकता हैं। परिप्रेक्ष्य में गांधी द्वारा 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की स्थापना का प्रयास उन्हें एक महान द्रष्टा के रूप में स्थापित करता है।

सो प्रत्येक व्यक्ति अपने आपको अपने तथा दूसरों के ट्रस्टी के रूप में स्थापित कर समाज की जरूरतों को पूरा करने में अपना अमूल्य योगदार दे सकता है। यह व्यक्तिगत व सामाजिक दोनों स्तर पर पाए जाने वाले भिन्नताओं व प्रतिकूलताओं का शमन कर सबके लिए कल्याण का मार्ग प्रशस्त कर सकता है। इसके सिवाय मानवता की आधुनिक समस्याओं का निराकरण करने वाला कोई दूसरा प्रभावी, व्यावहारिक, बेदाग व सक्षम विकल्प नहीं है। संपूर्ण मानवता के संरक्षण व पोषण के महान विचार ने ही गांधी को ट्रस्टीशिप के विचार को व्यवहार में अपनाने के लिए प्रेरित किया। वहीं पर गांधी की महानता अंतर्निहित है।

संदर्भ

1. यंग इंडिया, 13.10.1021, पृ. 325।
2. हरिजन, 23.2.1947, पृ.39।
3. हरिजन, 16.12.1939, पृ. 376।
4. के. एम. मुंशी, रिकॉनस्टीट्यूशन ऑफ सोसायटी थ्रू ट्रस्टीशि, बाम्बे : भारतीय विद्या भवन पृ. 15–16।
5. एस. राधाकृष्णन के लेख, 'दी इंडीविजुअल एण्ड दी सोशल आर्डर इन हिन्दुइज्म' इन ह्यूग्स, ई.आर. (सं.) दी इंडीविडुअल इन ईस्ट एण्ड वेस्ट, लंदन, ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, 1937, पृ. 127।
6. प्यारेलाल, महात्मा गांधी : दी लास्ट फेस, वॉ.2, अहमदाबाद : नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, 1958, पृ. 626।
7. एम. के. गांधी, एन. ऑटोबायोग्राफी, पूर्व उद्धत पृ, 221।
8. वही।

9. सी. डब्ल्यू. एम.जी. पूर्व उद्धत, वॉल्यूम प्ट , पृ. 481।

10. वही, वॉ. ग्प्प , पृ. 210–16।

11. एस. सी. विश्वास (सं.) गांधी : थ्योरी एण्ड प्रेक्टिस, सोशल इम्पेक्ट एण्ड कंटेम्परेरी रेलेवेंस, शिमला, प्प्ै , 1969, पृ. 124–25।

12. एम.एल. दांतवाला, ''ट्रस्टीशिप इट्स इम्पलीकेशन्स'', गांधी मार्ग, वॉ. 7 नं. 8 और 9, नवम्बर–दिसम्बर, 1988, पृ. 504।

13. हरिजन, 22.2.1942।

14. हरिजन, 5.9.1936।

15. रविन्द्र वर्मा, ''गांधीज, थ्योरी ऑफ ट्रस्टीशिप'', ''एन ऐसे इन अंडरस्टेंडिंग'', गांधी मार्ग, वॉल्यूम 7, नं. 829, नवम्बर–दिसम्बर 1985, पृ. 518।

16. एम. के. गांधी, फ्रॉम थॅरव दा मंदिर, अहमदाबाद, नवजीवन, 1935, पृ. 50।

17. सुरिनेनी इंदिरा, गांधीयन डॉक्ट्रिन ऑफ ट्रस्टीशिप, नई दिल्ली : डिस्कवरी, 1991, पृ. 47।

18. रविन्द्र वर्मा, पूर्व उद्धत, पृ. 510

19. वही।

20. सुरिनेनी इंदिरा, पूर्व उद्धत, पृ. 47–48।

21. वही, पृ. 50–51।

22. वही, पृ. 59।

23. देवदत्त दोखलकंर, ''ट्रस्टीज– अ ब्लाइंड एली ऑर ब्रेक थ्रू'', गांधी मार्ग, वॉ. 7, नं.889, पृ. 588।

24. के. अरूर्णाचलम, ''अप्लायड ट्रस्टीशिप,'' गांधी मार्ग, वॉल्यूम 7, नं.8 व 9, पृ. 621।

25. एस. के. देशमुख (सं), पूर्व उद्धत, पृ. 230।

26. व्ही, पृ. 239।

27. सुरिनेनी इंदिरा, पूर्व उद्धत, पृ. 68।

28. एस.के. देशमुख (सं), पूर्व उद्धत, पृ. 259।

29. व्ही, पृ. 76–77।

30. सुरिनेनी इंदिरा, पूर्व उद्धत, पृ. 73।

31. वही, पृ. 76–77।

32. यंग इंडिया, 26.12.1924।

33. वही, 4.6.1925।

34. हरिजन, 22.4.1939।

35. आर. बी. उपाध्याय, सोशल रिस्पॉन्सबिलिटि ऑफ बिजनेस एण्ड दी ट्रस्टीशिप थ्योरी ऑफ महात्मा गांधी, नई दिल्ली, स्टर्लिंग, 1976।

36. एम.एल. दांतवाला, ''गांधीज्म रिकनसीडर्ड बाम्बे'', पदमा पब्लिकेशंस लि. 1945, पृ. 55।

37. ई. एम. एस. नम्बूदरीपाद, दी महात्मा एण्ड दी आई एण्ड एम, नई दिल्ली, पीपल पब्लिशिंग हाउस, 1959, पृ. 115।

38. जे.जे. अंजारिया, एन एसे ऑन गांधीयन इकोनोमिक्स, बॉम्बे : बोरा एण्ड को., 1945, पृ. 31।

39. जवाहरलाल नेहरू, एन ऑटोबायोग्राफी, लंदन : बोडले डिड, 1936, पृ. 528।

40. गणेश डी. गाडरेज् इन एस.सी विश्वास, पूर्व उद्धत, पृ. 128–29।

41. जय नारायण, गांधीज थ्योरी ऑफ ट्रस्टीशिप, पेपर ष्प्, लेसन नं. 6 पोस्ट ग्रेजुएट डिपलोमा कोर्स इन गांधीयन स्टीज थ्रू कॉरेसपोडेंस, डिपार्टमेंट ऑफ गांधीयन स्टडीज, पंजाब यूनिवर्सिटी, चंडीगढ़।

42. गणेश डी. गाडरे, पूर्व उद्धत, 122–23।

43. जे. डी. सेठी, गांधी टूडे, नई दिल्ली, विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा. लि., 1978, पृ. 168।

अध्याय –8

स्वदेशी

परिचय

ब्रिटिश शासन क दौरान भारतीयों की अति–निर्धनता हमारे गांवों की उद्योगों के विनाश के कारक रहे। महात्मा गांध ने 1909 में हिन्द स्वराज 'प्राचीन हथ–करघे' के बारे में अपनी वेदनाओं को उजागर किया है। उन्होंन लोगों को चरखा चलाने का आग्रह किया और समाज के धनी व्यक्तियों को चरखे के विकास में योगदान करने की दरखाश्त की। उन्होंने स्वदेशी को इस प्रकार परिभाषित किया, "यह वह भावना है जो हमें आसपास की चीजों तथा सेवाओं का उपयोग करने को प्रेरित करती है तथा अधिक दूरदराज की चीजों/सवाआं पर प्रतिबंध का बोध कराती है।" यह सिद्धांत धर्म, राजनीति और बाकी अन्य कार्यों में भी अपनाना चाहिए। स्वदेशी, राजनैतिक व आर्थिक दोनों एजेंडा है जो लोगों को तत्कालिक लाभ प्रदान करता है। यह एक गांधीवादी योजना है––विकेन्द्रीकृत अर्थव्यवस्था, गांवों एवं समुदोयों का आर्थिक पुनःउद्धार बड़े पैमाने पर रोजगार तथा स्वावलंबन के कार्यक्रम हैं। भारत के स्वतंत्रता आंदोलन के समय स्वदेशी औपनिवेशिक ब्रिटिश शासन के खिलाफ एक महत्वपूर्ण प्रतिरोध का साधन बन गया।

स्वदेशी गांधीवादी दर्शन की एक गतिशील अवधारणा है। यह एक ऐसा सिद्धांत है जिसका प्रभाव आर्थिक व राजनैतिक दोनों क्षेत्रों में है। दुर्भाग्य से हम यह सोचते हैं कि समकालीन समय में स्वदेशी की भावना का कोई औचित्य नहीं है। यह स्वदेशी की अवधारणा को सही ढंग से न समझने की गलतफहमी के कारण है। स्वदेशी का अर्थ है दूसरे दरबाजों पर स्थित अपने पड़ोसी की आवश्यकताओं की पूर्ति करना।

स्वदेशी की अवधारणा

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के दरमयान स्वदेशी के विचार का जन्म हुआ। गांधी से पूर्व मध्य 19वीं सदी में कारीगर आधारित भारतीय उद्योग व ग्रामीण अर्थव्यवस्था की बर्बादी, गरीबी व ब्रिटिश शासन काल में बार–बार अकाल के प्रतिक्रिया के रूप में स्वदेशी आया। हालांकि, एक जन–आंदोलन के रूप में स्वदेशी सर्वप्रथम बंगाल विभाजन के विरोध में 1905 से 1911 के आंदोलन में आया। इसके दायरे में राजनीतिक प्रतिरोध, भारतीय कुटीर व ग्रामीण उद्योगों की स्थापना, विदेशी आयातित मालों के बहिष्कार, राष्ट्रीय शिक्षा, कला, विज्ञान और साहित्य को पुनर्जीवित करने, सरकारी नौकरी के छोड़ने तथा सामाजिक सुधारों से था। बहन निवेदिता के संदेश में स्वदेशी की भावना ओत–प्रोत है––'अपने नैतिक संबद्धता में विश्वास करो। एक ऐसे जीवन की कल्पना करें जिसमें सभी के हित समान हों, आम जरूरतों और आपसी कर्त्तव्य पूरक हों। इसे ही स्वदेशी अभिव्यक्ति कहेंगे।

1915 के बाद गांधी के गतिशील नेतृत्व के तहत, स्वदेशी की अवधारणा एक नए आयाम को हासिल कर ली। गांधी इसे एक विचारधारा के रूप में परिभाषित करते हैं जिसके अंतर्गत व्यक्ति अपना ध्यान रखता है फिर अपने पड़ोसियों का तथा इस प्रकार यह कभी न घटने वाला घेरा तब तक बढ़ता है जब तक अपने दायरे में

संपूर्ण विश्व को शामिल न कर लेता है। गांधी स्वदेशी की अवधारणा के प्रवर्तक थे। उनके अनुसार स्वदेशी के आंदोलन का लक्ष्य भारतीय भारत में उपयोगी समानों का निर्माण लघु उद्योगों के माध्यम से उत्पादन को बढ़ावा देना था। गांधी स्वयं स्वदेशी को इस प्रकार परिभाषित करते हैः ''बहुत सोच के बाद में मैं स्वदेशी का सही अर्थ निकाल सका कि स्वदेशी से तात्पर्य उस भावना से है जो हमें अपने आस–पास में निर्मित वस्तुओं के उपयोग तक से है। यह बाहर की वस्तुओं के प्रयोग को निषेध करता है। स्वदेशी एक धर्म है, एक कर्त्तव्य है जो हमें अपने पैतृक धर्म की सीमा में अनुबंधित करता है। अगर इसमें कोई दोष है तो इसे सुधारना चाहिए। राजनीति के क्षेत्र में केवल स्वदेशी संस्थाओं के प्रयोग से है तथा उसमें जो खामियां हैं उसे हटाकर उसके उपयोग से है। आर्थिक क्षेत्र में उन्हीं वस्तुओं के उपयोग से है जो आस–पास में निर्मित होती हैं। तथा पड़ोस में बनने वाली चीजों की गुणवत्ता में सुधार व उपयोग से है।''[2]

स्वदेशी आर्थिक विकल्पों को नैतिक दिशा प्रयाण करता है तथा आत्म–प्रावधानीकरण से एक मानवीय और समतावादी सामाजिक व्यवस्था का आधार बनता है। यह भाईचारे और सहयोग को मजबूती प्रयान करता है। 23 फरवरी 1935 को को नागपुर में ग्रामीण कार्यकर्ताओं की बैठक में गांधी ने कहा––अगर आप अपनी तरह अपने पड़ोसी को प्रेम करेंगे तो वे भी आपको वैसा ही प्रेम प्रयान करेंगे। आगे गांधी सही कहते हैं कि वास्तव में स्वदेशी ही एक ऐसा सिद्धांत है जिसमें मानवता व प्रेम समाहित है।[3] वास्तव में, स्वदेशी प्रेम और मातृभूमि की सेवा में है। मानव की सेवा हम अपने ज्ञान तथा जिस संसार में हम रहते हैं के दायित्व से अलग नहीं है। इसका मतलब है कि हम जिसे जानते हैं तथा पड़ोसी की सेवा के द्वारा देशवासियों की सेवा कर रहे हैं सही मायने में यह मानवतावाद या मानवता से प्रेम के अलावा और कुछ नहीं है। हालांकि इनके अर्थ को दो पंक्तियों के बीच में पढ़ा नहीं जाना चाहिए अन्यथा यह संकीर्ण राष्ट्रवाद के विचार को संप्रेषित करेगा।[4]

स्वदेशी का सार है––सेवा की पवित्रता। गांधी ने स्वदेशी का संबन्ध सेवा की सार्वभौमिकता से किया था।[5] गांधी के अनुसार स्वदेशी का अर्थ है सेवा। सेवा की क्षमता हमारे ज्ञान की सीमा में बंध जाता है। अतः हमें तत्काल पड़ोसियों जिन्हें हम जानते हैं की सेवा में अपने आप को समर्पित करना चाहिए।[6] साथ ही, वे जो अपने पड़ोसी की सेवा की अवह्ेलना करता है वह दोषी है। उसकी सेवा एक धर्म है।[7] हमें अपने पड़ोसी की सेवा का दावा नहीं करना चाहिए। जब हम अपने पड़ोसी की सेवा नहीं कर रहे हैं और दूर–दूर के लोगों की सेवा का दम्भ भरें यह अज्ञानता और घमण्ड है।[8] स्वदेशी सेवा के मानवीय क्षमता के वैज्ञानिक सीमाओं को स्वीकार करता है।[9]

स्वदेशी की व्यापक परिभाषा है, घर में बनी हुई वस्तुओं का उपयोग और विदेशी चीजों का वर्जन जो भारतीय गृह–उद्योगों को संरक्षण प्रयान करेगा। इन उद्योगों के संरक्षण के बिना भारत खुशहाल नहीं हो सकता।[10] अक्टूबर 1917 गोधरा में आयोजित पहली गुजरात प्रांतीय राजनीतिक सम्मेलन के अध्यक्षीय भाषण में गांधी ने कहा कि हमें शिकायत है कि भारत के लोग यह समझ नहीं पा रहे हैं कि स्वराज्य हमें स्वदेशी से ही प्राप्त होगा।'' यदि हमें अपनी मातृ–भाषा पर गर्व नहीं है, अगर हम अपने कपड़े नापसंद करते हैं, अगर हमारे कपड़े हमें शर्मिंदा

करते हैं, यदि हम अपने पवित्र शिखा रखने में शर्मिंदा महसूस करते हैं, अगर हमारे भोजन हमें अरुचिकर लगते हैं, हमारी जलवायु काफी अच्छा नहीं हैं, हमारी जलवायु काफी अच्छा नहीं है, हमारे लोग भद्दा और हमारे सहयोग लायक नहीं हैं, हमारी सभ्यता दोषपूर्ण है, और विदेशी विकल्प है। संक्षेप में अगर सबकुछ देशी बुरा है और विदेशी भाता है और स्वीकार करते हैं तो मैं नहीं जानता कि स्वराज हमारे लिए क्या मतलब रखता हैं हम अभी लम्बे समय तक विदेशी शासन के अधीन रहेंगे क्योंकि विदेशी सभ्यता अभी जन स्वीकार्य नहीं हुई है। मुझे ऐसा लगता है कि इससे पहले कि हम स्वराज की सराहना करें हमें स्वदेशी के लिए न केवल प्यार बल्कि कानून होना चाहिए।.... हम सभी को अपने कृत्यों में स्वदेशी की मुहर लगानी होगी। स्वराज की स्थापना स्वदेशी की परिकल्पना से पूर्ण होगी तथा यह समझना होगा कि राष्ट्र क्या है। प्रत्येक राष्ट्र जहां स्वराज के लिए आंदोलन हुए हैं स्वदेशी की अवधारणा को स्वीकार किया है। स्कीय हाईलेण्डर अपनी कीटस अपनी जीवन को जोखिम में डालकर भी थामे हुए थे। विनोदपूर्वक हाईलेण्डर को हम 'पेटीकोट–ब्रिगेड' पुकारते हैं लेकिन पूरी दुनिया पेटीकोट के पीछे की शक्ति को समझती है, और स्टारलैंड के हाईलेण्डर इसे नहीं छोड़ सकते। यह पोशाक असुविधाजनक तथा दुश्मन के लिए सुगम लक्ष्य हो जाते हैं। फिर भी उन लोगों ने नहीं छोड़ा।

हमें अपने में दोष नहीं खोजना चाहिए बल्कि राष्ट्रहित में विदेशी वस्तुओं से बचना चाहिए तथा राष्ट्र भले ही अपेक्षाकृत कम सहमत है, का पालन किया जाना चाहिए। हमारी सभ्यता में जो आवश्यक है उसे हम लोगों की तरफ से पूरा करना चाहिए। मुझे उम्मीद है कि इस सभा में उपस्थित सभी सदस्यों में स्वदेशी की भावना उत्पन्न हो तथा हम स्वदेशी के व्रत को धारण करें। हमें महान कठिनाइयों और असुविधा के बावजूद स्वदेशी अपनाना चाहिए। तभी स्वराज की प्राप्ति आसान हो सकती है।[11]

स्वदेशी एवं कुटीर उद्योग

मजबूत आर्थिक आधार पर गांधी ने खादी को चुना। खादी के अलावा अन्य विकल्प इतने तादात में निष्क्रिय ग्रामीण आवाम के लिए काम दे सकता था। वास्तव में स्वदेशी के सिद्धांत आज के आर्थिक वास्तविकता में खरा उतरना होगा। स्वदेशी के अंतर्गत उपभोगता को अपनी आवश्यकता को काफी हद तक स्थानीय उत्पादन पर निर्भर करना होगा। स्वदेशी स्थानीय उत्पाद के गुणवत्ता को सुधारने तथा कीमत को कम करने तथा स्वदेशी कौशल, संसाधनों, जनशक्ति, प्रौद्योगिकी को बढ़ाने तथा विपणन, परिवहन और भंडारण की समस्या को कम करती है।

गांधी कुटीर उद्योगों के तीव्र गति से विकास के पक्षधर थे। उनका मानना था कि बड़े उद्योगों के साथ कुटीर उद्योग का भी तीव्र गति से विकास हो। स्वदेशी का तात्पर्य कुटीर उद्योगों का विकास तथा गृह–उद्योगों तथा हस्तकलाओं का पुनर्जीवित करना। गृह उद्योग व हस्तकलाओं के माध्यम से अकेले ही भारत के गांवों की मदद कर सकता है। उनका मत था कि, बिना कुटीर उद्योगों के भारत कभी समृद्ध या सभी लोगों को रोजगार नहीं दे सकता। सूत कातना इन सबसे आसान; सस्ता और सर्वोत्तम धंधा है। यह हमें आत्म–निर्भर तथा लोग मिल

के बने वस्त्रों के स्थान पर खादी वस्त्र पहनेंगे जिससे प्रत्येक वर्ष देश के साठ करोड़ रुपये बचेंगे। इन सबसे ऊपर, लोगों के दृष्टिकोण में परिवर्तन होगा। स्वराज केवल स्वदेशी के माध्यम से प्राप्त हो सकता है।[12]

गांधी गीता के दर्शन से सत–प्रतिशत सहमत थे। गीता कहती है कि खतरे में रहकर भी स्वधर्म की पालना करते हुए मरना ही बेहतर है न कि परार्ध की।'' भौतिक वातावरण के संदर्भ में यह स्वदेशी का नियम प्रयान करता है। गीता स्वधर्म के बारे में जो कुछ कहती है वही स्वदेशी पर लागू होता है। स्वदेशी स्वधर्म है जो तत्काल परिस्थिति के लिए लागू होता है।

गांधी इस विचार से सहमत नहीं थे कि स्वदेशी आंदोलन से विदेशी मिल मालिकों के लिए हानिकारक होगी। उनके शब्दों में अपने शुद्ध रूप में स्वदेशी सार्वभौमिक सेवा का पर्याय है।.... कोई यह न माने कि गांधी के माध्यम से स्वदेशी के अभ्यास विदेशी मिल मालिकों का नुकसान करेगा। एक ओर जो अपने अवगुणों से ग्रस्त है उसका नुकसान नहीं है बल्कि इसके विपरीत उनको लाभ है।[13] गांधी का यह भी मानना था कि यह बड़ी विडम्बना है कि स्वदेशी का कर्त्तव्य केवल सूत कताई व खादी के कपड़ों के प्रयोग मात्र से ही नहीं है। खादी पहला अपरिहार्य कदम है.... स्वदेशी के मानने वाले स्थानीय अपने इलाके के वातावरण का अध्ययन करेंगे तथा जब भी वे अपने पड़ोसियों की सहायता करेंगे तथा स्थानीय उत्पाद को वरीयता देंगे चो उसकी गुणवत्ता कम हो या अन्यत्र बनी वस्तुओं से मूलय भी ज्यादा क्यों न हो।''[14]

इस संदर्भ में गांधी के स्पष्टीकरण बहुत प्रासंगिक हैं। उन्होंने कहा, ''स्वदेशी नफरत का एक पंथ नहीं हैं यह एक आत्म–कम सेवा का मार्ग है जिसकी पृष्ठभूमि में अहिंसा व प्रेम है।[15] आगे वे कहते हैं––मेरा राष्ट्रवाद उतना ही व्यापक है जितना कि स्वदेशी। मैं यह हूं कि भारत जागे उन्नत हो जिससे पूरे विश्व को लाभ हो सके।''[16] वह संकीर्णता, स्वार्थपरायणता तथा अनिवार्यता के खिलाफ थे। यह नोट करना महत्वपूर्ण है कि गांधी राष्ट्रवाद को अंतर्राष्ट्रीयता की दिशा में एक कदम के रूप में देखते हैं।

स्वदेशी का मतलब सभी विदेशी चीजों के बहिष्कार से नहीं है। यह केवल स्थानीय संशाधनों के उपयोग इस हद तक हो जिससे कि गृह–उद्योग खासकर उन उद्योगों से जिसके बिना भारत कभी उन्नति नहीं कर सकता।[17] यह एक बेकार प्रयास होगा जब हम वे वस्तुएं जो स्वयं के क्षेत्र में उपयोगी नहीं है को बनाएगें। वास्तव में यह स्वदेशी की अवधारणा का नकारात्मक रूप है।''[18]

स्वदेशी एवं वैश्वीकरण

स्वदेशी आत्म–निर्भर, स्वावलंबी, विकेन्द्रीकृत और जरूरत आधारित आर्थिक अवधारणा है जिसमें पूर्ण रोजगार 'अधिकतम लोगों के द्वारा उत्पादन' पर आधारित है। यह व्यक्तिगत और सामाजिक सरोकारों में समन्वय स्थापित करता है। वर्तमान वैश्वीकरण के युग में स्वदेशी एक विकल्प प्रस्तुत करता है। स्वदेशी का मतलब हर क्षेत्र में आत्मनिर्भरता से है। दूसरे शब्दों में, स्वदेशी सेवा है। अगर हम इसे समझ लें तो यह हमारे स्वयं के लिए, हमारे परिवार के लिए साथ ही देश व दुनिया के लिए लाभकारी है। गांधी ने स्वदेशी की अवधारणा को स्पष्ट

करते हुए कहा कि स्वदेशी का अर्थ है अपनी आवश्यकताओं को सीमित करना तथा स्थानीय संसाधनों का प्रयोग जनहित में करना। गांधी के प्रसिद्ध वाक्य हैं, ''प्रकृति इतना पैदा करती है कि सभी व्यक्तियों की आवश्यकताओं की पूर्ति हो सकती है, लेकिन एक के लालच को संतुष्ट करने के लिए पर्याप्त नहीं हैं।'' वर्तमान संदर्भ में हमारे लक्ष्य सादा जीवन उच्च विचार के होने चाहिएं, जिससे कि हम समाज की बहुत सी बुराइयों को खत्म कर सकेंगे। वास्तव में स्वदेशी आंदोलन वर्तमान परिस्थिति में पुनर्जागरण का भाग बन सके। क्योंकि स्वदेशी अपनी संस्कृति, अपनी विरासत अपनी परम्परा तथा अपना देश में लौटने की वकालत कारगर व सुंदर ढंग से करती है। यह उचित समय है कि हम स्वदेशी की अवधारणा को समझें एवं अंगीकार करें तथा सभी क्षेत्रों में प्रयोग करें। इससे हम स्वयं आत्मनिर्भर बनेंगे तथा आत्म–घुटन से निजात पा सकेंगे। साथ ही हम नैतिक ह्रास, आर्थिक शोषण तथा राजनैतिक अधीनता से बच सकेंगे।

स्वदेशी राष्ट्रों के बीच एक तर्कसंगत और जरूरत के आधार पर व्यापार के विरोधी नहीं हैं। लेकिन एक विशाल और एक बौने के बीच अधिकारों की समानता का कोई न्यायपूर्ण अर्थ नहीं रह जाता है। इससे पहले कि असमान क्षेत्रीय समानता की बात कोई सोचे, बौने को विशाल की ऊंचाई तक उठाया जाना चाहिए। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के पारम्परिक आर्थिक सिद्धांत 'तुलनात्मक लाभ' पर आधारित है। यह मांग व अधिकतम लाभ पर आधारित है न कि आपसी जरूरत, सहयोग, रोजगार तथा लाभ के समान वितरण पर आधारित है। इसका अर्थ यह है कि अंतर्राष्ट्रीय मुक्त व्यापार असमानता पर आधारित है, जिनके पास क्रयशक्ति है के पक्ष में है तथा विलासिता और न समाप्त होने वाला आवश्यकता को बढ़ावा देता है। अंतर्राष्ट्रीय मुक्त व्यापार, जैसा गांधी ने समझा, शक्तिशाली अर्थव्यवस्था कमजोर अर्थव्यवस्था का शोषण करता है तथा ग्रामीण गरीबों का शहरों के बुजुआ वर्ग द्वारा शोषण होता है। अंतरराष्ट्रीय व्यापार के गांधीवादी सिद्धांत शोषणमुक्त, आपसी जरूरतों की पूर्ति, विकासशील देशों के गरीबों के हितों की रक्षा तथा प्रतिकूलता को ध्यान में रखता है। यह 'सबसे पिछड़े' के विकास के नैतिकता द्वारा निर्देशित होगा।

गांधी, 1 जून 1921 को यंग इण्डिया में लिखते हैं–– मैं नहीं चाहता कि मेरे घर के चारों ओर चारदिवारी हो तथा घर की खिड़कियां बंद हो। मैं चाहता हूं कि सभी देशों की संस्कृतियां मेरे घर में स्वतंत्र प्रवाहित हो। लेकिन मैं यह नहीं चाहता कि मेरी नींव ही उखड़ जाय।'' जब हम वैश्वीकरण की बात करते हैं तो इसे समझना अति आवश्यक हो जाता है। सभी संस्कृतियां, व्यापार आदि पल्लवित, पुष्पित हो लेकिन भारत की संस्कृति व व्यापार को आघात न लगे।

भारत के संदर्भ में वैश्वीकरण कोई नई है। लेकिन वर्तमान युग का वैश्वीकरण कुछ विशिष्ट गुणों को अपने में समाहित किए हुए है, दो स्थानों के बीच की दूरियां कम हो गई हैं, समय कल लगने लगा है, भौगोलिक सीमाएं समाप्त होने लगी हैं, एक व्यक्ति का जीवन दूसरे से जुड़ गया है, पूरा विश्व एक गांव की तरह होता जा रहा है। वैश्वीकरण में सिर्फ अर्थव्यवस्था का ही नहीं बल्कि, संस्कृति, प्रौद्योगिकी और प्रशासन का एकीकरण हुआ

है। वैश्वीकरण नव उदारवाद माना जा सकता है। प्रत्यक्ष रूप से बाजारवाद का प्रभाव आज सभी चीजों पर देखा जा सकता है। आज बजारवाद की जीत है। फ. फूकूयामा के शब्दों में यह जीत न केवल तथाकथित वैश्विक ''ऐतिहासिक विकल्प'' की है बल्कि यूनियनों और कीनेसियन राज्यों पर भी है।

वैश्वीकरण एक ऐसा मंत्र या रामबाण बन गया है जो सभी मानवीय समस्याओं का समाधान कर सकता है। यह माना जाता है कि वैश्वीकरण के सफलता के कारण दुनिया भर में सभी लोगों को सुख, समृद्धि तथा विकास के नए–नए आयाम उपलब्ध होंगे। असमानता, गरीबी, मानवाधिकार का उल्लंघन, कुपोषण, निरक्षरता, बीमारियों आदि से निजात मिलेगी। प्रत्येक व्यक्ति और समुदाय दुनिया के साथ एकीकृत हो जाएंगे, जिससे सभी को लाभ मिलेगा। समृद्धि से कोई अछूता नहीं रहेगा। राष्ट्र राज्य सीमा के बिना होगा। यह कहा जाता है कि वैश्विक बाजार, वैश्विक प्रौद्योगिकियों, वैश्विक विचारों, वैश्विक एकजुटता लोगों के जीवन को हर जगह समृद्ध कर सकते हैं। साथ ही विकल्पों का विस्तार होगा। लोगों के जीवन की बढ़ती निर्भरता, साझा मूल्यों और मानव–विकास के लिए साझा प्रतिबद्धता नए–नए आयाम खोल रहे हैं। वैश्वीकरण के इस दौर में दुनिया भर के करोड़ों लोगों के लिए कई अवसर खोल रहा है। बढ़ता व्यापार, नई प्रौद्योगिकियों, विदेशी–निवेश, संचार माध्यम का विस्तार, आदि मानवीय विकास को बढ़ा रहा है। इन सभी में 21वीं सदी में गरीबी उन्मूलन की अपार संभावनाएं हैं। वर्तमान समय में अधिक धन और प्रौद्योगिकी है, इससे पहले इतना कभी नहीं था।

वर्तमान परिदृश्य में, वैश्वीकरण अपरिवर्तनीय और अजेय है। दुनिया के तमाम देशों ने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से वैश्वीकरण को स्वीकार लिया है। हालांकि ज्यादातर सहमति है कि वैश्वीकरण को मानवीय आलोक में पेश किया जाना चाहिए, जिससे गरीबों और जरूरतमंदों को लाभ मिल सके।

निष्कर्ष

वास्तव में स्वदेशी आंदोलन भारत में पुनर्जागरण का एक हिस्सा था। यह अपनी संस्कृति, विरासत, अपनी प्रतिभा और परम्परा की तरफ लौटने तथा गर्व करने की ओर प्रेरित करता है। स्वदेशी नव चेतना, नव स्वदेश प्रेम की भावना को जगाता है। स्वदेशी आत्मनिर्भरता, आर्थिक स्वतंत्रता, ग्रामीण अर्थव्यवस्था के पुनर्निर्माण के द्वारा आर्थिक पिछड़ेपन व सामाजिक बुराइयों से लड़ने के लिए नया दृष्टिकोण व विकल्प की नीव बिछाने का माध्यम प्रस्तुत करता है।

यह बहुत ही उचित समय है हमारे लिए स्वदेशी की अवधारणा को समझने और इसे हर संभव तरीके से लागू करने का जिससे हम खुद को सभी क्षेत्रों में आत्मनिर्भर व खुशहाल बना सकें।

सारांश

– स्वदेशी तत्काल लाभ लोगों को प्रदान करने का राजनीतिक और आर्थिक दोनों कार्यक्रम है। यह एक विकेन्द्रीकृत अर्थव्यवस्था, गांवों और समुदायों का आर्थिक पुनरूद्धार, जो बड़े पैमाने पर रोजगार और आत्मनिर्भरता प्रदान करने का गांधीवादी कार्यक्रम है।

– स्वदेशी गांधीवादी दर्शन की एक प्रगतिशील अवधारणा है। यह आर्थिक व राजनीतिक दोनों है। स्वदेशी का अर्थ अपने निकटतम पड़ोसी की आवश्यकता की पूर्ति करना।

– स्वदेशी आर्थिक विकल्पों को नैतिक दिशा प्रदान करता है। आत्म–प्रावधानीकरण एक मानवीय व समतावादी सामाजिक व्यवस्था का आधार प्रदान करता है। स्वदेशी भाईचारे व सहयोग को बढ़ाता है।

– स्वदेशी का व्यापक अर्थ है, ''गृह–निर्मित वस्तुओं का उपयोग तथा विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार जिससे कि गृह–उद्योग को प्रोत्साहित किया जा सके।''

– स्वदेशी का अर्थ है सार्वभौमिक सेवा।

– स्वदेशी नफरत का एक पंथ नहीं है। यह स्वावलंबन, आत्मबल व सभी क्षेत्रों में आत्मनिर्भरता को बढ़ाता है।

– स्वदेशी राष्ट्रों के बीच एक तर्कसंगत और जरूरत के आधार पर व्यापार करने के लिए निषेध नहीं करता।

– स्वदेशी वैश्वीकरण के वर्तमान युग में व्यक्ति, समाज और समुदाय को एक विकल्प देता है, जो मानवीय व समता पर आधारित है।

संदर्भ :

1. डी.जी. तेंदुलकर, महात्मा, खण्ड–1, पृ. 226।

2. महात्मा गांधी के भाषण व लेख, जी.ए. नाथन, चौथा–एडीसन, मद्रास, 1922, पृ. 336।

3. प्रभु और राव (सं.) माइण्ड ऑफ महात्मा गांधी, अहमदाबाद, नवजीवन, 1968।

4. रोमां–रोला, महात्मा गांधी, लंदन, जार्ज एलेन और अनविन, 1930, पृ. 110।

5. एम.के. गांधी, यरवदा मंदिर, अहमदाबाद, नवजीवन, 1933, पृ. 93।

6. हरिजन, 22.8.1936।

7. एम.के. गांधी, यरवदा मंदिर, पृ. 89–91।

8. महात्मा गांधी के भाषण व लेख, पृ. 281।

9. हरिजन, 23.3.1947, पृ. 79।

10. यंग इण्डिया, 17.2.1926, पृ. 218।

11. एम.के. गांधी, खादी के अर्थशास्त्र, अहमदाबाद, नवजीवन, 1942, पृ. 12–13।

12. एम.के. गांधी, यरवदा मंदिर, पृ. 91।

13. एम.के. गांधी, आपसिट, पृ. 93–94।

14. उपर्युक्त, पृ. 95–96।

15. प्रभु और राव, पृ. 415।

16. सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय, खण्ड 26, दिल्ली, प्रकाशन विभाग, पृ. 279।

17. यंग इण्डिया, 17 जून, 1926।

18. यंग इण्डिया, 18 जून, 1931।

अध्याय-9

अहिंसा

भूमिका

गांधी की मूल परिकल्पना में अहिंसा का स्थान सर्वोपरि है । अहिंसा का गांधी ने सूक्ष्म विश्लेषण कर उसे व्यक्तिगत, सामाजिक और राष्ट्रीय परिपेक्ष्य में प्रयोग किया। एक व्याविहारिक आदर्शवादी की भांति गांधी ने हमेशा सत्य व अहिंसा दोनों की बात की। अपने व्यावहारिक आदर्शवाद की तह में जाकर उन्होंने अहिंसा के व्यावहारिक प्रयोग को अमली जामा पहनाया। तथा विश्व को अंहिसक क्रांति का एक नया अस्त्र दिया।

गांधी के अहिंसा के सिद्धांत एंव उसके प्रयोग की जितनी आवश्यकता उनके जीवित रहते थी आज इसकी आवश्यकता उससे ज्यादा महसूस की जा रही है। गांधी ने अहिंसा के विभिन्न प्रयोग किए। साथ ही इन प्रयोगों में वे सफल रहे। गांधी की अहिंसा लोगों को समाज से विमुक्त नहीं करती बल्कि उसे समाज में अहिंसा के प्रयोग को करने को प्रेरित करती है।

सत्य और अहिंसा

सत्य और अहिंसा एक-दूसरे के पूरक हैं। सत्य और अहिंसा एक दूसरे का अर्थ स्पष्ट करता है। गांधी ने कभी भी अहिंसा के अमूर्त्त रूप की बात नहीं बल्कि हमेशा उन्होंने इसे मूर्त रूप में प्रस्तुत किया। गांधी ने बाद के वर्षों में इसके अर्थ को कुछ निश्चित तत्त्वों व घटनाओं से सम्बद्ध व सरलीकृत करने की कोशिश की। लेकिन सत्य के प्रति उनकी जागरुकता ने हमेशा की तरह उन्हें सही रास्ता दिखाया।

गांधी का संपूर्ण जीवन समझौतों और समायोजनों का समन्वय था। परंतु गांधी ने अपनी मौलिकता से कभी समझौता नहीं किया। मानवीय अवधारणाएं जो कि मानवीय संवेदनाओं से किसी भी स्तर पर कमतर नहीं हैं, हमेशा से द्वन्द के इर्द-गिर्द ही घुमती रही हैं फिर वह द्वन्द्व अच्छाई-बुराई का हो या ठंडे-गर्म का। हिंसा और अहिंसा भी इसका कोई अपवाद नहीं है। शुद्ध हिंसा की ही तरह शुद्ध अहिंसा भी मानवीय अस्तीत्ववान हो सकता है विरोधी की तरह नहीं। जिस स्थायी व निरंतर शान्ति की तलाश मानव अपने निर्माण काल से ही कर रहा है वह एक दिखावा मात्र है। युद्ध व शांति, द्वन्द्व व मिलन, मानवीय सामाजिक, राजनीतिक व मानोवैज्ञानिक विकास प्रक्रिया के दो अभिन्न अंग हैं। क्रम विकास युद्ध से शांति की ओर गमन है, यह आम

अवधारणा बिल्कुल तथ्यों से परे और भ्रामक है। वरन् इसके बजाय मानवीय विकास क्रम एक प्रकार के शांति व युद्ध से दूसरे प्रकार की शांति व युद्ध की तलाश है। यह सापेक्ष है न कि सम्पूर्ण विकास क्रम।

गांधीवादी अहिंसा मुख्य रूप से आध्यात्मिक लक्ष्य तथा गौण रूप से राजनीतिक व सामाजिक लक्ष्यों से प्रेरित होने के कारण आधुनिक समाज में अपनी लोकप्रियता व स्वीकार्यता आज भी बरकरार है।

एक नेता व विचारक के रूप में गांधी की महानता इस बात में निहित थी कि उन्होंने अहिंसा के व्यक्तिपरक संदेश को जन आंदोलन के सफल तकनीक परिवर्तित कर दिया। महावीर, बुद्ध, नागसेन और शान्तिदेव ने हिंसा को व्यक्तिगत क्रिया व प्रेरणा से जोड़ा है, लेकिन गांधी ने इसे एक सामाजिक व राजनीतिक तकनीकि में तब्दील कर दिया। इस प्रकार उन्होंने प्राचीन भारतीय विचारकों व संतों के द्वारा प्रतिपादित अहिंसा के सिद्धांत को सामाजिक व राजनीतिक लक्ष्य पाने का एक जरिया बनाने का प्रयास किया। उनके विचार में राजनीति में सुधार का सर्वोत्तम साधन अहिंसा ही हो सकता है।

हिंसा एक ऐसा व्यापक वर्ग है जिसकी अभिव्यक्ति व्यक्तिगत व संस्थागत दोनों स्तरों पर होती है। बुरे विचार, बदले की भावना, ईर्ष्या, कटुता, निष्ठुरता तथा यहां तक कि अनावश्यक पदार्थों को अनावश्यक रूप से इकट्ठा करना भी व्यक्तिगत हिंसा की श्रेणी में आता है। इसी प्रकार गांधी ने व्यापक अर्थ प्रदान करते हुए हिंसा की श्रेणी में, झूठ, छल, कपट, धोखा व कुतर्क को भी समेटा। शारीरिक दंड, कैद, मृत्यु दंड तथा युद्ध सरकार के स्तर पर की गई हिंसा के उदाहरण हैं। आर्थिक शोषण तथा अत्याचार भी हिंसा के विविध रूप हैं। अत्याधिक नकल व प्रतिस्पर्द्धा भी हिंसा के कारक हो सकते हैं। जो अहिंसा अनिवार्य तथा व्यापक रूप से हिंसा के सभी रूपों का सभी स्तरों पर पूर्ण निषेध है।

अहिंसा दूसरों को कष्ट, हानि या चोट पहुंचाने से बचना मात्र नहीं है वरन् यह सकारात्मक आत्म-बलिदान व रचनात्मक दुख भोग के प्राचीन सिद्धांतों को भी अभिव्यक्त करती है। गांधी ने इसे पूर्ण निःस्वार्थ तथा वैश्विक प्रेम के रूप में रूपायित किया। अहिंसा के अंतिम लक्ष्य में तथा कथित दुश्मनों या विरोधियों का प्रेम पूर्वक अंगीकार भी शामिल है। 1930 में गांधी ने कहा, "सर्व-देश से पीड़ित दुश्मन की जान बचाने के लिए वह उसके जहर को चूसना सहर्ष स्वीकार करेंगे। अतः अहिंसा सकारात्मक करुणा व प्रेम का पर्याय है।"[1]

इसमें दूसरों के लिए पीड़ा सहन करने में सुख व आनंद की अनुभूति का विकास करना भी शामिल होता है। अहिंसा अत्यक्त रूप में प्रत्येक मानव के अंदर समाहित होती है क्योंकि सभी उस सर्वोच्य दैवी सत्ता के अंश हैं जिसमें संपूर्ण मानव जाति के साथ प्रेम व करुणा का सर्वोच्य प्रकटीकरण ही अंतिम लक्ष्य होता है।[2] यह अक्खड़ता, अन्तर्द्वंद तथा बैर को प्रेम से जीतती है। इसलिए गांधी ने अपनी आत्मकथा में लिखा, "मुझे अपने अहम को निश्चित रूप से पूर्णतः तिरोहित कर देना चाहिए। अहिंसा विनम्रता की पराकाष्ठा है।"[3] सर्वोच्य जाति के रूप में मानवीय अस्तित्व का उद्देश्य पूर्ण क्रमिक विकास अहिंसा के वैश्विक करुणा व प्रेम के सिद्धांतों से ही संभव होता है। गांधी के द्वारा प्रतिपादित अहिंसा का एक गूढ़ सामाजिक महत्व है। अरस्तू ने कहा था कि दोस्ती के मजबूत खंभों पर ही समाज की बुनियाद टिकी होती है। गांधी भी संपूर्ण विश्व को परिवार मानते हुए अहिंसा को वैश्विक शांति व एकता को सुनिश्चित करने वाली एक अनिवार्य व अपरिहार्य ताकत मानते थे। उन्होंने मानवीय इतिहास की व्याख्या भी अहिंसा के मंथर क्रम विकास के रूप में व्यक्त की। कुछ पाश्चात्य मानव शास्त्रियों के अनुरूप उन्होंने कहा, "हमारे प्राचीनतम पूर्वज नरभक्षी थे। इसके बाद आज पशुओं का शिकार, जिसके द्वारा उन्होंने अपनी क्षुधा शांत की।

तीसरी अवस्था थी कृषि के विकास की जिसने सभ्य व स्थाई जीवन की बुनियाद रखी। मानव ने गांवों व नगरों को बसाया तथा परिवार, समाज व देश के सफर को तय किया। ये सब इस बात के द्योतक हैं कि इस दौरान हिंसा का क्रमिक क्षरण तथा अहिंसा का क्रमिक विकास हुआ। अगर ऐसा नहीं होता तो शायद मानव का भी कई अन्य विलुप्त प्राणियों की भांति अस्तित्व समाप्त हो गया होता।"[4]

गांधी के अनुसार, अहिंसा का सामाजिक अनुप्रयोग आध्यात्मिक तत्व में मीमांसा की स्वीकृति तथा सामाजिक सद्भाव के अनवरत उन्नयन पर निर्भर करता है। उन्होंने अहिंसा को वैश्विक दैविक सत्ता में समाहित करते हुए कहा की जीवन की प्रत्येक अंक पवित्र है। अहिंसा अब अपरिहार्य रूप से सत्य या ईश्वर की एकीकृत है। गांधी प्रत्येक मानव को ईश्वर की संतान मानते थे। सो किसी भी जीव को किसी भी रूप में सताने को वह उस व्यक्ति के दैवीय रूप का अपमान मानते थे और इस प्रकार व्यापक कलंक को वे इसे संपूर्ण विश्व को चोट पहुंचाने के समान मानते थे। "बाइबिल में यह सही ही कहा गया कि प्रतिशोध ही ईश्वर का अधिकार है।"[5]

सत्याग्रही से यह अपेक्षा की जाती थी कि वह हिंसा के प्रत्येक रंग-ढंग का जवाब अहिंसा के रामबाण रूपी अस्त्रों से दे लेकिन सरकार व उग्र पंथी नेताओं के हिंसा का पूर्ण प्रतिरोध सत्याग्रही कर सकते हैं, यह धारणा गलत साबित हुई। अहिंसा प्रतिशोध का स्थानापन्न मात्र है तथा यह किसी भी रूप में अन्याय के आगे समर्पण नहीं है। लेकिन प्रतिरोध का मतबल विरोधियों से घृणा नहीं है। गांधी ने इस बात को दृढ़ता पूर्वक कहा, "अत्याचारी व अनाचारी व्यवस्था का प्रतिरोध तो जायज है लेकिन अत्याचार कर्ताओं का प्रतिरोध तथा उस पर प्रहार स्वयं को चोट पहुंचाने के समान है। " सो अहिंसा बुराई के कर्ताओं के प्रति कोई हानि न पहुंचाने की प्रवृत्ति का सूचक है इससे भी आगे जाकर गांधी ने कहा कि विरोधियों या बुराईयों के कर्ताओं के प्रति प्रेम व सदभाव की भावना का विकास अहिंसा का महत्तर लक्ष्य है।

अहिंसा के व्यवहार के लिए सत्य तथा ईश्वर की करुणा में आगाध श्रद्धा का होना नितांत आवश्यक है। आत्मनिरिक्षण इनका एक प्रमुख तत्व है। अहिंसा के व्रतियों के लिए यह अपेक्षित है कि वह लोभ, दंभ, वासना, ईष्या, घृणा तथा कपट से मुक्ति का पूरे मन से प्रयत्न करें। यह निरंतर गुणात्मक उन्नयन की ओर ले जाने का मार्ग है। प्रत्येक अहिंसक सत्याग्रहियों के लिए अहिंसा के व्रत का अनुपालन

जरूरी है ताकि दूसरों के लिए यह प्रेरणा का सबब बन सके। सो अहिंसा के मानको को स्वीकृति का मतलब है मूल्यों का नैतिक मूल्यातंरण। अगर प्रेम के नियम या व्रत का अनुपालन दृढ़ता पूर्वक किया जाए तो यह संपूर्ण समाज व सभ्यता को गुणात्मक व चारित्रिक उत्थान की ओर प्रेरित कर सकता है।

एक वेदान्ती व वैष्णव के रूप में गांधी ने प्रत्येक प्राणी को पवित्र व मूल्यवान माना। यही कारण था कि उन्हें जीवन के अधिकार की पवित्रता में अगाध श्रद्धा थी। वे एक सांप तक की हत्या नहीं करते थे। उन्होंने कहा, "सिर्फ ईश्वर को ही जीवन लेने का अधिकार है क्योंकि सिर्फ वही जीवन दे सकता है।" अहिंसा के व्रती अपने विरोधियों तक वे जीवन को आदर व सत्कार की भावना से देखें ऐसी अपेक्षा थी। हरिजन में अपने एक लेख में गांधी ने लेख में लिखा, "तुम सत्याग्रही नहीं हो यदि तुम अपने विरोधियों को मरते हुए देखकर भी निष्क्रिय बने रहते हो। तुम्हें उसके जीवन की रक्षा हर कीमत पर करनी चाहिए भले ही तुम्हें इसके लिए अपनी जान की बाजी लगानी क्यों पड़े।"[6] यह जीवन के अधिकार की सर्वोच्चता सिर्फ इसलिए नहीं मानते थे कि एक व्यक्ति के रूप में मानव के सामाजिक व राजनीतिक अधिकार होते हैं,

वरन् इसलिए कि वे मानव के एक पवित्र आत्मा मानते थे। सो टॉल्सटाय की तरह गांधी ने प्रेम के नियम की निर्विकारिता तथा अपरिणयता को स्वीकार करते थे। अपने लिए उन्होंने अहिंसा के नियम को सम्पूर्ण माना यद्यपि इसकी प्राप्ति के लिए उन्हें लंबा संघर्ष तरना पड़ा। वह इसे एक अमोघ अस्त्र मानते थे जो किसी भी हथियार से अधिक शक्तिशाली था।

रूसो की भांति, गांधी का विचार था कि युद्ध कला में वृद्धि तथा हथियारों का नंगा प्रदर्शन उन्नति नहीं अवनति का सूचक है... इसलिए गांधी चाहते थे कि अहिंसा को युद्ध के एक विकल्प के रूप में प्रस्तुत किया जाए। उन्होंने युद्ध को पूर्णतः बुराई का प्रतिरूप बताया तथा रक्षात्मक या युद्ध के किसी भी अन्य रूप की निंदा की। उन्होंने प्रत्याशित युद्ध की धारणा का भी पूर्ण रूप से खण्डन किया। उनका विचार था कि युद्ध की शुरुआत करने के लिए हमेशा कोई न कोई पक्ष जिम्मेवार होता है। युद्ध को शैतान या अनियंत्रित ताकतों के हांथों का खिलौना बताना सही व उचित नहीं है। उन्होंने कहा कि म्यान से हथियार खींचने वाले के हांथ को नियंत्रित व निर्देशित करने वाला हमेशा मस्तिष्क ही होता है, जिसकी प्रेरणा पाकर ही हांथ तलवार खींचने के लिए प्रेरित होता है। उन्होंने लिखा, "जब दो देश दुद्ध कर रहें

हो तो अहिंसा के व्रतियों का यह कर्त्तव्य है कि युद्ध को रोकें तथा उसके हेतु प्रयास करें।"[7] लियो टॉल्सटाय ने भी ईसाईयत के मार्ग और राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए हथियारों के जखीरों की आवश्यकता के बीच की तक कि पूर्णत: वैश्विक नि:शस्त्रीकरण का विचार भी सामने रखा। उनकी वैश्विक भाईचारे को पुष्ट करने वाली थी। उन्होंने आशा प्रकट की कि वैश्विक राजनीति सलाहों व मध्यस्थकारों के इर्द-गिर्द घूमेगी न कि सशस्त्र द्वंद्वों के साये के बीच।

यद्दपि गांधी के अनुसार, अहिंसा की दृष्टि में युद्ध के सभी रूप अन्यायपूर्ण हैं। लेकिन आजादी के उपरांत आक्रामक और रक्षक के बीच को पहचानते हुए उन्होंने रक्षक को सभी नैतिक समर्थन देने की वकालत की।

कभी-कभी गांधी के अहिंसा व उनके द्वारा कई युद्धों में भागीदारी के बीच के अन्तर्द्वन्द्व की बात भी उठती रहती है। 1899 के बोअर युद्ध के समय उन्होंने एक स्वयंसेवी एम्बुलेंस कोरप्स बनाया था। 1906 में जुलू विद्रोह के दौरान उन्होंने बीस भारतीयों का स्ट्रेचर-ढोने वालों का समूह तैयार किया ता। 1914 में उन्होंने अधिकतर लंदन में रह रहे भारतीय छात्रों का एक स्वयंसेवी एम्बुलेंस कोर बनाया था। 1918 में तो उन्होंने ब्रिटिश पक्ष की तरफ से युद्ध करने के लिए भारतीय सैनिकों की

भर्ती का घोर उपाय कर लगभग अपनी हत्या ही कर डाली थी। जहां तिलक कुछ निश्चित शर्तों के अधीन ही मित्र राष्ट्रों की मदद करने के इच्छुक थे वहीं गांधी बिना शर्त सैनिक समर्थन के पक्षधर थे। सो यह प्रश्न उठना आवश्यक है कि जब गांधी अहिंसा के व्रती थे तो क्यों उन्होंने युद्ध में किसी भी तरीके से भागीदारी नहीं निभाई। जब 1918 में वे भर्ती प्रक्रिया में सहयोग कर रहे थे तो क्या वे जर्मन सैनिकों की हत्या की योजना में सहयोग नहीं कर रहे थे? लेकिन गांधी ने इसका बचाव यह कह कर किया कि जब तक ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन हैं तब तक संकट के समय उसकी मदद करना कर्त्तव्य है। वह अपनी आत्मकथा में लिखते हैं-

"जब दो देश परस्पर युद्ध में सन्नद्ध हों तो अहिंसा व्रतियों का यह कर्त्तव्य है कि वह युद्ध को रोकें। जो ऐसा करने में समर्थ नहीं हैं, जिसके पास युद्ध के प्रतिरोध का साहस नहीं है, जो इसके योग्य नहीं है, वह युद्ध में भाग ले सकता मगर फिर भी अपने आप को तथा पूरे विश्व को युद्ध की विभीषिका से मुक्त करने का पूरे मन से कोशिश कर सकता है। मैंने ब्रिटिश साम्राज्य के द्‍वारा अपने तथा अपने लोगों की हैसियत सुधारने की आशा की थी। जब मैं इंग्लैंड में था जब में ब्रिटिश सेना के संरक्षण में था, मैंने उसके सैनिक ताकत का आश्रय लिया था और इस प्रकार में

प्रत्यक्ष रूप में संभावित हिंसा में अपनी भागीदारी सुनिश्चित कर रहा था। सो, यदि मैं साम्राज्य के साथ अपने संबंध को कायम रखने तथा उसके झंडे तले जाने की इच्छा करता हूं तो मेरे पास तीन विकल्प खुले हैं- मैं सत्याग्रह के नियमों के अनुरूप युद्ध के खुले प्रतिरोध की घोषणा करूं, साम्राज्य का तब तक बहिष्कार करूं जब तक कि वह अपने सैनिक नीति में परिवर्तन नहीं करता, या मैं इसके कानूनों की सविनय अवज्ञा करूं तथा गिरफ्तारी दूं, या फिर साम्राज्य की ओर से युद्ध में भागीदारी करूं और इस प्रकार युद्ध की हिंसा को रोकने के लिए योग्यता व सक्षमता प्राप्त करूं। चूंकि मैं इसमें समर्थ व योग्य नहीं था सो मेरे पास युद्ध में अपनी सेवा देने के अलावा और कोई चारा नहीं था। मैंने हिंसा के दृष्टिकोण से लड़ने वाले के बीच कोई भेद नहीं किया। जो डकैतों के गिरोह में भारवाहक, पहरेदार या फिर सेवादार किसी भी रूप में डकैतों के लिए काम करता है वह डकैती के कार्य़ में उतना ही भागीदारी है जितना डकैत खुद। इसी तरह जो अपने आपको युद्ध के मैदान में घायलों की मदद करने तक सीमित रखता है, वह भी युद्ध के दोष से बच नहीं सकता है।"[8]

लेकिन यहां यह उल्लेखनीय है कि द्वीतीय विश्वयुद्ध में उन्होंने 1918 की तरह सहयोग नहीं किया व बहिष्कार की नीति अपनाई।

सैनिकवाद, ताकत की राजनीति, हिंसा तथा साम्राज्यवादी अमानुषिकता के विरोध को बावजूद गांधी शांति के लिए कोई कीमत को चुकाने के पक्ष में नहीं थे। उन्होंने कहा कि वे पत्थर या कब्र की शांति नहीं चाहते हैं। शांति कायरता, जड़ता या थकान को प्रतिबिंबित नहीं करती है। शांति का मतलब आक्रमण की साम्राज्यवादी दु:साहसों का तुष्टीकरण नहीं है। 1938 के म्यूनिख समझौते पर गांधी का कथन कि "यह सम्मान के बिना शांति" है इस मामले में महत्त्वपूर्ण है कि एक निष्कपट शांति की आधारशिला तभी रखी जा सकती है जब यह शांति के भंगकर्ता ताकतों के सुधार व उसके उन्नयन पर आधारित हो। सो न्याय की अवधारणा का अनुपालन अत्यंत जरूरी ताकि उचित वादों व अधिकारों का न्यायपूर्ण निवारण संभव है। कमजोर पर आक्रामकों की इच्छाओं को थोपना पूर्णत: अन्यायपूर्ण व परस्पर विरोधी है। 1 नवम्बर, 1946 को सोवेपुर में एक प्रार्थना सभा को संबोधित करते हुए, गांधी ने कहा कि शांति की इमारत, समामान की बुनियाद पर खड़ी होनी चाहिए न उसके अतिक्रमण पर। इस प्रकार उन्होंने इस बात को रेखांकित किया कि वह ऐसे किसी भी समझौते को स्वीकार नहीं कर सकते जिसमें किसी की अवमानना या उसके आत्म-सम्मान को ठेस पहुंचाने की कोई बात निहित हो।

लेकिन दूसरी ओर शांति के गांधीवाद सिद्धांत का मतलब विरोधियों का उन्मूलन नहीं है। जहां दमन व शोषण का प्रतिरोध इसमें निहित है वहीं शोषकों या दमनकर्ताओं के प्रति किसी भी प्रकार के घृणा का इसमें पूर्णतः निषेध है। अहिंसा के एक व्यापक सिद्धांत में विरोधियों के प्रति भी सकारात्मक प्रेम की बात निहित है। गांधी ने तो बुद्ध की तरह उनका विचार था कि वैर से वैर का उन्मूलन नहीं किया जा सकता क्योंकि यह एक ऐसा दुष्चक्र है जो विरोधियों में प्रतिशोध की है। गांधी ने तो बुद्ध की तरह उनका विचार था कि वैर से वैर का उन्मूलन नहीं किया जा सकता क्योंकि यह एक ऐसा दुष्चक्र है जो विरोधियों में प्रतिशोध की भावना को जलाए रखता है तथा उसका संपोषण करता है। सो इसका सर्वोत्तम तरीका विरोधियों का हृदय-परिवर्तन ही हो सकता है। सो अहिंसा ताकत की राजनीति के विभत्स चरित्र को वैश्विक नैतिक बल से बदलना चाहता है। विरोधियों को रजामंद करने तथा उसके हृदय-परिवर्तन को प्रेरित करने के लिए महान व्रतों का अनुपालन (एकादश व्रत) जरूरी है क्योंकि इसी के बलबूते सत्याग्रही अपने नैतिक संघर्ष के लिए साहस व दृढ़ता जुटा सकता है। सो राजनीति के गांधीवादी के दर्शन इस बात में निहित है कि सत्य, प्रेम व अहिंसा के सिद्धांतों पर दृढ़ रहते हुए, व्यक्तिगत सामुदायिक, राष्ट्रीय

तथा अंतर्राष्ट्रीय कीसी भी तरह द्वंद्व का सर्व स्वीकार्य व सर्वोकृष्ट समाधान किया जा सकता है।

गांधी अहिंसा के साथ-साथ निर्भयता के आदर्श का भी अक्षरश: पालन करने में विश्वास करते थे। वह हमेशा अहिंसा के पालन पर जोर देते थे क्योंकि सभी तरह के भय के उन्मूलन के लिए यह आवश्यक था। अहिंसा व्रतियों को सिर्फ ईश्वर का भय होता है। ज्यों-ज्यों वह इस पावन पथ (सत्य) पर बढ़ता जाता है त्यों-त्यों वह अपनी आत्मा के करीब पहुंचने लगता है और फिर इस आत्म-तत्त्व को पहचानने के बाद सांसारिक सुखों के प्रति वह उदासीन हो जाता है। वह नैतिकता के पथ पर अग्रशील होकर बंधऩ से मुक्त होना शुरु कर देता है। “बाह्य चीजों की रक्षा के लिए हिंसा जरूरत होती है, अहिंसा का जरूरत आत्मा की रक्षा के लिए होती है।”[10] अहिंसा या रचनात्मक प्रेम की बुनियाद निर्भरता की बुनियाद पर ही रखी जा सकती है। क्योंकि पूर्ण अहिंसा का मतलब ही है पूर्ण निर्भयता। यह बहादुरों का मार्ग है। उन्होंने हमेशा बहादुरों के (साहसी) न्यायोचित अहिंसक कार्यवाहियों का आह्वन किया तथा दुर्बलों व कायरों की प्रतिरोधहीनता से वे कभी सम्बद्ध नहीं रहे। वह जीवन की तैयारी हेतु साहस व वीरता जैसे गुणों का संपोषण चाहते थे, लेकिन वे इस साहस का प्रकटीकरण अहिंसक तरीके से

चाहते थे न कि हिंसक तरीके से। वह ऐसे नैतिक साहस बल के विकास पर जोर देते थे जिसका उद्‌गम अदम्य इच्छाशक्ति के गर्भ से हो। 27 नवम्बर 1946 को नोआखली में उन्होंने कहा, "व्यक्तिगत साह ही ऐसा गुण है जिसके आधार पर सब कुछ निर्भर करता है सो हमें उसके विकास का प्रयत्न करना चाहिए।"[11] गांधी के अनुसार अहिंसा की लड़ाई आत्म-बल से लड़ी जाती है जिसमें साहस, वीरता व दृढ़ता का होना अनिवार्य है। गांदी के विचार में यह सबसे ताकतवर तथा सबसे सूक्ष्मतम तरीके का बल है। यह वीरोचित आत्मा के ताकत का भव्य प्रदर्शन है जो किसी को भी चोट पहुंचाना अस्वीकार करता है क्योंकि प्रत्योक प्राणी तात्त्विकत: एक आत्मा है और मौलिक रूप से वह एक सत्ता का अभिन्न अंग है। अहिंसा का दुर्बलता से दूर-दूर तक भी कोई लेना-देना नहीं है। गांधी के इस कथन में दम है कि तलवार ताकत का नहीं वरन् भय व दुर्बलता का प्रतीक है। भय, संदेह और कभी-कभी अक्खड़ता को जन्म देता है। भय के संचयन से अनेक जटिलताओं का जन्म होता है। कभी-कभी यह ईक्रामकता को भी जन्म देता है। हमारे समय की एक बहुत बड़ी त्रासदी रही कि कुछ ऐसे विकृत व असंगत व्यक्तित्वों का प्रदुर्भाव हुआ जो जन-उत्तेजनाओं को उभारकर तथा लोगों में भय का बीज बोकर अपने स्वार्थपूर्ण कार्य़ में विरत हो गया।

गांधी ने निर्भरता रे मनोवैज्ञानिक प्रभावोत्पादकता की शिक्षा दी, जिसकी बुनियाद आध्यात्मिक विश्वास पर टिकी थी। गांधी का विचार था कि इसी के द्वारा वर्तमान समय की राजनीतिक विद्रूपताओं, सामूहिक ईर्ष्या, प्रतिशोध तथा व्यक्तिगत वासनाओं का समाधान किया जा सकता है।

निर्भरता की उपलब्धि के लिए व्यक्ति चरित्र की पूर्णता तथा ईश्वर में अगाध श्रद्धा नितांत जरूरी है। सत्य व ईश्वर में विश्वास करने वाला आत्मा की दिव्यता में श्रद्धा रखता है तथा सभी तरह के अन्याय का दृढ़तापूर्वक प्रतिकार करने के लिए अपनी जान की बाजी तक लगा देता है।

गांधी विनम्रता के पक्के अनुयायी थे, लेकिन उन्होंने स्पष्टत: इस बात को रेखांकित किया कि कायरता व हिंसा में अगर उन्हें एक चयन करना पड़े तो वह हिंसा को चुनेंगे। वे इस बात को लगातार कहते रहे कि राष्ट्रीय शब्दकोष में कायरता या भय का कोई स्थान नहीं होना चाहिए। उन्होंने लिखा-

"सत्य यह कि कायरतापन आपने आप में एक सूक्ष्म प्रकार की हिंसा है अत: अधिक खतरनाक है तथा इसका उन्मूलन शारीरिक हिंसा

से भी अधिक दुष्कर है। एक कायर कभी पनी जिंदगी दांव पर नहीं लगा सकता। मारने वाला प्राय: अपनी जिंदगी दांव पर लगाता है। एक अहिंसक व्यक्ति का जीवन हमेशा उसके अपने हांथों में होता है। क्योंकि वह जानता है कि आत्मा कभी नहीं मरती। शरीर का लगातार क्षरण होता है लेकिन आत्मा अजर-अमर होती है। जितना अधिक मानव अपनी जिंदगी देता है उतना ही अधिक वह उसे सुरक्षित करता है। सो अहिंसा के लिए युद्धरत सैनिकों से भी अधिक साह की जरूरत होती है। गीता में सैनिक उसे कहा गया है जो यह जानता है कि खतरों से भागना क्या होता है।"[12]

सो अहिंसा बहादुरी की पराकाष्ठा का प्रतीक है। गांधी ने इस बात को रेखांकित किया कि कायरों को अहिंसा का उपदेश देना वैसा ही है जैसा एक अंधे व्यक्ति को मनोरम दृश्यों को देखने के लिए प्रेरित करना।

गांधी भारत से अहिंसा के सिद्धांतों के अनुपालन की अपेक्षा रखते थे, लेकिन उसका कारण यह नहीं था कि भारत राजनीतिक बेड़ियों में जकड़ा था। उनकी यह दृढ़ धारणा थी कि भारत के पास एक अविनाशी आत्मा है जो सभी दुर्बलताओं को पीछे छोड़ते हुए उत्थान के द्रुतगामी मार्ग पर आगे बढ़ सकता है। लेकिन आजादीके उपरांत गांधी ने कुछ

निराशावाद तथा आत्म संताप में कहा कि भारत ने सिर्फ दुर्बलों की अहिंसा को अपनाया है, क्योंकि ब्रिटिश शक्ति के यहां से जाने के साथ ही असंयमी व स्वार्थी लोग पद, प्रतिष्ठा तथा लाभ के लिए हिंसक व स्वार्थपूर्ण संघर्ष में जुट जाएंगे। उनहोंने स्वीकार किया, "मैं अपना सिर शर्म से झुकाने को बाध्य हूं।" गांधी ने लिखा, "मैंने पहले ही कहा कि विगत 30 वर्षों से प्रयोग की जा रही अहिंसा दुर्बलों की अहिंसा है...भारत के पास साहसियों की अहिंसा का कोई अनुभव नहीं है।"[13] फिर भी वह राजनीति के नैतिकीकरण तथा आध्यात्मीकरण के प्रति श्रद्धावान रहे तथा इस सिद्धांत के प्रति अपनी निष्ठा कायम रखी की कि अहिंसा ही मानवता को सम्पूर्ण द्वंद्वों व बुराईयों से मुक्त कर सकता है।

गांधी ने अहिंसा का उपदेश प्राच्य व पाश्चात्य दोनों को दोनों को समान रूप दिया। लेकिन विभिन्न परिस्थितिजनक संदर्भों में अहिंसा का उनका आशय अलग-अलग होता था। भारत के लिए अहिंसा एक ऐसी सामाजिक तथा राजनीतिक थी जिसके द्वारा लोगों की ऊर्जाओं को एक साथ लाकर उसका उपयोग राष्ट्रीय आजादी को पाने के लिए किया जा सकता था। इसका आशय क्षुद्र स्थानीय ईर्ष्याओं, जातिजगत तथा सामप्रदायिक भेदभावों तथा क्षेत्रीय दंभों के निराकारण से भी था। इसकी अभिव्यक्ति दु:खभोग, सहिष्णुता,

आत्म-त्याग तथा सद्भावों पर आधारित राष्ट्रीयता के विकास में भी होता था। पाश्चात्य संसार के लिए, अहिंसा के गांधीवादी दर्शन का मुख्य सरोकार है। गांधी ने लिखा कि यदि यूरोप अपनी आत्महत्या से बचना चाहता है तो उसे अहिंसा की महत्ता इस बात में निहित थी कि यह अनवरत संघर्षों, युद्धों तथा, 'रक्त और लौह' की नीति का एक आध्यात्मिक व कल्याणकारी विकल्प सुझाता था। इस प्रकार इसका मतलब था कि शक्ति आधारित रानीति, शोषण, अत्याचार, आर्थिक साम्राज्यवाद आदि का निषेध। लेकिन यह युद्ध का एक नैतिक विकल्प मात्र था तथा ज्यों का त्यों इसकी निस्तेज स्वीकृति नहीं थी। नाभिकीय युग में गांधी अहिंसा के प्रेमपूर्ण सिद्धांतों पर इसलिए टिके थे क्योंकि वह मानवजाति के अस्तित्व को लेकर चिन्तित थे।

एक आध्यात्मिक तथा नैतिक आदर्शवादी के रूप में वह लोक प्रशासन के अहिंसा पर आधारित नैतिकीकरण में विश्वास करते थे। वह आधुनिक राजनीतिक जीवन के ढ़ांचे में सुधार लाने को उत्सुक थे। यदि स्वराज की उपलब्धि अहिंसक तरीकों से की जा सकती है तो यह आवश्यक है कि स्वराज राजनीति अहिंसा के सिद्धांतों पर आधारित हो। सो उन्होंने लोक प्रशासन में ईमानदारी, निष्ठा तथा परोपकारी उद्देश्यों की आवश्यकता पर जोर दिया।[14]

विश्व हिंसा की आंधी के थपेड़े से त्रस्त है। यह आंधी सभ्यता की हमारी बुनियाद को हिलाने को लेकर आमादा है। लेकिन यह कोई स्वतः-स्फूर्त नहीं है। शताब्दियों की क्रूर राष्ट्रीय दंभ, अनेकानेक धर्मों की बुतपरस्त विचारधारा, अमानवीय उद्योगवाद, खूंखार धनिकतंत्र तथा अर्थव्यवस्था उपभोगवादी तंत्र ने इन विद्रूपातओं का जिसमें आत्मा का मान-मर्दन होता है, मनुष्यत्व गला घोंटा जाता है, पल्लवन, पुष्पन व विकास किया है। इस भयावाह अंधकार के आगे पाश्चात्य दुनिया नतमस्तक हो गयी। यह कहना काफी नहीं है कि यह सब अपरिहार्य था। प्रत्येक व्यक्ति एक-दूसरे की हत्या एक ही सिद्धांतों के आधार पर करता है तो लोलुपता व स्वार्थ की प्रवृत्तियों को छिपाती है। फिर चाहे वे राष्ट्रवादी हो, फासीवादी हो, साम्यवादी हो या फिर बल का प्रयोग करने वाले शोषित वर्ग हों, प्रत्येक ने अपने लिए कुछ और दूसरों के लिए कुछ और मापदंड बनाया। अतीत में ताकत ने न्याय का गला घोंटा।

वैश्विक शांति दूर की चीज है। हम लोगों ने विगत शताब्दी में मानवजाति वीभत्सता, कपटता, कायरता तथा क्रूरता को भलीभांति देखा है। “लेकिन यह हमें मानव जाति से प्यार करने से वंचित नहीं करती।” महात्मा गांधी के फ्रेंच जीवनीकार रोम्यो रोलां इस बात को

जोर देकर कहते हैं, अंधेरे के घोरतम रूप में भी प्रकाश की एक किरण मौजूद रहती है, हम जानते हैं कि वर्तमान विश्व को अपनी गिरफ्त में लेने वाला उपभोगतावाद किस प्रकार हमें पददलित कर रहा है, हम जानते हैं कि सदियों की कायरता, वासना, अनाचार व अत्याचार ने हमारी आत्मा के ईर्द-गिर्द अभेद दीवार खड़ी कर दी है जिसे प्रकाश पार नहीं कर सकता। लेकिन हम यह भी जानते हैं कि आत्मा क्या चमत्कार कर सकती है।

निष्कर्ष

अहिंसा की जरूरत जितनी आज के व्यक्ति, समाज और राष्ट्र को जरूरी है उतना पहले कभी नहीं था। आज हमारी संरचना व्यक्ति से लेकर समाज तक और राष्ट्र से लेकर संपूर्ण विश्वतक संचरनात्मक हिंसा पर आधारित है। व्यक्ति, समाज और राष्ट्र एक नए अहिंसात्मक विकल्प की तलाश में है। वर्तमान में पूरे विश्व में तानाशाही के खिलाफ जनविद्रोह ने अहिंसा की पुन स्थापित कर दिया है। गांधी की अंहिसा न केवल भारत का मार्गदर्शन कर रही है बल्कि संपूर्ण गांधी की अहिंसा की नीति को अपना रहा है।

संदर्भ

1. हरिजन, 17-08-1934।

2. वही, 29-06-1940।

3. एम.के. गांदी, एन आटोबायोग्राफी या दी स्टोरी ऑफ माई एक्सपेरीमेन्ट्स व्द ट्रूथ (अहमदाबाद: नवजीवन प्रकाशन), 1975।

4. हरिजन. 21-07-1940।

5.वही, 27-04-1947।

6. वही, 18-08-1940।

7. वही, 22-08-1940।

8. एम.के. गांधी, एन ऑटोबायोग्राफी या दी स्टोरी ऑफ माई एक्पेरिमेन्ट्स विद ट्रूथ, पूर्व उद्धृत।

9. हरिजन, 12-10-1935।

10. वही, 18-08-1946।

11. वही, 27-06-1946।

12. यंग इण्डिया, 18-12-1924।

13.हरिजन,23-06-1947।

14.वी.पी.वर्मा,दी पोलिटिकल फिलोस्फी ऑफ महात्मा गांधी एण्ड सर्वोदय (आगरा: लक्ष्मी नारायण अग्रवाल), 1959।

अध्याय-10

गांधी का राष्ट्रवाद

राष्ट्रवाद एक आधुनिक विचार है। राष्ट्रवाद को समझने के लिए दो बड़े आयामों को समझना जरूरी है। इसी समय राज्य नाम की अवधारणा का विकास हुआ तथा राजनीतिक रूप से अपनी एक अलग पहचान स्थापित की। राष्ट्रवाद के उदय के फलस्वरूप राजनीतिक सरोकारों का केन्द्र बिन्दु राज्य में निहित हो गया। धीरे-धीरे एक विचार ने अपनी एक व्यापक पहचान स्थापित की। विश्व स्तर पर राष्ट्रवाद के प्रचार-प्रसार से गैर-आधुनिक समाजों का यूरोपीयकरण तथा आधुनिकीकरण हुआ। इसके उदय के साथ अनेक नये सिद्धांतों का उदय हुआ जैसे-संप्रभुता की उत्पति, शासितों के सक्रिय सहयोग से शासन का सिद्धांत, धर्मनिरपेक्षता, धार्मिक या जातीय सामाजिक मानसिकता का विघटन। साथ ही साथ शहरीकरण, औद्योगिकीकरण तथा संचार सेवाओं का प्रचार-प्रसार।[1]

इस प्रकार राष्ट्रवाद को परिभाषित करते हुए यह कहा गया कि, “राष्ट्रवाद एक राजनीतिक विचार है जो आधुनिक विचारों के साथ आधुनिक समाज की स्थापना करता है। यह बहुसंख्यक लोगों की असीम श्रद्धा, विश्वास व राष्ट्र के प्रति भक्ति है। यह राज्य को केवल राजनीतिक संगठन के रूप भी प्रदान करता है।“[2] यूरोपीय राष्ट्रवाद के संदर्भ में सामान्य रूप से यह विचार दिया जाता है कि यह जैविक एकता, एक खास क्षेत्रफल, एक समान अर्थव्यवस्था, समान भाषा, राष्ट्र के प्रति समान सोच, सांस्कृतिक समानता जैसे तत्वों को समाहित करने वाला है।

प्रसिद्ध इतिहासकार ई.एच. कार ने राष्ट्रवाद की विवेचना कुछ इस प्रकार की-

1- एक सर्वमान्य सरकार की व्यवस्था जो वर्तमान या भूत की वास्तविकता हो या भविष्य की आकांक्षी
2- एक निश्चित क्षेत्रफल तथा इसके सभी व्यक्तिगत सदस्यों के बीच आपसी तालमेल
3- कम या ज्यादा एक निश्चित सीमा हो

4- दूसरे राष्ट्रों व गैर राष्ट्रीय समूहों से भिन्न कुछ ऐसे मौलिक तत्व हों, एक राष्ट्र को अलग पहचान दें। जिसमें भाषा को प्रमुखता दी जाये

5- व्यक्तिगत सदस्यों के हित सामूहिक हो

6-जनसमूह में राष्ट्र के प्रति भावनात्मक झुकाव हो।[3]

यद्‌यपि ये सारे तत्व तीसरे विश्व के देशों के राष्ट्रवाद के रूप में अपनी जगह नहीं बना सके। इसके अतिरिक्त राष्ट्रवाद को उन राज्यों के साथ जोड़कर देखा जाता है जिनकी पहचान राजनीतिक इकाई के रूप में हो चुकी है। लेकिन इस भावना का उदय उन समुदायों में भी हो सकता है जिसका न तो सामाजिक व सांस्कृतिक ढांचे का विकास हुआ हो और न ही राजनीतिक ईकाई के रूप में कोई पहचान हो तथा जो अन्य राज्यों के प्रभुत्व में हो।

18वीं शताब्दी के आरंभ से लेकर वर्तमान तक राष्ट्रवाद ने विभिन्न रूपों में अपनी मंजिल तय की। 18वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध तथा 19वीं शताब्दी पूर्वार्द्ध इसका शैशवकाल माना जाता है। इस काल में राष्ट्रवाद चारित्रिक रूप में अधिक उदार तथा

अंतर्राष्ट्रीय था। इस दौर में इसने राष्ट्रीय भिन्नताओं को बिना किसी भेदभाव के स्वीकारा, जिससे इस बात को बल मिला कि यह एक साझे संघर्ष के सहभागी हैं। लेकिन इस समय यूरोप के कुछ भाग में राष्ट्रवाद को अलग पहचान के साथ उभारा जा रहा है। इसका दुसरा काल 19वीं शताब्दी के प्रारंभ तथा द्वितीय विश्वयुद्ध के समाप्ति तक माना जाता है।

इस दौर में राष्ट्रवादी आंदोलनों ने व्यापक अंतर्राष्ट्रीय स्वरूप को छोड़कर रूढ़िवादी और प्रतिक्रियावादी का रूप अपना लिया। इय प्रवृत्ति का सबसे ज्यादा विकास दो विश्वयुद्धों के बीच के काल में हुआ। यहां तक कि गैर-राष्ट्रवादी साम्यवादी आंदोलनों ने भी राष्ट्रवाद का चोला पहन लिया। इसके अंतिम काल की शुरुआत द्वितीय विश्वयुद्ध के पूर्वार्द्ध में एशिया, अफ्रीका तथालैटिन अमेरिका के राज्यों की स्वतंत्रता के साथ शुरु हुई। अब राष्ट्रवादी आंदोलनों का केंद्र यूरोप से तीसरे विश्व के देशों में आ गया। इसका उदय मूल रूप से औपनिवेशिक साम्राज्य के खिलाफ संघर्ष के परिणामस्वरूप हुआ। स्वतंत्रता के बाद भी इन देशों में यह प्रवृत्ति कायम रही और दूसरे विश्वयुद्ध के बाद भाईचारे के

रूप में सामने आई। गुटनिरपेक्ष आंदोलनों के द्‌वारा जो विश्वस्तर पर शक्तिशाली गुटों के विरोध स्वरूप ती।

शीतयुद्ध की समाप्ति और भूमंडलीकरण ने एक बार राष्ट्रवाद को उदार राष्ट्रवाद के रूप में मांग प्रसस्त किया है, जिसमें राजनीतिक सरोकारों को दरकिनार कर आर्थिक सम्बंधों को केंद्र में रखा गया है। लेकिन यह सब निर्भर करेगा राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय स्तरों पर होने वाली गतिविधियों से । इसकी रूपरेखा तथा भविष्य इनके बीच के संबंधों और समायोजन क्षमता ही तय करेगी। उदारवाद, निजीकरण तथा वैश्विकरण, राष्ट्रवाद की परिकल्पना को एक नए रूप में ढाल रहा है।

भारतीय राष्ट्रवाद

भारतीय राष्ट्रवाद की अपनी कुछ विशेषताएं हैं। अतः गांधी के विचारों के विश्लेषण के पहले भारतीय राष्ट्रवाद के उदय संबंधी दो अनिवार्य बिन्दुओं का विश्लेषण करना आवश्यक है। राष्ट्रवाद को समझने के लिए इन बिन्दुओं का उल्लेख जरुरी है जिससे राष्ट्रवाद का समझ और व्यापक होगी।

(क) भारतीय राष्ट्रवाद का उदय यूरोपीय सांचे में नहीं हुआ। भारतीय राष्ट्रवाद की प्रकृति व स्वरूप यूरोपीय राष्ट्रवाद से बिल्कुल अलग रही है। अतः इसके दायरे में यूरोपीय राष्ट्रवाद के प्रकृति स्वरूप नहीं आते हैं। यूरोपीय राष्ट्रवाद जैविक एकता, विशिष्ट क्षेत्रफल, एक समान अर्थव्यवस्था, भाषाई समानता, राष्ट्र के प्रति एक सोच तथा सांस्कृतिक समानता तक ही सीमित है।[4] वहीं भारतीय राष्ट्रवाद का विकास सामाजिक-आर्थिक तथा राजनीतिक पृष्ठभूमि के साये में हुआ है। इसलिए इसकी प्रकृति और परंपरा यूरोपीय राष्ट्रवाद से अलग है।

(ख) भारतीय राष्ट्रवाद कुछ क्रांतिकारी विचारों या आर्थिक व्यवस्था के विभिन्न स्तरों पर होने वाले विकास या फिर सामाजिक परिवर्तनों का उत्पादन भी नहीं है। यह किसी भी तरीके से एक निश्चित दिशा में सामाजिक विकास भर नहीं था। औपनिवेशिक ताकतों के फलस्वरूप उपजी पीड़ाओं ने यहां के नेताओं एक ठोस राजनीति पर काम करने के लिए प्रेरित किया। जिसके कारण संघर्ष का मुख्य उद्देश्य भारत की स्वतंत्रता हो गई।

अत: कहा जा सकता है कि भारतीय राष्ट्रवाद आजादी के लिए संघर्ष का परिणाम था। औपनिवेशिक दासता के मकड़जाल से निकलने के लिए अपनाये जाने वाले तौर-तरीकों ने भारतीय राष्ट्रवाद के स्वरूप को प्रभावित करते रहा। ये सारे तर्क भारतीय राष्ट्रवाद को उन आरोपों से मुक्त करते हैं कि भारतीय राष्ट्रवाद[5] बिना राष्ट्र का राष्ट्रवाद है और साथ ही साथ कैम्ब्रिज इतिहासकारों के उस दृष्टिकोण को नकारती है कि यहां राष्ट्रवाद का उदय आदर्शों, विचारों तथा वैचारिक धाराओं को महत्त्व देने के बजाय नाम, पद, स्वार्थ तथा एक-दूसरे से आगे निकलने की प्रवृत्ति के फलस्वरूप हुआ।[6] इसके बजाय भारतीय राष्ट्रवाद को राजनीतिक के एक स्वरूप में जिसकी जड़ औपनिवेशिक सत्ता के विरुद्ध संघर्ष में निहित है; समझा जाना अधिक प्रासंगिक और व्यापक होगा।[7]

गांधीवादी दृष्टिकोण

गांधी ने राष्ट्रवाद को अलग ढंग से प्रस्तुत किया। गांधी ने राष्ट्र को प्रजा से जोड़ा। गांधी के राष्ट्रवाद को उनके चिंतन से अलग नहीं

किया जा सकता। दूसरे शब्दों में गांधी ने राष्ट्रवाद पर अलग से अपना कोई विचार प्रस्तुत नहीं किया। सो गांधी के विचारों में राष्ट्रवाद को समझने के लिए उनकी विचारधारा और सम्पूर्ण दर्शन का अध्ययन करना जरूरी है।[8] उनके लिए राष्ट्रवाद भारत की आजादी हेतु निहित संघर्षों में समाहित था। उनके विचारों को इस विषय को लेकर समझने के लिए इन दो चीजों पर गौर करना होगा कि गांधी के हृदय मं राष्ट्रवाद नामक पौधा का प्रस्फुटन भारत में नहीं बल्कि दक्षिण अफ्रिका में हुआ। और तथ्य अकेले ही अन्य भारतीय राष्ट्रवादियों से अलग करती हैं। दूसरा, चम्पारण या बारदोली के बजाय ट्रांसवाल की राजनीतिक पृष्ठभूमि पर गांधी ने अपने अद्भुत व अनुरपम राजनीतिक दर्शन, तौर-तरीकों का विकास किया।[9] गांधी ने कहीं एक जगह राष्ट्रवाद के बारे में कोई ठोस विचार नहीं दिया है, इसलिए गांधी के दृष्टिकोण में राष्ट्रवाद को समझने के लिए सम्पूर्ण गांधी साहित्य का अध्ययन करना जरूरी है। गांधी के रचनाक्रमों के अध्ययन के फलस्वरूप कुछ तथ्य उभरकर सामने आये हैं-

1.गांधी का राष्ट्रवाद ‘समायोजन’ पर आधारित था, जिसमें भारत के विभिन्न समुदायों का राष्ट्रीय समरसता कायम करना शामिल था।[10] उनकी राष्ट्रवादी अवधारणा में न केवल धार्मक समूह बल्कि जातियां

और प्रजातियां भी शामिल थीं। इस पर रविन्द्र कुमार ने टिप्पणी की है कि चूंकी गांधी के मानस में भारत की वास्तविक तस्वीर वर्गों, जातियों, समुदायों तथा धार्मिक समूह के एक स्वच्छंद घनीभूत के रूप में थी, जो वे इस उपमहाद्वीप के जनमानस में राष्ट्रीय भावना भरने में जितना समर्थ थे उतना इनके पूर्व न कोई था और न बाद में हुआ।[1] ब्रिटिश सत्ता को उखाड़ फेंकने के अपने कार्यक्रम में वे सभी जातियों, वर्गों, समुदायों, धर्मालंबियों को एक मंच पर लाये तथा अपने साझे राष्ट्रवाद की भावना से प्रेरित कर लक्ष्य को प्राप्ति के लिए प्रेरित किया। यह काम उन्होंने सारे समूहों को साथ लेकर किया। साथ ही उनका प्रयास था कि विभिन्न मत भिन्नताओं और विभिन्न विचारों वालों को भी जागृत कर एक मंच पर लाया जाये।

2.गांधी का राष्ट्रवाद औपनिवेशिक सत्ता से प्रेरित था लेकिन उनके तौर-तरीके यूरोपीय देशों से कई मायनों में अलग थे। उन्होंने वैसे राष्ट्रवाद को दरकिनार कर दिया जो हिंसा पर आधारित हो जैसा कि यूरोपीय देशों में देखने को मिलता है। वे अपने उद्धेश्य को प्राप्त करने के लिए अहिंसा का उपयोग करना चाहते थे, उनका मानना था कि 'प्रेम या आत्मा की ताकत के आगे हथियारों की तातक निरीह व निष्प्रभावी है।'[12] उनका मानना था कि हिंसा से आपसी संवाद खत्म होते हैं और

समाज में हिंसक प्रवृत्ति को बढ़ावा मिलता है। उनका विचार था कि भारतीयों को ब्रिटिश सरकार की गलतियों का एहसास दिलाना चाहिए तथा सत्याग्रह द्वारा अपने आप को बदलने का प्रयास करना चाहिए। उनकी नजरों में राष्ट्र की मुक्ति के लिए हिंसा का कोई स्थान न था।

3.उनका राष्ट्रवाद समाज के सभी तबकों के साथ बिना किसी भेदभाव के सामूहिक सोच व लक्ष्य की अभिव्यक्ति थी। वे जाति या वर्ग के आधार पर पृथकतावादी दृष्टिकोण के खिलाफ थे। उन्होंने जातीय ऊंच-नीच के खिलाफ हमेशा आवाज उठायी और भारत से छुआछूत मिटाने का अथक व गंभीर प्रयास किया। वे हमेशा से एक ऐसे राष्ट्रवाद पक्षधर थे जो विभिन्न वर्गों-समुदायों तथा बहुलतावादी संस्कृति पर आधारित हो। भारत से छुआछूत को हटाने के लिए उन्होंने व्यक्तिगत जीवन में काफी परिवर्तन किये। दक्षिण अफ्रीका में गांधी सहयोगियों में सबी जातियों व सामुदाय के लोग शामिल थे। 1915 में भारत लौटने पर अहमदाबाद में स्थापित पहले आश्रम में उन्होंने लाख विरोध के बावजूद अछूत व्यापारियों को आमंत्रित किया। उन्होंने अछूतों को ‘हरिजन’ नाम दिया और फिर सी मान से उन्होंने साप्ताहिक पत्रिका का प्रकाशन भी किया। यह पत्रिका समाज में निचले तबकों की समस्याओं पर केन्द्रित थी। 1932 में जेल से छूटने के बाद छुआछूत को

मिटाने के लिए उन्होंने 12,500 मील की पैदल यात्रा की। उन्होंने इस उद्धेश्य को पूरा करने के लिए 'हरिजन कोष' की स्थापना की। गांधी का मानना था कि ब्रिटिश सरकार इसी जात-पात के आधार पर लोगों को बांटकर शोषण कर रही है। जैसा कि 1909 के एक्ट से हिंदु-मुस्लिम के बीच खाई पैदा की थी। अत: भारत की एकता और अखंडता को रखने के लिए गांधी ने ब्रिटिश सरकार के सारे कपटपूर्ण नीतियों को कमजोर करने की कोशिश की जिससे भारतीय रा,ट्रवाद कमजोर हो सकता था।

4.गांधी का राष्ट्रवाद धर्म से प्रेरित होने के बावजूद पंथनिपेक्ष प्रकृति वाला था। यद्दापि गांधी की नजरों में भारत विभिन्न धर्मों, भाषाओं, पंथों तथा जातियों का देश था। फिर भी जब कभी भी संशेलेषण विश्लेषण व पारस्परिक अस्तित्व की बात आयी तो अनजाने ही वे हिंदुत्व की तरफ झुके नजर आये। गांधी द्वारा बार-बार धर्म की बात करने से उनके विचारों में थोड़ी अस्पष्टता और उलझन दिखाई देती है। धर्म के प्रति उनका दृष्टिकोण बहुत ही व्यापक था, वे धर्म में मिले तमाम रूढ़ियों, रिवाजों और अंधविश्वासों को तोड़ना चाहते थे।[13] वे धर्म को व्यक्तिगत मानतेथे जहां लोग अपने दैनिक जीवन के क्रियाकलापों की शुद्धता पर ध्यान देता तो। इसी प्रकार राष्ट्र के संदर्भ में भी उनकी प्रवृति धर्मनिरपेक्ष थी। गांधी के धार्मिक विचारों के संदर्भ में विद्वानों

ने अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किये। एम.एन. राय प्रारंभ में गांधी द्वारा 'राजनीतिक व धर्म के घालमेल' के कट्टर आलोचक थे लेकिन बाद में उन्होंने समझा कि गांधी के धार्मिक विचारों की जड़ नैतिक, मानवतावादी तता वैश्विक थी तथा उनमें किसी व्यक्ति, पंथ, धर्म, समाज, या राष्ट्र के पआति उनके मन में लेशमात्र भी दुराग्रह नहीं था।[14] गांधी द्वारा हिंद स्वराज लिखे जाने के समय यह बात बहस का मुद्दा थी कि भारत की राष्ट्र के रूप में स्थापना धार्मिक आधार पर संभव है या नहीं। इस किताब में उन्होंने राष्ट्र शब्द के लिए प्रजा शब्द का इस्तेमाल किया। उनका विश्वास था कि प्रजा नीमक शब्द से भारत में एक साझे संस्कृति का निर्माण होगा।[15] उन्होंने हिंद स्वराज में 'प्रजा' पर आधारित उदार राष्ट्रवाद को अपनाने पर बल दिया। उन्होंने लोगों का आव्हान किया और धर्म को धर्मांधता की बुराई से मुक्त कराने और प्रेम तथा आध्यात्म पर आधारित धर्म पर जोर दिया तथा उन्होंने बताया कि प्रेम तथा आध्यात्म धर्म की रास्ता सुगम व आसान होता है। इस प्रकार उन्होंने कहा कि सभी संगठित धर्म की अपनी वाधता होती है। इसका मतलब यह है कि सभी धर्मों को एक-दूसरे के प्रति सहनशीलता व सम्मान अपनाना चाहिए। यद्यापि गांधी का झुकाव हिंदुत्व के प्रति था, पर उनका दृष्टिकोण बहुत ही व्यापक था। इसमें की

शक नहीं कि गांधी धर्म-निरपेक्ष तथा धार्मिक आदर्शों के प्रति समर्पित ही नहीं बल्कि इसको अपनाने में अग्रदूत की भूमिका निभाई। वे साम्प्रदायिक मतबेदों को आपसी मेल-जोल के साथ हल करना चाहते थे, जिसमें समुदायों की भागीदारी अनिवार्य थी।[16] वे एक ऐसे राष्ट्रवाद का निर्माण करना चाहते थे जिसकी बुनियाद सद्भावना, सहअस्तित्व तथा समन्वय पर आधारित थी न कि समावेशीकरण, सम्मिश्रण तथा संयोजन पर।[17] कुछ विद्वानों का मत यहां तक है कि अंतिम दिनों में उनका धार्मिक बहुलतावाद की सीमा 'बहुल' हिंदुत्व से आगे जाकर बहुधर्मी तानों-बानों में गुंथ गई थी तथा उनके धार्मिक विचारों व दर्शन का स्वरूप पूर्णत: वैश्विक हो गया था।[18]

5.गांधीवादी राष्ट्रवाद में अंतर्राष्ट्रीयतावादी पुट था। उनका मानना था कि दोनों का सह-अस्तित्व मुमकिन है। इसका कारण था कि वे राज्य व राष्ट्र को एक-दूसरे से पृथक मानते थे। उनके अनुसार राष्ट्र ऐसे व्यक्तियों का आर्थपूर्ण सम्मिलित स्वरूप है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपनी अंत:शक्तियों से परिचालित होकर एक साझे लक्ष्य को पाने के लिए प्रयत्नशील रहता है। पर राज्य एक मशीनी व्यवस्था है जो राष्ट्र पर थोप दी जाती है। गांधी की नजरों में राष्ट्र रचनात्मकता और

जीवंतता का एक रूप है तो राज्य रूढियों और परंपराओँ का एक आदर्श रूप।[19]

गांधी इस बात को सुनिश्चित करना चाहते थे कि राष्ट्र के सामाजिक सरोकारों पर राज्य के काले बादल न छा जाएं। वे इस बात से डरते थे कि राष्ट्र का भाग्य तथाकथित नियंत्रक के रूप में राज्य द्वारा निष्क्रिय न कर दिया जाए।[20] यद्यापि गांधी ने जिन्ना जैसे प्रतिक्रियावादियों द्वारा बाध्य किये जाने के अपवाद के अलावा 'राष्ट्र' शब्द का इस्तेमाल विरले ही किया। यहां पर उन्होंने इस बात का भी जिक्र किया कि भारत सिर्फ कुछ समुदायों का बहुरंगा समूह नहीं वरन् यह एक ऐसा राष्ट्र है जहां लोगों की आकांक्षाएं व आशाएं साझे हित से प्रेरित हैं तथा जिसकी प्रताबद्धता एक आध्यात्मिक सभ्यता की खोज व निर्माण की विकास है। इस संदर्भ में 'भीखू पारिख' का कथन उल्लेखनीय है कि उन्होंने राष्ट्रवाद शब्द का प्रयोग देश प्रेम के रूप में किया। अधिकार जगहों पर उन्होंने सामूहिक गौरव, पैतृक निष्ठा, पारस्परिक उत्तरदायित्व तथा बौद्धिक व नैतिक खुलेपन को अधिक बेहतर व अनुकूल माना।[21] अत: राष्ट्रवाद के विचार को अंतर्राष्ट्रीयवाद के पूरक के रूप में समजा जा सकता है। जैसे कि उन्होंने खुद कहा- किसी के लिए यह असम्बव हा कि वह राष्ट्रवादी बने बिना

अंतर्राष्ट्रीयवादी बन जाए। अंर्तराष्ट्रीयवाद तभी संभव है जब राष्ट्रवाद की अनुभूति कर ली जाये। राष्ट्रवाद के संकीर्णता, स्वार्थपरता तथा विशिष्टता के ,चश्मे से देखना पाप है तथा आधुनिक राष्ट्रवाद की अवधारणा पर यह कलंक है। आदुनिकता की इस चकाचौंध में प्रत्येक व्यक्ति एक-दूसरे को पछाड़कर या गिराकर आगे बढ़ना चाहता है। यह अपने आपको इस ढंग से परिपूर्ण करना चाहता है जो सम्पूर्ण मानवता के पक्ष में खड़ा हो सके।[22]

6.गांधी समुदायवादी रुख के अलावा बहुलता व सम्मिश्रण सरोकारों में अधिक विश्वास रखते थे। यह बात उस समय और अधिक स्पष्ट हुई जब जिन्ना ने मुस्लिम साम्प्रदायिकता के आधार पर अलग राष्ट्र की मांग की तो इस पर गाधी का विचार था कि यूरोपीय राष्ट्रों की तरह भारत की राष्ट्रीयता को परिभाषित करना उचित नहीं है। वे भारत को एक ऐसी सभ्यता का देश मानते थे जहां विभिन्न सम्प्रदाय, जाति व समुदाय के लोग आपसी समझ व सहनशीलता के साथ वर्षों से रहते आ रहे हैं। यह समुदायों का एक ऐसा समुदाय है जहां प्रत्येक अपने कर्म, विचार व दर्शन के लिए स्वतंत्र है पर प्रत्येक का भाग्य एक साझे संस्कृति पर आधारित है। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि भारतीय मुस्लिम सिर्फ क्षेत्रीय दायरे में ही भारतीय नहीं हैं, बल्कि सांस्कृतिक

रूप से भी वे पूर्णत: भारतीय हैं तथा हिन्दुओं के साथ-साथ वे भारतीय सभ्यता के साझे के भागीदारी हैं।[23] यद्यपि अन्य समुदायों की तरह उनका अपने विशिष्ट रीति-रिवाज हो सकते हैं। पर वे राष्ट्र के भीतर किसी तरह से शांति या सहअस्तित्व में बाधक नहीं हैं। उनकी नजर में भारत ही एक ऐसी हस्ती थी जिसकी सामाजिक व सांस्कृतिक विशिष्टताएं पूरे भारत में एक समान थी। सो विभिन्न समुदायों के बजाय सभ्यता की बात करते हुए गांधी ने एक ऐसे भारतीय राष्ट्रवाद के निर्माण की कोशिश की जिसकी बुनियाद बहुलता तथा समरसता पर आधारित हो, जो विविधताओं व विभिन्नताओं का न केवल सम्मान करता हो बल्कि उसके प्रति उत्साह, उमंग और जीवंतता भी रखता हो। वे एक ऐसे वातावरण की रचना करना चाहते थे जहां संस्कृतियों व समुदायों मं आपसी मेल-जोल हो। इस प्रकार गांधी का राष्ट्रवाद मानवतावाद पर आधारित था। चूंकि गांधी समुदाय को व्यक्तियों का समूह मानते थे, सो उनकी नजर में आपसी झगड़ों पर निपटारा उसी तरह होना चाहिए जैसे परिवार के सदस्यों के बीच होता है।

7. राष्ट्रवाद का उनका सिद्धांत जन आधारित था यही कारण रहा कि भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में गांधी के आगमन के बाद एक नवीन

किस्म के राष्ट्रवाद का जन्म हुआ। गांधी के आगमन ने राष्ट्रवादी आंदोलन को एक नई दिशा व दृष्टि दी इससे आंदोलन का स्वरूप बहुजन व बहु वर्ग आधारित हो गया। अपने देशी गतिविधियों के कारण इसने एक अलग पहचान बनाई। गांधी युग के पूर्व सामाजिक स्तर पर राजनीतिक जागरण कुछ चंद ऊंचे तबकों तक ही सीमित नहीं था बल्कि निजी हित साधने का एक जरिया भी बन चुका था। औपनिवेशिक शासन के लिए यह परिस्थिति अनुकूल थी। इसका परिणाम यह हुआ कि समाज वर्गों के आधार पर बंटता चला गया और दूसरी ओर साम्प्रदायिक विभाजन भी इसी का परिणाम था। लेकिन गांधी ने चंपारण, खेडा, बारदोली जैसे दूर-दराज क्षेत्रों में अपना प्रयोग कर आंदोलन को लोगों से जोड़ा और देशव्यापी जन आंदोलन जैसे असहयोग, खिलाफत, सविनय अवज्ञा आंदोलन से लोगों को जोड़ा। भारत छोड़ो जैसे अत्यंत प्रभावी आंदोलनों के द्वारा देश के कोने-कोने में हर वर्ग और समुदायों के बीच अपनी बात पहुंचाई तथा साझे लक्ष्य से प्रेरित कर राष्ट्रीय आंदोलन में उनकी सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित की और इस तरह प्रथम विश्वयुद्ध के समय तक जो आंदोलन कुछ खास लोगों तक सीमित था। उसने हिंदुस्तान के जनमानस को आंदोलित, स्पंदित व सक्रिय कर दिया।[24]

यह वही समय था जब कांग्रेस पर गांधी की पकड़ मजबूत थी इसलिए इस समय कांग्रेस के सभी प्रयासों में गांधीवादी विचारधारा की प्रमुख व निर्णायक भूमिका थी। कांग्रेस के सभी कार्यक्रम 'व्यावहारिकता व अध्यात्मिकता' पर आधारित थे। इस परिप्रेक्ष्य में विपिन चन्द्र का यह कथन उल्लेखनीय है कि उपनिवेश विरोधी विचारधारा के साथ-साथ स्वतंत्रता, समानता, लोकतंत्र, धर्मनिरपेक्षता, सामाजिकता, आर्थिक विकास, स्वतंत्र व संयुक्त राजनीति तथा गरीबोन्मुखी विचारों की प्रेरणा ने कांग्रेस की दशा व दिशा बदल दी तथा वह इस बात में सक्षम व समर्थ हुई कि वह राष्ट्रीय आंदोलन को लोकप्रिय जन आंदोलन का रूप प्रदान कर सके।[25]

यद्यपि गांधी इस बात को भलीभांति जानते थे कि इस तरह के आंदोलन का भविष्य लंबा नहीं है तथा उसे लंबे समय तक जारी नहीं रखा जा सकता। सो बीच-ची में उन्होंने विराम की नीति अपनाई जो आगे के आंदोलनों में इस नीति ने ऊर्जा भरने का काम किया। इस तरह गांधी ने संघर्ष-विराम-संघर्ष की नीति को अपना हथियार बनाया ताकि आंदोलन को लंबे समय तक कायम रखा जा सके।[26]

इस आंदोलन को व्यावहारिक स्वरूप प्रदान करने के लिए गांधी ने रचनात्मक कार्यक्रम के माध्यम से तेरह बिन्दुओं को तय किया।[27] इन

कार्यक्रमों में शामिल थे साम्प्रदायिक एकता, छूआछूत, उन्मूलन, मद्यनिषेध, शिक्षा, महिला सशक्तीकरण, स्वास्थ्य व सफाई, राष्ट्रभाषा के प्रति प्रेम तथा ट्रस्टीशिप के द्वारा आर्थिक समानता का प्रचार-प्रसार। लेकिन सलीनियस का यह मत है कि उपरोक्त कार्यक्रमों में केवल तीन हिन्दू-मुस्लिम एकता, छुआछूत उन्मूलन तथा खादी कार्यक्रम को व्यापक जनसमर्थन मिला।[28] खिलाफत आंदोलन के समय गांधी के प्रयासों से ही हिन्दू-मुस्लिम एकता परवान चढ़ी।

खादी कार्यक्रम और छुआछूत कार्यक3म मिशन के तौर पर चलाया गया। यद्यपि हिन्दू-मुस्लिम एकता को देश विभाजन से पूर्व भारतीय स्वतंत्रता के अंतिम दिनों में फिर से जिंदा किया गया। लेकिन सवाल उठता है कि क्या गांधी ने इसे जनआंदोलन का रूप दिया। इस पर विवाद है। लेकिन एक बात स्पष्ट है कि राष्ट्रवादी संघर्ष का अंतिम काल गांधीवादी विचारधारा की गिरफ्त में था। गांधीवादी राष्ट्रवाद एक व्यापक फलक का राष्ट्रवाद था जो संकुचति वा सांप्रदायिक दृष्टि से परे और सभी जातियों, दबे-कुचले व समाज के पिछड़े तबको को एक समान धरातल पर लाने की बात करता है। यह राष्ट्रवाद सामाजिक और आर्थिक खाइयों को पाटना चाहता था। धर्म-निरपेक्षता के प्रति उनके विचार पर विवाद की संभावना है। फिर भी धर्म आधारित

संकुचित विचारों से वे परे रहे हैं। उन्होंने धर्म को न केवल व्यक्तिगत दृष्टि से देखा बल्कि सांगठनिक स्तर पर भी गहरी पड़ताल की और साथ ही धर्म को काल्पनिक व वास्तविक तत्वों के बीच स्पष्ट सीमा रेखा निर्धारित की। यह सर्वविदित है कि वे हिन्दू धर्म से काफी प्रभावित थे पर किसी भी मायने में उनमें हठधर्मिता नाम की चीज देखने को नहीं मिलती। वे हिन्दू-मुस्लिम दोनों को समतामूलक दृष्टि से देखते थे। गांधी रूढ़वादी राष्ट्रवादी नहीं थे बल्कि उनकी विचारधारा अंतर्राष्ट्रीयवाद से अधिक प्रेरित थी। उनका राष्ट्रवाद मानवता पर आधारित था। उन्होंने साम्यवादी राष्ट्रवाद को कभी नहीं स्वीकार किया इसके बजाय वो लोक मानवतावाद के पक्षधर थे चूंकि भारतीय राष्ट्रवाद औपनिवेशिक विरोधी संघर्ष से प्रभावित था सो गांधी ने राष्ट्रवाद की इस अनुभूति को जन आंदोलन का रूप प्रदान किया। विशाल जनमानस को एक मंच पर लाने के लिए अहिंसक आंदोलनों का सहारा लिया तथा खुद भी उस जीवन को जीया। राष्ट्रीय एकता और अखंडता को कायम रखने के लिए बहुत सारे रचनात्मक कार्यक्रम लोगों के सामने रखे। अतः गांधीवादी राष्ट्रवाद को समझने के लिए यह जरूरी है कि उनके विचारों पर दर्शनों को समझें। वे अपने राष्ट्रवाद के

द्वारा न सिर्फ भारत की स्वतंत्रता चाहते थे बल्कि एकता और अखंडता को भी अक्षुण्ण रखना चाहते थे।

समालोचना

वैचारिक विसंगति तथ व्यवहारिक दृष्टि-दोनों संदर्भों को लेकर कई विद्धानों ने गांधीवादी दृष्टिकोण की समालोचना की है-

सर्वप्रथम गांधी की सर्वाधिक आलोचना राजनीति के साथ धर्म के घाल-मेल के कारण हुई है। राष्ट्रवाद के मुख्य एजेंडे की शुरुआत खिलाफत आंदोलन के साथ हुई। जब गांधी ने इस आंदोलन का पूर्ण समर्थन किया। लेकिन ऐसा विचार किया जाता है कि खिलाफत और असहयोग आंदोलन हिन्दू-मुस्लिम एकता से प्रेरित था। परन्तु सम्पूर्ण रूप से देखा जाये तो इन आंदोलनों ने राजनीति के संदर्भ में जनमानस को परिपक्व होने से रोका।[29] गांधी पर यह आरोप लगाया जाता है कि उन्होंने राजनीतिक विकास को गलत दिशा में खींचा क्योंकि गांधी कि हिंदू-मुस्लिम एकता की खोज राजनीति से धर्म व सम्प्रदाय आधारित मुद्दों पर केंद्रित थी।[30] इस कारण कुछ विद्वान गांधीवादी सोच को धर्मनिरपेक्ष नहीं मानते क्योंकि उन्होंने किसी न किसी रूप में राजनीति के साथ धर्म का घाल-मेल किया। यह भी कहा गया कि इसके

भयंकर परिणाम सामने आये जैसे सत्ता आधारित राजनीति को धर्म ने ढकने का काम किया और इसका परिणाम सामने आये जैसे सत्ता आधारित राजनीति को धर्म ने ढकने का काम किया और इसका परिणाम यह हुआ कि दोनों का क्षरण हुआ।[31] राजनीतिक गतिविधियों में धर्म के प्रयोग ने गांधी के धर्मनिरपेक्षता पर प्रश्न चिह्न लगा दिया।

आलोचना का दूसरा कारण यह है कि गांधी ने सभी धर्मों को सम्मान की दृष्टि से देखा। दूसरी तरफ तिलक, अरविन्द व सावरकर हिन्दुत्व को ही भारतीय एकता की बुनियाद मानते थे। इन सभी से अलग गांधी ने पूरे मन से भारत को एक धर्मनिरपेक्ष बहुलतावादी छवि को अपनाया। लेकिन जिन्ना के साथ हुई बहस में गांधी ने मुस्लिमों के लिए कुछ कठोर शब्दों का प्रयोग किया जैसे भूतपूर्व हिन्दू धर्मान्तरित, मूल रूप से हिन्दू आदि, परन्तु ये सारे शब्द वे भारतीय साझा संस्कृति के व्यापक संदर्भों में कहे थे। फिर भी कुछ विद्वाना का कहना है कि अपनी उदार, बहुल और व्यापक दृष्टि के बावजूद गांधी हिन्दुत्व के प्रति पूर्वाग्रह से ग्रसित थे। इस विषय पर भीखू पारिख का कहना है कि जब भी विश्लेषण या सहअस्तित्व की बात आती है तो गांधी अनजाने ही हिन्दुत्व के प्रति आकर्षित हो जाते हैं।[32] और यह समझा गया कि

'राष्ट्रीय समन्वय के प्रति गांधी का दृष्टिकोण मुख्यतौर पर साम्प्रदायिक था।'[33]

तीसरा कारण यह है कि गांधी भारत में हिंदुओं और मुसलमानों के बीच संबंधों का मूल्यांकन करने में असमर्थ थे। गांधी अपने जीवन के अंतिम क्षणों तक विश्वास करते रहे कि दोनों कौमों की साझ संस्कृति है, अत: इनके बीच खाई पैदा होने की कोई संभावना ही नहीं है। ब्रिटिश शासकों ने इन परिस्थितयों का फायदा उठाया और 'बांटो और राज करो ' की नीति का उपयोग कर अपना काम निकालते रहे। गांधी हिन्दु-मुस्लिम मतभेद में गहरी आर्थिक व ऐतिहासिक जड़ों को समझने में असमर्थ रहे। इसे मात्र वे संकुचित और असंवेदनशीलता की श्रेणी में रखते रहे। इसका कारण ही ये हो सकता है कि एक तो दक्षिण अफ्रीका का उनका अपना अनुभव या फिर वे भारत में चले आ रहे शताब्दियों से पुरानी मुस्लिम राज के प्रति गलत धारणा। लेकिन भारत के संदर्भों में दक्षिण अफ्रीका की समानताओं को तलाशना गांधी की गलती थी।[34] कुछ विद्‍वानों का कहना है कि हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रति गलत धारणा के कारण यह मुद्दा और अधिक व्यापक हो गया तथा अनुचित महत्व पा लिया। अलोसियस ने इस बात को रेखांकित किया है कि हिंदू-

मुस्लिम सांप्रदायिकता की समस्या पंजाब –बंगाल व संयुक्त प्रान्त के उन हिस्सों की क्षेत्रीय समस्या थी जहां मुस्लिम या तो बराबर की संख्या में थे या फिर बहुमत में थे।[35] यह भी आरोप लगा कि राजनीतिक व्यवस्था संख्या पर आधारित हो गई। हिंदू जाति अपनी राजनीतिक दासत्व को स्वीकार नहीं कर पाएंगी। गांधी ने इस समस्या को खत्म करने के बजाय और राष्ट्रव्यापी गूढ़ और जटिल कर दिया।[36]

चौथी आलोचन इस कारण होती है कि गांधी जन आंदोलनों का उपयोग सिर्फ प्रदर्शनकारी के रूप में करते थे वे जन आंदोलनों का मतलब सिर्फ मात्रा में देखना चाहते थे।[37] औपनिवेशिक सत्ता के खिलाफ जन आंदोलनों का कोई ठोस एजेन्डा न था। लोगों की भागीदारी का मतलब सिर्फ प्रदर्शन भर था। प्रदर्शनकारियों की भूमिका सिर्फ पीछे-पीछे चलना मात्र था। उनकी भूमिका नाममात्र की होती थी।[38] मार्क्सवादी दृष्टिकोण में उपनिवेशवाद विरोधी आंदोलन में जन भागीदारी का एजेंडा मुख्य रूप से सामंत विरोधी था। लेकिन उपनिवेश विरोधी आंदोलन की प्रकृति संदेहपूर्ण थी। गांधीवादी जान आंदोलन अपनी समस्तर प्रकृति के बजाय सीधा खड़ा था। संरचनात्मक रूप से यह एक वर्गीय ढांचा था, क्योंकि

इसमें सिर्फ समाज के निचले वर्गों की भागीदारी को महत्व दिया जाता था। इसका कारण यह हो सकता है कि गांधी के एजेंडे में पहले राष्ट्र की आजादी थी फिर सामाजिक बदलाव। उनके सम्पूर्ण राजनीतिक विचारों की तह में जाते हुए ऐसा पता चलता है कि जनआंदोलनों के द्वारा वे राजनीतिक लक्ष्य को पाना चाहते थे न कि अपने कार्य को आगे बढ़ाना चाहते थे।

पांचवा कारण यह है कि छुआछूत उन्मूलन तथा हरिजन उत्थान भी गांधीवादी कार्यक्रम में पूर्णतः शामिल नहीं था।[39] हालांकि गांधी ने इसे पूरे जोश क साथ उठाया पर स्वतंत्रता प्राप्ति के लक्ष्य में इसकी गति धीमी हो चुकी थी। कुछ विद्वानों का आरोप है कि वे आश्रम में जनजातीय परिवार को अपनाया लेकिन वित्तीय मददकर्ताओं के दबाव में वे तुरंत झुक गए तथा उस परिवार को आश्रम से अलविदा कह दिया।[40] कुछ आलोचकों का यह भी मत है कि हरिजन संघ की स्थापना समाज में हरिजनों के उत्थान के लिए नहीं बल्कि एक एजेंसी के रूप में की गई थी।[41] मंदिर प्रवेश के मुद्दे पर अम्बेडकर ने यह महसूस किया था कि गांधी का रुख बेहद अनिच्छा भरा और आधे-अधूरे वाला था।[42] इसी दोहरे रुख के कारण दलितों मे पृथक राजनीतिक प्रतिनिधित्व की मांग शुरु हो गई थी। साइमन कमीशन

तथा गोलमेज कांफ्रेंस में उठाई गई मांग इस सोच की ओर संकेत करती है। यहां पर भी गांधी ने इस मांग को रोकने के लिए आमरण अनशन शुरू कर दिया। पर इस मुद्दे पर गांधी द्वारा की गई कार्यवाही को स्वतंत्रता प्राप्ति के दृष्टिकोण से उचित ठहराया जा सकता है। लेकिन इसने समाज में उच्च व निम्म वर्गों के बीच मनमुटाव का बीज बो दिया। राष्ट्रीय एकता कायम करने के बजाय गांधीवादी कार्यक्रमों ने बहुत हद तक जातीय मनमुटाव स्थापित किया। इन सारे तथ्यों ने राष्ट्रीय आंदोलन के समय दोनों वर्गों की मानसिकता को बहुत हद तक प्रभावित किया। ये सारी आलोचनाएं कई स्तरों पर विसंगतिपूर्ण और अतिश्योक्तिपूर्ण हो सकती है क्योंकि गांधी के विचारों में समय-समय पर परिवर्तन होते रहे। उनके संघर्ष को स्वतंत्रता प्राप्ति के ढांचे में रखकर व्यापक दृष्टिकोण के साथ देखने की आवश्यकता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के उद्देश्य ने कभी-कभी बहुत सार मुद्दे को मुख्य धारा में रखा तो बहुत सारे को गौण। यदि व्यापक दृष्टिकोण से देखा जाए तो धर्म के मामल मे गांधी का सिद्धांत बहुत ही उदार, व्यापक और धर्मनिरपेक्ष था। इसमें कोई संदेह नहीं कि वे हिंदू धर्म के प्रति ज्यादा सहज और

उदार थे। फिर भी कुछ ऐसी चीजें थीं जो उनको हमेशा मथती थीं जैसे हिंदू-मुस्लिम एकता।

देश की आजादी ही उनके सारे लक्ष्यों में एक सर्वोच्च लक्ष्य था और इसी को पाने के लिए वे कई मुद्दों पर समझौते करते रहे। यह मानना विद्वानों की सर्वथा भूल है। गांधी कभी भी अपने सार्वजनिक जीवन में सार्वभौमिक मूल्यों एंव सिद्धांतों से कभी समझौता नहीं किया। गांधी ने तो स्वयं यह कहा कि जब कभी मेरे विचारों में द्वंद लगे या अंतर विरोध लगे तो बाद में कहे हुए को आप स्वीकार करें। गांधी सत्य के साथ प्रयोग कर रहे थे और सत्य के प्रयोग में अंतिम कोई पड़ाव नहीं होता। गांधी का राष्ट्रवाद प्रजा के हितों की रक्षा करता है। गांधी के राष्ट्र का अर्थ ही था प्रजा। गांधी का राष्ट्रवाद प्रजा उन्मुखी था।

निष्कर्ष

गांधी का राष्ट्रवाद एक स्पष्ट रूपरेखा हमारे सामने प्रस्तुत करता है। गांधी का राष्ट्रवाद समुदाय, जाति और अन्य कुंठित विचारधाराओं से ऊपर था। राष्ट्र के संदर्भ में भी वे एक विशेष क्षेत्र से बंधे हुए नहीं थे, बल्कि उनका राष्ट्रवाद अंतर-राष्ट्रवाद का

समर्थक था और इस संदर्भ में वे एक-दूसरे के पूरक मानते हैं। धर्मनिरपेक्षता के संदर्भ में उनकी सोच व्यापक थी। वे मुस्लिम को भारतीय सभ्यता से अलग स्वतंत्र समुदाय के रूप में मानने से इनकार करत थे। साथ ही उन्होंने खिलाफत आंदोलन के समर्थन के औचित्य को ढूंढना सही नहीं समझा। उन्होंने धर्म का प्रयोग राजनीति में उचित नहीं समझा क्योंकि यह अलग मुस्लिम राज्य का मार्ग प्रशस्त कर सकता था। इस तरह की सोच को कुछ विद्‌वानों ने अंतरविरोध माना और यह कहा कि वे दक्षिण अफ्रीका में मुस्लिम सहयोग को सही नहीं मानते थे। और कुछ विद्वानों ने यह माना कि यह गांधी के विचारों में बदलावके कारण हुआ। कुछ भी हो गांधी का अंतिम लक्ष्य भारत की स्वतंत्रता थी और इसके लिए वे व्यापक जन आंदोलनों में उनकी सफलता मिली। उनके विचारों में जो विरोधाभास हो पर इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि उन्होंने भारत जैसी विविधपूर्ण सामाजिक, राजनीतिक परिस्थितियों वाले देश को एकसूत्र में बांधने का प्रयत्न किया।

निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि गांधी ने राष्ट्रवाद की व्याख्या भारतीय सभ्यता के व्यापक संदर्भों में की

थी। गांधी का दर्शन सभ्यता मूलक है- उसी संदर्भ में राष्ट्रवाद एंव उसके विकास की यात्रा को देखना चाहिए।

संदर्भ

1. हैंस कोन, “नेशनलिज्म” इंटरनेशनल एनसाइक्लोपीडिया ऑफ सोशल साइन्सेस शिकागो, 1976, वॉल्यूम II.

2. वही, पृ.63, ‘द एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका’ भी देखें, शिकागो 1987, वॉल्यूम 8, पृ. 552।

3. ई.एच.कार, नेशनलिज्म, 1939, पृ.XX ।

4. वही।

5. अलयोसिस, नेशनलिज्म विदाउट ए नेशन इन इंडिया, दिल्ली, ऑक्सफोर्ड, 1997।

6. प्रमुख कैम्ब्रिज इतिहासकारों में शामिल हैं-पर्सिवल स्पीयर, डंकन फोर्ब्स, जॉन गैलगर, सी.ए.बेयली, गुडिय ब्राउन, फ्रैन्सिस रॉबिन्सन, अनिल सियल, रिचर्ड गोर्डन, डेविड वाश ब्रूक, सी.जे. बेकर, सर वेलन्टाइन चिरोल आदि। विस्तार के लिए देखें

वी.एन.दत्ता, “इंटरप्रेटिंग इंडियन नेशनलिज्म”, भारतीय इतिहास कांग्रेस, बोध गया, 1981, पृ. 15-22 (आधुनिक भारत के 42वीं बैठक का अध्यक्षीय भाषण)।

7. जॉन ब्रेयुली, नेशनलिज्म एण्ड दी स्टेट, मानचेस्चर, 1982, पृ.1 ।

8.आर.एस. यादव, “गांधीयन परस्पेक्टिव ऑन इंडियन नेशनलिज्म”, जर्नल ऑफ गांधीयन स्टडीज, वॉल्यूम 3, नं. 3, 2005, पृ.1-15 ।

1. एंथोनी जे. परेल, से, गांधी-हिन्द स्वराज एण्ड अदर राइटिंग्स, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, लंदन, 1997, पृ. XXI ।

2. डेविड हार्डिमैन, गांधी इन हिज टाइम एण्ड आवर्स, नई दिल्ली, 2003, पृ.12-38।

3. रविन्दर कुमार, “कास्ट, कम्यूनिटी और नेशन ? गांधीज क्वेस्ट फॉर ए पॉपुलर कन्सेन्सश इन इंडिया “, सं. एसेंज इन द सोशल हिस्ट्री ऑफ मार्डन इंडिया, नई दिल्ली, 1983, पृ.51।

4. एम.के. गांधी, हिंन्द स्वराज, सी.डब्ल्यू.एस.जी. , वाल्यूम 10, पृ. 290।

5. भीखू पारिख, ‘गांधीज पॉलिटिकल फिलॉस्पी: ए क्रिटिकल एग्जामिनेशन ‘ , दिल्ली, अर्जता, 1995, पृ.189 ।

6. देखें, डेनिश डाल्टन “गांधी एण्ड रॉय: इन्टरएक्शन ऑफ आइडियोलोजीज इन इंडिया”, शिवनारायण रॉय से, गांधी, इंडिया एण्ड वर्ल्ड, मेलबोर्न, 1970, पृ. 166, बी आर नंदा से उद्धत, गांधी एण्ड हिज क्रिटिक्स, दिल्ली, ओ.पी.वी., 1998, पृ.75, इसे भी देखें, लूई फिशर, लाइफ ऑफ महात्मा गांधी, लंदन, 1951, पृ. 430।

7. परेल, नं. 9, पृ. LIII ।

8. देवदत्त, “इंडियन नेशनलिज्म एण्ड गांधी”, गांधी मार्ग, 13 (3) जुलाई 1969।

9. हरिजन, 5 अक्टूबर, 1947।

10. विस्तार के लिए देखें, कुमकुम संगारी, “नैरेटिव ऑफ रेस्टोरेशन:गांधीज लास्ट ईयर्स एण्ड नेहरूवियन सेकुलरिज्म”, सोशल साइन्टिस्ट, वॉल्यूम 30, नं. 3-4, मार्च

11. नलिन अनादक्त, इन्टरनेशनल पॉलिटिकल थॉट ऑफ गांधी, नेहरू एण्ड लोहिया, नई दिल्ली, भारतीय कला, 2000, पृ.53।

12. विस्तार के लिए देखिए, आर. चक्रवर्ती, “गांधीयन वियू ऑफ दी नेशन स्टेट एज ए कान्सटीट्यूट ऑफ इंटरनेशनल कम्युनिटी”, वी.टी. पाटिल में, सं. स्टडी इन गांधी, नई दिल्ली, स्टर्लिंग, 1982, पृ.155-162।

13. पारिख, नं. 13, पृ.194।

14. यंग इंडिया, 18 जून 1923, एम.के. गांधी के, इंडिया ऑफ माई ड्रीम, अहमदाबाद, नवजीवन 2003, पृ.14 (आर.के. प्रभु द्वारा सं.) से उद्धत।

15. परेल, नं. 9, पृ.XVI।

16. अलयोसियस, नं. 5, पृ.201-202।

17. विपिन चन्द्र, इण्डियन नेशनल मूवमेंट: दी लांग टर्म डायनामिक्स, नई दिल्ली, विकास, 1988, पृ.14-15।

18. वही, पृ.28-29।

19. एम.के.गांधी, कन्सट्रक्टिव प्रोग्राम: इट्स मिनिंग एण्ड प्लेस, अहमदाबाद, नवजीवन, 1941।

20. अलयोसियस, नं.5, पृ.1988।

21. वही, पृ. 184।

22. एस.नटराजन, ए सेंचुरी ऑफ सोशल रिफार्म, बांबे, एशिया 1959, पृ. 133, धनंजय कीर, महात्मा गांधी बाम्बे, पॉपुलर, 1073, पृ. 312 और रविन्दर कुमार, नेशनलिज्म एण्ड सोशल चेंज, नई दिल्ली, एन.एम.एम.एल., 1983, पृ.28 (अनियमित अखबार)।

23. अरविन्द एन.दास, एग्रेरियन अनरेस्ट एण्ड सोशियो इकोनोमिक चेंज इन बिहार, 1900-1980, दिल्ली, मनोहर, 1983, पृ. 90-100।

24. पारिख, नं. 13, पृ. 189 (महत्व जोड़ा गया)।

25. अलयोसिस, नं. 5, पृ. 101।

26. पारिख, नं. 13, पृ. 185-188।

27. अलयोसिस, नं. 5, पृ. 151।

28. विस्तार के लिए देखें, सशाधर सिन्हा, इण्डियन इंडिपेंडेंस इन पर्सपेक्टिव, बाम्बे, एशिया, 1963, पृ. 150, ff. एण्ड वी.बी. मिश्रा, दी इंडियन पोलिटिकल पोएटिक्स, दिल्ली, ऑक्सफोर्ड, 1976, पृ. 162 तथा 250-251।

29. जुडिस ब्राउन, गांधीज राइज टू पॉवर, लंदन, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1972, पृ. 345।

30. सुनिति कुमार घोष, इण्डिया एण्ड दी राज, कलकत्ता, प्राची, 1989, पृ.23 तथा 210, सिन्हा, नं. 36, पृ. 158 & 161, जुडिस ब्राउन, गांधी एण्ड सिविल डिसओबिडियेन्स, कैम्ब्रिज, 1977, पृ. 540, विपिन चंद्रा, नेशनलिज्म एण्ड कोलोनिलिज्म इन मार्डन इंडिया, दिल्ली, ओरियन्ट लॉगमैन, 1979, पृ.128 और भीखू पारिख, कॉलोनिलिज्म, ट्रेडिशन एण्ड रिफॉर्म , नई दिल्ली, सेज, पृ. 211।

31. अलयोसिस, नं. 5, पृ. 15।

32. कोर, नं. 30, पृ. 224-89।

33. बी.आर. अम्बेडकर, व्हाट कांग्रेस एण्ड गांधी हैव इन टू अनटचेबल्स, बाम्बे, ठक्कर एण्ड कं., 1945, पृ.143, ब्राउन, नं. 38, पृ.351 और स्वाति श्रधानन, एट ई.ए., इनसाइड कांग्रेस, बाम्बे, फोनिक्स, 1946, पृ. 190।

34. अम्बेडकर, वही, पृ. 107 तथा 125।

अध्याय-11
रचनात्मक कार्यक्रम

परिचय

1909 में हिंद स्वराज में महात्मा गांधी ने व्यक्तिगत स्वतंत्रता और विकास का नया दर्शन बताया, जो राजनीतिक स्वतंत्रता के लिए भी आवश्यक था। गांधी एक पेशेवर दार्शनिक नहीं थे - उनकी खास बात ये थी की वे तब तक किसी विचार को आम जनमानस के बीच नहीं रखते थे जब तक की उस विचार का व्यवहारिक जीवन में प्रयोग संभव न हो। इसलिए उन्होंने देशवासियों को प्रोत्साहित करने के लिए रचनात्मक कार्यक्रम उनके सामने रखे। ये कार्य एक स्वतंत्र देश में सरकार को करना चाहिए। ये सभी कार्यक्रम एक दूसरे से संबंधित थे और व्यक्ति के पूर्ण विकास, साथ ही उनमें आत्म निर्भरता और आत्म विश्वास बढ़ाने के लिए रास्ते सुझाए ताकि आजादी के बाद आम जनता सरकार को सही तरीके से उसके कर्तव्य पालन के लिए दबाव बना सके।

सत्य और अहिंसा के माध्यम से पूर्ण स्वराज्य और पूर्ण स्वतंत्रता हासिल करने का रचनात्मक कार्यक्रम को एक उपक्रम के रूप में देखा जा सकता है।[1]

हिंसा के रास्ते से आजादी की लड़ाई लड़ना दुखदायी है। वर्तमान समय में जो युद्ध हो रहे हैं उसमें प्रतिदिन सम्पति' जीवन और सत्य सबकुछ नष्ट हो रहा है।[2] रचनात्मक कार्यक्रम का प्राथमिक उद्देश्य कार्यकर्ताओं की उत्पादन में उनकी हिस्सेदारी को सुनिश्चित करना है।[3]

दृढ़ निश्चित रचनात्मक कार्यक्रम के लिए- अच्छी तैयारी तथा अहिंसा की अभिव्यक्ति जरूरी है। अगर कोई ये सोचता है कि समय आने पर रचनात्कम कार्यक्रम के बिना वह अहिंसा की ताकत दिखा सकता है तो वह समय आने पर ऐसा करने में असफल हो सकता है। यह बिल्कुल वैसा ही होगा जैसे कोई भूखा, निहत्था आदमी अपनी ताकत अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित सैनिकों को दिखा रहा है। जिसमें हार सुनिश्चित है।[4]जो व्यक्ति रचनात्मक कार्यक्रम में विश्वास नहीं करता है वह मेरी राय में करोड़ों भूखे लोगों की भावना को नहीं समझ सकता है और अहिंसा के रास्ते से लड़ाई नहीं लड़ सकता है।[5] रचनात्मक कार्यक्रम को व्याहरिक रूप में प्रयोग में लाना स्वराज से कहीं बढ़ कर है। ये रामराज, खुदाई सुल्ताना या दैविक राज्य जैसा है। मैं ऐसे राज्य के लिए लालायित हूं। मेरा भगवान आसमान में नहीं है उसे धरती में महसूस किया जा सकता है वह यहाँ है तुम्हारे भीतर मेरे भीतर, वह सर्वशक्तिमान और सर्वव्यापी है। यदि हम अपने कर्तव्य का सही तरीके से पालन तो दुनिया से हट कर सोचने कि जरूरत नहीं। सब कुछ अपने आप ठीक हो जाएगा।[6]

रचनात्मक कार्यक्रम आम आदमी की निजी जिंदगी और सार्वजनिक जिंदगी दोनों की कमियों को ठीक कर मानव और समाज दोनों का पुर्निर्माण करता है। यह सामाजिक सेवा से अलग है यह केवल लोगों को परेशानियों से निजात ही नहीं दिलाता है बल्कि परेशानियों को उत्पन्न होने से रोकता है। यह पूरी तरह से नैतिक कार्रवाई है जो लोगों में नैतिकता को बढ़ावा देती है। इसे प्रलोभन या डर से जोड़कर कर नहीं

देखा जा सकता है यह अहिंसा का रूप है। गांधी ने राचनात्मक कार्यक्रम को स्वराज प्राप्ति के लिए अनिवार्य बताया है।[7]

गांधी ने रचनात्मक कार्यक्रम का प्रारंभ सामाजिक तथा आर्थिक जीवन को पीढ़ी दर पीढ़ी बेहतरी बनाने के लिए किया था। रचनात्मक कार्यक्रम लंबी अवधि कि अहिंसक आत्म शासन के एक प्रणाली की पूर्वापेक्षा है। जिसके बिना राजनीतिक सत्ता या औपचारिक स्वतंत्रता सिर्फ दिखावा साबित होगी। रचनात्मक कार्यक्रम में विभिन्न धार्मिक समुदायों के बीच एकता व्यक्तिगत और सामूहिक प्रयास॰ अस्पृश्यता जैसे सामाजिक बुराई को हटाने॰ ग्रामीण शिक्षा, पुनर्निर्माण के कार्यक्रम, उत्पादन और वितरण के विकेन्द्रीकरण, स्वास्थ्य॰ स्वच्छता॰ हस्तशिल्प और आहार में सुधार की योजनाओं को बढ़ावा देना शामिल है।

रचनात्मक कार्यक्रम महात्मा गांधी के 1920 सत्याग्रह आंदोलनों का एक अभिन्न और सकारात्मक पहलू था। यह जनता के बीच आर्थिक आत्मनिर्भरता और स्वदेशी भावना को बढ़ावा देने के लिए अपनाया गया था। यह सांप्रदायिक सद्भाव को बढ़ाने और बेरोजगारी॰ निरक्षरता और अस्पृश्यता जैसी सामाजिक बुराइयों को हटाने के लिए नियोजित किया गया था। यह भारत में ब्रिटिश शासन के साथ असहयोग के लिए अपनाया गया था। यह सरकारी संस्थानों की जगह स्वैच्छिक सार्वजनिक संस्थानों को अपनाने के लिए किया गया था। जिसका उद्देश्य संपूर्ण रूप से असहयोग करना था।

रचनात्मक कार्यग्रम सत्याग्रह के एक उपक्रम के रूप में महात्मा गांधी द्वारा पहली बार 1920 के अहिंसक, असहयोग आंदोलन के रूप में अपनाया गया। इस आंदोलन के दौरान राष्ट्रीय स्कूलों ,संस्थाओं' अदालतों और पंचायतों की स्थापना की गई। और चरखा पर कताई प्रारंभ किय गया जिसका उद्देश्य सरकारी स्कूलों और कॉलेजों' कानून अदालतों और विदेशी माल का पूरी तरह से बहिष्कार करना था।

कताई और सामाजिक कल्याण की गतिविधियों 1928 के बारडोली सत्याग्रह के दौरानर की गई। जिसका उद्देश्य खादी कार्यक्रमों को जारी रखना था। यहां तक कि 1930 के नमक सत्याग्रह के दौरान भी हाथ से बुने हुए कपड़े तथा आत्म निर्भरता का काम स्वराज प्राप्त करने के एक तरीके के रूप में किया गया था।

हालांकि' पूरी स्वतंत्रता प्राप्त करने की एक निश्चित पद्धति के रूप में रचनात्मक कार्यक्रम व्यक्तिगत सत्याग्रह, दिसंबर 1941 के बाद स्पष्ट और पूर्ण रूप से स्थान प्राप्त कर सका। इसी अवधि के दौरान गांधी जी ने अपने रचनात्मक कार्यक्रम के पूरे दर्शन को 25 पृष्ठ की एक पुस्तिका के रूप में प्रकाशित किया। यह सेवाग्राम से बारडोली की यात्रा के दौरान ट्रेन में गांधी द्वारा लिखी गई। 15 फरवरी 1945 को गांधी कस्तूरबा निधि कार्यकर्ताओं को संबोधित किया। रचनात्मक कार्यक्रम पुस्तिका में वर्णित तेरह विषयों के अलावा कुछ और विषय जोड़े गए।

महात्मा गांधी के अनुसार रचनात्मक कार्यक्रम बह्त नीचे से राष्ट्र का निर्माण करने की एक योजना है।... यह हर मायने में अभिव्यक्ति की

पूर्ण स्वतंत्रता का द्योतक है। वास्तव में रचनात्मक कार्यक्रम एक अहिंसात्मक कार्यक्रमों के द्वारा स्वतंत्रता प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त करता है। रचनात्मक कार्यक्रम केवल औपनिवेशिक शासन के खिलाफ एक अहिंसक संघर्ष का एक सामरिक साधन ही नहीं था बल्कि व्यक्ति को स्वालंबी और आत्मनिर्भर बनाने का कार्यक्रम था। बिना आत्मनिर्भरता व स्वाभिमान के स्वाधीनता आ ही नहीं सकती।

1931 में गांधीजी ने लिखते हैं "मेरा सामाजिक सुधार के कार्य किसी भी मायने में राजनीतिक काम करने से कम नहीं है। जब मैंने देखा कि एक निश्चित सीमा तक मेरा सामाजिक कार्य राजनीतिक काम की मदद के बिना असंभव होगा मेरा सामाजिक कार्य या आत्म सुधार का काम राजनीतिक तुलना में सौ गुना मुझे प्यारा है" इसलिए गांधी रचनात्मक कार्यक्रम गांधीजी के स्वराज की परिकल्पना को जिसका अंतिम लक्ष्य 'रामराज्य' की स्थापना से था को समझने के लिए जरूरी है।

रचनात्मक कार्यक्रम के सिद्धांत

1. यह अपने स्वयं के समझौते पर किया जाता है। यह विशुद्ध रूप से एक नैतिक कार्य है जो आदमी में नैतिकता का बल प्रदान करता है

2. सहयोग और आपसी सहायता रचनात्मक कार्य के प्रमुख अंग हैं। स्वेच्छा तथा हिस्सेदारी रचनात्मक कार्यक्रम के आधार हैं।

3. आत्मनिर्भरता और स्व - सहायता रचनात्मक कार्यक्रम का एक और महत्वपूर्ण सिद्धांत है।

4. रचनात्मक कार्यक्रम के चौथे सिद्धांत नीचे से निर्माण करना है

5. रचनात्मक कार्यक्रम अहिंसा की भावना की ठोस अभिव्यक्ति है.

6. विकेन्द्रीकरण रचनात्मक कार्यक्रम का एक मूलभूत सिद्धांत है।

प्रो के.एच.अरुणाचलम के शब्दों में "केंद्रीयकृत संस्थानों में एक आदमी संचालन तथा प्रबंधकीय कार्य के लिए जवाबदेह होते हैं। कार्य को प्रत्योजन से बड़े अधिकारी अपने अधिनस्थ अधिकारियों से कार्य करा सकते हैं। विकेन्द्रीकरण कार्यकर्ताओं के बीच जिम्मेदारी, नैतिकता, सृजनशीलता के विकास को बढ़ावा देता है। जब कार्य उचित तरीके से किये जाते तब यह व्यक्तितत्व निखारता है तथा कर्मचारियों के मानवीय संबंधों को बढ़ाता है।

विकेन्द्रीकरण के सफल होने के लिए चार चीजें बहुत जरूरी हैं 1. एक प्रशिक्षित, सक्षम और समर्पित प्रबंधकों की जो जिम्मेदारी का कार्य कर सकें तथा अपने स्तर निर्णय ले सकें।

2. समग्र पर्यवेक्षण और मार्गदर्शन के लिए एक व्यवस्था जो विकेंद्रीकृत इकाईयों का मार्गदर्शन कर सके। 3. आवश्यक सेवा का प्रावधान जो आम तौर पर किसी बड़े संगठन के बुलियादी इकाईयों के लिए उपलब्ध नहीं है कि उपलब्धता और 4. सम्मलित विचार जो की

विकेंद्रीकृत इकाईयों को एक सूत्र में बांध सके और उनके स्वायत्त कामकाज के बावजूद एक साथ रखने में मददगार हो सके।"

रचनात्कम कार्यक्रम का प्रारूप

प्रारूप किसी भी संरचना की सहयता के लिए जरूरी है। रचनात्मक कार्यक्रम के अंतर्गत कई जाहिर तौर पर असंबद्ध' स्वतंत्र गतिविधियां हैं। लेकिन इन सब के साथ एक रूपरेखा है जो एक पवित्र क्रांति के विचार का समर्थन करता है। गांधीजी द्विस्तरीय क्रांति में विश्वास करते थे। उनका मानना था व्यक्ति के साथ-साथ समाज की संचरना में बदलाव के द्वारा ही स्थानीय समुदायों को शक्ति प्रदान की जा सकती है। उन्हें पूरा भरोसा था कि उनकी रचनात्मक कार्यक्रम के द्वारा यह संभव है।

गांधी जी 1924 के यंग इंडिया में लिखा था "मैं सत्य की खोज का एक विनम्र साधक हूँ। मैं अपने इसी जीवन में मोक्ष पाने के लिए बेताब हूँ। मेरी राष्ट्रीय सेवा हाड़-मांस के बंधन से मेरी आत्मा को मुक्त करने के लिए मेरे प्रशिक्षण का हिस्सा है। मेरी सेवा विशुद्ध रूप से स्वार्थ के रूप में मानी जा सकती है। मेरे लिए मोक्ष का मार्ग अपने देश की सेवा और मानवता के माध्यम से निरंतर परिश्रम में निहित है। मैं अपने आप को जीवन से जोड़ता हूं। मेरे जीवन की पहचान देशभक्ति के साथ जुड़ी हुई है। मेरी राष्ट्रभक्ति स्वतंत्रता और शांति की प्राप्ति के लिए सतत् यात्रा

है। इस प्रकार रचनात्मक कार्यक्रम की रूपरेखा सत्य और अहिंसा के दृढ़ संकल्प समर्पित वैराग्य और त्याग से जुड़ा है। सत्य लक्ष्य है और अहिंसा साधन है। लक्ष्य के पथ दोनों तरफ से वैराग्य और त्याग से रक्षित है।

विषय

रचनात्मक कार्यक्रम की कल्पना गांधीजी एक ही दिन में नहीं किए थे। इसे साकार होने में कई साल लग गए। 1941 में गांधी ने मूलरूप से तेहर विषय रचनात्मक कार्यक्रम के रूप में प्रस्तुत किए। जो इस प्रकार हैं।

1. सांप्रदायिक एकता

2.अस्पृश्यता निवारण

3.मद् निषेध

4.खादी

5.अन्य ग्रामोद्योग

6.ग्राम स्वच्छता

7. नई या बुनियादी शिक्षा

8. प्रौढ़ शिक्षा

9. महिला

10. स्वास्थ्य और स्वच्छता की शिक्षा

11. प्रांतीय भाषाएँ

12. राष्ट्रभाषा का प्रसार और

13. आर्थिक समानता का संवर्धन

1945 में गांधी ने निम्नलिखित विषयों को जोड़ा:

14. किसान

15. श्रम

16. आदिवासी

17. कुष्टरोगी

18. विद्यार्थी

गांधी की मृत्यु के बाद उपने अनुयायियों ने रचनात्मक कार्यक्रम के आंदोलन को मजबूत बनाने के लिए निम्न विषय जोड़े

19. गो रक्षा

20. प्राकृतिक चिकित्सा

21. भूदान

22. ग्राम दान

23. शांति सेना

रचनात्मक कार्यक्रम का लक्ष्य बेरोजगारों को आर्थिक सहायता या गरीबों व मजदूरों की मदद करना नहीं बल्कि एक ऐसे अहिंसक सामाजिक व्यवस्था का निर्माण करना जिसमें व्यक्ति स्वयं आत्मनिर्भर, स्वावलंबी एंव स्वाभिमानी हो सके। रचनात्मक का लक्ष्य था व्यक्ति में चरित्र निर्माण करना तथा व्यक्ति के चरित्र निर्माण से समाज तथा राष्ट्र का निर्माण।

उपसंहार

भारत का सुनहरा भविष्य लोकतंत्र तथा आध्यात्म के साथ रचनात्मक कार्यक्रम में निहित है। भारत ने 15 अगस्त 1947 को राजनीतिक स्वतंत्रता हासिल की, लेकिन अभी भी इसे आर्थिक और सामाजिक

स्वतंत्रता प्राप्त नहीं ह्ई है। आर्थिक व सामाजिक स्वतंत्रता, सामाजिक न्याय तथा लैंगिक समानता गांधी के रचनात्मक कार्यक्रम को गोद लेने पर संभव है। गांधी ने स्वयं कहा कि मेरे लिए सबसे महत्वपूर्ण रचनात्मक कार्यक्रम है। उन्होंने कहा कि सत्याग्रह का उदगम रचनात्मक कार्यक्रम से ह्आ। साथ ही भारत का भविष्य अगले हजार वर्षों से इस पर ही निर्भर कर रहा था।

गांधीवादी रचनात्मक कार्यक्रम नैतिकता, आध्यत्मिक तथा धर्म निरपेक्ष क्रियाकलापों में कभी विफल नहीं रहा। एक बड़े या छोटे उपाय के रूप में रचनात्मक कार्यक्रम कार्यकर्ताओं में मिशनरी उत्साह भरने में कामयाब रहा तथा राष्ट्र के पुर्ननिर्माण में प्रेरणादायी भूमिका निभाता रहा।
गांधी ऐसा महसूस किए कि रचनात्मक कार्यक्रम पूरी तरह जनता को परतंत्रता से स्वतंत्रता, अभाव से संपन्नता, असंयमित से संयमित, सामाजिक विपन्नता से सामाजिक सम्मान तथा अलगाव से सहयोग प्रधान करने में सफल रहा। इस कार्यक्रम के माध्यम से वे शक्ति से मुक्त गैर सत्तावादी वर्तमान संरचना को बदल कर शोषण विहीन समाज के निर्णाम की संभावनाओं को उजागर किया। यह विशुद्ध रूप से प्रशासनिक या प्रबंधकीय कार्य नहीं हैं। सफलता के लिए ये जरूरी है कि गांधी के बताए गए मूल कार्यक्रमों को तुरंत एंव दुगनी गति से कार्रवाई की। सबसे पहले इस बात की जरूरत है कि रचनात्मक कार्य में अपने विश्वास करें। तथा इस पर आधारित सामाजिक आर्थिक परिवर्तन मानवीय मूल्यों स्वतंत्रता, समानता, सम्मान तथा व्यक्तिगत स्वतंत्रता एंव व्यक्तित्व का निर्माण अहिंसक, गैर-शोषक सामाजिक एंव आर्थिक व्यवस्था के आधार पर पुर्ननिर्माण से है। दूसरे, ऐसे व्यवहारिक तरीकों

से मानवीय गरिमा की रक्षा करते हुए क्रांति के बुनियादी तौर-तरीके, व्यक्ति, समाज एंव राष्ट्र के सामने प्रस्तुत करते हैं। जो हमारे दिनचर्या का भाग स्वतः हो जाए।

समस्याएं दिन प्रतिदिन बढ़ रही हैं। अद्मय साहस और दृढ़ता के साथ गांधी के बताए गए रास्तों पर चलकर हम गरीबी, अज्ञानता, कुपोषण, बिमारी, जनसंख्या विस्फोट और जाति व्यवस्था से निपट सकते हैं। हर गांव में रचनात्मक कार्यकर्ताओं की जमात हो जो सामाजिक, नैतिक और आर्थिक स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए राष्ट्र के सेवक के रूप में कार्य करें। यह नीचे से ऊपर प्रजातांत्रिक ढंग से संगठित हो। पांच वयस्क की ईकाई होनी चाहिए जो दूसरे लोगों का चुनाव करेंगे और ये प्रक्रिया तब तक चलती जाएगी जब तक की पूरा राष्ट्र इसके अंतर्गत न आ जाए।

वर्तमान और भविष्य के संकट का समाधान पूर्णरूप से रचनात्मक कार्यक्रम को गोद लेने से संभव है। यह अंधकार से प्रकाश की ओर प्रत्येक नागरिक को अग्रसित करेगा। रचनात्मक कार्यक्रम दीपक और दर्पण की तरह कार्य करेगा। दीपक रौशनी देता है तथा आगे का मार्ग प्रस्तत करता है वहीं दर्पण अपने आप को देखकर आगे बढ़ने की प्रेरणा देता है। दर्पण और दीपक हमें होश पूर्वक हमारे व्यवहार का आकलन करने के लिए सक्षम हैं। उसी प्रकार से रचनात्मक कार्यक्रम के द्वारा हम एक ऐसा भारत की निर्माण कर सकते हैं जिसे कभी सोने की चिढ़िया कहा जाता था।

सन्दर्भ

1. गांधी, एम.के. रचनात्मक कार्यक्रम, अहमदाबाद' नवजीवन, 1941' पृ·5।

2. वही

3. गुजराल' एम.एल. दस स्पेक बापू, और डायलॉग विटविन गांधीज स्प्रिट एंड द स्क्राइब, नई दिल्ली' गांधी शांति प्रतिष्ठान, 1985, पृ.119.

4. हरिजन: 12 अप्रैल' 1942।

5. वही

6. हरिजन: 4 जनवरी' 1946।

7. टंडन' विश्वनाथ, गांधी के बाद सर्वोदय का सामाजिक और राजनीतिक दर्शन' वाराणसी, सर्वसेवा संघ, राजघाट' 1965 पृ¯163 ,164।

अध्याय–12

स्वराज की अवधारणा

प्राचीन भारतीय राजनैतिक चिन्तन में आत्म–शासन विचार के सूत्र मिलते हैं। उन दिनों इस शब्द को राज्यव्यवस्था के सदस्यों की सामूहिकता के रूप में प्रयोग किया गया और यह प्रत्येक मानव जाति के नैतिक विकास के रूप में भी आत्मशासन से जुड़ा था।

किसी विशिष्ट के या व्यक्तियों की सामान्य तौर पर आत्म–उन्नति और नैतिक परिपक्वता के स्तर के पैमाने को दर्शाने के रूप में एक राजव्यवस्था की परिपक्वता व विकास को देखा गया है।

प्राचीन भारतीय राजनैतिक चिन्तन के केन्द्र में आत्मशासन या स्वराज का विचार था। यह स्वराज्य शब्द से जुड़ा था। स्वराज्य विभिन्न विशिष्ट क्षेत्रों से बनी राज्यव्यवस्था में आत्मनिर्धारण प्राप्त करने के विशेष ढंग की ओर इशारा करता है।

आधुनिक भारत में ''स्वराज'' शब्द का प्रयोग दादाभाई नौरोजी, बाल गंगाधर तिलक और श्री अरविन्दो ने राष्ट्रीय स्वतंत्रता के उद्देश्य के रूप में विशिष्ट तौर पर किया है। इस शब्द के सकारात्मक पक्ष की अपेक्षा नकारात्मक शब्द पर जोर दिया गया और इसके प्रयोग को व्यक्तिगत से हटाकर सामूहिकता पर लागू किया गया।

उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में, स्वराज शब्द के स्वतंत्रता राष्ट्रवादी आंदोलन में नए रूप में प्रचलित होने से पहले, बंगाली उग्रवादियों ने ब्रिटिश सामानों के बहिष्कार करने के लिए स्वदेशी या देशभक्ति को तर्कसंगत ठहराया।[2]

और जब भारतीय राजनीतिक में महात्मा गांधी का पर्दापण हुआ, तब उन्होंने सफलतापूर्वक स्वराज शब्द के पुराने शब्द की फिर से स्थापना की और इस नए संदर्भ को ध्यान में रखते हुए स्वदेशी शब्द की व्याख्या की और इसके प्रयोग को काफी व्यापक बना डाला। गांधी ने स्वराज व स्वदेशी व्यक्तिगत आत्मशासन व व्यक्तिगत स्वावलंबन एवं आत्मशासन और राष्ट्रीय आत्म–निर्भरता के बीच एक निकट संबंध स्थापित किया।

गांधी ने समाज के आंगिक विचार में व्यक्ति का समावेश द्वारा समुदाय में स्वतंत्रता के विचार को मिलाने की अपेक्षा व्यक्तिगत आत्मशासन के विचार में से ही सामूहिक आत्म–निर्भरता के विचार को निकाला और गांधी ने यह दर्शाया कि किस प्रकार से स्वराज के अनुकरण के लिएयह आवश्यक है कि स्वदेशी को भी शामिल किया जाए।

आत्मशासन या स्वराज की अवधारणा का विकास भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान हुआ। गांधी ने अपनी पुस्तक हिन्द स्वराज (1901) में बल दिया कि, ''स्वराज अंग्रेजों के बिना अंग्रेजी शासन (अंग्रेजी शासन पद्धति) से कहीं अधिक है, यह बाघ के स्वभाव को बदलना है न कि बाघ का बदलना।''[3]

गांधी का तर्क इस विश्वास पर आधारित था कि ब्रिटिश राजनैतिक, आर्थिक, नौकरशाही, वैधानिक, सैनिक व शैक्षिक संस्थाओं का सामाजिक, आध्यात्मिक ढांचाा अन्याय, शोषण और अलगाव लिए हुए था। जैसा कि पिन्टो ने स्पष्ट किया है, ''हिन्द स्वराज का मुख्य विषय स्वतंत्र भारत के लिए मॉडल के रूप में पाश्चात्य सभ्यता की विशेष तौर पर इसका औद्योगिकवाद की नैतिक अपूर्णता है।'' महात्मा गांधी विशेष तौर पर गहरी पैठ बनाए सिद्धांतों जैसे जिसकी लाठी उसी की भैंस और अनुकूलन का ही अस्तित्व बना रहता है, की आलोचना की है।

दूसरी तरफ स्वराज के आह्वन का अर्थ है कि स्वयं पर– अपने आत्म–सम्मान, आत्म–उत्तरदायित्व व आत्म–साक्षात्कार की क्षमताओं पर नियंत्रण–के लिए एक सच्चा प्रयास। अमानवीयता की संस्थाओं से नियंत्रण रखना। जैसा कि गांधी कहते हैं, ''जब हम अपने ऊपर शासन करना सीखते हैं वह स्वराज है।'' स्वतंत्रता संघर्ष का वास्तविक उद्देश्य अंग्रेजों से न केवल राजनैतिक आजादी (स्वतंत्रता) प्राप्त करना या बल्कि वास्तविक स्वराज (मुक्ति व आत्म –शासन) प्राप्त करना था। आत्म–शासन शब्द का प्रयोग शक्ति के सभी आवश्यक कार्यों को एक व्यक्ति या समूह प्रयोग करने का सामर्थ्य है। इसमें किसी सत्ता का हस्तक्षेप न हो। ऐसी सत्ता जिसमें से स्वयं से कोई संशोधन न कर सकें। इस प्रकार से आत्म–शासन उस संदर्भ से जुड़ा है। जहां औपनिवेशिक शासन कर सकें। इस प्रकार से आत्म–शासन उस संदर्भ से जुड़ा है जहां औपनिवेशक शासन की, निरंकुश सरकार या राजतंत्र की समाप्ति हो। और धार्मिक, जातीय या भौगोलिक क्षेत्रों द्वारा स्वायत्तता की मांग न की जाए में क्षेत्र स्वयं को राष्ट्रीय सरकार में उपेक्षित या प्रतिनिधित्व में उपेक्षित मानते हैं। इस प्रकार से आत्म–शासन गणराज्य सरकार और लोकतंत्र के साथ–साथ राष्ट्रवाद का एक मूलभूत सिद्धांत है।

गांधी ने प्रारंभ से ही स्वराज शब्द का इसके विशेष और व्यापक अर्थ में प्रयोग किया है। और ग्रीन की अभिव्यक्ति को भी इस अर्थ में शामिल किया है। यद्यपि गांधी ने भारतीय जनमानस को स्वराज के लिए संगठित किया। यह स्वराज एक संवैधानिक और लोकतांत्रिक, राजनैतिक व्यवस्था थी।[5] परन्तु साथ ही साथ गांधी ने इसक आर्थिक जन आंगिक पक्ष पर भी बल दिया। स्वराज को सबसे पहले नौरोजी ने राजनैतिक अर्थ (स्वतंत्रता के लिए) के लिए प्रयोग किया और बाद मे ंतिलक ने इसकी प्रसिद्धि दिलाई। यह स्वराज तप या त्याग जैसे शब्दों से निकटता से जुड़ा है।

स्वराज का शाब्दिक अर्थ 'आत्म–शासन' और इसके वास्तविक शब्द के अर्थ में नैतिक स्व की (जैसा कि बृहदारण्यक उपनिषद में आया है) स्वायत्तता है जहां अपनी इन्द्रियों पर एक कड़ा नियंत्रण लगाया जाता है। अन्य शब्दों में, इसका अर्थ आत्म–शासन और आत्म–संयम है। यह सभी नियंत्रण से स्वतंत्र नहीं है जैसा कि प्रायः स्वतंत्रता का अभिप्राय लगाया जाता है।[7]

स्न् 1924 में गांधी ने लिखा, ''मेरे लिए स्वराज का अर्थ है अपने सर्वाधिक दीनहीन देशवासियों की स्वतंत्रता..... मुझे भारत को केवल अंग्रेजो की पराधीनता से मुक्त कराने में ही दिलचस्पी नहीं है। मैं भारत को

सभी प्रकार की पराधीनताओं से मुक्त कराने के लिए कटिबद्ध हूं। मुझे एक शासक के स्थान पर दूसरे शासक को लाने की जरा भी इच्छा नहीं।''[8]

गांधी ने 1925 में राजनैतिक शक्ति और इसके संगठन के मुख्य प्रश्न पर चर्चा करते हुए लिखा था कि, ''स्वराज से मेरा तात्पर्य ऐसी भारत सरकार से है जो देश की वयस्क जनसंख्या के बहुमत की राय से कायम की गई हो, व्यस्कों में स्त्री अथवा पुरुष, यहां जन्मे तथा बाहर से आकर वे सभी लोग सम्मिलित होंगे जिन्होंने राज्य की सेवा में किसी भी प्रकार का शारीरिक श्रमदान किया होगा तथा मतदाता के रूप में अपने नाम को पंजीक1ृत कराने का कष्ट किया होगा...... सच्चा स्वराज मुट्ठी भर लोगों द्वारा सत्ता–प्राप्ति से नहीं आएगा बल्कि सत्ता का दुरुपयोग किए जाने की सूरत में, उसका प्रतिरोध करने की जनता का सामर्थ्य विकसित होने से आएगा। दूसरे शब्दों में, स्वराज जनता को सत्ता का नियमन तथा नियंत्रण करने की अपनी क्षमता का विकास करने की शिक्षा देने से आएगा।''[9]

स्वराज का अर्थ है सरकार के नियंत्रण से मुक्त होने का सतत प्रयास, यह सरकार विदेशी हो अथवा राष्ट्रीय।[10]

इसी प्रकार से गांधी ने 'यंग इण्डिया' में लिखा, ''मेरे सपनों का स्वराज किसी प्रजातिगत अथवा धार्मिक भेदभावों को नहीं मानता। न यह शिक्षितों अथवा धनवानों की इजारेदारी नहीं होगा। स्वराज सभी का होगा, शिक्षितों और धनवानों का भी, पर इसमें खासतौर से अपंग, नेत्रहीन, भूखे और मेहनतकश करोड़ों भारतवासी शामिल होंगे।''

इसी प्रकार से गांधी ने एक अन्य अवसन पर लिखा, ''मेरे सपनों का स्वराज गरीबों का स्वराज है। जीवन की अनिवार्य वस्तुएं तुम्हें भी उसी प्रकार उपलब्ध होनी चाहिए जिस प्रकार राजाओं और धनवानों को उपलब्ध हैं। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि तुम्हारे पास उन जैसे ही महल भी होंगे। सुखी जीवन के लिए ये आवश्यक नहीं है। तुम या मैं तो उनमें खो जाएंगे। लेकिन तुम्हें जीवन की वे सभी सामान्य सुख–सुविधाएं मिलनी चाहिए जो एक धनी व्यक्ति को उपलब्ध हैं। मुझे इसमें तनिक भी संदेह नहीं है कि जब तक तुम्हें उन सुख–सुविधाओं का आवश्वासन नहीं मिलता तब तक स्वराज पूर्ण स्वराज नहीं माना जा सकता है।''[12]

.....पूर्ण स्वराज से क्या अभिप्राय है और हम उससे क्या पाना चाहते हैं..... पूर्ण स्वराज जनसाधारण के बीच एक जागृति है, उनमें अपने वास्तविक हित की जानकारी और समूची दुनिया का मुकाबला करके भी उस हित को साधने की क्षमता है.... यह एक सामंजस्य है भीतरी अथवा बाहरी आक्रमण से मुक्ति है, और आम लोगों की आर्थिक स्थिति में क्रमिक सुधार है......''[13]

सच्चे स्वराज का अनुभव स्त्री, पुरुष और बच्चों, सभी को होना चाहिए। इस संसिद्धि के लिए प्रयास करना ही सच्ची क्रांति है। भारत संसार की सभी शोषित प्रजातियों के लिए एक आदर्श बन गया है, क्योंकि भारत ने एक खुला और निहत्था संघर्ष किया है। जो शोषणकर्त्ता को क्षति पहुंचाए बिना सभी से बलिदान मांगता है।

यदि हमारा संघर्ष खुला तथा निहत्था न होता तो भारत की करोड़ों जनता में जागृति न फैलती। संघर्ष के सीधे रास्ते से हम जब–जब विचलित हुए हैं तब–तब कुछ समय के लिए हमारी विकासात्मक क्रांति को धक्का लगा है।''[14]

यह कहा गया है कि भारत का स्वराज बहुसंख्यकों अर्थात् हिंदुओं का शासन होगा। इससे बड़ी भ्रांति और कोई नहीं हो सकती। यदि ऐसा हो तो मैं उसे स्वराज मानने से इंकार कर दूंगा और अपनी पूरी शक्ति के साथ उसका विरोध करुंगा....... क्योंकि मेरी दृष्टि में हिन्द के स्वराज का अर्थ है सब लोगों का शासन, न्याय का शासन। इस शासन में, मंत्री चाहे हिंदू हों, मुसलमान हों या सिख हों और विधानसभाओं के सदस्य चाहे केवल हिंदू हों, केवल मुसलमान हों अथवा किसी अन्य समुदाय के हों, सबको निष्पक्ष न्याय करना होगा।''[15]

आज हमारे मन विभ्रांत हैं, हम अज्ञानवश एक–दूसरे से लड़ रहे हैं और अपने ही भाईयों के साथ दंगा–फसाद कर रहे हैं। ऐसे लोगों के लिए न मोक्ष है, न स्वराज। स्वशासन अथवा स्वराज की पहल शर्त आत्मानुशासन है।''[16]

हमारे जैसे विशाल देश में, सभी ईमानदारीपूर्ण विचार संप्रदायों के लिए स्थान होना चाहिए। इसलिए हमारा अपने प्रति और दूसरों के प्रति कम–से–कम यह दायित्व अवश्य है कि हम अपने विरोधी के दृष्टिकोण को समझने का प्रयास करें और यदि हम उसे स्वीकार न कर पाएं तो उसका उसी प्रकार पूरी तरह सम्मान करें, जिस प्रकार हम चाहते हैं कि वह हमारे दृष्टिकोण का करे। यह स्वरूप सार्वाजनिक जीवन की एक अपरिहार्य कसौटी है और इसलिए स्वराज के लिए भी आवश्यक है।''17

''वाणी और लेखनी की स्वतंत्रता स्वराज की आधारशिला है। अगर यह खतरे में है तो तुम्हें अपनी संपूर्ण शक्ति लगातार इसकी रक्षा करनी चाहिए।''[18]

गांधी ने हिन्द स्वराज में व्यापक स्वतंत्रता का खाका खींचा है। इसकी इस प्रकार से वर्णन किया जा सकता है–

(1) सच्चा स्वराज : आत्म का राज (आत्मिक व नैतिक स्वतंत्रता)।

(2) इसके (राजनैतिक स्वतंत्रता) लिए सत्याग्रह मुख्य कुंजी है (सत्या : दया बल या आत्म बल)।

(3) स्वदेशी : आर्थिक स्वतंत्रता (सत्याग्रह को व्यवहार में लाने के लिए आवश्यक)।

(4) आत्मिक और नैतिक स्वतत्रता–गांधी के अनुसार नैतिक और आत्मिक स्वतंत्रता, सत्य व अहिंसा जैसे प्राचीन सद्गुणों के प्रभावकारी अभ्यास पर आधारित है। नैतिक स्वतंत्रता का अर्थ है इन्द्रियों और क्षुधाओं की मांगों पर विजय करना ताकि उच्चतर सत्य को प्राप्त किया जा सके। इस प्रकार से सत्य व अहिंसा पर श्रद्धापूर्वक जोर देकर विशेष इच्छा के आत्मवृत्ति को शुद्ध करना होता है।[19] वास्तव में आत्म–अनुग्रह विनाश की ओर ले जाता है।

क्ेवल आनुभाविक इच्छाओं पर विजय ही हमें अनश्वरता की ओर ले जाती है। इस प्रकार से गांधी ने अपने आश्रम में महाव्रत के नियम (ग्यारह महान व्रत) पर दृढ़ता से बल दिया है।

इन व्रत पर प्रतिदिन बल दिया जाता था। ताकि व्यक्ति अपने नैतिक वचन को दृढ़ करने का प्रयास करे। गांधी का विश्वास था कि अपरिपक्त व्यक्ति का मन अस्थायी भावनाओं, काल्पनिक विचारों और भावनाओं के पीछे भागता रहता है और इस प्रकार से वह नैतिक स्वतंत्रता का उपभोग नहीं कर पाता है। गांधी ने लिखा, "स्वतंत्रता पीड़ा का परिणाम है और छूट हिंसा से उत्पन्न होती है। हम उस स्वतंत्रता के लिए प्रयास कर रहे हैं जिसमें कि समाज के हित में स्वयं पर नियंत्रण लगाते हैं। छूट से समाज पर पीड़ा थोपी जाती है ताकि छूट द्वारा विशेष सुविधाओं का उपभोग किया जा सके।"[20]

इस प्रकार से गांधी ने स्वतंत्रता का समझौता या आज्ञा के रूप में स्वीकार नहीं किया है। वास्तविक स्वतंत्रता तो समाज के हित के लिए अपने अस्तित्व का इंकार करना है। इस प्रकार से शक्ति के नैतिक स्रोतों का विकास वास्तविक स्वराज का एक कार्य है।

गांधी के लिए आत्मिक स्वतंत्रता व्यक्तिगत अह ंके दावों के आत्मकेन्द्रित विचारों में निहित नहीं है। परन्तु यह स्वतंत्रता तो उच्चतर जाति के साथ पहचान स्थापित करने से है। 1924 में बेलगांव में हुए कांग्रेस के अधिवेशन में गांधी ने तो यहां तक कहा कि स्वराज सत्य का भाग है। यह विचार राष्ट्रीय मुक्ति या स्वतंत्रता के कार्य को पवित्रता व आध्यात्मिकता प्रदान करने के समान है। व्यक्ति का आत्मिक व्यक्तित्व स्वतंत्रता का सारांश है। जिस प्रकार से रुसो ने सामाजिक समझौते में स्वतंत्रता के बारे में बताया है उसी प्रकार से गांधी ने भी व्यक्ति के सारांश के रूप में स्वतंत्रता को माना है। यदि स्वतंत्रता का त्याग कर दिया जाए तो व्यक्ति एक यंत्र की भांति कार्य करता है। यदि स्वतंत्रता का इंकार करके समाज के निर्माण का प्रयास किया जाए तो वह व्यक्ति की वास्तविक प्रकृति के विरुद्ध होता है।"[21]

स्वतंत्रता के त्याग का अर्थ यह है कि मानवीय चेतना को ही अस्वीकार कर दिया जाए। यदि सत्य ही ईश्वर है तो स्वराज की अनुभूति के लिए रचनात्मक कार्यक्रम और सत्याग्रह आधार व तकनीकें हैं तब इसका निहितार्थ यह है कि ये सत्य का भाग है और इसका अर्थ यह भी है कि ईश्वर एक ठोस वास्तविक एकता है, एक आंगिक सर्वव्यापी विभिन्न स्तर है जिसमें बहुत भारी पहचान[22] शामिल है। यह मानवीय संघर्षों से पृथक अविभेदीय गूढ़ सर्वव्यापी नहीं है।

गांधी के कहा, "सिद्धांत यह है कि न्यूनतम में अधिकतम का समावेश होता है, इसी प्रकार से आध्यात्म में राष्ट्रीय स्वतंत्रता या भौतिक स्वतंत्रता का समावेश होता है।"

गांधी ने नैतिक एवं आध्यात्मिक स्वतंत्रता के लिए दो पूर्व शर्तों को आवश्यक माना है। प्रथम उसके नैतिक व आध्यात्मिक विचार में अनासक्ति के विचार को उन्नत करना होता है।

भगवद् गीता का अनुयायी होने के नाते गांधी ने पूर्ण रूप से अनासक्ति पर बल दिया है। उन्होंने कर्मयोग के सारांश के रूप में ईश्वर की इच्छा के आगे झुक जाना और पूर्णरूप से शांति की अवस्था में रहने पर बल दिया।

अनासक्ति सभी जीवित प्राणियों की भलाई के ध्येय वाली स्वाभाविक भक्ति से जुड़ी है। गीता के कर्मयोग का सारांश सभी की भलाई की इच्छा का आत्मपरक स्वभाव और जो कुछ आवश्यक रूप से उचित है उसको ध्यान में रखते हुए बिना परिणाम की चाह से जुड़े कार्य में प्रवृत्त रहना है। अनासक्ति या फल की इच्छा न करने का परिणाम ऊर्जा का संचय होता है। नैतिक व मानसिक स्रोतों को भविष्य के बारे में सोच–सोचकर उनके दुरुपयोग करने के स्थान पर, कर्मयोग कर्तव्यपरायणता के मार्ग पर चलने के प्रयास पर ध्यान देने पर बल देता है। इस प्रकार से कर्मयोग सिद्धान्त में दिए गए अनासक्ति के सिद्धांत को गांधी ने पूर्णरूप से स्वीकार किया है। और कभी–कभी अनासक्ति के विरुद्ध निष्क्रियता की बात को भी गांधी ने ठुकराया है।

अनासक्ति के अतिरिक्त गांधी ने नैतिक व आध्यात्मिक स्वतंत्रता के लिए दूसरी आवश्यक शर्त अभय को माना है। अभय को ईश्वर के सामने समर्पित करने से प्राप्त किया जा सकता हैं। इस प्रकार से सांसारिक लालच और भय के परिणाम को पूर्ण रूप से नकारना ही अभय है। जो व्यक्ति अपनी आत्मिक मानवता की अनुभूति कर लेता है वह ईश्वर के कानून के सिवाय और किसी कानून से नहीं डरता है। गुरुकुल कांगड़ी के वार्षिक सम्मेलन में गांधी ने कहा था, "मेरा नम्र विचार है कि, इससे पहले कि हम कुछ भी स्थायी व वास्तविक तौर पर प्राप्त करें, अभय प्रथम वस्तु है। यह अटूट है। बिना धार्मिक चेतना के इस गुण की प्राप्ति नहीं की जा सकती है। आइए भगवान से डरें, तब हम मनुष्य से नहीं डरेंगे। यदि हम इस तथ्य को भलीभांति जान लें कि हमारे अंदर देवीय अंश है जो यह देखती है कि हम क्या सोचते हैं या करते हैं और वह हमें बचाती है और सत्य के मार्ग पर चलने का निर्देश देती है। यह स्पष्ट है कि इस पृथ्वी पर हमें किसी से डरने की आवश्यकता नहीं है। ईश्वर का डर हमें बचता है। सबसे बड़ी भक्ति तो राज्यपालों के राज्यपाल की है। यह सब भक्ति से बड़ी है और राज्यपालों की भक्ति को बुद्धिमान आधार प्रदान करती है।"[23]

गांधी एक आध्यात्मिक और नैतिक आदर्शवादी होने के नाते आशावादी थे, यद्यपि गांधी ने आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता के यांत्रिक और प्रौद्योगिकी पक्षों की आलोचना की है, परन्तु भविष्य में स्वतंत्रता की अनुभूति होने का उन्हें अटूट विश्वास था। गांधी मैक्स वैबर की अपेक्षा अधिक आशावदी थे। मैक्स वैबर का मानना था कि आधुनिक युग की तकनीकी तार्किकता दबाव के कारण वास्तविक मानवीय स्वतंत्रता के लिए क्षीण संभावनाएं हैं। तो दूसरी ओर गांधी के अनुसार, "आधुनिक युग में भी स्वतंत्रता की प्राप्ति संभव है। यह तभी होगा जब व्यक्ति का नैतिक पुनर्जागरण हो जाए। इस प्रकार से प्रोद्योगिकी व राजनैतिक ढांचे की अत्यधिक व जकड़ लेने वाली शक्ति के विरुद्ध गांधी ने स्वतंत्रता के निश्चित मार्ग के लिए उद्देश्यों व व्यवहार में शुद्धिकरण पर अत्यधिक बल दिया है। स्वतंत्रता, समानता, सामाजिक न्याय और अभय के मूल्यों में पूर्णता द्वारा इस पृथ्वी पर ईश्वर के राज्य की स्थापना का कार्य होगा। गांधी का जीवन इस उद्देश्य को समर्पित था। यही गांधी का संदेश भी है।

राजनैतिक स्वतंत्रता–गांधी व्यक्ति के अधिकारों की संकल्पना पर बहुत अधिक बल देते थे और यही कारण है कि उन्होंने लोकतांत्रिक अधिकारों के लिए आवाज उठाई। दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों के नागरिक

अधिकारों की सुरक्षा के लिए उन्होंने सत्याग्रह आंदोलन को प्रारंभ किया। सन् 1917 में गांधी ने चम्पारण में नील की खेती करने वाले शोषित किसानों के अधिकारों के समर्थन में अपनी आवाज को बुलंद किया। गांधी ने सन् 1918 फरवरी–मार्च में अहमदाबाद में कताई मिलों के मजदूरों की मांग के समर्थन में प्रभावशाली ढंग से कार्य किया।

इसी प्रकार उन्होंने गुजरात में मार्च–मई 1918 में खेड़ा जिला के किसानों के अधिकारों का उठाया। गांधी ने वहां के किसानों को यह सलाह दी कि वे फसल खराब होने की स्थिति में कर अदा न करें और सरकार ने अनिच्छा से किसानों की इस मांग को मान लिया।

गांधी ने तिलक द्वारा दिए गए प्रसिद्ध वाक्यसूत्र की सत्यता को स्वीकार किया था। यह वाक्यसूत्र था कि स्वराज भारतीयों का जन्मसिद्ध अधिकार है। अपने एक लेख ''भक्ति के साथ छेड़छाड़'' में गांधी ने लिखा कि भारत में अंग्रेज सरकार के विरुद्ध असंतोष फैलाना भारतीयों का धर्म था? गांधी ने भारत की राजनैतिक व आर्थिक दुर्दशा को अंग्रेजी साम्राज्यवाद का परिणाम था और गांधी ने इसका विरोध किया। अपने प्रसिद्ध 19 मार्च, 1919 में दिए गए अपने प्रसिद्ध मुकदमें के भाषण में गांधी ने कहा था कि, ''मैंने इच्छा न होते भी यह निष्कर्ष निकाला है कि भारत के साथ ब्रिटिश संबंधों के कारण भारत आर्थिक व राजनीतिक तौर पर असहाय हो गया है। इससे पहले भारत की ऐसी स्थिति नहीं थी। किसी आक्रमण से यदि भारत सशस्त्र संघर्ष करना चाहे तो निशस्त्र भारत के पास प्रतिरोध करने की शक्ति नहीं है। यह मामला इतना गंभीर है कि हमारे कुछ उत्तम पुरुष यह मानते हैं कि भारत अधिराज्य स्थिति से पहले भारत को उत्पादन में लगा होना चाहिए। भारत इतना गरीब हो गया है कि उसके पास अकालों से भी लड़ने की कम शक्ति है।''

इस प्रकार से 1920 के पश्चात् गांधी ने अपना जीवन साम्राज्यवादी चंगुल[24] से भारत को स्वतंत्र कराना था। उन्होंने लिखा कि, ''हम इस सरकार की शक्ति को चुनौती दे रहे हैं क्योंकि इसके कार्य का घड़ा भर चुका है। हम इस सरकार का उखाड़ फेंकना चाहते है। हम चाहते हैं कि जनता की इच्छा के आगे यह झुके। हम यह दिखाना चाहते हैं कि सरकार लोगों की सेवा के लिए है, लोग सरकार की सेवा करने के लिए नहीं। इस सरकार के अन्तर्गत मुक्त जीवन भी असहाय हो गया है। क्योंकि स्वतंत्रता की स्थापना के दिए जाने वाला मूल्य अचेतन रूप से महान है। चाहे हम एक या अनेक हों हमें अपने आत्म सम्मान या उच्च आदर्शों का ताक पर रखकर ली गई स्वतंत्रता को टुकरा देना चाहिए।''

गांधी ने स्वराज की प्राप्ति के लिए कठोर आत्म–नियंत्रण, अनुशासन, नैतिक व्यवहार और धैर्य के साथ पीड़ा सहन के उपाय बताए। यहां तक कि अपनी प्रारंभिक रचनाओं में भी, उदाहरण के लिए, गांधी ने कहा कि स्वतंत्रता का अर्थ छूट नहीं है। व्यक्ति अपनी वस्तु का उपभोग तो करे परन्तु अन्य लोगों की वस्तु को छीनने का अधिकार नहीं है। उन्होंने कहा कि नम्रता, सत्यता और चिंतनशीलता––स्वराज की आधाशिलाएं हैं। उन्होंने यह भी लिखा है कि स्वैच्छिक अनुशासन सामूहिक स्वतंत्रता की पहली पूर्व शर्त है। यदि जनता सही व्यवहार करेगी तो

सरकारी अधिकारी भी उनके सच्चे सेवक बन जाएंगे। ''जो स्वराज निरंतर पीड़ा व त्याग से प्राप्त होगा वह स्थायी व ठोस होगा। राजनीतिक स्वतंत्रता या स्वराज निरंतर पीड़ा व संघर्ष द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। इस बात पर विश्वास करना असंगत होगा कि स्वराज एक उपहार के रूप में प्राप्त होगा।'' सन् 1929 में गांधी ने कहा, ''जो व्यक्ति स्वतंत्रता के लिए प्रयासरत हैं उसे बहुत से जोखित उठाने होंगे और सब कुछ दांव पर लगाना होगा।'' द्वितीय गोलमेंज लोगों के रक्त में रंगे हुए हैं।'' गांधी का विश्वास था कि भारतीयों ने बहुत से कष्ट व पीड़ाएं उठाईं हैं इसलिए वे स्वतंत्रता पाने के अधिकारी है।

राजनीतिक स्वतंत्रता में सामाजिक एकजुटता के अतिरिक्त अनुशासित कष्ट भी शामिल है। यह अत्यंत आवश्यक है कि स्वैच्छिक सामाजिक और राजनीतिक अनुशासन की स्वैच्छिक स्वीकार्यता के साथ राजनीतिक व्यक्तिगत की खोज को भी जोड़ा जाए। यह सामाजिक एकजुटता और एकता का आधार है। एक टूटा व विभाजित सामाजिक ढांचा सफलतापूर्वक राजनीतिक संघर्षों को नहीं छेड़ सकता है। लोगों को उस समुदाय को ही स्वराज के लाभ प्राप्त हो सकते हैं, जो कि गहराई से एक– दूसरे से एकता के सूत्र में बंधे होते है। इसलिए गांधी का मानना था कि राजनैतिक स्वतंत्रता के आधार सामूहिक एकता की स्थापना और पूर्ण रूप से असमाजिकता का उन्मूलन है।

आर्थिक स्वतंत्रता––गांधी ने स्वतंत्रता के लिए आर्थिक पूर्व शर्त व बुनियाद पर जोर दिया है। इसका कारण यह है कि गांधी ने माना था कि व्यक्ति की इच्छा की पूर्ति के लिए आर्थिक स्रोत एक प्रभावशाली ढांचा होते हैं। गांधी का कहना था कि जब तक व्यापक जनसंख्या को कुछ लाभदायक रोजगार नहीं मिल जाता है तब तक उनके लिए स्वतंत्रता एक दार्शनिक गूढ़ता पूर्ण रूप से नष्ट हो जाते है। इसलिए गांधी ने लिखा है, ''करोड़ो लोगों के लिए राजनीतिक स्वतंत्रता का कोई अर्थ नहीं है जब तक कि वे ये न जाने कि उन पर थोपी गई बेरोजगारी को कैसे दूर करें।''

गांधी रामराज्य के नैतिक पैगम्बर थे और इसलिए उन्होंने समान बंटवारे के विचार का समर्थन किया। वास्तविकता स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए कुछ मुख्य बात यह है कि सभी वकील, डॉक्टर या शिक्षक का वेतन व्यवहार में एक सा हो। यह एक क्रांतिकारी कदम होगा। ये सभी लोग भंगी से अधिक न माने जाएंगे। इस कदम से वास्तविक सभ्यता को बल मिलेगा और यह एक आदर्श मानवता के पुनर्स्थापना के लिए आधार होगा।

इसलिए गांधी की आग्रह था कि मजदूर के लिए सभी प्रकार के लाभदायक श्रमक रने से समान व पर्याप्त वेतन मिलता रहे, परन्तु जब तक समान बंटवारे के सुदूर आदर्श को प्राप्त नहीं किया जा सकता, तब तक न्यास संगत बंटवारे के सिद्धांत को तत्काल समय के लिए प्राप्त करने के प्रयास किए जाएं। यह एक व्यावहारिक सूत्र है। प्रस्ताव यह था कि प्रत्येक मजदूर इतनी मजदूरी तो पाए ही कि वह अपने परिवार व स्वयं के लिए पर्याप्त भोजन व कपड़े जुटा सके। सरकार का यह कर्त्तव्य है िकवह इन सबक लिए सुविधाओं को सुनिशिचत

करें। यदि कोई सरकार यह सुनिश्चित नहीं करती है तो वह सरकार नहीं है। यह तो अराजकता है और ऐसे राज्य का शांतिपूर्वक विरोध करना चाहिए।

बंधोपाध्याय ने स्वराज की कुछ विशेषताओं को बताया है। ये सारांश में निम्नलिखित हैं––

(1) स्वराज आंतरिक स्वतंत्रता पर आधारित है। चूंकि कार्य की स्वतंत्रता अर्जित किए गए सद्‌गुणों से प्राप्त की जाती है, तब इसका अर्थ यह है कि इन अर्जित किए गए गुणों द्वारा व्यक्ति के आत्म–पूर्णता की मात्रा इस बात से प्रकट होगी कि व्यक्ति स्वराज या बाह्य स्वतंत्रता का प्रयोग कर रहा है। व्यक्ति का बाह्य स्वराज उसके आंतरिक नैतिक उद्‌भव से आगे नहीं बढ़ सकता है। गांधी ने कहा है। कि जिस बाह्य स्वतंत्रता को हम प्राप्त करेंगे वह उस बाह्य स्वतंत्रता के एकदम समानुपाती होगी जिसमें कि हम बड़े हुए हैं और अगर स्वतंत्रता का यह विचार सही है, तब हमारी मुख्य ऊर्जा को अंदर से ही सुधार करने के लिए केन्द्रित किया जाना चाहिए।

इस प्रकार से सुकरात व ईसा मसीह की भांति अभय आत्मपूर्णता की उपज हे। यह वह अभय है जो न केवल सभी बाह्य सत्ता, जिनमें शक्तिशाली राज्य या साम्राज्य भी शामिल है, का मुकाबला करता है बल्कि स्वयं मृत्यु का मुकाबला भी करता है। जैसा कि गांधी ने कहा कि यदि स्वराज प्राप्ति में देर है (भारत के मामले में) तब इसका कारण यह है कि हम मृत्यु से कम होने वाली मृत्यु व असुविधा का शांतिपूर्वक झेलने के लिए तैयार नहीं है और यह तथ्य न केवल व्यक्ति पर बल्कि राष्ट्र पर भी लागू होता है। गांधी ने कहा है कि वह राष्ट्र महान है जो मृत्यु के तकिए को अपने सिर पर रखता है। जो मृत्यु का मुकाबला करते हैं वे सब प्रकार के डर से मुक्त रहते हैं। जिस राष्ट्र के व्यक्ति अपनी आंतरिक स्वतंत्रता का विकास कर चुके हैं, उनको कोई भी बाह्य सत्ता नियंत्रित नहीं कर सकती है। गांधी का कहना है कि टॉलस्टाय इस प्रकार की आंतरिक स्वतंत्रता की प्रकृति को समझ चुके थे। टॉलस्टाय ने संसार के सभी उपदेशकों की भांति यह यह उपदेश दिया कि व्यक्ति को अपनी चेतना की आवाज सुनना चाहि, उसे स्वयं का स्वामी होना चाहिए और अपने अंदर से ही ईश्वर का साम्राज्य को ढूंढना चाहिए। उसे, उसकी मर्जी के बिना कोई भी सरकार नियंत्रित नहीं कर सकती है।

(2) स्वराज सिर्फ व्यक्ति से जुड़ा है–– स्वतंत्रता के आंतरिकपन और व्यक्तिगत नैतिक उत्तरदायित्व के बीच समानता यह है कि स्वराज वास्तव में एक व्यक्तिगत उपलब्धि का मामला है। गांधी ने इस बात पर बल दिया है कि आवश्यक तौर पर स्वतंत्रता सिर्फ व्यक्ति से जुड़ी है और गांधी ने सभी प्रकार के तानाशाही राजनीतिक विचार को इसी आधार पर चुनौती दी है और यह स्वतंत्रता व्यक्तिगत स्वतंत्रता की पूरक के रूप में है, न कि उसकी विरोधी है। गांधी ने घोषणा की कि व्यक्ति एक सर्वोच्च ईकाई है। इसलिए स्वतंत्रता का कोई भी विचार व्यक्ति से ही प्रारंभ होना चाहिए। जैसा कि गांधी का कहना है कि स्वराज का पहला कदम व्यक्ति में ही निहित है। यह सत्य जैसे व्यक्ति से जुड़ा है उसी प्रकार से ब्रह्याण्ड से जुड़ा है। जिस प्रकार से यह सत्य यहां जुड़ा है कहीं और भी जुड़ा है। इस प्रकार से व्यक्ति से बने समाज के सभी सदस्यों की स्वतंत्रता का परिणाम समाज पर राष्ट्र की स्वतंत्रता है। गांधी ने इस बात पर बल दिया है कि किसी व्यक्ति का स्वरूप सभी व्यक्तियों

के स्वराज का संपूर्ण योग है। इस प्रकार से जनता की राजनीतिक आत्म–शासन बाह्य नहीं हो सकता है, अपितु वह तो सभी व्यक्तियों की आंतरिक नैतिक स्वतंत्रता का परिणाम है। जैसा कि गांधी ने स्पष्ट किया है, ''मैंने विचार व कार्य द्वारा यह दर्शाने का प्रयास किया है कि राजनीतिक आत्म–शासन या आत्म–शासन स्त्रियों व पुरुषों की बहुसंख्या के लिए किसी व्यक्तिगत आत्म–शासन से बेहतर नहीं है और इसलिए इसको उन्हीं साधनों के द्वारा प्राप्त किया जाना चाहिए जिनके द्वारा व्यक्तिगत आत्म–शासन या आत्म–शासन को प्राप्त किया जाता है।''

(3) स्वराज का अर्थ सभी के लिए स्वतंत्रता या स्वराज है–– इस प्रकार के निरंकुश व्यक्तिवाद का आवश्यक तत्व यह है कि इसने लोकतंत्र के उस उपयोगितावादी विचार का ठुकराया है जिसमें लोकतंत्र अधिकतम लोगों के अधिकतम सुख का प्रतिनिधित्व करता है। गांधीवादी सामाजिक व राजनैतिक विचार की मुख्य बात यह विचार है कि मानवीय समाज में वास्तविक स्वतंत्रता का सभी को अधिकतम कल्याण से ही सुनिश्चित प्रकट भी नहीं किया जा सकता है। प्रत्येक व्यक्ति स्वयं में एक साध्य है और अगर अल्पसंख्यक लोगों की स्वतंत्रता पर बंधन लगाए जाएं तो सम्पूर्ण समाज की स्वतंत्रता में गुणात्मक गिरावट दिखाई पड़ती हे। इस प्रकार के सर्वव्यापी स्वतंत्रता के विचार को गांधी ने सर्वोदय (सभी का समान विकास का नाम) का नाम दिया है, यह एक संस्कृत शब्द है और गांधी जब रस्किन की ''अन टू द लास्ट'' (अंत्योदय) का गुजराती में, दक्षिण अफ्रीका में अनुवाद किया जब इस रचना को सर्वोदय का नाम दिया।

लोकतंत्र में बहुसंख्यक का शासन होता है और व्यक्ति के विचार व कार्य करने की स्वतंत्रता को ईर्ष्यालु ढंग से संरक्षित किया जाता है परन्तु स्वाभाविक तौर पर इस सर्वोदय समाज में, जैसा कि गांधी ने कहा है कि विश्वास है कि अल्पसंख्यक को पूरा अधिकार है कि वह बहुसंख्यक से जुदा कार्य भी कर सकता है........।''

गांधी का कहना है कि ''और तो और अन्तः करण के मामले में भी अल्पसंख्यक के कानून को कोई महत्व नहीं है।''

परन्तु इस प्रकार की भी सार्वभौम स्वतंत्रता प्रत्येक व्यक्ति की स्वतंत्रता पर निश्चित तौर पर सीमा लगाती है क्योंकि यह अन्यों की स्वतंत्रता में हस्तक्षेप नहीं करती है। अन्य शब्दों में, व्यक्ति अपने मूल्य के प्रति प्रतिबद्ध होकर समाज के प्रति भी उस मूल्य को प्रतिबद्ध करके यह देखता है कि उसके कार्य अन्य व्यक्तियों के मूल्यों में कोई हस्तक्षेप न करें।

गांधी ने कहा है कि ऐसा कोई भी सद्गुण नहीं है जो मात्र किसी व्यक्ति के कल्याण से जुड़ा या संगत हो या उसको लक्ष्य बनाता हो।

इसी प्रकार ऐसा कोई भी पाप नहीं है जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से पाप करने के अतिहरक्त अन्यों पर प्रभाव न डालता हो। इसलिए, चाहे कोई व्यक्ति बुरा हो या अच्छा यह उसका ही मामला नहीं है अपितु सम्पूर्ण समुदाय और सम्पूर्ण संसार का मामला है।

(4) व्यक्ति के लिए स्वराज एक सनातन निगरानी है–– इस प्रकार की स्वतंत्रता किसी देश से विदेशी शासन से मिली राजनीतिक स्वतंत्रता है। यह स्वाभाविक तौर पर अस्थायी स्वतंत्रता है। यद्यपि गांधी का तात्कालिक उद्देश्य भारत में ब्रिटिश शासन की समाप्ति था। गांधी ने कभी भी भारत की स्वतंत्रता को राजनीतिक स्वतंत्रता से जोड़कर नहीं देखा।

दूसरी तरफ, उन्होंने विदेशी शासन से स्वतंत्रता को स्वतंत्रता की ओर जाने वाली भारतीय लोगों की उपलब्धि ही माना। गांधी के अनुसार, बहुत बार उन्होंने ऐसा कहा, ब्रिटिश निरंकुशता और संभावित भारतीय निरंकुशता में कोई अंतर नहीं है। इसी प्रकार जैसा कि गांधी ने हिन्द स्वराज में कहा है कि अमेरिकी रॉकफेलरों और संभावित भारतीय रॉकफेलरों में कोई अंतर नहीं है।

यद्यपि अमेरिकी के रॉकफेलरों से हिन्दुस्तान के रॉकफेलर कुछ कम हैं, ऐसा मानना निरा अज्ञान है। यहां स्वतंत्रता नहीं है, वहां स्वतंत्रता नहीं है फिर चाहे उस देश में वहां के निवासियों या विदेशियों का ही शासन क्यों न हो? और इसलिए गांधी ने घोषणा की, ''मुझे भारत को केवल अंग्रेजों की पराधीनता से मुक्त कराने में ही दिलचस्पी नहीं है। मैं भारत को सभी प्रकार की पराधीनताओं से मुक्त कराने के लिए कटिबद्ध हूं।''

इसका अर्थ यह है कि जिस प्रकार की स्वतंत्रता की परिकल्पना गांधी ने की है वह केवल उसी समाज में संभव है, जिसमें व्यक्ति अपने अधिकारों के लिए राज्य की सुरक्षा पर पूर्णतया से निर्भर नहीं होते हैं। गांधी का कहना है कि स्वराज का अर्थ है कि सरकार के नियंत्रण से मुक्त होने का सतत प्रयास, यह सरकार विदेशी हो अथवा राष्ट्रीय। अगर व्यक्ति दिन–प्रतिदिन के मामलों के लिए सरकार की ओर देखे तो वह स्वराज किसी काम का नहीं होगा।

गांधीवादी राजनीतिक स्वतंत्रता के विचार में मौलिक तो यह है कि व्यक्ति की स्वतंत्रता व राज्य की सत्ता में एक बुनियादी अंतर्विरोध है। इसलिए गांधी ने ऐसे मुक्त समाज की कल्पना की है जो कि शोषण मुक्त समाज है और जहां बिना हथियार के ही व्यक्ति अपने अधिकारों को सुरक्षित रखते हैं। इस प्रकार के तथ्य के प्रति भारतीय समाज व विदेश में भी चेतना फैलाना गांधी के जीवन के प्राथमिक लक्ष्यों में से एक लक्ष्य था।

अपनी मृत्यु के साढ़े तीन वर्ष गांधी ने कहा था कि, मेरा कार्य तब पूरा होगा जब मैं मानवीय परिवार के पास यह विचार ले जाने में सफल होऊंगा कि प्रत्येक स्त्री या पुरुष, फिर वह शरीर से कमजोर ही क्यों न हों, अपने सम्मान व स्वतंत्रता का स्वयं ही संरक्षक है। अगर सम्पूर्ण संसार भी व्यक्ति के विरुद्ध खड़ा हो जाए तो भी इस प्रकार की सुरक्षा उपयोगी सिद्ध होगी।

(5) स्वराज में समानता शामिल है–– व्यक्ति की स्वतंत्रता की संकल्पना के मूलभूत रूप में तब तक नहीं स्वीकार किया जा सकता है, जब तक कि पहले इस संकल्पना को स्वीकार न कर लिया जाए कि सभी व्यक्ति समान हैं। इस प्रकार से स्वतंत्रता की गांधीवादी संकल्पना में आवश्यक तौर पर समानता का विचार, स्वतंत्रता और सभी का समान विकास, सभी अन्तर्बदल शब्द हैं। गांधी ने इन्हें सर्वोदय कहा है। बिना सामाजिक,

राजनीतिक और आर्थिक स्वतंत्रता के वास्तविक स्वतंत्रता की प्राप्ति नहीं की जा सकती है। किसी भी क्षेत्र में व्याप्त असमानता सार्वभौम स्वतंत्रता की संभावना को क्षीण कर देती है। गांधी का कहना है कि स्वराज की मुख्य कुंजी आर्थिक समानता है। अमीर व गरीब, पूंजी व श्रम के बीच की असमानता को समाप्त किए बिना समाज में किसी के लिए भी वास्तविक स्वतंत्रता प्राप्त नहीं की जा सकती है। यदि भारत का वास्तविक अर्थ में स्वतंत्रता प्राप्त करनी है तो भारत के मुख्य शहरों में महलों में और गांवों में झोपड़ियों में रहने वाले लोगों के बीच कोई अंतर नहीं रहना चाहिए। गांधी का मानना था कि वह भारत ही वास्तव में स्वतंत्र होगा, जहां सफाई करने वालों, डॉक्टरों, वकीलों, अध्यापकों और व्यापारियों को एक दिन का ईमानदारीपूर्वक कार्य करने के पश्चात् समान वेतन मिलेगा।

(6) स्वराज में अहिंसा शामिल है––सार्वभौम स्वतंत्रता का प्रतिनिधित्व कर रहे सर्वोदय समाज को आवश्यक तौर पर अहिंसा पर आधारित होना चाहिए। अहिंसा के द्वारा ही, गांधी के अनुसार, स्वतंत्रता का संरक्षण व संवर्धन किया जा सकता है। गांधी का मानना है कि हिंसा का मार्ग निश्चय ही तानाशाही की ओर जाता है और अहिंसा का मार्ग लोकतंत्र की ओर जाता है। गांधी के लिए कारण स्पष्ट है, ''सच्चा लोकतंत्र अथवा स्वराज झूठे और हिंसक साधनों का आश्रय लेकर कभी स्थापित नहीं किया जा सकता। क्योंकि इनके प्रयोग का स्वाभाविक उप परिणाम यह होगा कि आपकों अपने हर प्रकार के विरोध को समाप्त करने के लिए दमनचक्र चलाना होगा या विरोधियों को देश निकाला दे देना होगा। इसे हम व्यक्तिगत स्वतंत्रता नहीं कह सकते हैं। व्यक्तिगत स्वतंत्रता केवल विशुद्ध अहिंसा के वातावरण में ही पल्लवित हो सकती है।''

इसके अतिरिक्त, इस सार्वभौम लोकतंत्र के लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह स्त्री हो या बच्चे, सभी इसमें सक्रिय रूप से भाग लेंगे। इसका कारण यह है कि स्वतंत्रता की प्रक्रिया में भाग लेने से व्यक्तिगत स्वतंत्रता का क्षेत्र बढ़ता है। इस प्रकार की स्वतंत्रता का सार्वभौम विकास उस समाज मे संभव नहीं है जहां कि स्वतंत्रता की ही संभावना नहीं है।

गांधी के अनुसार, उस समय में जहां राज्य की हिंसक शक्ति द्वारा स्वतंत्रता का संरक्षण किया जाता है, वहां स्वतंत्रता संभव नहीं है। ऐसी स्वतंत्रता का विकास तो एक अहिंसक समाज में ही होता है।

जैसा कि गांधी ने कहा है कि अगर यह मान लिया जाए कि भारत उचित मात्रा में अस्त्र–शस्त्र बनाए और ऐसे व्यक्ति पैदा करे जो युद्ध की कला जानते हैं, तब स्वराज की प्राप्ति में उन लोगों का क्या हिस्सा होगा, जो शस्त्रों को सहन नहीं कर सकते हैं? मैं ऐसे स्वराज की प्राप्ति चाहता हूं जिसमें शारीरिक रूप से सबल के साथ मिलकर स्त्रियां व बच्चे भी अपना समान योगदान दे सकें। और यह केवल अहिंसा के अंतर्गत ही हो सकता है।29

संदर्भ

1. साल्तोरी बी.ए., एन्सीऐंट इंडियन पॉलिटीकल थॉट, मुम्बई : एशिया पब्लिशिंग हाउस, 1968, पृ. 74–75।
2. एन. राघवन अय्यर, द मोरल एण्ड पॉलिटीकल थॉट ऑफ महात्मा गांधी, दिल्ली : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1973, पृ.347।
3. गांधी, एम. के. हिन्द स्वराज, अहमदाबाद, नवजीवन पब्लिशिंग (हाउस), 1929, पृ. 11–12।
4- http%//en.wikipedia.org/wifi/self rate.
5. यंग इंडिया, 8–12–1920, पृ. 884–85।
6. तेंदुलकर, डी. जी., महात्मा, नई दिल्ली : प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, 1961, खण्ड 2, पृष्ठ 326।
7. यंग इंडिया, 19–3–1931, पृ. 38।
8. वही, 19–1–1924, पृ. 195।
9. वही, 29–1–1925, पृ. 41।
10. वही, 6–8–1925, पृ. 276।
11. वही, 1–5–1930, पृ. 149।
12. वही, 26–6–1931, पृ. 31।
13. वही, 18–6–1931, प्. 147।
14. हरिजन, 3–3–1946, पृ. 31।
15. यंग इंडिया, 16–4–1931, पृ. 78।
16. हरिजन, 28–4–1946, पृ. 111।
17. यंग इंडिया, 17–4–1924, पृ. 170।
18. हरिजन, 29–9–1940, पृ. 306।
19. वही, 1940।
20. यंग इंडिया, 1–5–1930।
21. गांधी, एम.के., 'इन सर्च ऑफ सुप्रीम', में खण्ड–1, पृ. 267।
22. यंग इंडिया, 3–4–1924, पृ. 109।
23. गांधी, एम.के., टू द स्टूडेंट्स (हिंगोरानी द्वारा संपादित), अहमदाबादः नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, पृ. 47–48।
24. हरिजन, 1939।
25. 1909 की इण्डिन ओपिनियन, महात्मा गांधी सम्पूर्ण वाड्.मय, नई दिल्ली : प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, खण्ड ण्, पृ. 451।

26. हरिजन 9–6–1946।

27. महात्मा गांधी के भाषण व लेख (मद्रास : जीनेटासन व कम्पनी), पृ. 409।

28. महादेव देसाई, वीद गांधी इन सीलोन, (मद्रास : एस. गणेशन ट्रिप्लिकेन), 1928, पृ. 98।

29. हरिजन, 3–3–1945।

अध्याय –13

गांधी तथा साम्प्रदायिक एकता

आधुनिक भारत में साम्प्रदायिकता को लेकर जितनी भी समस्याएं हैं या फिर साम्प्रदायिकता का विकास कैसे हुआ, साम्प्रदायिक एकता की आवश्यकता क्यों पड़ी, क्या गांधी साम्प्रदायिक एकता लाने में सफल रहे? इन सब प्रश्नों का उत्तर खोजने से पहले यह जानना आवश्यक है कि आखिर यह साम्प्रदायिकता है क्या? इस दिशा में ऐसा माना जाता है कि साम्प्रदायिकता या साम्प्रदायिक विचारधारा के तीन चरण[1] होते हैं, जिसमें एक तारतम्य बना रहता है। सबसे पहले चरण में एक विश्वास होता है जिसके अनुसार यह मान लिया जाता है कि एक ही धर्म मानने वालों के सांसारिक हित––राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक भी एक समान होते हैं। यहीं से धर्म पर आधारित सामाजिक राजनीतिक समुदायों की धारणा का जन्म होता है। साम्प्रदायिक विचारधारा का दूसरा तत्व या चरण यह विश्वास होता है कि भारत जैसे बहुभाषी समाज में एक धर्म के अनुयायियों के सांसारिक हित––राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक हित अन्य किसी ाीी धर्म के अनुयायियों के सांसारिक हितों से भिन्न हैं। तीसरे चरण में यह मान लिया जाता है कि विभिन्न धर्मों के अनुयायियों या समुदायों के हित एक–दूसरे के विरोधी हैं। यहां अगर साम्प्रदायिकता का अर्थ हिन्दू–मुसलमान साम्प्रदायिकता से लें तो साम्प्रदायिक व्यक्ति यह जोर देकर कहने लगता है कि हिन्दुओं और मुसलमानों के सांसारिक हित एक समान हो ही नहीं सकते, उनमें परस्पर विरोध होना ही है।

इस प्रकार साम्प्रदायिकता वह विचारधारा है जिसके आधार पर साम्प्रदायिक राजनीति खड़ी होती है। किसी भी व्यक्ति या दल में साम्प्रदायिक विचारधारा का जन्म पहले चरण में होता है लेकिन समय के साथ–साथ उन पर साम्प्रदायिकता के दूसरे और तीसरे चरण हावी हो जाते हैं। जवाहर लाल नेहरू लिखते हैं कि, ''यह बात कभी नहीं भूलनी चाहिए कि भारत में साम्प्रदायिकता एक परवर्ती घटना है, जिसका जन्म हमारी आंखों के सामने ही हुआ है।''[2] साम्प्रदायिकता के सम्बन्ध में यह माना जाता है कि किसी समुदाय विशेष के लोगों के एक सामान्य धर्म के अनुयायी होने के नाते उनके राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक हित भी एक जैसे होते हैं। इस मत के अनुसार हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई इत्यादि अलग–अलग सम्प्रदायों के व्यक्ति हैं, जिनके हित उस सम्प्रदाय के सदस्यों के बीच तो समान हैं, लेकिन दूसरे सम्प्रदायों के सदस्यों से विरोधी हैं। इसी आधार पर यह कहा जा सकता है कि हिन्दू, मुसलमान, सिख सबके हित भिन्न–भिन्न तथा असमान हैं। ''साम्प्रदायिकता की शुरूआत हितों की पारस्परिक भिन्नता से होती है, किन्तु सामान्यतया इसका अन्त धर्मानुयायियों में पारस्परिक विरोध तथा शत्रुता की भावना से होता है।''[3]

हिन्दू मुस्लिम साम्प्रदायिकता का संदर्भ

सम्पूर्ण भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की सबसे प्रमुख और अहम समस्या हिन्दू मुस्लिम एकता की समस्या थी। भारत जैसे विभिन्न धर्मों, जातियों, वर्गों एवं संस्कृतियों वाले देश में ब्रिटिश साम्राज्यवादी नीति के विरुद्ध स्वतंत्रता प्राप्ति का लक्ष्य विश्व के दूसरे देशों की स्वतंत्रता प्राप्ति के लक्ष्य से अलग–थलग था। 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम से लेकर 1885 तक कांग्रेस की स्थापना के बीच भारतीय राष्ट्रीयता का जन्म तथा विकास हो चुका था, लेकिन साथ ही हिन्दू मुस्लिम एकता का प्रश्न भी विद्यमान था। साम्प्रदायिकता की भावना हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच बढ़ती जा रही थी। जहां इन सम्प्रदायवादी प्रवृत्तियों के लिए ब्रिटिश साम्राज्य की कूटनीति जिम्मेदार थी वहीं हिन्दुओं और मुसलमानों के व्यक्तिगत स्वार्थ तथा ऐतिहासिक परम्पराएं भी कम जिम्मेदार नहीं थीं। ब्रिटिश सरकार यह समझ चुकी थी कि कांग्रेस के जन्म के साथ ही राष्ट्रीय आंदोलन का बीज फूटकर एक पौधे का रूप धारण कर चुका है।

इन परिस्थितियों में साम्राज्यवादी ब्रिटिश सरकार ने राष्ट्रीय आन्दोलन को तोड़ने के लिए ''फूट डालो और शासन करो'' की नीति का सहारा लिया। 1857 का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम जिसमें हिन्दू और मुसलमान कंधे से कंधा मिलाकर लड़े थे, उसे देखते हुए यह समझ लिया गया कि अगर हिन्दू और मुसलमान संगठित होकर कोई आन्दोलन खड़ा करते हैं तो ब्रिटिश सरकार के लिए ज्यादा दिनों तक इस देश में ठहरना मुश्किल होगा। इस भय से छुटकारा पाने के लिए 'साम्प्रदायिकता' का सहारा लिया गया। वस्तुतः यहां साम्प्रदायिकता का प्रयोग राष्ट्रीय आन्दोलन के विस्तार को रोकने, उसे कमजोर करने तथा भारतीय जनता को राष्ट्र के रूप में उभरने नहीं देने के लिए किया गया था। भारत में मुसलमानों की स्थिति अल्पसंख्यकों की थी। सामाजिक सुधारों और नवजागरण में भी वे पीछे थे। शासकों द्वारा यह बात मन में बैठा दी गई कि अलसंख्यकों के हितों की रक्षा के लिए विभाजन आवश्यक है और भारतीय मुसलमान बड़ी आसानी से इस फंदे में आ गए।

सर सैयद अहमदखान, जो हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच महान विचारक और समाज सुधारक थे, ने अपने आरम्भिक दिनों में भारत में 'हिन्दू मुस्लिम एकता' पर बल देते हुए दोनों को एक ही धरती का नागरिक कहा था। हिन्दुओं और मुसलमानों की साझेदारी पर जोर देते हुए उन्होंने 1884 में कहा था, ''क्या आप एक ही देश में नहीं रहते? क्या एक ही जमीन पर आपका अन्तिम संस्कार नहीं होता? याद रखिए, हिन्दू और मुसलमान शब्द सिर्फ धार्मिक अन्तर बतलाते हैं अन्यथा सभी लोग चाहे वो हिन्दू हो या मुसलमान, यहां तक कि इस देश में रहने वाले ईसाई भी, इस मामले में एक ही राष्ट्र के लोग हैं।''[4] लेकिन कांग्रेस की स्थापना के बाद उनका स्वर बदल गया और उसमें साम्प्रदायिकता की झलक दिखाई देने लगी। परिषदों में मुस्लिम प्रतिनिधित्व को लेकर वे विचलित हो उठे और कांग्रेस का विरोध करते हुए उसे एक 'हिन्दू संस्था' घोषित कर दिया। उन्हें लगा कि ब्रिटिश सरकार का साथ देकर मुसलमानों के लिए आर्थिक और राजनीतिक अवसर बढ़ाए जा सकते हैं। के.के. अजीज का कहना था कि, ''भारत में मुसलमान अल्पसंख्या में थे और अल्पसंख्यक हमेशा शासकों के साथ अच्छे सम्बन्धों को बनाना बुद्धिमानी मानते हैं। अतः परिस्थितिवश मुसलमानों को अंग्रेजों की गोद में बैठा दिया गया।''

मुसलमानों के मन में यह बात घर कर गई कि अगर अंग्रेज भारत से चले जाएंगे तो हिन्दू अपनी संख्या बल के कारण मुसलमानों पर हावी हो जायेंगे और उनके हितों का गला घोंट देंगे। ऐसा मान लिया गया कि भारत में मुस्लिम हितों की देखभाल सबसे अच्छी अंग्रेज ही कर सकते हैं। अतः मुसलमानों को सरकार के प्रति वफादार रहना चाहिए और राष्ट्रीय कांग्रेस का विरोध करना चाहिए। हिन्दुओं और मुसलमानों के हितों में अन्तर्विरोध है, यह बात बार–बार कही जाने लगी। सर सैयद अहमद खान तो अब यह मानने लगे कि "भारत एक राष्ट्र ही नहीं है" तथा कांग्रेस एक हिन्दू संस्था है, जिसके उद्देश्य मुस्लिम हितों के विरुद्ध हैं। उनका मानना था कि सरकारी नौकरियों, विधायिकाओं आदि में मुसलमानों के लिए आरक्षण होना चाहिए। उनकी मृत्यु के बाद भी मुस्लिम सम्प्रदायवादियों ने सरकार के प्रति वफादारी की नीति बनाए रखी।

1906 में 'मुस्लिम लीग' की स्थापना मूलतः इस उद्देश्य से की गई कि राष्ट्रीय आंदोलन से मुसलमानों का एक विशाल वर्ग कांग्रेस से अलग हो जाएगा। (कांग्रेस के 1887 में हुए अधिवेशन की अध्यक्षता बहरुद्दीन तेयब ने की थी। बाद के अधिवेशनों में भी मुसलमान प्रतिनिधियों की संख्या बढ़ रही थी। आर.एस. सयानी, एत्र हीम जी, मीर मुशर्रफ हुसैन, हामिद अली खान तथा अन्य कई मुस्लिम बुद्धिजीवी कांग्रेस में शामिल हुए थे और उनका मानना था कि कांग्रेस की एक भी मांग साम्प्रदायिक नहीं है।) मुस्लिम लीग की स्थापना और उसकी नीतियां कांग्रेस के सिद्धांतों के विपरीत थीं। मुस्लिम लीग का चरित्र सरकारपरस्त, साम्प्रदायिक तथा अनुदारवादी था। उसने न केवल बंगाल विभाजन का समर्थन किया, अपितु मुसलमानों के लिए अलग मतदाता मंडलों की मांग भी की। मुस्लिम लीग की स्थापना का उद्देश्य मुस्लिम शिक्षित वर्ग को कांग्रेस से विमुख करना था। उसका संघर्ष औपनिवेशिक सत्ता से नहीं बल्कि राष्ट्रीय कांग्रेस और हिन्दुओं से था।

1905 में बंगाल का विभाजन हो चुका था। हालांकि बहाना 'प्रशासनिक सुविधा' का बनाया गया लेकिन इसके मूल में हिन्दुओं और मुसलमानों की बेच खाई खड़ी करना और राष्ट्रीय आन्दोलन को तोड़ना था। लार्ड ने, "बड़े आकार वाले बंगाल प्रान्त को पुनर्गठित करने के नाम पर, बौद्धिक वर्ग के प्रभाव को बंगाल पर से और बंगाल का प्रभाव भारत पर से हटाने की अपनी योजना को कार्य रूप में परिणित कर लिया।"[5] कर्जन जानते थे कि एकीकृत बंगाल एक शक्ति है, इसे विभाजित करके इस शक्ति को तोड़ा जा सकता है। बंगाल का विभाजन न तो इसलिए किया गया था कि हिन्दुओं या मुसलमानों ने उसके लिए स्पष्ट रूप से कोई मांग की थी, न इसलिए कि वैसा किए बिना प्रशासनिक समस्या का कोई अन्य हल न था। उसका असली कारण यह था कि ब्रिटिश शासक भारतीय राष्ट्रीय एकता को बढ़ते हुए देखकर भयभीत थे और उसे रोकने के लिए चिंतित थे। अतः इस विभाजन के चलते हिन्दू–मुसलमान पृथकता और तीव्र हो गई।

1909 में मार्ले–मिन्टो सुधारों के नाम पर 'पृथक मतदाता मण्डल' बना दिए गए, जिससे साम्प्रदायिक राजनीति को बढ़ावा मिला। इस पद्धति के तहत मुसलमान मतदाताओं के लिए अलग चुनाव क्षेत्र बना दिए गए, जहां सिर्फ मुसलमान उम्मीदवार ही खड़े हो सकते थे और मतदान का अधिकार भी सिर्फ मुसलमानों को ही था।

इन परिस्थितियों में स्वतंत्रता के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए यह नितांत आवश्यक था कि हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच जो दूरियां बढ़ रही थीं उसे कम किया जाए तथा उनकी एकता की खुली गांठ को फिर से जोड़ा जाए। सौभाग्य से इसी समय भारतीय राजनीति के क्षितिज पर गांधी का उदय हुआ जो अपने धर्म और वचन दोनों से हिन्दू–मुस्लिम एकता के सबसे बड़े समर्थक थे।

गांधी तथा साम्प्रदायिक एकता का प्रश्न

गांधी के लक्ष्यों और कार्यक्रमों में साम्प्रदायिक एकता तथा सद्भावना का एक महत्वपूर्ण स्थान रहा है। साम्प्रदायिक सद्भाव का मूल निश्चित रूप से हिन्दू–मुस्लिम एकता है लेकिन, ''हिन्दू–मुलसमान एकता का तात्पर्य केवल हिन्दू और मुसलमानों के बीच एकता से ही नहीं है, परन्तु उन सब लोगों के बीच एकता से है जो विश्वास करते हैं कि भारत उनका घर है, चाहे वे किसी भी सम्प्रदाय को मानने वाले हों।''[6] दक्षिण अफ्रीका के दिनों से ही वे दावा करते रहे हैं कि, ''वह एक अच्छे मुसलमान हैं तथा साथ ही साथ विश्व के अन्य धर्मों के भी अच्छे सदस्य हैं।'' उन्होंने इस्लाम धर्म का गहन अध्ययन भी किया था। गांधी के अनुसार, ''वे एक ऐसे धर्म के अनुयायी हैं जो सभी धर्मों को सत्य मानता है अतः वे दावा कर सकते हैं कि वे एक ईसाई, एक बौद्ध, एक मुसलमान व एक पारसी भी हैं।''[7] गांधी के अनुसार साम्प्रदायिक एकता न केवल एक ऐतिहासिक जरूरत है बल्कि एक सामाजिक जरूरत भी है। इस एकता को प्राप्त करने का जरिया निश्चित रूप से अहिंसा होगा और लक्ष्य होगा सर्वोदय अर्थात् सबका कल्याण।

'हिन्द स्वराज' तथा हिन्दू–मुसलमान प्रश्न

1909 में गांधी द्वारा लिखित पुस्तक 'हिन्द स्वराज' में भी इस प्रश्न को उठाया गया है। अध्याय 9 तथा 10 में गांधी का पाठक यह प्रश्न उठाता है कि हिन्दू और मुसलमानों में तो कट्टर वैर है, सो वे एक राष्ट्र हो ही नहीं सकते। हमारी कहावतें भी ऐसी ही हैं, ''मियां ओर महादेव की नहीं बनेगी।''[8] हिन्दू पूर्व में ईश्वर को पूजता है तो मुस्लिम पश्चिम में पूजता है। मुसलमान हिन्दू को बुत परस्त–मूर्तिपूजक मानकर उसे नफरता करता है, हिन्दू मूर्ति पूजक है, मुसलमान मूर्ति को तोड़ने वाला है। हिन्दू गाय को पूजता है, मुसलमान उसे मारता है। हिन्दू अहिंसक है, मुसलमान हिंसक। यों पग–पग पर जो विरोध है, वह कैसे मिटे और हिन्दुस्तान एक कैसे हो?''[9] गांधी पाठक की इन शंकाओं का जवाब देते हुए कहते हैं कि, ''दुनिया के किसी भी हिस्से में एक राष्ट्र का अर्थ एक धर्म नहीं लिया गया है, हिन्दुस्तान में तो ऐसा था ही नहीं।''[10] हिन्दुस्तान में चाहे जिस धर्म के लोग रह सकते हैं, उससे राष्ट्र मिटता नहीं हैं जो नए लोग उसमें दाखिल होते हैं वे इसकी प्रजा को तोड़ नहीं सकते, बल्कि इसकी प्रजा में घुल–मिल जाते हैं। अगर हिन्दू यह माने कि सारा हिन्दुस्तान सिर्फ हिन्दुओं से भरा होना चाहिए तो यह एक निरा सपना है, मुसलमान अगर ऐसा माने कि उसमें सिर्फ मुसलमान ही रहें, तो उसे भी सपना ही समझिये। फिर भी हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई जो इस देश को अपना वतन मानकर बस चुके हैं एक देशी, एक मुल्की है, वे देशी भाई हैं और उन्हें एक–दूसरे के स्वार्थ के लिए भी एक होकर रहना पड़ेगा।

गांधी कहते हैं कि यह 'कट्टर वैर' तो अंग्रेजों के आने के बाद हुआ है। इतिहास गवाह है कि, ''हिन्दू लोग मुसलमान बादशाहों के मातहत और मुसलमान हिन्दू राजाओं के मातहत (अधीन) रहते आए हैं। दोनों को ही यह समझ आ गया था कि झगड़ने से कोई फायदा नहीं, इसलिए दोनों ने मिलकर रहने का फैसला किया। झगड़े तो फिर से अंग्रेजों ने शुरू करवाए।''[11] 'मियां और महादेव की नहीं बनती' तो एक कहावत है। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि बहुत से हिन्दुओं और मुसलमानों के बाप–दादा एक ही थे। हमारे अन्दर एक ही खून है। धर्म अलग होने से कोई एक–दूसरे का दुश्मन नहीं बन जाता। 'धर्म तो एक ही जगह पहुंचने के अलग–अलग रास्ते हैं।' कहावतों के आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि हिन्दुस्तान एक राष्ट्र नहीं है। गांधी के अनुसार, ''मैं यह नहीं कहता कि हिन्दू और मुसलमान कभी झगड़ेंगे ही नहीं। दो भाई भी अगर साथ रहते हैं तो उनमें तकरार होती है।''[12] लेकिन अगर कोई तीसरा आदमी दोनों के बीच झगड़ा पैदा कर सके, तो उन भाइयों को हम कच्चे दिल का कहेंगे। इसी तरह अगर हिन्दू और मुसलमान कच्चे दिल के होंगे तो फिर अंग्रेजों का कसूर निकालना बेकार होगा। 'कच्चा घड़ा एक कंकड़ से नहीं तो दूसरे कंकड़ से टूट ही जाता है। इसके लिए जरूरी है कि घड़े को पक्का बनाया जाए ताकि कंकड़ से कोई डर रहे ही नहीं।'

'रचनात्मक कार्यक्रम' में भी गांधी ने स्वीकार किया है कि, ''साम्प्रदायिक एकता की जरूरत हर कोई मंजूर करता है, लेकिन यहां एकता का मतलब केवल राजनीतिक एकता नहीं हैं राजनीतिक एकता तो जोर–जबरदस्ती से भी लादी जा सकती है। एकता के सच्चे माने हें दिली दोस्ती, जो किसी के तोड़े न टूटे। इस तरह की एकता पैदा करने के लिए आज आवश्यकता इस बात की है कि कांग्रेस अपने को हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी सभी कौमों का नुमाइंदा समझे। हर एक के साथ वह आत्मीयता अनुभव करे। उनके सुख–दुख में अपने को उनका साथी समझे। अपने से भिन्न धर्म का पालन करने वालों के साथ निजी दोस्ती कायम करे और अपने धर्म के लिए उसके मन में जैसा प्रेम है, ठीक वैसा ही प्रेम वह दूसरे धर्म से भी करे।''[13]

गांधी के अनुसार, ''मैं ऐसी आशा नहीं करता हूं कि मेरे सपनों के आदर्श भारत में केवल एक ही धर्म होगा, यानि वह सम्पूर्णतः हिन्दू या ईसाई या मुसलमान बन जाएगा। मैं तो यह चाहता हूं कि वह पूर्णतः उदार और सहिष्णु बने और उसके सब धर्म साथ–साथ चलते रहें।''[14]

'मेरे सपनों का भारत' पुस्तक में भी साम्प्रदायिक एकता का प्रश्न उठाया गया हैं गांधी के अनुसार, '6हिन्दू और मुसलमान मुंह से तो कहते हैं कि धर्म में जबरदस्ती का कोई स्थान नहीं है। लेकिन यदि हिन्दू गाय को बचाने के लिए मुसलमान की हत्या करे, तो यह जबरदस्ती के वि‍ा और क्या है। इसी तरह यदि मुसलमान जोर–जबरदस्ती से हिन्दुओं को मस्जिदों के सामने बाजा बजाने से रोकने की कोशिश करते हैं तो यह भी जबरदस्ती के सिवा और क्या है? धर्म तो इस बात में है कि आसपास चाहे जितना शोरगुल होता रहे, फिर भी हम अपनी प्रार्थना में तल्लीन रहे।''[15]

हिन्दू–मुलसमान झगड़ों के दो स्थायी कारण रहे हैंμएक गौवध और दूसरा मस्जिदों के सामने बाजा बजाना। गांधी के अनुसार, ''मैं इस्लाम के बारे में यह बखूबी जानता हूं कि इस्लाम अपने अनुयायियों को गोहत्या के लिए मजबूर नहीं करता। यह अपने अनुयायियों को मजबूर करता है कि जब भी मानवीय रूप में सम्भव हो, वे अपने पड़ोसियों की भावनाओं को सम्मान प्रदान करें।''[16] गांधी यह मानते हैं कि अंग्रेजों के लिए रोज कितनी ही गायें कटती हैं लेकिन तब हम चुप रहते हैं। जब कोई मुसलमान गाय की हत्या करता है, तभी हम क्रोध के मारे लाल–पीले हो जाते हैं। जिस तरह हिन्दू गोवध से दुखी होते हैं, उसी तरह मुसलमानों को मस्जिदों के सामने बाजा बजने पर बुरा लगता है। जिस तरह हिन्दू मुसलमानों को गोवध न करने के लिए बाध्य नहीं कर सकते, उसी तरह मुसलमान भी हिन्दुओं को डरा–धमकाकर बाजा बन्द करने के लिए बाध्य नहीं कर सकते। हम जानते हैं कि, ''हिन्दुओं का कोई भी धार्मिक समारोह संगीत के बिना सम्पन्न नहीं हो सकता। इस्लाम किसी भी मुलसमान को बाध्य नहीं करता कि वह एक गैर मुसलमान को मस्जिद के निकट गाने–बजाने से रोके। व्यक्ति कोलाहल और शोर के रहते हुए अपनी प्रार्थना में खो जाए यही साधना है।''[17] इन दोनों मुद्दों को सुलझाने के लिए जबरदस्ती की नहीं बल्कि दोनों की धार्मिक भावनाओं को समझने की जरूरत है। इस प्रयत्न में 'बहुसंख्यक' समाज को पहल करके अल्पसंख्यक जातियों में अपनी ईमानदारी के विषय में विश्वास पैदा करना चाहिए।''[18] यहां जरूरत है धार्मिक सहिष्णुता की न कि एक–दूसरे को अपना विरोधी समझने की।

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन तथा साम्प्रदायिक एकता का प्रश्न

1915 से 1917 के बीच भारतीय राजनीति में गांधी का अवतरण भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के लिए एक महत्वपूर्ण मोड़ साबित हुआ। इससे पहले भारतीय राजनीति के क्षितिज पर अनेक नेता उभर चुके थे, लेकिन समय के साथ–साथ उनके प्रभाव में कमी आने लगी। राष्ट्रीय आंदोलन एक नया मोड़ ले चुका था जिसमें साम्प्रदायिकता की भावना पूरे वेग के साथ आगे बढ़ रही थी। 1915 में गोपाल कृष्ण गोखले की मृत्यु हो चुकी थी। सुरेन्द्र नाथ बैनर्जी तथा दादा भाई नारौजी का प्रभाव कम होता जा रहा था। अरविन्द घोष राजनीति से संन्यास ले चुके थे तथा बाल गंगाधर तिलक भी जीवन के अंतिम पग पर कदम रख चुके थे। राष्ट्रीय क्षितिज पर नए युवा नेताओं का उदय हो रहा था जिनमें महात्मा गांधी प्रमुख थे। उनमें आंदोलन को एक नया रूप देने की अद्भुत क्षमता थी। दक्षिण अफ्रीका में वे 'सत्याग्रह' के सफल प्रयोग कर चुके थे। भारत में भी 1917 के बाद वे चम्पारण, खेड़ा, बारदोली इत्यादि में विभिन्न आंदोलनों में सफल रहे थे जहां उन्होंने सत्य तथा अहिंसा का प्रयोग किया।

1918 में प्रथम विश्व युद्ध समाप्त हो चुका था। ब्रिटिश सरकार से भारतीयों को बहुत उम्मीदें थीं किन्तु जब राज्य के प्रति भक्ति के बदले में ब्रिटिश सरकार ने भारतीयों के लिए 'रौलेट एक्ट' जैसे काले कानून को पारित किया तो भारतीयों के मन में सन्देह और घृणा की भावना तीव्र हो गई। भारतीयों को यह यकीन हो गया कि, ''ब्रिटिश साम्राज्य ओर शैतानियत का प्रतीक है और जिसको ईश्वर से प्रेम है वह कभी भी शैतान से प्यार

नहीं कर सकता।''[19] गांधी भी साम्राज्यवादी सरकार के कट्टर शत्रु बन गए। उन्होंने इस एक्ट को 'दमन का चरम रूप' कहा। इन परिस्थितियों में उनके पास सरकार से असहयोग करने के अलावा कोई दूसरा रास्ता नहीं बचा। यह परिवर्तन भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की नैतिक नींव के विनष्ट होने का अन्तिम चरण था। प्रतिक्रिया स्वरूप एक प्रतिज्ञापत्र तैयार किया गया और कानून वापिस लेने की बात की गई क्योंकि इस कानून से न्याय और स्वतंत्रता के सभी सिद्धांतों का उल्लंघन होत है। 30 मार्च 1919 को 'सत्याग्रह दिवस' मनाया गया। प्रदर्शनों में हिन्दू और मुसलमान साथ–साथ शामिल हुए। ''जामा मस्जिद में एकत्र मुसलमानों की भीड़ को सम्बोधित करने के लिए आर्य समाज के नेता स्वामी श्रद्धानन्द को आमंत्रित किया गया।''[20] एक मस्जिद में गांधी और सरोजनी नायडू ने भाषण दिए। इसी दौरान 13 अप्रैल 1919 को 'जलियां वाला बाग' की दुखद घटना हुई। अब निश्चित रूप से सरकार से असहयोग के अलावा दूसरा कोई विकल्प न था।

खिलाफत आंदोलन तथा साम्प्रदायिक एकता

प्रथम विश्वयुद्ध (1914–1918) में धुरी शक्तियों (जर्मनी, ऑस्ट्रिया, हंगरी, टर्की, बल्गेरिया) की हार हुई तथा मित्र राष्ट्रों की विजय। 31 अक्टूबर 1918 को टर्की ने मित्र राष्ट्र के समक्ष हथियार डाल दिए। टर्की का सुल्तान सम्पूर्ण इस्लामी जगत का धार्मिक नेता माना जाता था। ब्रिटेन ने उसे (खलीफा को) पदहीन कर दिया। भारतीय मुसलमान इससे चिंतित हो उठे। प्रथम विश्व युद्ध ने मुसलमानों के लिए धार्मिक संकट पैदा कर दिया था। ब्रिटिश प्रजा होने के नाते उनकी वफादारी सरकार के प्रति थी, लेकिन अपनी परम्परा के नाते वे खलीफा के प्रति श्रद्धा से बंधे थे जो मुस्लिम समाज का धार्मिक नेता था। ''एक मुसलमान के लिए खलीफा के आदेश की अवहेलना का मतलब खुदा को नाराज करना है।''[21] हालांकि टर्की की अखण्डता तथा अरब के पवित्र इस्लामी स्थलों की सुरक्षा का आश्वासन दिया गया था लेकिन पराजय के बाद जब टर्की को अपमानित किया गया तो भारतीय मुसलमान विक्षुब्ध हो उठे। 18 सितम्बर 1919 को बम्बई खिलाफत सभा में गांधी ने भाग लिया ओर अपने विचार रखे। ''मैं मानता हूं कि खिलाफत का प्रश्न आपके लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। इसका प्रभाव केवल मुसलमानों पर ही नहीं, हिन्दुओं तथा अन्य सम्प्रदायों पर भी पड़ता है। इस्लाम के लिए जो भी कुछ परम पवित्र है वह सब इस प्रश्न के साथ जुड़ा हुआ है। मैं आपकी भावनाओं को बखूबी समझ सकता हूं क्योंकि मैं जानता हूं कि यदि हिन्दुओं के धार्मिक सम्मान पर कोई आंच आए तो वे कैसे महसूस करेंगे। आपके इस न्यायपूर्ण संघर्ष में सभी हिन्दू आपके साथ हैं। क्या आप अपने उद्देश्य के लिए अपनी बलि देने को तैयार हैं? यदि हैं तो फिर आप सत्याग्रही हैं तथा आपकी विजय निश्चित है।''[22] गांधी के अनुसार, ''अन्याय का सही इलाज बहिष्कार नहीं बल्कि असहयोग है।''[23] गांधी की हिन्दू–मुस्लिम एकता में निष्ठापूर्ण आस्था थी। अपने व्यक्तित्व और प्रतिष्ठा के बल पर उन्होंने कांग्रेस को खिलाफत की मांग के पक्ष में कर लिया। गांधी के अनुसार, ''यदि खिलाफत जैसे महान ध्येय के सम्बन्ध में सरकार धोखा देती है तो हमारे लिए असहयोग के सिवाय कोई चारा नहीं रह जाता।''[24]

10 मार्च, 1920 को गांधी ने एक घोषणा पत्र द्वारा असहयोग आंदोलन छेड़ने की बात कही। भारतीय मुसलमानों ने भी इसमें अपना पूर्ण सहयोग/समर्थन देने का निश्चय किया। गांधी पूर्ण रूप से आश्वस्त थे कि खिलाफत में मुसलमानों का पक्ष न्याय संगत है। उनका कहना था कि, "मैं भारतीय होने के नाते अपने अन्य भारतीय भाइयों के कष्ट संकटों में भागीदार होने के लिए प्रतिबद्ध हूं। अगर मैं मुसलमानों को अपना भाई मानता हूं तो यह मेरा कर्तव्य है कि अगर मुझे उनका पक्ष न्यायसंगत प्रतीत होता है तो मैं इस संकट की घड़ी में अपनी पूरी क्षमता से उनकी मदद करूं।"[25]

भारतीय मु2सलमानों को जब अपने अनुरोधों का कोई परिणाम निकलते हुए नहीं दिखा तो उन्हें लगा कि उनकी पीड़ाजनक कठिनाइयों का एकमात्र व्यावहारिक हल गांधी के प्रस्तावों में है। अतः उन्होंने गांधी का नेतृत्व स्वीकार किया तथा उनके मार्गदर्शन पर पूरे मनोयोग से चलना शुरू कर दिया। गांधी से एक प्रश्न पूछा गया कि आप मुसलमानों का साथ कब तक देंगे। उनका जवाब था, "मैं अपने मुलसमान भाइयों के साथ उनकी न्यायपूर्ण मांगों के लिए अन्त तक संकट भोगना टीक समझता हूं। मैं तब तक उनका साथ देता रहूंगा जब तक मेरी राय में जिन उपायों का वे प्रयोग करते हैं, वे उतने ही अच्छे हैं जितना अच्छा उनका उद्देश्य है। मैं मुसलमानों के आंतरिक भावों पर किसी तरह का नियंत्रण नहीं रख सकता। मैं यह स्वीकार करता हूं कि खिलाफत का प्रश्न उने लिए इस अर्थ में धर्म का प्रश्न है कि वे अपने प्राणों की बाजी लगाकर भी इस प्रश्न के सम्बन्ध में अपने लक्ष्य की सिद्धि के लिए बंधे हुए हैं।"[26]

मुस्लिम नेताओं के रूप में भारत के खिलाफत आंदोलन के कर्णधार दो मुस्लिम भाइयों––मौलाना शौकत अली तथा मौलाना मुहम्मद अली के प्रति गांधी का दृष्टिकोण अत्यंत निर्मल था। मुस्लिम लीग की स्थापना के बाद से जो साम्प्रदायिक विचारधाराएं भारत में फैली थीं, गांधी उससे परिचित थे। अतः राष्ट्रीय आंदोलन को सफलतापूर्वक आगे बढ़ाने के लिए गांधी ने जिस हिन्दू–मुस्लिम एकता को बढ़ावा दिया, उसके लिए यह आवश्यक था कि खिलाफत के कर्णधार मौलाना शौकत अली तथा मौलाना मुहम्मद अली को वे अपने पक्ष में करते। गांधी की दृष्टि में ये दोनों भाई हिन्दू–मुस्लिम एकता के प्रति समर्पित व्यक्तित्व थे, तो यह मानते थे कि, 'हिन्दू–मुस्लिम एकता के सिवा हिन्दुस्तान के छुटकारे का कोई रास्ता नहीं है।' अतः गांधी ने हिन्दू–मुस्लिम एकता की नींव को मजबूत कर भारत को स्वतंत्रता दिलाने की दृष्टि से खिलाफत और असहयोग आंदोलन को साथ–साथ चलाया।

9 जून, 1920 में हुई खिलाफत कमेटी की बैठक में असहयोग के चारों चरणों को निर्धारित किया गया। (क) पदों तथा खिताबों का त्याग करना, (ख) सरकारी सेवाओं से पद त्याग, (ग) पुलिस एवं सेन से पदत्याग, (घ) टैक्स देने से इन्कार करना। जुलाई 1920 के खिलाफत सम्मेलन में, जहां गांधी मौजूद थे, उन्होंने हिन्दुओं से आह्वान किया कि वे मुसलमानों की सहायता के लिए आगे आएं और सरकार के साथ सहयोग करना बंद कर दें। गांधी ने कहा, "मुझे यह जानकर बहुत चिंता हुई है कि साम्राज्य के वर्तमान प्रतिनिधियों के मन में छल–कपट

और बेईमानी समा गई है। भारत की जनता की इच्छाओं के लिए उनके मन में कोई आदर नहीं है। उनकी दृष्टि में भारत के सम्मान का कोई मूल्य नहीं है। मेरे मन में ऐसी सरकार के लिए कोई सम्मान नहीं हो सकता।''[27]

28 जुलाई, 1920 को गांधी ने घोषणा की कि असहयोग आंदोलन 1 अगस्त से प्रारम्भ होगा। किन्तु दुर्भाग्यवश उसी दिन, 1 अगस्त को बाल गंगाधर तिलक की मृत्यु हो गई। हिन्दू–मुस्लिम एकता का ऐसा उदाहरण पहले नहीं देखा गया था। जहां शौकत अली ने तिलक की अर्थी को गंधा दिया था, वहीं भारतीय मुसलमानों ने श्रद्धानन्द को जामा मस्जिद से भाषण देने का अवसर प्रदान किया था। यह सब गांधी के राजनैतिक चमत्कार का परिणाम था। 1 अगस्त, 1920 को ही गांधी ने अपने एक पत्र में लिखा, ''खिलाफत और असहयोग आंदोलन के अनुसार मैं केसरे–हिन्द स्वर्ण पदक, जुलू युद्ध पदक तथा बोअर युद्ध पदक लौटा रहा हूं। ये पदक मेरे लिए सम्मानजनक और मूल्यावान हैं। किन्तु मेरी आत्मा इन्हें धारण करने की गवाही नहीं देती, जब तक कि भारतीय मुसलमान अपनी धार्मिक भावनाओं पर कुठारघात के कारण क्षुब्ध हैं। सरकार का रवैया खिलाफत के प्रति अन्यायपूर्ण और अनैतिक है। साथ ही जनरल डायर के कुकृत्य के प्रति सरकार की उदासीनता के कारण मैं अब सरकार से सहयोग करने में असमर्थ हूं।''[28]

इस पत्र के साथ ही उन्होंने सरकार को वे सब पदक लौटा दिए जो उन्हें ब्रिटिश भारत में सरकार की सेवा के लिए दिए गए थे। इसी बीच गांधी ने शौकत अली तथा मुहम्मद अली के साथ मिलकर देश के दूर–दूर कोने तक दौरा कर हिन्दू–मुस्लिम एकता पर बल दिया। इस प्रकार गांधी मुसलमानों की सहायता के लिए वचनबद्ध थे। उनके लिए खिलाफत का प्रश्न न्याय पर आधारित था। इसलिए देश के लोगों को एक–दूसरे की मदद के लिए आना चाहिए। उन्होंने कहा, ''यह ठीक–ठाक मेरी नैतिक जिम्मेदारी की भावना है जिसने मुझे खिलाफत के प्रश्न को हाथ में लेने तथा मुलसमानों के दुख–सुख में उनका साथ देने के लिए प्रेरित किया है। यह बिल्कुल सही है कि मैं हिन्दू–मुस्लिम एकता में सहयोग दे रहा हूं और उसे प्रोत्साहित कर रहा हूं।''[29]

1921 तक भारत में हिन्दू–मुस्लिम एकता तथा खिलाफत एवं असहयोग आंदोलन पूरे वेग से फैलता रहा। इन्हीं दिनों वकीलों ने वकालत छोड़ दी, अध्यापकों ने नौकरी तथा विद्यार्थियों ने पढ़ाई छोड़ दी। सरकार से असहयोग करने की घोषणा एक क्रांतिकारी कदम था जो किसी युद्ध की घोषणा के समान था। गांधी मुसलमानों में भी राष्ट्रीयता की भावना फैलाकर अंग्रेजी साम्राज्य को चुनौती देना चाहते थे। लेकिन जुलाई 1923 में टर्की के मुस्तफा कमाल पाशा ने मित्र राष्ट्रों के साथ लोसाने की संधि कर ली तथा टर्की से हमेशा के लिए सुल्तान पद को समाप्त कर गणतंत्र की घोषणा की तो भारत में खिलाफत आंदोलन का दबाव समाप्त हो गया। भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के इतिहास में खिलाफत आंदोलन हिन्दू–मुस्लिम एकता की कड़ी को जोड़ने वाला आंदोलन था। गांधी के अनुसार, ''हिन्दू–मुस्लिम एकता इस बात में निहित है कि हमारे उद्देश्य, लक्ष्य तथा सुख–दुख एक समान हों। एक–दूसरे का दुख बांटना तथा परस्पर सहिष्णुता बढ़ाना इस एकता की भावना को बढ़ाने का सबसे अच्छा तरीका है।''[30] गांधी जिन्ना के इस कथन से पूर्णतः सहमत थे कि हिन्दू–मुस्लिम एकता के आधार पर ही सच्चा

स्वराज मिल सकता है। यंग इंडिया में लिखे एक लेख में गांधी लिखते हैं कि, ''जब तक भारत में हिन्दू और मुसलमान घुल–मिल नहीं जाते, भारत के लिए स्वराज असम्भव सपना ही बना रहेगा।''[31] गांधी के प्रयत्नों से ही हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच मैत्री की शाश्वत नींव पड़ी थी लेकिन कहीं अंदर से गांधी स्वयं यह अनुभव करते थे कि, ''दोनों समुदायों की एकता का सूत्र क्षीण और कच्चे धागे जैसा हैं दोनों में आपसी अविश्वास है। मुसलमान स्वराज की वैसी आवश्यकता अनुभव नहीं करते जैसी हिन्दू करते हैं। मुसलमानों में राष्ट्रीयता की भावना जागृत करने के लिए जितना समय चाहिए, उतना नहीं मिला है।''[32] गांधी फिर लिखते हैं कि, ''दोनों सम्प्रदायों में एक–दूसरे के प्रति अविश्वास है। हिन्दू सोचते हैं कि स्वराज का अर्थ मुस्लिम राज है जबकि मुसलमानों का ख्याल है कि हिन्दू बहुसंख्यक में हैं, इसलिए वे उन्हें कुचल डालेंगे।''[33]

1924 तक आते–आते हिन्दू–मुस्लिम एकता का यह गठबन्धन टूटता नजर आने लगा तथा साम्प्रदायिकता की भावना पुनः फैलने लगी। मुहम्मद अली जिन्ना जिन्होंने हिन्दू–मुस्लिम एकता को मजबूत करने के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी, जिसके चलते गोखले ने उन्हें 'हिन्दू–मुस्लिम एकता का दूत' कहा था, उनका स्वर भी साम्प्रदायिक हो गया। गांधी पर हिन्दुओं तथा मुसलमानों दोनों की तरफ से आरोप–प्रत्यारोप लगने लगे। गांधी ने इस दिशा में बहुत लगन से कार्य किया था। लेकिन यह समझना भी जरूरी है कि 'एकता या पृथकता का मुद्दा उतना धार्मिक नहीं था जितना राजनीतिक। जाहिर है यदि यह समस्या केवल धार्मिक होती तो किसी भी प्रकार से इसका सुलझना असम्भव होता। इतिहास गवाह है कि ऐसे प्रयास निष्फल रहे हैं। कबीर, नानक, अकबर इत्यादि बहुत से लोग हिन्दू धर्म और इस्लाम धर्म को नहीं मिला पाए।''[34] गांधी इस समस्या को राजनीतिक दृष्टि से नहीं देखते थे, लेकिन वे यह महसूस करते थे कि, ''मस्जिदों के सामने बाजा बचाना या बकरीद के मौके पर गौहत्या जैसी छोटी–छोटी बातें सामाजिक व्याधियों के लक्षण हैं।''[35] शायद उन्होंने इन बातों को सुलझाने में हार मान ली थी क्योंकि 1924 में उन्होंने जो 21 दिन का उपवास किया था वह भी निष्फल ही रहा था।

हिन्दू–मुस्लिम समस्या जटिल होती गई। गांधी ने स्वीकार किया, ''फिलहाल मैंने इस समस्या को ताक पर रख दिया है, किन्तु इसका यह मतलब नहीं है कि मुझे इसके सुलझाने की कोई आशा नहीं है। जब तक मुझे इसका कोई हल नहीं मिलता तब तक मेरा मस्तिष्क इस समस्या पर विचार करता ही रहेगा। किन्तु मुझे यह बात स्वीकार करनी ही होगी कि मैं कोई ऐसा व्यवहार्य हल जिसकी आप आशा करते हैं, फिलहाल प्रस्तुत नहीं कर सकता।''[36] उन्होंने स्वीकार किया कि, ''मैं हिन्दू–मुस्लिम एकता में जान नहीं डाल सकता सो उसके लिए मुझे कोई प्रत्यक्ष कार्यवाही करने की जरूरत नहीं। एक हिन्दू की हैसियत से मैं उन तमाम मुसलमानों की सेवा करूंगा, जो मुझे करने देंगे। जो मेरी सलाह चाहेंगे मैं उन लोगों को सलाह दूंगा। उन दूसरों की मैं चिन्ता करना छोड़ देता हूं जिनके लिए मैं कुछ नहीं कर सकता। लेकिन मुझे अपने मन में पूर्ण विश्वास है कि एकता जरूर होगी, चाहे वह घमासान लड़ाइयों के बाद ही क्यों न हो, किन्तु होगी जरूर।''[37]

साम्प्रदायिक कलह तथा भारत विभाजन

गांधी द्वारा खिलाफत तथा असहयोग आंदोलन के दिनों में हिन्दू–मुस्लिम एकता की जड़ को मजबूत करने का जो प्रयास किया गया था वह 1924 के बाद से टूटता नजर आया। भारतीय राजनीति में साम्प्रदायिकता की भावना पुनः एक बार पनपने लगी। हिन्दू–मुस्लिम सौहार्द्र बिखरने लगा। जगह–जगह साम्प्रदायिक दंगे भड़कने लगे। गांधी की आत्मा इस कलह से व्यथित हो उठी। उनका कहना था कि, ''हिन्दू–मुस्लिम मैत्री की जिस चट्टान पर मैंने एक संयुक्त, स्वतंत्र भारत की इमारत खड़ी करनी चाही थी, वह दोनों जातियों के आपसी वैर–भाव के भयंकर ज्वार में डूब गई है।''[38] 18 सितम्बर, 1924 गांधी ने हिन्दू–मुस्लिम एकता के लिए 21 दिन का उपवास शुरू किया। यह उपवास ''सर्वोच्च हित––सार्वभौम मानव भ्रातृत्व––के प्रति कर्तव्य की प्रेरणा थी।''[39] यह उपवास नेकी का एक जोखिम भरा प्रयोग था। उनका मानन था कि, ''अगर भारतवासी भाइयों की तरह एक हो जाएं, तो कोइ भी विदेशी अधिक समय तक उन पर प्रभुत्व नहीं रख सकता।''[40] धार्मिक एकता व्यक्त करने वाली छोटी–सी रस्म करें, जिसमें ईसाई भजन तथा वैष्णव जन भजन गाए जाएं। उपवास द्वारा गांधी हिन्दू और मुसलमान दोनों की अन्तरात्मा से अपील करना चाहते थे कि वे इस आत्मघाती मार्ग का परित्याग कर दें। लेकिन गांधी के इस नैतिक उपवास का प्रभाव साम्प्रदायिक तत्वों पर अधिक नहीं हुआ। साइमन कमीशन रिपोर्ट (1928) के अनुसार, ''भारत के विभिन्न दलों के बीच मतभेदों से यह साबित हो जाता है कि भारत स्वशासन के योग्य नहीं है। अतः किसी भी तरह से महत्वपूर्ण राजनीतिक सुधार की बात भारत में नहीं की जा सकती।''[41] कमीशन ने देश में 'साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व' बनाए रखने की सिफारिश की। 10 अगस्त, 1932 रैम्जे मैकडोनल्ड ने 'साम्प्रदायिक निर्णय' की घोषणा की जिसमें मुसलमानों के साथ–साथ दलितों, पिछड़ी जातियों, सिखों इत्यादि को भी अल्पसंख्यकों की श्रेणी में लाया गया। ''इस योजना से मुसलमान ही नहीं बल्कि दूसरे गुट भी अपने को अलग राष्ट्रीय इकाइयां मानने लगे। वे अपने हितों को भारतीय हितों से अलग समझने लगे। ब्रिटिश सरकार के पास देश के टुकड़े करने के लिए तथा राष्ट्रीयता की भावना की वृद्धि रोकने के लिए इससे बढ़कर कोई दूसरा तरीका नहीं हो सकता था।''[42] गांधी इस निर्णय से बहुत दुखी हुए। उन्होंने दलित वर्ग के लिए अलग साम्प्रदायिक निर्वाचन प्रणाली का विरोध किया। 18 अगस्त, 1932 को प्रधानमंत्री रैम्जे मैकडोनल्ड को लिखे एक पत्र में उन्होंने 20 सितम्बर से 'आमरण अनशन' की सूचना दी। उनका कहना था कि यदि दलित वर्गों को पृथक निर्वाचन को समाप्त नहीं किया गया तो, ''आपके निर्णय का मुझे अपने प्राणों की बाजी लगाकर विरोध करना पड़ेगा।''[43] हालांकि बाद में दलित वर्ग के लिए पृथक मतदान की योजन समाप्त हो गई लेकिन दोनों सम्प्रदायों में कटुता और अधिक बढ़ गई।

मुहम्मद अली जिन्ना जिन्होंने 'हिन्दू–मुस्लिम एकता के राजदूत' के रूप में अपनी यात्रा शुरू की थी, 1937 तक आते–आते यह कहने लगे कि, ''मुसलमानों की सारी समस्याएं अन्य भारतीयों से सर्वथा भिन्न हैं।'' 1938 में उन्होंने एक भाषण देते हुए कहा, ''कांग्रेस दूसरे सभी समुदायों तथा संस्कृतियों को नष्ट करने तथा हिन्दू राज कायम करने के लिए पूरी तरह दृढ़ प्रतिज्ञ है। गांधी का आदर्श है हिन्दू धर्म को पुनर्जीवित करना तथा इस

देश में हिन्दू राज कायम करना।''[44] मार्च 1940 में उन्होंने छात्रों को सम्बोधित करते हुए कहा, ''मिस्टर गांधी चाहते हैं कि हिन्दू राज के तहत मुसलमानों को कुचल डालें और उन्हें प्रजा बनाकर रखें।''[45] अगस्त 1941 के अपने भाषण में उन्होंने घोषित किया कि, ''संयुक्त भारत में मुसलमानों का अस्तित्व ही समाप्त कर दिया जायेगा। कांग्रेस भारत के मुसलमानों तथा दूसरे अल्पसंख्यक समुदायों पर हावी होना तथा हकूमत चलाना चाहती है।''[46] हिन्दू–मुस्लिम प्रश्न पर गांधी और जिन्ना के बीच बातचीत भी हुई लेकिन परिणाम कुछ नहीं निकला। जिन्ना ने यह स्पष्ट कर दिया कि यहां दो राष्ट्र हैं––हिन्दू और मुसलमान। उन्होंने अलग राष्ट्र की मांग की स्पष्ट घोषणा कर दी, जिसे 'पाकिस्तान प्रस्ताव' के नाम से जाना जाता है।

इस दिशा में हिन्दू साम्प्रदायिकतावादी भी पीछे नहीं रहे। 1939 में एम.एस. गोलवरकर ने गांधी की ओर इशारा करते हुए कहा कि, ''जिन लागों ने 'हिन्दू–मुस्लिम एकता के बिना स्वराज नही मिल सकता' का नारा बुलन्द किया है, उन्होंने हमारे समाज के साथ सबसे बड़ी गद्दारी की है। उन्होंने एक महान और प्राचीन जाति की जीवनी शक्ति को नष्ट करने का सबसे घृणित पाप किया है।''[47] इन हिन्दू साम्प्रदायिकतावादियों में भी, ''हिन्दुत्व खतरे में है'' का शोर मचाना शुरू कर दिया। गांधी ने विभाजन के प्रति अपना विरोध प्रकट करते हुए कहा, ''भारत को दो राष्ट्रों में विभाजित करना अराजकता से भी बुरा है। इसे किसी भी कीमत पर बर्दाश्त नहीं किया जा सकता। भारत को खण्डित करने से पहले मुझे खण्डित करो।''[48]

परिस्थितियां लगातार प्रतिकूल होती चली गईं। साम्प्रदायिक दंगे भड़कने लगे। देश विभाजन की तारीख तय कर दी गई। यह विभाजन धार्मिक आधार पर हुआ था और इस साम्प्रदायिक संघर्ष को प्रतिक्रियावादी ताकतों ने भड़काया था। भारत ने 15 अगस्त, 1947 को बड़े उल्लास के साथ अपना प्रथम स्वतंत्रता दिवस मनाया। अधूरा सपना साकार हो गया, लेकिन गांधी खुश नहीं थे। उनका भारत की एकता का स्वप्न बिखर गया था। उदासी में डूबे गांधी जिन्होंने भारतीय जनता को सत्य, अहिंसा और प्रेम का संदेश दिया था, बंगाल में पैदल घूम रहे थे। वे लोगों को साम्प्रदायिक दंगों के समय सांत्वना दे रहे थे। गांधी ने विभाजन को एक 'आध्यात्मिक दुर्घटना' की संज्ञा दी और कहा, ''मेरे निकटतम मित्रों ने ने जो किया है या वे जो कुछ कर रहे हैं, उससे मैं सहमत नहीं हूं।''[49] उन्होंने आजादी के समारोह में भाग लेने से भी इन्कार कर दिया। गांधी ने इसे आजादी नहीं वरन् साम्प्रदायिकता की विजय बताते हुए कहा कि, ''मेरे 32 वर्ष के काम का शर्मनाक अंत हो रहा है। 15 अगस्त, 1947 की भारत की स्वाधीनता की विजय वस्तुतः एक रूखी राजनीतिक व्यवस्था है। यह आजादी का खोखा छिलका है। यह दुखांत विजय है। यह ऐसी विजय है जिसमें सेना खुद अपने सेनापति को हराते हुए पाई गई।''[50]

गलती कहां हुई?

1947 में देश का विभाजन हो गया लेकिन विभाजन के बाद की अवधि में भी साम्प्रदायिक शान्ति वापिस नहीं लौटी। साम्प्रदायिक कलह की घटनाओं में लगातार बढ़ोतरी हो रही थी। यहां यह जानने की गम्भीर आवश्यकता है कि गलती आखिर कहां हुई और वह आज तक भी ठीक क्यों नहीं की जा सकी? मार्च 1940 में

गांधी ने स्वयं लिखा था कि, ''एक समय ऐसा था (खिलाफत आंदोलन का समय) जब एक भी मुसलमान ऐसा नहीं था जिसका विश्वास मैंने अर्जित न किया हो, आज मुझे उनका विश्वास प्राप्त नहीं है तथा अधिकांश उर्दू प्रेस मेरे ऊपर गालियों की बौछार कर रही हैं।''[51] तो क्या गांधी असफल रहे? इसे समझने के लिए कुछ ऐतिहासिक संदर्भों को जानना जरूरी होगा––

0 अंग्रेजी शासन के दौरान प्रत्येक बात पर साम्प्रदायिक दृष्टि से विचार होता था, उसमें भी अधिकतर हिन्दू व मुस्लिम दृष्टि से। सामाजिक विविधता को सम्प्रदाय के रूप में पहचाना गया। धीरे–धीरे यह साम्प्रदायिक भेद इतने गहरा दिए गए कि इस अन्तर को समाप्त करना राष्ट्रीय आंदोलन के बस में नहीं रहा।

0 भारतीय मुसलमान भी विश्व के अन्य मुसलमानों की तरह गैर–मुसलमानों से अपने पृथकत्व में विश्वास रखते थे। वे अपने आपको उन मुसलमान शासकों की संतान समझते थे जिन्होंने अंग्रेजी राज से पहले लगभग हजार वर्ष तक भारत में राज किया था। जब स्वराज की मांग उठी तो उन्हें यह लगने लगा कि सत्ता पूर्व वर्षों के उन्हीं शासकों को लौटाई जाएगी।

0 महाराष्ट्र में गणपति उत्सव की शुरूआत, बनारस में हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना तथा हिन्दी प्रचार के आंदोलन यद्यपि अंग्रेजी सरकार द्वारा समर्थित पाश्चात्य संस्कृति के विनाशकारी आक्रमण को रोकने एवं स्वदेशी संस्कृति की अपनी जड़ों को सींचने के उद्देश्य से किए गए थे, परन्तु दुर्भाग्य से इन्हें मुसलमान विरोधी कदम समझा गया। इसी तरह सर सैयद अहमद खान द्वारा चलाए गए मुस्लिम पुनरुत्थान आंदोलन को हिन्दुओं ने गलत समझा।

0 गांधी ने एक सच्चे धर्म परायण एवं गहराई से धर्म का मर्म समझने वाले व्यक्ति की तरह 'ईश्वर' और 'अल्लाह' की एकात्मकता को व्यक्त करते हुए सार्वजनिक प्रार्थनाएं प्रारम्भ की। लेकिन स्वतंत्र भारत के लिए जिस 'रामराज्य' की संकल्पना उन्होंने दी, मुसलमानों ने उसे 'हिन्दू राज' समझा।

0 गौ–हत्या के प्रश्न तथा मस्जिद के निकट बाजे बजाने के बारे में मतभेद पर भी बार–बार विवाद छिड़ने लगे, जिससे साम्प्रदायिक कलह को बल मिला।

0 मुसलमानों का यह मानना कि इस्लाम राष्ट्रवाद से बंधा हुआ नहीं है। अतः वे मुसलमान पहले हैं और भारतीय बाद में।

इस प्रकार साम्प्रदायिक कलह के मौजूद रहते हुए भी गांधी बार–बार कहते थे कि निराश होने की कोई बात नहीं है। ''मैं जानता हूं कि विघटन का राक्षस अपनी मृत्यु शैय्या पर है। यह लड़ाई यद्यपि दुर्भाग्यपूर्ण है लेकिन इसमें से एक सशक्त राष्ट्र जरूर उभरेगा।''[52]

गांधी ने अंत तक अपने कार्यों, विचारों और सिद्धांतों से साम्प्रदायिक एकता का समर्थन किया। इस एकता के लिए जनवरी 1948 में किया गया उनका उपवास यह बताता है कि पूरे भारत में कम से कम एक

व्यक्ति ऐसा है जो इस एकता के लिए अपनी जान न्यौछावर करने के लिए तैयार है। अगर वे ज्यादा समय जीवित रहे होते तो निश्चित रूप से इस आपसी अविश्वास और संदेह को दूर करने की दिशा में और अधिक कार्यरत रहते। निश्चित रूप से दोनों देशों के बीच आपसी सहयोग की दिशा में वे कार्य करते। गांधी एक ऐसे व्यक्तित्व थे जो व्यक्ति की सीमा से उठकर 'महात्मा' की सीमा तक पहुंच चुके थे। उनकी दृष्टि में सत्ता या शक्ति जैसी चीजों का कोई मोल नहीं था। घृणा, विद्वेष, हिंसा से वे कोसों दूर थे। 1947 की घटनाओं से वे खिन्न जरूर हुए थे, परन्तु निराश नहीं हुए। आजादी के बाद भी उनके प्रयत्न जारी रहे। हिन्दू–मुस्लिम एकता को उन्होंने भारतीय भूमि पर सैद्धांतिक और व्यावहारिक दोनों रूपों में अति आवश्यक समझा था और अपने जीवन के आखिरी क्षण तक वे इसी कार्य में लगे रहे।

संदर्भ

1. बिपिन चन्द्र, भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निर्देशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 2001, पृ. 319–320।
2. वही, पृ. 322।
3. सत्या एम. राय, भारत में उपनिवेशवाद एवं राष्ट्रवाद हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निर्देशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 1983, पृ. 543।
4. बिपिन चन्द्र, पृ. 333।
5. ताराचन्द, भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन का इतिहास, 1983, खण्ड–3, प्रकाशन विभाग, सूचना प्रसारण मंत्रालय, नई दिल्ली, पृ. 319।
6. द वे टु कम्यूनल हारमोनी बाई एम.के. गांधी, कम्पाइल्ड एंड एडिटेड बाई यू.आर. राव, नवजीवन, अहमदाबाद, 1983, पृ. 8।
7. गांधी मार्ग, नवम्बर–दिसम्बर, 1997, पृ. 11, शैलेन्द्रनाथ घोष, गांधी जी असफल क्यों हुए, उनका स्वप्न कैसे पूरा होगा।
8. महात्मा गांधी, हिन्द स्वराज, नवजीवन, अहमदाबाद, दिसम्बर 1999, पृ. 32।
9. वही, पृ. 32।
10. वही, पृ. 33।
11. वही, पृ. 34।
12. वही, पृ. 37।
13. महात्मा गांधी, रचनात्मक कार्यक्रम, नवजीवन, अहमदाबाद, जनवरी 2004, पृ. 11–12।
14. महात्मा गांधी, मेरे सपनों का भारत, नवजीवन, अहमदाबाद, अप्रैल 2004, पृ. 257–258।

15. वही, पृ. 272।

16. गांधी मार्ग, पृ. 17।

17. वही, पृ. 17।

18. मेरे सपनों का भारत, पृ. 292।

19. ताराचन्द, भाग–3, पृ. 502।

20. वही, पृ. 503।

21. एस. आर. बक्शी, गांधी एंड हिन्दू–मुस्लिम यूनिटी, दीप पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 1987, पृ. 19।

22. सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय, खण्ड–16, प्रकाशन विभाग भारत सरकार, नई दिल्ली, 1986, पृ. 131।

23. ताराचन्द, भाग–3, पृ. 437–438।

24. रामगोपाल, भारतीय मुसलमानों का राजनीतिक इतिहास, मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ, 1986, पृ. 131।

25. ताराचन्द, भाग–3, पृ. 515।

26. सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय, खण्ड–17, पृ. 517–518।

27. डी.जी. तेंदुलकर, महात्मा, खण्ड–1, पृ. 365।

28. बी.एन. पाण्डेय (एडि.) इंडियन नेशनल मूवमेंट (1885–1947), मेकमिलन, दिल्ली, 1979, पृ. 52।

29. तेंदुलकर, खण्ड–2, पृ. 71।

30. सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय, खण्ड–17, पृ. 6।

31. यंग इंडिया, 6 अक्टूबर, 1920, पृ. 404।

32. यंग इंडिया, 21 मई, 1921, पृ. 411।

33. यंग इंडिया, 28 जुलाई, 1921, पृ. 413–14।

34. ताराचन्द, भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन का इतिहास, भाग–4, प्रकाशन विभाग, सूचना प्रसारण मंत्रालय, 1984, पृ. 12।

35. वही, पृ. 12।

36. सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय, खण्ड–26, पृ. 239।

37. वही, पृ. 506।

38. लुई फिशर, गांधी की कहानी, सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005, पृ. 79।

39. वही, पृ. 80।

40. वही, पृ. 81।

41. सत्या एम. राय, पृ. 70–71।

42. वही, पृ. 85।

43. लुई फिशर, पृ. 121।

44. बिपिन चन्द्र, पृ. 349।

45. वही, पृ. 349।

46. वही, पृ. 350।

47. वही, पृ. 351।

48. द वे टू कम्युनल हारमोनी, पृ. 303।

49. लुई फिशर, पृ. 237।

50. वही, पृ. 237।

51. गांधी मार्ग, पृ. 11।

52. वही, पृ. 31।

अध्याय–14

महिलाओं पर गांधी के विचार

भूमिका

महात्मा गांधी इस तथ्य को पूरी निष्ठा के साथ स्वीकार करते थे कि समाज के पुनर्गठन में महिलाओं को निशचित रूप से सकारात्मक भूमिका निभानी है। उन्होंने महिला अधिकारों के मामले में खुद को हठधर्मी घोषित किया हुआ था क्योंकि वे सामाजिक न्याय को हासिल करने के लिए महिलाओं की समानता को स्वीकार किया जाना बेहद जरूरी मानते थे। वे मानते थे कि कि उनके समय के कई आंदोलन ''अपनी महिलाओं'' की स्थिति के कारण बीच में ही बंद हो गये और महिला शक्ति का इस्तेमाल नहीं किये जाने के कारण अधिकांश प्रयासों के अपेक्षित नतीजे भी नहीं निकल पाये। महिलाओं की दुविधापूर्ण स्थिति के बारे में इस तरह की समझ के साथ गांधी अपने समय की सोच से काफी आगे थे। उन्नीसवीं सदी में महिलाओं की समस्याओं के बारे में सजगता पारम्परिक पारिवारिक ढांचे में उनकी स्थिति तक ही सीमित था। बहुत कम लोगों ने उस मूलभूत असमानता और अन्याय के बारे में सोचा जिसका महिलाओं को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक रूप से सामना करना पड़ता था। उस समय महिला को न तो पुरुष का समान साथी माना जाता था और न ही महिला को एक व्यक्ति के तौर पर ही पहचाना जाता था। दिलचस्प बात यह है कि उस समय भारत पर शासन कर रही विदेशी सत्ता भी यकीन नहीं करती थी कि भारत में महिलाएं कभी पुरुषों की बराबर की सहयोगी बन पाएंगी। इसके ठीक उलट महिलाओं की स्थिति के बारे में गांधी अपनी संवेदनशीलता और गहन जानकारी के कारण बाकियों से अलग नजर आते हैं। गांधी ने वर्ष 1921 में 'यंग इंडिया' के अपने एक लेख में कहा था, ''पुरुष द्वारा खुद बनायी गई बुराइयों में से कोई भी इतनी अपयश–जनक, पाशविक और अप्रिय नहीं है जितनी कि मानवता के आधे हिस्से यानि महिला के साथ किया गया दुर्व्यवहार है। हालांकि महिला कमजोर लिंग नहीं है।'' वह महिलाओं की असमानता और अन्यायपूर्ण स्थिति को सामान्यतया स्वीकार करते हैं और सीधे तौर पर यह भी कहते हैं कि ''अगर मेरा जन्म एक महिला के रूप में हुआ रहता तो मैं पुरुष के ढोंग के खिलाफ बगावत कर देता।'' प्रयोगधर्मी होने के नाते गांधी ने कस्तूरबा के साथ अपने रिश्तों का जिक्र करते हुए कहा था कि उनके सम्बन्ध तभी सच्चे बन पाए थे जब उन्होंने ''बा के साथ बर्ताव के तरीके को बदल दिया।.... उन्हें उनके सभी अधिकार प्रदान कर दिये।''

अपनी पहचान

गांधी की अनूठी सोच और राय थी कि एक महिला अपने आप में एक व्यक्ति भी है। जिंदगी के बारे में कोई योजना बनाने के विषय पर ंधी कहते थे कि महिला को भी अपनी किस्मत आजमाने का उतना ही हक है जितना कि एक पुरुष का है। गांधी ने बहुत पहले यह मान लिया था कि ''एक तटस्थ विदेशी सत्ता के शासन में भी महिला की कानूनी और पारम्परिक स्थिति हमेशा खराब ही रही है और इसमें क्रांतिकारी सुधार किये जाने की आवश्यकता है।''

गांधी ने महिला को एक व्यक्ति के रूप में मान्यता दिये जाने की अपनी सोच को विस्तार देते हुए कहा कि मूलभूत रूप से महिला और पुरुष एक ही हैं और लाक्षणिक तौर पर दोनों में आत्मा भी समान है। गांधी ने कहा, ''महिला और पुरुष एक ही जिंदगी जीते हैं और उनकी भावनाएं भी एक जैसी होती हैं।'' हालांकि वह महिला और पुरुष को मूलतः एक मानते थे, फिर भी इन दोनों के व्यवसाय और भूमिकाओं में भिन्नता को वह अपेक्षित और स्वीकृत भी मानते थे। लेकिन उन्होंने हमेशा इस बात पर बल दिया कि 'महिला को भी ईश्वर से समान मानसिक क्षमता मिली हुई है। महिला को पुरुष की गतिविधियों से जुडत्री बेहद छोटी जानकारी का भागीदार बनने का अधिकार है और उसे पुरुष के ही समान स्वतंत्रता और मुक्ति का अधिकार मिला हुआ है।''

गांधी ने हमेशा ही महिला को पुरुषों के समान अधिकार रखने वाले नैसर्गिक हकदार के तौर पर देखा अपनी गहन दृष्टि से वे समझ गये थे कि कई अयोग्य पुरुषों को महज ''निर्मम परंपरा की ताकत'' की वजह से महिलाओं पर श्रेष्ठता हासिल हो जाती है, जबकि वे इसके हकदार नहीं होते हैं और समाज को इसकी इजाजत भी नहीं देनी चाहिए। उन्हें इस बात का अफसोस था कि कई आंदोलन समाज में महिलाओं की स्थिति के कारण बीच में ही बंद हो गये अथवा ये आंदोलन अपेक्षित परिणाम हासिल करने में भी सफल नहीं हुए क्योंकि महिला–शक्ति और इस ताकत के स्रोत को नजरअंदाज किया गया।

गांधी ने महिलाओं की भूमिका और उनकी जीवन–यापन शैली में भिन्नता की चर्चा करते हुए इस बात पर बल दिया कि महिला और पुरुष हालांकि स्थिति में एक समान हैं, फिर भी वे बिलकुल एक जैसे नहीं हैं। वर्षों पहले कही गयी इस बात को गांधी की बुद्धिमत्ता के एक बेशकीमती रत्न के रूप में देखा जाना चाहिए। आज के दौर में पश्चिम और पूरब हरेक जगह तथा दूसरी जुबान में भी गांधी की इसी राय को व्यक्त किया जा रहा है। मौजूदा समय में कई लोग यह कह रहे हैं कि महिलाओं और पुरुषों को किसी भी क्षेत्र में समानता और न्याय हासिल करने के लिए ''एक जैसा'' होने की कोई आवश्यकता नहीं है। ये लोग बीसवीं सदी के छठवें, सातवें और आठवें दशक में वही बात कहते रहे जो गांधीजी ने 50 साल पहले ही कह दिया था। गांधी के शब्दों में, ''महिला और पुरुष एक–दूसरे का पूरक होने के नाते अपनी तरह की नायाब जोड़ी बनाते हैं। जोड़ी में हरेक एक–दूसरे की इस कदर मदद करता है कि एक के बगैर दूसरे के अस्तित्व को ही स्वीकार नहीं किया जा सकता। इन तथ्यों का आवश्यक परिणाम यह निकलता है कि दोनों में से किसी की भी स्थिति को कमजोर वाली कोई भी चीज आखिरकार दोनों को ही समान रूप से नष्ट करेगी।'' गांधी ने यह माना कि एक ही मानवता का सदस्य होने के नाते महिला और पुरुष की समस्याएं भी मूलभूत रूप से एक ही होनी चाहिएं। गांधी का विश्वास था कि महिलाएं पुरुषों के साथ दौड़ लगाकर समाज और समुदाय के प्रति अपना योगदान नहीं कर पाएंगी। महिलाएं पुरुषों के साथ दौड़ लगाने की बात 'चुन' सकती हैं लेकिन इस तरह वे उस ऊंचाई को नहीं हासिल कर पाएंगी, जहां तक पहुंचने में गांधी उन्हें सक्षम मानते थे। वह महिला और पुरुष के बीच पारस्परिक संबंधों में एक–दूसरे का पूरक होने की

बात पर दृढ़ विश्वास रखते थे। हालांकि उन्होंने कार्य के क्षेत्र में विभाजन को स्वीकार किया। उन्होंने कहा, ''जैसा मैंने लाखों किसानों को उनके प्राकृतिक परिवेश में देखा है और जैसा मैं उनको रोजाना छोटे Segaon में देखता हूं, कार्यक्षेत्र का स्वाभाविक विभाजन खुद–ब–खुद मेरा ध्यान आकृष्ट करता है।'' साथ ही वह यहभी जोड़ते हैं कि ''इन कार्यों के लिए व्यावहारिक तौर पर दोनों ही लिंग के इंसान को एक समान सामान्य विशेषताओं की आवश्यकता है।'' हालांकि गांधी सभी कार्यों और किसी भी तरह के रम के प्रति सम्मान का भाव रखने और कार्य के प्रकार अथवा कामगारों में किसी तरह की श्रेष्ठता में यकीन नहीं करने के कारण कार्यक्षेत्र के विभाजन में भी वह किसी तरह की श्रेष्ठता अथवा निम्नता नहीं देखते थे। वास्तविकता यह है कि गांधी ने समाज के सभी लोगों के लिए ''रोटी के लिए मेहनत'' करने की अवधारणा पर बल दिया है। इसके बावजूद उन्हें Segaon में यह एहसास हुआ कि जिंदगी जीने के लिए मुश्किल संघर्षों के बीच भी सहिष्णुता को बरकरार रखा जाना चाहिए।

परिवार के भीतर महिला

यह एक जाना–माना तथ्य है कि गांधी ने परिवार, इसकी सम्पूर्णता और मानवीय समाज में इसकी अहमियत पर खासा जोर दिया है। उन्होंने परिवार की खुशहाली और इसकी निरंतरता के बारे में लगातार भारतीयों का ध्यान आकृष्ट करने की कोशिश की। उन्होंने घर के रख–रखाव और उसे सशक्त बनाने में पति और पत्नी दोनों की ही साझी जिम्मेदारी होने की बात कही। हालांकि वह घर को सशक्त बनाने के लिए महिलाओं पर अधिक निर्भर दिखायी देते हैं। इसके अलावा वह महिलाओं से दूसरी बड़ी चीजों की भी उम्मीद रखते हैं, क्योंकि ''एक महिला मूलतः अपने घर की मालकिन होती है।.... वह रोटी का रखवाला और उसे बांटने वाली है।....इंसानी नस्ल के नवजात बच्चों के पालन–पोषण की कला उसका खास और इकलौता विशेषाधिकार है। उसकी देखभाल के बगैर, इंसानी नस्ल विलुप्त ही हो जाएगी।'' गांधीजी मातृत्व को लेकर भावनात्मक नहीं थे और न ही उन्होंने इसके बारे में कोई घिसी–पिटी बात ही कही। इसके उलट उन्होंने मां बनने की जिम्मेदारी को बेहद मुश्किल कार्य बताते हुए कहा, ''बच्चों के जन्म को पूरी गंभीरता के साथ लिया जाना चाहिए। महिला ही देश को बुद्धिमान, स्वस्थ और अच्छी तरह से पाले–पोषे गये बच्चे देती है और निश्चित रूप से यह एक महती सेवा है।'' यहां पर यह उल्लेख किया जाना चाहिए कि गांधी महिला के घर के बाहर जाकर कार्य करने के खिलाफ नहीं थे, बशर्ते कि इस बारे में फैसला खुद महिला ही करे और वह कार्य उसकी क्षमता के भीतर हो। उन्होंने कहा, ''मेरी कल्पना के नयी व्यवस्था में सभी व्यक्ति अपनी क्षमता के मुताबिक काम करेंगे और उन्हें उनकी मेहनत के मुताबिक पारिश्रमिक भी मिलेगा।'' हालांकि अपनी समझ के आधार पर वह व्यावहारिक अर्थ में यह मानते थे कि नयी व्यवस्था में महिलाएं अंशकालिक कामगार ही होंगी ओर उनकी प्राथमिक जिम्मेदारी घर की देखभाल होगी। दूसरे शब्दों में, गांधी घर के बाहर किये जाने वाले उन कार्यों की श्रेष्ठता में यकीन नहीं करते थे जिनसे धन के रूप में एक वेतन मिलता है। उसी भाव में गांधी यह भी नहीं मानते थे कि नौकरियों, सम्पत्ति अधिकार ओर विवाह संबंधी अधिकारों में कानून के

द्वारा महिला के साथ किसी भी तरह का भेदभाव किया जाए। हालांकि आज के दौर में बहुत लोग गांधी की इस अवधारणा से सहमत नहीं हो सकते हैं। गांधी ने घर में महिलाओं की भूमिका पर इस वजह से बल दिया था कि घरेलू मामलों, बच्चों की परवरिश और उनकी शिक्षा में महिलाएं बड़ी भूमिका निभाती हैं। दरअसल मौजूदा प्रवृत्ति यह है कि बच्चों की परवरिश, उनकी शिक्षा और उनकी जरूरतें पूरी करने जैसे सभी घरेलू मामलों में माता–पिता दोनों की ही समान जिम्मेदारी है और उन्हें मिल–जुलकर इसे निभाना चाहिए। लेकिन गांधी की उस बात से असहमत भी नहीं हुआ जा सकता कि घर के भीतर अगुआ होने के नाते ''महिला पुरुष को बनाने वाली और उसकी मूक नेतृत्वकर्ता भी है।'' इसलिए महिला को अपने परिवार के भीतर यह भूमिका निभाने के लिए अधिक जानकारी से लैस होना चाहिए। इसके अलावा उसे इस महत्वपूर्ण पारिवारिक दायित्व में निहित मूलभूत मूल्यों का विवेकपूर्ण बोध भी होना चाहिए।

कमजोर लिंग नहीं

गांधीजी ने रोषपूर्ण लहजे में कहा कि महिला को कमजोर लिंग के रूप में पेश किया जाना बेहद अपमानजनक है। गांधी पर्दा–प्रथा से बहुत ही दुखित और अपमानित महसूस करते थे। उन्होंने एक बहुत ही प्रासंगिक प्रश्न पूछा था कि ''हमारी महिलाओं को वह स्वतंत्रता क्यों नहीं मिलती है जो पुरुषों को हासिल है? उन्हें घर से बाहर निकलने और खुली हवा में सांस लेने की आजादी क्यों नहीं होनी चाहिए?'' उन्होंने पर्दा–प्रथा को भारतीय रिवाज के तौर पर स्वीकार नहीं किया। उन्होंने तार्किक ढंग से अपना पक्ष रखते हुए कहा, ''प्राचीन भारत की महिलाएं अगर सार्वजनिक बहस करती थीं और उनमें खुलकर हिस्सा लेती थीं तो निश्चित रूप से वे पर्दा में रहते हुए ऐसा नहीं कर सकती थीं। कृषक समाज में आज भी पर्दा–प्रथा नहीं दिखायी देती है।'' हालांकि हमारे समाज में बहुत लोग तब और आज भी एक प्राचीन रिवाज के तौर पर पर्दा का समर्थन करते हैं। गांधी ने जोर देते हुए कहा, ''हमें हरेक चीज को तर्क की कसौटी पर कसना चाहिए। हम तर्क से ही यह जान सकते हैं कि कौन–सी चीज अपनाने लायक है और कौन संतोषजनक नहीं है। पुराने जमाने की अजीबोगरीब पोशाक अगर तर्क की कसौटी पर खरी नहीं उतरती है तो हमें उसे खारिज कर देना चाहिए।'' उन्होंने वर्ष 1927 में ही कह दिया था कि 'जब तक महिलाओं को उनके घरों और छोटे आंगन में कैद करके रोके रखा जाता है, मानवता का कद कम होता रहेगा'।

गांधीजी ने दहेज–प्रथा के लिए जिन शब्दों का इस्तेमाल किया, वे अपने–आप में बहुत कुछ कह जाते हैं। उन्होंने दहेज की 'घृणित व्यवस्था' को ''खरीदी हुई शादी'' ओर ''अपमानजनक परम्परा'' के रूप में अभिव्यक्त किया। उन्होंने दहेज देने और लेने वाले दोनों के लिए इस प्रथा में एक अंतर्निहित बुराई होने की बात कही क्योंकि यह बंधन में बांध देती है, यह खरीद–फरोख्त और समझौते के सौदे की तरह है और इसमें इंसान खरीदी–बेची जा सकने वाली 'वस्तु' के रूप में तब्दील हो जाता है। यह मानवीय संबंधों को कमतर करने के साथ ही उसका स्वरूप भी बिगाड़ देती है और संबंध गंभीर रूप से प्रभावित हो जाते हैं। दहेज प्रथा शादी के 'बाजार' में खुद को वस्तु के रूप में पेश करने के कारण

पुरुषों की हैसियत को भारी चोट पहुंचाती है। दूसरी तरफ जिंदगी–भर के संबंध को तय किये जाते समय महिलाएं महज मूकदर्शक बनकर रह जाती हैं जिससे उनका भी अपमान होता है। जिंदगी–भर के रिश्ते शादी का लक्ष्य तो पुरुष और महिला दोनों के जीवन में बेहतरी और सम्मान की प्राप्ति होना चाहिए। वे मानते थे कि इस अपमानजनक परम्परा को दुरुस्त करने में देश के युवा महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। उन्होंने कहा, ''आज देश में युवाओं की सहभागिता वाले कई आंदोलन चल रहे हैं। मेरी इच्छा है कि ये आंदोलन दहेज–प्रथा जैसे सवालों के जवाब भी खोजें।'' उन्होंने साढ़े चार दशक पहले यह बात कही थी। उन्होंने सभी लोगों की भागीदारी से एक सशक्त जनमत के निर्माण का आह्वान किया था ताकि भविष्य में कोई भी व्यक्ति दहेज लेने अथवा देने में शामिल होकर अपने हाथ गंदे न करे। उन्होंने दहेज लेने वाले युवकों का बहिष्कार तक किये जाने की वकालत करते हुए कहा कि लड़कियों के मां–बाप को जाति और प्रांत की सीमाओं को नजरअंदाज करके इस सामाजिक बुराई को समाप्त करने में सहयोग देना चाहिए। उनहोंने 1929 में यह कहकर तो सबको अचम्भे में डाल दिया था कि, ''अगर मुझे किसी लड़की की शादी की जिम्मेदारी निभानी होती तो मैं एक भी पैसे की मांग करने वाले लड़के को अपनी लड़की देने के बजाय उसे आजीवन कुंवारी ही रहने देता।'' उन्होंने दहेज–प्रथा से जुड़े सभी लोगों, लड़का, लड़की, उनके मां–बाप और रिश्तेदारों से इसके बंधनों को तोड़कर आजाद होने का आह्वान करते हुए कहा कि नितांत नयी सोच के सृजन के लिए ऐसा किया जाना अनिवार्य है। उन्होंने हमेशा ही इस बात पर बल दिया कि निर्भीक लोगों के आगे आकर पुरानी परम्पराओं को तोड़े बगैर कभी भी कोई सामाजिक सुधार नहीं हुआ है।

गांधी ने 1936 में एक बहुत ही सुसंगत मुद्दा उठाया था और वह आज भी प्रासंगिक है। उन्होंने कहा था, ''कॉलेज की पढ़ाई कर चुके कई लड़के और लड़कियां भी आखिर दहेज लेकर और देकर की गयी शादी जैसी बुरी परम्परा का विरोध करने में क्यों इतने अक्षम और अनिच्छुक हैं? दहेज–प्रथा उनके भविष्य के साथ ही शादी को भी गहरे तक प्रभावित करती हैं।'' उन्होंने शिक्षा की गुणवत्ता पर सवाल उठाते हुए कहा कि पूरी तरह अनुचित और घनघोर अनैतिक परम्परा को भी नकार पाने में यह शिक्षा–व्यवस्था युवाओं को सक्षम नहीं बना पा रही है। उन्होंने कहा कि शिक्षा–व्यवस्था में कुछ गंभीर खामियां हैं जिनके चलते पढ़े–लिखे लोग भी गलत परम्पराओं के प्रति असंवेदनशील रवैया अपनाये हुए हैं और उनका फायदा भी उठाना चाहते हैं। उन्होंने लड़कियों से जरूरत पड़ने पर आजीवन अविवाहिता रहने के लिए भी तैयार रहने को कहा, जिससे समाज के अन्य लोगों को एक संदेश दिया जा सके। मणिबेन ने लिखा है कि गांधी ने आश्रम में रहने वाली महिलाओं को संबोधित करते हुए एक दिन कहा था कि, ''मानसिक रूप से अनुकूल जीवन–साथी नहीं मिलने की स्थिति में एक लड़की को अविवाहित रहने का फैसला लेना चाहिए, लेकिन उसे आत्मनिर्भर जरूर बनाना चाहिए, क्योंकि दूसरों पर निर्भर लड़की कभी भी अविवाहित नहीं रह सकती है।'' इससे स्पष्ट है कि गांधी विवाह को न तो सामाजिक प्रतिष्ठा प्रदान करने वाली गतिविधि के रूप में देखते हैं और न ही वह अपनी बेटियों का

विवाह किसी भी कीमत पर करने की मां–बाप की इच्छा को ही नजरअंदाज करते हैं। उन्होंने मां–बाप की इस प्रवृत्ति की लगातार निंदा की और दहेज–प्रथा को बरकरार रखने के लिए मां–बाप, सामाजिक रीति–रिवाजों और महिलाओं से अधिक पुरुषों को सीधे तौर पर जिम्मेदार ठहराया।

जब गांधी ने विधवा पुनर्विवाह के बारे में बात करते हुए इसकी वकालत की तो वह न केवल गलत परम्परा और अंधविश्वासों की शिकार बाल–विधवा के प्रति अपनी करुणा को अभिव्यक्त कर रहे थे बल्कि वह समानता और न्याय की अपनी उस अवधारणा को भी स्पष्ट कर रहे थे जिसके मुताबिक ''विधवाओं को भी विधुरों की तरह ही आजादी मिलनी चाहिए।'' विधवा–पुनर्विवाह के बारे में कानून का जिक्र करते हुए गांधी ने लगातार इस बात पर बल दिया कि महिलाओं और पुरुषों के लिए एक ही नियम होना चाहिए। वे इस मामले में खासकर भारत में दो मानदंड अपनाये जाने के विरुद्ध थे, क्योंकि यहां पर बचपन से ही महिलाओं के भीतर गुलामी की मानसिकता पैदा कर दी जाती है। उनका कहना था कि जब तक भारत के लोग मुक्त होकर सोचने नहीं लगते, तब तक वे आजादी से कोई कार्य भी नहीं कर पाएंगे। गांधी ने 1927 में ही यह लिख दिया था कि ''शुचिता बड़ी तेजी से विकसित होने वाली भावना नहीं है। इसे दूसरों पर थोपा नहीं जा सकता है।'' उनके अनुसार इस तरह की प्रवृत्ति व्यक्ति के स्वतंत्र विकास में हस्तक्षेप करती है, भले ही वह महिलाओं अथवा हरिजनों से क्यों नहीं संबंधित हो। इससे अंततः देश कमजोर ही होता है।

गांधी इस बात से काफी व्यथित रहते थे कि महिलाओं की समस्याओं और उनकी स्थिति के प्रति भारतीय समाज के उदासीन रवैये के कारण कुछ महिलाओं को मजबूरी में वैश्यावृत्ति का पेशा भी अपनाना पड़ जाता है। हालांकि वह व्यावहारिक नजरिए से यह स्वीकार करते थे कि भारत में इस पेशे के फलने–फूलने का अर्थ महिलाओं की तरह पुरुषों के भी समान रूप से 'पतित' होन से होगा। वे इस धारणा में यकीन नहीं करते थे कि इन महिलाओं के लिए महज सम्मानजनक आजीविका उपलब्ध करा देने से समस्या का समाधान निकल आएगा। मानवीय चरित्र के बारे में अपनी गहरी दृष्टि के आधार पर गांधी ने कहा कि (अ) यह एक सामाजिक बुराई है। वे वेश्यावृत्ति को ''नैतिक कोढ़'' कहा करते थे। जिसे किसी भी तरह की नैतिकता में यकीन नहीं रखने वाले लोग बढ़ावा देते हैं। समाज ने भी दोहरा मानदंड अपनाते हुए इसे एक आवश्यक बुराई के रूप में स्वीकार कर लिया है। (ब) वेश्यावृत्ति उन्मूलन के लिए स्वयं महिलाओं को आगे आना होगा। उन्होंने इस अपमानजनक पेशे को समाप्त करने के लिए एक महिला नेता के उभरकर सामने आने की उम्मीद जतायी थी। उनकी दृढ़ राय थी कि केवल कानून बना देने से वे असरकारक नहीं हो जाते हैं। देवदासी प्रथा के विरुद्ध तो उनका समूचा व्यक्तित्व ही विद्रोह कर उठा था। उन्होंने देवदासी प्रथा को 'ईश्वर का अपमान' बताते हुए कहा था, ''धर्म के नाम पर हम महिलाओं को अपमानित करने के साथ ही अपने आराध्य भगवान को भी इसमें शामिल करके दोहरा अपराध करते हैं।'' वर्तमान समय में भी देश के भीतर यह नैतिक कोढ़ मौजूद है और हम भी इसके प्रति अपनी उदासीनता और संभवतः कोई मतलब न होने के कारण परोक्ष रूप से इसे बढ़ावा देने के लिए जिम्मेदार हैं।

वे महिलाओं और पुरुषों से अपने विवेक का इस्तेमाल करने का अनुरोध करते हुए कहते हैं कि विवेक के उपयोग और सामाजिक तथा सार्वजनिक मत को विकसित करके हम वक्त के साथ संरक्षित की जा चुकी सामाजिक बाध्यताओं और इन परम्पराओं को खारिज करने में सक्षम हो सकेंगे। प्राचीन और पहले प्रतिष्ठिा अर्जित कर चुकी ये परम्पराएं अमानवीय, अविवेकपूर्ण, अपमानजनक ओर समूचे सामाजिक ढांचे को अपंग बना देने वाली हैं।

गांधीजी ने युवतियों से ''आधुनिक लड़की की नकल'' करने के प्रति आगाह करते हुए कहा कि उनकी नजर में 'आधुनिक लड़की' होने के मायने ही अलग हैं। उन्होंने 4 फरवरी 1939 के हरिजन के अंक में लिखा था कि कुछ छात्रों ने अपने साथ पढ़ने वाली लड़कियों के प्रति कुछ अन्य छात्रों द्वारा किये जा रहे दुर्व्यवहार की शिकायत की थी। गांधी ने इसके जवाब में कहा था, ''छात्रों के बुरे बर्ताव के खिलाफ आवाज उठाने का मैं तुम्हारा आह्वान करता हूं। ईश्वर उन्हीं लोगों की मदद करते हैं जो अपनी मदद स्वयं करते हैं।'' गांधी का 'तीव्र प्रतिरोध करने' और 'अपनी मदद स्वयं करने वाले लोगों की ही ईश्वर सहायता करता है।' जैसा वक्तव्य बड़ा ही सारगर्भित है। एकनिष्ठता, स्वयं के प्रति विश्वास, आध्यात्मिक शक्ति ओर किसी लक्ष्य के साथ जुड़ जाना गांधीवादी शैली के मूलभूत अवयव उस समय भी थे और आज भी हैं।

महादेव देसाई ने अपने समय में उभरकर आयी कुछ घिसी–पिटी उक्तियों को सूचीबद्ध किया था। ये हमारे दौर में भी उसी तरह मौजूद हैं। जैसे कि, पति महिला के लिए भगवान के समान होता है, परिवार का नाम चलाने वाला होने के कारण पुत्र को वरीयता दी जाती है और पारिवारिक विरासत भी उसे ही मिलनी चाहिए, अगर पति अन्यायी है तो भी पत्नी को उसके प्रति वफादार होना चाहिए, क्योंकि यही उसका धर्म है।

इन धारणाओं के बारे में गांधीवादी सोच यह थी कि अगर पति एक देवता है तो पत्नी भी एक देवी है। एक बेटी को पिता की सम्पत्ति में बराबर का हिस्सा मिलना चाहिए। अगर एक पति अपनी पत्नी के प्रति अन्यायपूर्ण व्यवहार करता है तो पत्नी को अलग रहने का पूरा अधिकार है। पति और पत्नी दोनों पर ही एक जिम्मेदार मां–बाप बनने की समान जिम्मेदारी है और दोनों में से कोई भी इसके लायक नहीं है तो दूसरे को उसका दंड भोगना होगा। हालांकि गांधी इस तरह के विचार प्रस्तुत करके न तो किसी तरह का कानून बना रहे थे और न ही वे सैद्धांतिक उपदेश दे रहे थे। वे तो बस यही कहना चाह रहे थे जिसका उन्होंने खुद अनुसरण किया, और जिसे वे सच्चा, न्यायपूर्ण और समुचित मानते थे। उन्होंने इस तरह के अपने वक्तव्यों से एक मानवीय दृष्टिकोण और बुराइयों को चिह्नित करने वाले मूल्यों की महत्ता को भी स्थापित किया। उन्होंने सामाजिक वास्तविकता को उसके यथार्थ स्वरूप में देखा और उसे पूरे साहस तथा मानसिक तैयारी के साथ स्वीकार करने के बाद उसके उन्मूलन का प्रतिबद्ध प्रयास भी किया। अगर समाज ने महिला को पुरुष के हाथ में एक औजार के ही रूप में देखा है तो दूसरी तरफ महिला को भी ऐसा होना सरल लगने लगा है और उसने कभी भी अकेली होने के कारण इसका प्रतिवाद नहीं किया।

सत्याग्रह के अपने आदर्श के अनुरूप गांधी ने भारत की सभी महिलाओं से सभी अवांछित और अनुचित बाध्यताओं का प्रतिरोध करने को कहा। वे तो केवल स्वैच्छिक नियंत्रण और आत्म–अनुशासन में यकीन करते थे। इसके बावजूद उन्होंने सच्ची गांधीवादी भावना के साथ याद दिलाया कि महिलाओं को सामाजिक बुराइयों के खिलाफ सत्याग्रह करते समय यह अवश्य देखना चाहिए कि वास्तविक सत्याग्रह विवेकपूर्ण प्रतिरोध और औचित्य से नहीं बल्कि मकसद की पवित्रता पर निर्भर करता है।

गांधी ने महिलाओं को हमेशा ऊंचा ओहदा देने संबंधी कई सुस्पष्ट बयान दिये थे। इन बयानों से किसी कोयह महसूस हो सकता है कि या तो गांधी महिलाओं का पक्ष लेते थे अथवा वह उनसे कुछ अधिक ही उम्मीद करते थे। जैसा कि गांधी के कुछ बयानों पर दृष्टिपात करने से पता चलता है, ''महिलाएं ईश्वर की सबसे सुंदर रचना हैं', 'आत्म–बलिदान का जीवंत रूप', 'धार्मिक आस्था के मामले में महिलाएं किसी भी तरह से पुरुषों से श्रेष्ठ हैं', और 'महिलाएं अहिंसा का पुनर्जन्म हैं।' गांधी ने इसी तरह के बहुतेरे बयान महिलाओं के समर्थन में दिये हैं। हालांकि आज के मनोवैज्ञानिक तथा वैज्ञानिक विश्लेषण में इनमें से कुछ बयान संभवतः खरे नहीं उतर पाए। पूरब की कुछ महिलाएं और निश्चित रूप से पश्चिम की महिलाएं तो इन विचारों को अवैज्ञानिक ओर उनसे कुछ अपेक्षा करने वाला साधन मानकर खारिज ही कर देंगी। उनकी नजर में गांधी के इन बयानों से प्रेरणा लेने जैसी कोई बात नहीं है। लेकिन मुझे लगता है कि महिलाओं के बारे में गांधी के ये आदर्शवादी विचार उनकी अपनी जिंदगी से जुड़ी रही महिलाओं –– उनकी मां और पत्नी, के साथ के अनुभवों पर आधारित हैं। इसके अलावा एक विदेशी सत्ता को उखाड़ फेंकने के लिए देशभर में चलाये गये स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान अपने संपर्क में आयी महिलाओं से मिला स्नेह और सम्मान भी गांधी के इन विचारों के लिए उत्तरदायी है। मणिबेन, मीराबेन, अमृतकौर और अपने आरम की अन्य महिला सहकर्मियों को लिखे गये पत्रों से उनकी निष्ठा और समर्पण के साथ ही 'बापू' के प्रति उनके लगाव का भी पता चलता है। लेकिन आज के दौर में गांधी के ये विचार सामान्य रूप में महिलाओं को असमंजस में डाल सकते हैं। आज की महिलाएं इन बातों को सुनकर या तो आत्मतुष्ट हो जाएंगी अथवा उन्हें अपने विकास और आत्म–निरीक्षण की कोई आवश्यकता ही महसूस नहीं होगी। दुनिया के कुछ हिस्सों में नारी स्वतंत्रता का मुद्दा दोनों लिंगों के बीच संघर्ष का स्वयप अख्तियार कर चुका है। कहीं ऐसा न हो कि नारी स्वतंत्रता के इस संघर्ष में नारी श्रेष्ठता के दावे किये जाने लगें। इससे नारी स्वतंत्रता आंदोलन में न तो पुरुष और न ही महिला को किसी तरह की मदद मिलेगी। नारी श्रेष्ठता के दावे करने का तो यही मतलब है कि एक की श्रेष्ठता का स्थान दूसरे समूह को देने की कोशिश की जा रही है। इस परिस्थिति में यह जिम्मेदारी महिलाओं पर आ जाती है कि वे विभ्रम में पड़ने पर अपनी संवेदनशीलता को बरकरार रखें।

दरअसल गांधी महिलाओं और पुरुषों के एक समान होने की बात कहने में अपने समय से काफी आगे थे। उन्होंने कई अवसरों पर कहा कि, ''प्रकृति द्वारा बनाये गये विभेदों और आंखों से देखे जा सकने लायक अंतर को छोड़कर

महिला और पुरुष के बीच मैं कोई भी भेद नहीं देखता हूं।'' उन्होंने नारी शिक्षा का भरपूर समर्थन करते हुए कहा कि जैसे–जैसे वे शिक्षित होती जाएंगी, वे दिखायी देने वाली असमानताओं के प्रति अधिक जागरूक और संवेदनशील होती जाएंगी। उस समय वे स्वाभाविक रूप से उनका प्रतिकार करने लगेंगी। गांधी ने खुद अपनी जिंदगी में कभी भी ''स्त्री–शक्ति'' को कमतर नहीं समझा। भारत में महिलाओं को समान राजनीतिक अधिकार देने के पीछे गांधी के उपदेशों और महिलाओं की क्षमता और समानता के प्रति उनके भरोसे ने उत्प्रेरक की भूमिका निभायी है और इस उपलब्धि के पीछे यह एक बड़ी ताकत रहा है। गांधी के नेतृत्व में चलाये गये स्वाधीनता आंदोलन में महिलाओं की व्यापक भागीदारी का तत्कालीन सामाजिक और राजनीतिक परिदृश्य पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ने की बात सर्वविदित है और ऐतिहासिक रूप से भी इस तथ्य को स्वीकार किया जाता है। जब ब्रिटिश सरकार ने भारतीय महिलाओं को समान मताधिकार देने की मांग को अस्वीकार कर दिया था तब 1931 में गांधी के ही मार्गदर्शन पर कांग्रेस के करांची अधिवेशन में लिंग के आधार पर किसी तरह के विभेद के बगैर महिलाओं को भी समान मताधिकार देने का प्रस्ताव पारित किया गया था। देश की आजादी के बाद भी इस भावना को बरकरार रखा गया और भारत के संविधान में हरेक नागरिक की समानता के सिद्धांत को अपनाते हुए महिलाओं को राजनीतिक, आर्थिक और कानूनी रूप से समानता प्रदान की गयी।

निष्कर्ष :

मगर आज की हकीकत क्या है? क्या हम आज के दौर में संविधान की उन उद्‌घोषणाओं को आर्थिक और सामाजिक रूप से कार्यान्वित कर पाने से दूर नहीं हो गये हैं? क्या हम गांधी के समय की अपनी स्थिति से काफी दूर हो गये हैं? हमारा वर्तमान ही गांधी का भविष्य था। इतिहास हमारा मूल्यांकन भूतकाल के हमारे संकल्पों से नहीं बल्कि वर्तमान के हमारे प्रदर्शन से करेगा। हमारे वादों के आधार पर नहीं बल्कि निभाये गये वादों के आधार पर इतिहास हमारा मूल्यांकन करेगा।

यह कहा जा सकता है कि अभी भारत में महिलाओं को राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में सशक्त होने के लिए लम्बा सफर तय करना है। वक्त की जरूरत महिलाओं के कल्याण की न होकर उनके विकास की है, अनुदान के स्थान पर विधि–सम्मत अधिकार की है, मदद न होकर उनके सशक्तीकरण की है, संरचनात्मक समायोजन न होकर संरचनात्मक बदलाव की है, समान सामाजिक सुरक्षा की न होकर सामाजिक और लैंगिक न्याय की है। अगर महिलाओं को मौजूदा हालात में अपना अस्तित्व बचाने के साथ ही स्वयं का विकास भी करना है तो ये सभी बदलाव वक्त की जरूरत है।

अध्याय-15

अस्पृश्यता और गांधी

भूमिका

अस्पृश्यता मानव जाति के लिए अविशाप है। अस्पृश्यता को कोई भी राष्ट्र एंव सभ्य समाज के लिए घातक है। महात्मा गांधी ने अस्पृश्यता उन्मूलन में अपना सारा जीवन लगा दिया। गांधी पहले व्यक्ति हुए जिन्होंने अस्पृश्यता की भावना को सवर्णों में पाया। गांधी छूआछूत के लिए सवर्ण हिन्दुओं को दोष देते थे और अस्पृश्यता निवारण के लिए सवर्ण हिन्दुओं के दृष्टिकोण में परिवर्तन लाना चाहते थे। इसी वजह से गांधी इस समस्या का समाधान हिन्दू धर्म एवं जाति के ढांचे में करने के पक्ष में थे। उनका मानना था कि जिस प्रकार दलितों के लिए भौतिक उत्थान आवश्यक है, उसी प्रकार सवर्ण एवं सम्पन्न वर्ग के लिए आध्यात्मिक उत्थान आवश्यक है।

गांधी अस्पृश्य जातियों का उत्थान धार्मिक और नैतिक दृष्टिकोण से करना चाहते थे, जिससे सवर्ण—अवर्ण के भेदभाव को समाप्त करके इन जातियों को राष्ट्रीय एकता व सामंजस्य की धारा में लाया जा सके।

अस्पृश्यता पर गांधी के विचार

गांधी 21 वर्ष दक्षिण अफ्रीका में रहे। रंगभेद को उन्होंने नजदीक से देखा और समझा तथा उसे समाप्त करने का वीड़ा उठाया। गांधी के सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक जीवन का आरम्भ ही, रंगभेद, जातिवाद और अस्पृश्य के बीच स्वतंत्रता, न्याय और बन्धुता की स्थापना से होता है।

आधुनिक भारत में सवर्ण वर्ग के सामाजिक और राजनीतिक सुधारकों में गांधी ही ऐसे प्रथम व्यक्ति थे, जो अस्पृश्यता को न केवल हिन्दू धर्म पर एक कलंक मानते थे, बल्कि इस ऊंच-नीच की दीवार को जड़ से समाप्त करना भी चाहते थे। यही कारण है कि गांधी की दृष्टि में अस्पृश्यता "एक सौ सिर वाला दैत्य " था। गांधी मानते थे कि, "इस कलंकित रूप के कारण ही एक वर्ग को अपने पास तक फटकने नहीं दिया जाता और कुछ की छाया लगने से ही छूत लग जाती है"[1] यह एक ऐसी कलंक-कालिमा है, जो जन्म के साथ ही लग जाती है और लाख बार धोओ छूटती नहीं है। "यह बुद्धि और सदाचार की विरोधी है।"[2] अर्थात यहां सामाजिक आधार पर एक मनुष्य केवल स्पर्श मात्र से भ्रष्ट तथा अपवित्र हो जाता है। उनकी दृष्टि में, "अस्पृश्यता हिन्दू धर्म के सुन्दर उपवन में उग आये अवांछित घास-पात की तरह है, जो इस

तरह फैलती जा रही है कि इसके कारण इस उपवन के सुन्दर फूलों के मुरझाने का खतरा पैदा हो गया है।"[3] यही कारण था कि गांधी अस्पृश्यता को हिन्दू धर्म पर एक कलंक तो मानते थे परन्तु "हिन्दू धर्म का अभिन्न अंग नहीं मानते थे।"[4] गांधी के मतानुसार, "अस्पृश्यता के कारण ही अन्त्यजों के साथ अमानवीय व्यवहार किया जाता है। इन्हें पेट के बल चलाना, गांव से बाहर रखना, जूठा भोजन देना, भूमिहीन रखना और मंदिर प्रवेश जैसे कार्यों से वंचित किया जाता रहा है। इसलिए ऐसा धर्म हिन्दू कदापि नहीं हो सकता है।"[5] वास्तव में गांधी अन्त्यजों की दयनीय स्थिति के लिए सवर्ण हिन्दुओं को दोषी मानते थे। इसलिए वे कहते हैं, "साम्राज्यवादी सरकार (अंग्रेजी सरकार) ने जैसे डायरशाही हम पर चलाई, वैसी ही डायरशाही हिन्दू धर्म के नाम पर सवर्ण हिन्दुओं ने भंगी जाति पर चलाई, वैसी ही डायरशाही हिन्दू धर्म के नाम पर सवर्ण हिन्दुओं ने भंगी जाति पर चलाई है।"[6] यही कारण है कि गांधी ने यह स्पष्ट कहा है कि, "मैं अस्पृश्यों का समर्थन इसलिए करता हूं क्योंकि हमने उनके साथ बड़ा अन्याय किया है "[7]

गांधी कहते हैं कि एक स्वस्थ प्रकार की अस्पृश्यता सभी धर्मों में पाई जाती है, वह है स्वच्छता एवं सफाई का नियम।[8] लेकिन भारत में

आज जैसी अस्पृश्यता मानी जाती है उसका हिन्दू शास्त्रों में कोई प्रमाण नहीं है।[9] गांधी की दृष्टि में वर्तमान अस्पृश्यता की उत्पत्ति हिन्दू धर्म के क्रमिक विकास की उस अवस्था में आई जब गाय की रक्षा करना हिन्दू धर्म का एक अंग बन गया और गाय को गौ-माता माना जाने लगा। उस काल में सामाजिक नियम बहुत कठोरता से लागू किए जाते थे। उस समय कुछ लोग ऐसे थे, जो अधिक सभ्य नहीं थे और गौ-मांस खाते रहे, उन्हें समाज से तिरस्कृत कर दिया गया और वे तब से अस्पृश्य माने जाने लगे। इसी कारण यह सामाजिक पाप, पिता से पुत्र को पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तान्तरित होता रहा।[10] परन्तु उनके दृष्टिकोण में, "अस्पृश्यता मानवता के विरुद्ध एक जघन्य अपराध था।"[11] वास्तविकता यहा है कि अस्पृश्यता की उत्पत्ति के विषय में न तो गांधी का कोई गांधी का कोई शोध कार्य था और न ही वे इसके लिए चिंतित थे। गांधी ने स्वयं कहा है, "अस्पृश्यता की उत्पत्ति कब हुई, इसके बारे में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता है, मैं भी सिर्फ अनुमान ही लगा सकता हूं, और वह सच या झूठ भी हो सकता है। लेकिन एक अंधा भी यह देख सकता है। कि यह अधर्म है।"[12] फिर भी वे यह स्वीकार करते थे कि, "इस प्रथा की उत्पत्ति समाज की अवनति के दिनों में कुछ काल के लिए अपाद् धर्म के रूप में हुई।"[13] दूसरे शब्दों में

गांधी का यह मत था कि, “हिन्दू धर्म की अवनति के किसी अवस्था में जब भ्रष्टाचार आ गया और ऊंच-नीच की भावना ने इसमें प्रवेश करके इसे दूषित बना दिया, तब अस्पृश्यता की उत्पत्ति हुई।“[14] उनके दृष्टिकोण में, “यह प्रथा हमारे बीच धर्म के नाम पर आई और हिन्दू धर्म में प्रविष्ट कर गई[25] और “इसका संबंध घृणा से रहा है।“[15] लेकिन इसका मूल आधार धर्म में नहीं है बल्कि उच्चता के झूठे अहंकार ने इसे जन्म दिया है। अर्थात अपने से दुर्बलों को एपने पैरों तले दबाकर रखने की मनोवृत्ति से अस्पृश्यता पैदा हुई है। यह इतनी लंबी अवधि तक इसलिए बरकरार है क्योंकि हमने उन्हें गंदी बस्तियों में रखकर समाज में घुलने-मिलने नहीं दिया है।[16]

सच्चाई यह है कि गांधी हिन्दू धर्म में अस्पृश्यता को स्वीकार नहीं करते थे परन्तु यह अवश्य मानते थे कि गांधी हिन्दू धर्म में अस्पृश्यता को स्वीकार नहीं करते थे परन्तु यह अवश्य मानते थे कि प्रारम्भ में स्वच्छता का एक विधान अवश्य था जिसके पीछे मनोवैज्ञानिक धारणाएं थीं। स्वच्छता का यह नियम हिन्दू धर्म में मोक्ष प्राप्त के लिए आवश्यक था, क्योंकि अंतिम छुटकारे के लिए शरीर और मन अत्यंत स्वच्छ होने चाहिए। इसलिए प्राचीन हिन्दुओं में मोक्ष प्राप्ति के रूप में इसकी उत्पत्ति हुई थी। परन्तु कालान्तर में इसमें उच्चता के झूठे

अहंकार ने प्रवेश कर लिया। इसके लिए वे सवर्ण वर्ग को जिम्मेदार मानते हैं।

गांधी के विचारों में अस्पृश्य लोग हिन्दू धर्म के एक अंग के रूप में थे। यही कारण था कि गांधी ने गोलमेज सम्मेलन में यह स्पष्ट कह दिया था कि, “मैं अछूतों के लिए पृथक निर्वाचन के विरोध में संघर्ष करते हुए मिट जाऊंगा“[17] क्योंकि उनके मत में अस्पृश्यता हिन्दू धर्म का अंग नहीं थी वह इसे समूल नष्ट करना चाहते थे। इसलिए उन्होंने कहा कि, “इस शैतान रूपी बुराई को जड़-मूल से उखाड़कर फेंक दिया जाए, तो जो लोग आज धर्म को देश की तरक्की में सबसे बड़ी बाधा मानते हैं, वे फौरन अपनी राय बदल देंगे।“[18]

गांधी अस्पृश्यता को हिन्दू समाज के विकास में बाधक मानते थे। वे लिखते हैं कि, “मैं अपने निजी अनुभव से यह जानता हूं कि अस्पृश्यता जिस रूप में आज स्थापित है, उससे हिन्दू समाज की प्रगति रूक जाएगी।“[19] वे कहते हैं, “मुझे बड़ी जलालत मालूम होती है कि इस प्रगतिशील हिन्दू राज्य में अस्पृश्यता अपने वीभत्स रूप में व्याप्त है।“ यह अस्पृश्यता हिन्दू धर्म के लिए एक ऐसा अभिशाप है, जो उसके जीवन तत्व को खाए जा रहा है और “कभी-कभी लगता है कि यदि हम चेत न पाये तो हिन्दू धर्म का अस्तित्व ही खतरे में पड़

जाएगा।“[20] इसका तात्पर्य यहा नहीं है कि गांधी अस्पृश्यता को हिन्दू धर्म का अंग मानते थे बल्कि उनके मत में अस्पृश्यता सत्य के, अहिंसा के और धर्म के विरुद्ध है। वे कहते हैं कि, “यदि किसी दिन मुझे यह पता चले कि वेद, उपनिषद, भगवद गीता, स्मृतियों और अन्य शास्त्रों में अस्पृश्यता का समर्थन है, तो दुनिया की ऐसी कोई ताकत नहीं होगी जो मुझे हिन्दू धर्म से बांधकर रखे। तब मैं हिन्दू धर्म को उसी तरह फेंक दूंगा जिस तरह सड़े हुए सेब को फेंक देते हैं।“[21] वे लिखते हैं, “यदि एक क्षण के लिए भी मुझे यह विश्वास हो जाए कि हिन्दू धर्म मुझसे किसी भी प्राणी को छूने में पाप समझने की आशा करता है, तो हिन्दू कहलाने का हक नहीं रहेगा।“[22] बल्कि गांधी का तो यह विश्वास था कि हिन्दू समाज एक दरिया है, उसके गर्भ में समाकर सब कचरा साफ हो जाता है। इसलिए उन्होंने कहा, “ग्रीस, इटली आदि देशों के लोग भारत में आकर समा गए, उन्हें किसी ने हिन्दू नहीं बनाया।“[23] वे कहते हैं, “मैं सनातनी हिन्दू होने के साथ यह दावा करता हूं कि मुझे शास्त्रों का काफी ज्ञान है और यह सुझाव भी देने का साहस करता हूं कि अस्पृश्यता का आज जो व्यवहार किया जाता है उसका हिन्दू शास्त्रों में न तो कोई विधान है और न ही हिन्दू धर्म के अनुकूल है। हिन्दू धर्म का यह मूल नियम है कि सत्य और अहिंसा के अतिरिक्त सब कुछ

क्षणभंगुर है, माया है। इसलिए मेरे विचार में छुआछूत मानवता पर एक कलंक है।"[24] जो बुद्धि की कसौटी पर खरा न उतरे उसे अस्वीकार करने में , गांधी पीछे नहीं रहते थे

गांधी ऐसे शास्त्रों को मानने के समर्थक नहीं थे, जिनमें परिवर्तन या व्याख्या की गुंजाइश ही न हो। आगे गांधी लिखते हैं कि, "हम भूल में न पड़ें कि प्राचीनकाल के लिखे हुए शास्त्रों की एक-एक बात हमारे लिए बंधनकारी है। उनके मत से जो शास्त्र नैतिकता के सिद्धांतों के विरुद्ध हो, वह चाहे कितने ही पुराने क्यों न हों, वह शास्त्र नहीं हो सकते। गांधी के मत में शास्त्रों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। एक "शास्त्र वे हैं जिनमें दर्शन के ऊंचे सिद्धांतों का प्रतिपादन किया गया है। जो मनुष्य को आध्यात्मिक विकास का निर्देश देते हैं।" दूसरे, "शास्त्र वे हैं जिनमें सामाजिक अनुशासन के नियम बताये गए हैं और उनकी अवहेलना करने पर दण्ड का विधान दिया गया है।"[25] साध ही वे यह भी स्वीकार करते हैं कि, "स्मृतियों में कुछ संदिग्ध अनुच्छेद अवश्य मिलते हैं, जो एक वर्ग पर कठोर दण्ड का विधान देते हैं। परंतु उन अनुच्छेदों में भी ऐसा कुछ नहीं दिया गया कि अपृश्यता दैवी प्रथा है।"[26] गांधी की दृष्टि में धर्म-ग्रंथों में छिपी बातों को ब्रह्मा वाक्य नहीं कहा जा सकता। उनका मत था कि हर व्यक्ति शास्त्रों के

बारे में यह तय नहीं कर सकता कि शास्त्रों का कौन-सा वाक्य प्रामाणिक है और कौन-सा वाक्य अप्रामणिक है। गांधी, डॉ. अम्बेडकर की तरह यह मानते थे कि कोई ऐसी आधिकारिक संस्था होनी चाहिए जो धर्मग्रंथों के नाम से समस्त साहित्य का पुनर्निरक्षण करें तथा नैकित मूल्यों से रहित धर्म तथा आचार नीति के विरुद्ध पड़ने वाले सभी बंधनों को निकाल फेंके और उसके बाद जो शेष रहे, उसका एक संस्करण हिन्दुओं के मार्गदर्शन के लिए प्रस्तुत करें। साथ ही उन्होंने यह भी जोर दिया, "यदि यह कार्य सेवा भाव से किया जाए तो यह निश्चित है कि इससे उन लोगों को बड़ा सहारा मिलेगा, जिन्हें ऐसे सहारे की सख्त जरूरत है।" इसी कारण उन्होंने स्वीकार किया, "जो शास्त्र सत्य, अहिंसा के प्रतिकूल लगे, उसे शास्त्र न माना जाए।"[27] गांधी के मत में, "वेद ईश्वरीय वचन तभी हो सकता है,जब वे जीवित हों, विवेकशील हो और सभी परिस्थितियों में मार्गदर्शन करता रहे।" इस प्रकार उन्होंने यहां तक कह दिया, "जो वेद और स्मृतियां अस्पृश्यता का आदेश दें, उन्हें बदल देना चाहिए।"

वास्तविकता यह कि हिन्दू धर्म ग्रंथों के विवाद से गांधी इतना तंग आ गए थे कि वे कहने लगे कि, "शास्त्रों का अर्थ करने के झंझट में इतना फंस गए हैं कि हमने धूल का ध्यान करने के बजाय ध्यान को

धूल कर दिया है। दूसरे शब्दों में चावल को छोड़कर हम छिलके से चिपट गए हैं। अर्थात् हमने मक्खन को छोड़ा और बेस्वाद मट्टे के पीछे दौड़ रहे हैं।[28]

सच तो यह है कि गांधी अस्पृश्यता को गांधी सभी बीमारियों की जड़ मानते थे। इसलिए वे चाहते थे कि अछूतों की दशा को सुधारने कि दिशा में यदि हम एकजुट हो गए तो इससे ज्यादा भौतिकऔर आध्यात्मिक कार्य और क्या हो सकता है। वह तो जाति प्रथा को हिन्दू धर्म में केवल व्संगति के रूप मे स्वीकार करते थे। उन्होंने जाति-व्यवस्था और अस्पृश्यता को हिन्दू धर्म ग्रंथों के अनिवार्य अंग के रूप में कभी स्वीकार नहीं किया। वे अपृस्श्यता को नष्ट करके दलितों के उत्थान के समर्थक थे। इसलिए उन्होंने अस्पृश्यता-निवारण को अपने रचनात्मक कार्यक्रम में स्वराज्य से भी ज्यादा महत्त्व दिया।

अस्पृश्यता उन्मूलन

गांधी अहिंसक प्रविधि से अस्पृश्यता का भारतीय समाज से उन्मूलन चाहते थे। गांधी भारतीय समाज से सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक विषमता की खाई को समाप्त करके समानता लाना चाहते थे। गांधी की दृष्टि में अस्पृश्यता जातियों के उत्पीड़न का कारण

धार्मिक और मनोवैज्ञानिक था। इसलिए वे चाहते थे कि सबसे पहले धार्मिक और मनोवैज्ञानिक बाधाओं को दूर करके अस्पृश्यता का अंत किया जाये। अस्पृश्यता-निवारण कैसे किया जाए, इसके लिए जहां एक ओर वे अस्पृश्यों मंदिर-प्रवेश के अधिकार से सवर्णों के हृदय-परिवर्तन की बात करते थे, वहीं दूसरी ओर अनुसूचित जातियों के साथ रहकर स्वच्छता, स्वास्थ्य की जानकारी तथा उनके लिए शिक्षा, शुद्ध जल की व्यवस्था से उनके उत्थान की बात करते थे। उनका यह दृढ़ विश्वास था कि दलितों को जब तक सामाजिक समानता नहीं मिल जाती, तब तक उनका आर्थिक और राजनीतिक उत्थान नहीं हो सकता।

गांधी यह भी चाहते थे कि सामाजिक उत्थान का कार्य निचले स्तर से प्रारम्भ होना चाहिए। क्योंकि उनकी यह मान्यता थी कि यदि ऐसा नहीं किया गया तो निचले स्तर की निराशा उनको संगठित करेगी और वह वर्ग, सवर्णों से आजीवन शत्रुता रखेगा। गांधी दूर-दृष्टि रखने वाले व्यावहारिक व्यक्ति थे। इसलिए वे यह कहते थे कि जो राष्ट्र या वंश अपने घर से अन्त्योदय से उत्थान प्रारम्भ करके सर्वोदय क सिद्ध करेगा, उसके हाथ में दुनिया का नेतृत्व आयेगा। उनका दृढ़ मत था कि भिन्न-भिन्न राष्ट्रों और वंशों के बीच जो सबसे पिछड़े हैं, दबे हुए हैं,

उनाथ, असहाय और हताश हैं, उन्हीं से उत्थान के कार्य का प्रारम्भ करके, सब राष्ट्रों का, सब वंशों का उत्थान करना ही धर्म, राजनीति और समाज की नीति होनी चाहिए। यद्यपि गांधी के दृष्टिकोण में व्यक्ति के उत्थान की दृष्टि से धर्म, राजनीति, अर्थनीति और समाज कोई अलग-अलग टुकड़े नहीं थे, वे तो समग्र विकास की बात करते थे। परन्तु एक व्यावहारिक व्यक्ति होने के नाते उन्होंने समय और परिस्थियों के अनुसार प्रत्येक समस्या पर अलग से भी कहा है। इसलिए गांधी की अस्पृश्यता निवारण के उपायों की विवेचना यहां की जा रही है-

गांधी की दृष्टि में अस्पृश्य जातियों का उत्थान तब तक सम्भव नहीं था, जब तक अस्पृश्यता निवारण के कार्य को प्रधानता न दी जाए। उनके अस्पृश्यता-निवारण का अर्थ था सवर्णों की आत्मा से इस कलंक को हटाना। इसलिए वे एक हरिजन को लिखते हैं कि, "मैं अस्पृश्यता के कलंक से अपनो को मुक्त करने और पाप का प्रायश्चित करने के लिए ही हरिजन-उत्थान में रुचि लेता हूं। हरिजनों की उन्नति में बाधा रखने वाले इस कृत्रिम अवरोध के हटने से उनकी नैतिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्थिति में तेजी से सुधार आएगा। अस्पृश्यता-निवारण से हम सभी एक-दूसरे के करीब आएंगे और इस

भारत के विभिन्न समुदायों के बीच हार्दिक एकता पैदा करेंगे।"[29] गांधी की दृष्टि में अस्पृश्यता ही दलितोत्थान के मार्ग में सबसे बड़ा अवरोध था। परन्तु वे यह मीनते थे कि अस्पृश्यता ही दलितोत्थान के मार्ग में सबसे बड़ा अवरोध था। परन्तु वे यह मानते थे कि अस्पृश्यता-निवारण का कार्य सवर्णों के हृदय में होती है, न कि अवर्णों के हृदय में। इसलिए जब अस्पृश्यता का अंत हो जाएगा, तब सभी समुदाय आपस में एकता के सूत्र में स्वतः ही बंध जाएंगे। यही कारण था कि गांधी सबसे पहले सवर्णों को कर्त्तव्य का बोध कराना चाहते थे।

गांधी की दृष्टि में अस्पृश्यता का व्यवहार यह है, कि सवर्ण लोग अस्पृश्यों से घृणा करते हैं ओर उन्हें छूना पाप मानते हैं। इसलिए वे कहते हैं कि, "अस्पृश्यता को अस्पृश्यों से नहीं बल्कि उच्च हिन्दुओं से हटाया जाना चाहिए क्योंकि सवर्ण लोग ही अस्पृश्यता को मानते हैं।"[30] यही कारण है कि गांधी सवर्ण हिन्दुओं को कहते हैं, "हम अपने किए गए पर पश्चाताप करें, उन लोगों के प्रति अपना व्यवहार बदलें, जिन्हें आज तक हम शैतानियत भरी प्रणाली से दबाते रहे हैं। हमें उनके साथ सगे भाईयों-सा व्यवहार करना चाहिए। हमें उनकी वह विरासत वापस कर देनी चाहिए, जो हमने उनसे छीन ली थी।" इस तरह गांधी की

दृष्टि में अस्पृश्यता–निवारण का यह अर्थ था कि सवर्ण लोग उन्हें हेय दृष्टि से न देखें और अपने किए का पश्चाताप करें।

गांधी सवर्णों के इस तर्क को भी नहीं मानते थे, “अस्पृश्यता जब शराब पीना, मुर्दार मांस खाना और गंदे रहने की आदत को छोड़ देंगे, तब हम अस्पृश्यता का व्यवहार छोड़ देंगे।“ इस विषय पर गांधी का उत्तर था कि, “उनकी इस स्थिति के लिए हम ही जिम्मेदार है। हमने ही उनको सुविधाओं से वंचित किया है, जितनी हम उन्हें सुविधाएं देंगे, उतना ही वे सफाई से रहेंगे। फिर ब्राह्मण, वैश्य और दूसरी जातियों में भी ऐसे मांसाहारी और गंदे लोग होते हैं, फिर यह उल्टा अन्याय अन्त्यजों के साथ ही क्यों किया जाता है।“ गांधी सवर्णों के इस तर्क को भी स्वीकार नहीं करते थे कि अवर्णों का शुद्धि संस्कार करके उन्हें सवर्णों में मिलाया जाए। गांधी के मत में, “हरिजन भी हिन्दू समाज के एक महत्वपूर्ण अंग हैं, इसलिए शुद्धि क्यों और कौन करेगा? शुद्दि तो अन्तरात्मा की होनी चाहिए।” गांधी मूल रूप से अस्पृश्यता की प्रथा को बनाए रखने और इन जातियों की मौजूदा स्थिति के लिए सवर्णों को दोषी मानते थे। इसलिए वे सवर्णों से कहते थे कि, “हिन्दू लोग अन्त्यजों की सेवा करके कोई उपकार नहीं कर रहे हैं, क्योंकि अन्त्यज भाइयों को अन्त्यज बनाने के लिए सवर्ण हिन्दू ही जिम्मेदार हैं।“[31]

गांधी का यह दृढ़ विश्वास था, "हरिजन आज जिन आयोग्यताओं के कारण कष्ट पा रहे हैं, वे सवर्णों द्वारा थोपी गई है। इसलिए सवर्ण हिन्दुओं को इस ऋण को वापस करना चाहिए, चाहे ऋण देने वाला मांग करे या न करे।" दूसरे शब्दों में गांधी का यह विचार था, "हरिजनों का जो ऋण सवर्णों के सिर पर चढ़ा है, उसे उन्हें साफ-साफ कबूल कर लेना चाहिए और उस ऋण की पाई-पाई उन्हें चुका देनी चाहिए।"

गांधी की दृष्टि में सवर्ण हिन्दू ही अस्पृश्यता-निवारण का कार्य कर सकते हैं, क्योंकि अस्पृश्यता की भावना सवर्णों के हृदय में ही होती है और वे ही इसके लिए जिम्मेदार हैं। यही कारण है कि गांधी कहते हैं, "सवर्ण हिन्दुओं को चाहिए, कि अन्त्यजों को साफ-सुथरी चीजें दें, उनके वेतन में वृद्धि करें और जो भी उन्हें दें वह प्रेमपूर्वक दें।"[32] सवर्ण हिन्दू अपने अन्त्यज भाइयों के साथ प्यार करें, उनकी पीड़ा को समझें, उनको अपने सगे भाई की तरह मानें, उन्हें कोई कष्ट पहुंचाये तो उससे उनकी रक्षा करें तथा उनको स्पर्श करना पाप न समझें। वास्तविकता यह है कि गांधी सवर्णों से यह उपेक्षा करते थे कि वे ऊंच-नीच की गलत धारणाओं को मन से निकाल दें और साथ ही इस भ्रम को भी मन से निकाल दें कि उन्हें देखने से पाप लगता है और उन्हें छू लेने से भोजन अपवित्र हो जाता है। अतः गांधी अनुसूचित जातियों के सामाजिक और

सांस्कृतिक उत्थान के लिए यह चाहते थे कि सवर्ण हिन्दू समाज, स्वयं आगे बढ़कर दलित भाईयों को गले लगाकर उनसे अपने किए पापों के लिए क्षमा मांगे और भविष्य में ऐसा न करने की कसम खाएं। तभी अस्पृश्यता के इस कलंक को धोने में हम सक्षम होंगे। इस प्रकार के उपायों से गांधी सवर्णों के आत्म परिवर्तन से अस्पृश्यता-निवारण तथा दलित उत्थान करना चाहते थे।

अस्पृश्य जातियों का मंदिर-प्रवेश, गांधी के दृष्टिकोण में सवर्णों का आत्मपरिवर्तन और दलितों का सामाजिक, सांस्कृतिक उत्थान का कारगर उपाय था। गांधी के मत में मंदिर-प्रवेश एक आध्यात्मिक वस्तु थी, जिससे सभी उत्थान सम्भव हो सकते थे। वह कहते हैं, "मंदिर-प्रवेश के बिना सुधार के सारे उपाय रोग से साथ खिलवाड़ करने जैसा है। मंदिरों की आवश्यकता को अस्वीकार करने का मतलब स्वयं ईश्वर, धर्म और भौतिक अस्तित्व की आवश्यकता को अस्वीकार करने जैसा होगा।" उनकी दृष्टि में, "मंदिर-प्रवेश उन्हें यह विश्वास दिलवाएगा कि ईश्वर के समक्ष वे अछूत नहीं हैं।" मंदिर-प्रवेश के बारे में वे कहते थे, "जो आज तक यह मानते रहे कि मंदिर केवल सवर्णों के लिए है, उस पूर्वाग्रह को हमें दूर करना चाहिए। हरिजन भाई मंदिर में आएं, हमें उनके लिए मंदिर के द्वार खोल देने चाहिए। जब हरिजन

भाई समझ जाएंगे कि हम उन्हें प्रेम से बुलाना चाहते हैं, तब वे अपने आप चले आएंगे।"

मंदिर प्रवेश को गांधी अस्पृश्यों की सामाजिक और आर्थिक उत्थान की कुंजी मानते थे। गांधी के मत में अस्पृश्यों की आर्थिक समस्या का हल तब तक सम्भव नहीं था, जब तक अन्य लोगों के साथ बराबरी के आधार पर अस्पृश्यों को मंदिर-प्रवेश का अधिकार नहीं मिल जाता। उनकी दृष्टि में अस्पृश्यता-निवारण का कारगर उपाय मंदिर-प्रवेश था और मंदिर-प्रवेश से ही अन्य सुधारों की प्रगति सम्भव थी। इसलिए वे कहते हैं, "मैं यह मानता हूं कि हरिजनों की आर्थिक और शैक्षणिक प्रगति की रफ्तार में मंदिर-प्रवेश से तेजी लाई जा सकती है, क्योंकि मंदरि-प्रवेश ही अस्पृश्यता का द्योतक है। कोई अस्पृश्य आदमी कितना ही पढ़ा-लिखा हो, कितना ही धनवान हो लेकिन फिर भी वह रहेगा अस्पृश्य ही, परन्तु मंदिर-प्रवेश से अस्पृश्यता उड़न छू हो जाएगी।"[33] इसी संदर्भ में वे लिखते हैं, "आप आर्थिक समस्याओं को हल कर भी दें, तो भी उससे हरिजन समस्या हल होने की नहीं है, क्योंकि डॉ. अम्बेडकर आर्थिक और शैक्षिक दृष्टि से हममें से अधिकांश से अच्छे हैं, फिर भी माने तो अछूत ही जाते हैं।" गांधी के मत में, कुछ हरिजनों की आर्थिक स्थिति ठीक होते हुए भी उनके साथ सामाजिक

कोढ़ियों जैसा सलूक किया जाता है। उदाहरण स्वरूप वे कहते हैं, “त्रावणकोर के हजारों एजवा और बंगाल के मामशूद्र काफी सम्पन्न हैं, परन्तु उनके लिए वह कितने दुख और सवर्ण कहे जाने वाले हिन्दुओं के लिए कितने शर्म की बात है कि उन हरिजनों की सम्पन्नता से उनके सामाजिक और आर्थिक दर्जे में कोई अन्तर नहीं आया है। सच्चाई यह है कि जब अस्पृश्यता दूर हो जाएगी तब हरिजन भी शांतिपूर्वक सवर्णों के साथ मिलकर आर्थिक लाभ उठायेंगे। ”

गांधी इस पर जोर देते थे कि “मंदिर-प्रवेश का कार्य कोई जोर-जबरदस्ती से नहीं किया जाना चाहिए। उनकी दृष्टि मे यह कार्य सवर्ण हिन्दुओं के मत को अनुकूल दिशा देकर ही सम्पादित किया जाना चाहिए।“ साथ ही उनकी सवर्णों से भी यह अपील थी कि मंदिरों के द्वार अस्पृश्यों के लिए इसलिए खोल देने चाहिए, “मंदिर बंद करके हमने पाप किया है, तब अवश्य यह एक धार्मिक समानता का कार्य होगा।“

इतना ही नहीं बल्कि उनका यह मत था कि हरिजनों के लिए मंदिर खोलने का अकेला काम हिन्दू धर्म को शुद्ध कर देगा और सवर्ण हिन्दुओं और हरिजनों, दोनों के हृदय को नया प्रकाश ग्रहण करने के लिए खोल देगा।“ गांधी की दृष्टि में, “मंदिर-प्रवेश का उपाय सभी

हरिजनों के अन्त:करण को स्पर्श करेगा, जबकि आर्थिक और शैक्षणिक उत्थान का प्रभाव केवल उन्हीं हरिजनों पर पड़ेगा, जिन्हें उनका सीधा लाभ होगा।"

गांधी सवर्ण और दलितों के मध्य सामाजिक, सांस्कृतिक समानता लाने के उद्देश्य से मंदिर-प्रवेश की बात करते थे। गांधी की दृष्टि मंदिर-प्रवेश कार्यक्रम एक ऐसा कारगर उपाय था कि जिसके द्वारा अनुसूचित जातियों को हिन्दू समाज में न केवल धार्मिक समानता का दर्जा प्राप्त करेगा, बल्कि आर्थिक, सामाजिक एवं शैक्षणिक कार्यक्रम को गति प्रदान करने में भी सहायक होगा। गांधी की दृष्टि से यदि इन जातियों का आर्थिक उत्थान कर भी दिया जाए तो इससे अस्पृश्यता का कलंक धुलने वाला नहीं था, क्योंकि यह कलंक आत्मा का प्रश्न था। आत्मा में परिवर्तन के बिना इस जहर का कभी भी असर हो सकता था। यही कारण था कि गांधी सबसे पहले इस जहर क समाप्त करने के लिए मंदिर-प्रवेश को एक कारगर उपाय मानते थे।

गांधी का यह दृढ़ मत अवश्य था कि अस्पृश्यता का कलंक और अनुसूचित जातियों की दयनीय दशा के लिए सवर्ण हिन्दू ही दोषी हैं। यही कारण था कि गांधी के रचनात्मक कार्यक्रम में सवर्ण हिन्दुओं को जागरुक करना उनका एक मुख्य उद्देश्य था। परंतु इसका तात्पर्य यह

भी नहीं था कि अस्पृश्य जातियां इस उत्थान के कार्य में भागीदारी न निभायें। बल्कि गांधी का मत थाकि अस्पृश्यों के सामाजिक और सांस्कृतिक उत्थान में जहां एक ओर सवर्णों द्वारा प्रायश्चित का उपाय का तरीका आवश्यक है, वहीं अस्पृश्यों द्वारा अपना आंतरिक और बाहरी सुधार भी आवश्यक है। इसलिए वे लिखते हैं, "अस्पृश्यों का आंतरिक सुधार और स्पृश्यों द्वारा प्रायश्चित, ये दोनों काम साथ-साथ चलते चाहिए।"

गांधी कहते हैं, "हरिजनों को भी जोश के साथ अपने अन्दर सुधार करना चाहिए, जिससे सवर्णों को यह कहने का मौका न मिले कि इन जातियों में अमुक बुराई है।" उन्होंने इन जातियों से स्पष्ट कहा कि, "अपनी मुक्ति के लिए अपने आपको शुद्ध करना होगा। शराबखोरी तथा मुर्दार मांस खाने जैसे आदतें छोड़ देनी होंगी। आप अभ थालियों का जूठन लेना और सड़ा हुआ अन्न लेना बंद कर दें।"[34] इसी तरह मद्यपान करना भी छोड़ दें। "साथ-साथ महार, चमार (वर्तमान में जाटव), भंगी (हरिजन वर्ग) इत्यादि के मध्य जो भेदभाव है, उसे भी दूर कर देना चाहिए। आत्मशुद्धि के इस कार्य में इतना करना हरिजन भाईयों के कर्त्तव्य का भाग है।"[35]

गांधी अनुसूचित जातियों से यह भी कहते थे, “अच्छे लोग स्वच्छ रहते हैं, दातुन करते हैं और राम नाम जपते हैं, इससे शरीर और आत्मा शुद्ध होती है और गंदे व्यसन भी छूट जाते हैं। फिर जब सवर्ण यह काम करते हैं तो आपको भी यह काम करना चाहिए।“ वह इन जातियों को यह भी लिखते हैं, “जिसे आप अपना अधिकार मानते हैं, उसके लिए आप हिन्दू समाज से शिष्टतापूर्वक अवश्य लड़ें लेकिन साथ ही हिन्दू समाज के नियमों का पालन भी करें और व्याभिचार आदि छोड़कर अपने अंत:करण को निर्मल बनाएं।“ उन्होंने अछूतों को यह भी सलाह दी, “वे धैर्य से कष्टों को सहन करें और प्रार्थना करें कि उच्च जातियों के लोगों की क्रूरता समाप्त हो जाए।“ अवर्णों से उन्होंने यह भी अपील की, “यदि सवर्ण हिन्दू आप लोगों पर अत्याचार करें तो आपको यह समझना चाहिए कि दोष हिन्दू धर्म में नहीं है बल्कि उसके अनुयायियों में है।“ अर्थात वह इन जातियों से वह अपेक्षा करते थे कि वे कोई ऐसा कार्य नहीं करें जिससे सनातनी वर्ग के लोगों के दिल को दुख पहुंचे।

वास्तव में गांधी उदारवादियों की तरह मानवीय दुर्बलताओं को स्वीकार करते थे। वे मार्क्स की तरह दो विपरीत दिशाओं वाले संघर्षपूर्ण वर्गों को स्वीकार नहीं करते थे। गांधी की दृष्टि में मानवीय प्रकृति सुधारवादी थी और इसलिए गांधी को भी आशावादी माना जाता

है। यही कारण था कि उनकी दृष्टि में सवर्ण-अवर्णों ने जो गलतियां की हैं, उनका सुधार भी वे स्वयं ही कर सकते हैं, ऐसा उनका विश्वास था। गांधी के मत में एक व्यक्ति या वर्ग बहुत अच्छा और दूसरा बहुत बुरा नहीं होता, बल्कि वे यह मानते थे कि एक बहुत अच्छा तथा दूसरा कम अच्छा हो सकता है। परंतु इसका तात्पर्य यह नहीं था कि कम अच्छे में सुधार नहीं हो सकता बल्कि वे यह मानते थे कि मनुष्य परमात्मा तो नहीं बन सकता, परन्तु महात्मा अवश्य बन सकता है। गांधी की दृष्टि में सवर्णों ने ज्यादा पाप किए हैं, इसलिए इस वर्ग के उत्थान में उनका कर्त्तव्य ज्यादा बनता है। अवर्णों को भी वह यह सलाह देते हैं कि जो चीज दूसरे पसंद नहीं करते हैं, उसे आपको भी नहीं करना चाहिए। क्योंकि गांधी भी कांट, मिल, ग्रीन और हावहाउस के उस मत को स्वीकार करते हैं कि व्यक्ति में सुधार का विषय अन्दरूनी होता है और आत्म-सिद्धि इच्छा के स्वतंत्र प्रयोग पर निर्भर होती है। व्यक्ति को सद-इच्छा का बोध आत्म-संयम से कराया जा सकता है, बाह्मा प्रतिबंधों से नहीं। इसलिए इसे जोर-जबरदस्ती से नहीं कराया जा सकता। इसी कारण उनकी यह मान्यता थी कि किसी भी व्यक्ति या समाज का उत्थान स्वयं उसके नागरिकों के श्रम और व्यवहार पर निर्भर करता है।

गांधी भी मानते हैं कि उत्थान का कार्य व्यक्ति और समाज की अपनी योग्यता और परिश्रम पर निर्भर करता है। दूसरे शब्दों में गांधी का यह दृढ़ मत था कि अनुसूचित जातियों की अस्पृश्यता का अंत तब तक संभव नहीं होगा, जब तक सवर्णों की आत्मा में परिवर्तन नहीं आएगा और दलितोत्थान तब तक संभव नहीं होगा, जब तक दलितों में अपने कर्त्तव्यों के प्रति जागरुकता नहीं आएगी। यही कारण था कि गांधी सवर्ण और अवर्ण दोनों को उनके कर्त्तव्यों का बोध कराने के ले जहां एक ओर सवर्णों को एपने किए का प्रायश्चित कराने के लिए, दलितों के मंदिर-प्रवेश, सार्वजनिक कुओं, उद्यानों, सरायों, धर्मशालाओं, दाह संस्कार घाटों के प्रयोग का अधिकार दिलाने के लिए आंदोलन चलाते रहे, वहीं दूसरी ओर दलितों की स्वच्छता और शिक्षा के लिए संस्थाओं का गठन करते रहे। वहीं मदिरा और मांस त्याग करने पर बल देते रहे। यही कारण था कि अस्पृश्यता-निवारण के लिए वह अनुसूचित जातियों को मंदिर-प्रवेश का अधिकार सर्वप्रथम दिलाना चाहते थे।

उनकी दृष्टि में अस्पृश्यता-निवारण या दलितोत्थान के प्रशन को हल करने के लिए सवर्ण हिन्दुओं की आत्मा को बदलना ही एकमात्र मार्ग था, चाहे सफलता मिलने में कुछ वर्ष क्यों न लग जाएं। इसलिए

वे कहते हैं कि, " यह रोग ऐसा नहीं है जिसका कोई कानूनी इलाज किया जा सके या जिसे संसद के निर्णय से दूर किया जा सके, इसका उपचार तो पूरी तरह इस बात पर निर्भर करता है कि हम अपने हृदय को बदलें।"[88] इसलिए वे लिखते हैं कि, "जबरदस्ती बाध्य करने के उपाय पर मेरा तनिक भी विश्वास नहीं है। मैं लोगों को हृदय और बुद्धि के धरातलों पर समझा—बुझाकर उनसे सत्य की अपनी अवधारणा स्वीकार कराने की कोशिश करता हूं।"[36] उनकी दृष्टि में केवल स्वतंत्र वातावरण में ही हृदय-परिवर्तन संभव था। वे कहते हैं, "मैं जिस लक्ष्य को लेकर चल रहा हूं , वह यह है कि हर सवर्ण हिन्दू अपने हृदय से अस्पृश्यता की भावना को निकाल दे और इस तरह अपना पूर्ण हृदय-परिवर्तन करे।"

गांधी सवर्णों के हृदय-परिवर्तन के बिना अस्पृश्यता-निवारण का कार्य असंभव मानते थे। वास्तव में गांधी अनुसूचित जातियों के उत्थान के लिए दो मार्गों पर बल देते थे। प्रथम, अपने पीड़ित भाईयों के बीच में रहकर उनके कष्टों का निवारण करना। दूसरा, उन लोगों के हृदय बदलना, जो अपने ही भाईयों को अछूत समझने की प्रथा में विश्वास करते हैं। अस्पृश्यता-निवारण और अनुसूचित जातियों का उत्थान , ये दो बातें एक-दूसरे से भिन्न होते हुए भी, गांधी की दृष्टि में

एक दूसरे से संबंधित थीं। अनुसूचित जातियों के उत्थान में उनके शैक्षिक, आर्थिक और सामाजिक सुधार की बातें है, जबकि अस्पृश्यता-निवारण नागरिक अधिकार तथा सामान्य सुविधाएं देना सम्मलित है। गांधी के दृष्टिकोण से अस्पृश्यता-निवारण तक तक संभव नहीं था, जब तक सवर्ण इस बात को स्वीकार न कर लें कि किसी भी व्यक्ति को जन्म के आधार पर छूना पाप नहीं है। और जन्म से कोई अपवित्र नहीं हो सकता। गांधी इस बात को भी स्वीकार करते थे यह कार्य एक निश्चत समय में किसी भी संत या कानून द्‍वारा संभव नहीं हो सकता। इसका निवारण तभी संभव हो सकता है जब सवर्णों की आत्मा में परिवर्तन आ जाए। इसलिए गांधी के मत में अस्पृश्यता-निवारण का कार्य क्रमिक परिवर्तन के सिद्धांत पर आधारित है। जहां तक अनुसूचित जातियों के भौतिक उत्थान की बात है, इसके लिए वे दलितों को स्वयं संघर्ष के लिए तो कहते थे, परंतु साथ-ही साथ उनकी दृष्टि में दलितोत्थान का कार्य सवर्णों का कर्तव्य भी मानते थे। इसलिए गांधी ने सन 1932 में हरिजन सेवक संघ को यह कार्य सौंपा था। परंतु आर्थिक, नागरिक और राजनीतिक अधिकारों के बारे में गांधी का यह स्पष्ट मत था कि अस्पृश्यता-निवारण के साथ ही दलितों को यह अधिकार स्वयं ही प्राप्त हो जाएगा। गांधी के इस दृष्टिकोण से डॉ.

अम्बेडकर संतुष्ट नहीं थे। डॉ. अम्बेडकर की दृष्टि में जब तक नागरिक और राजनीतिक अधिकार दलितों को प्राप्त नहीं होंगे तब तक दलितोत्थान का प्रश्न ही नहीं उठता। यही कारण है कि जहां गांधी की दृष्टि में अनुसूचित जातियों का उत्थान धार्मिक और मनोवैज्ञानिक साधनों से संभव था, वहीं डॉ. अम्बेडकर की दृष्टि में वह नागरिक और राजनीतिक अधिकारों से संभव था। परंतु अब प्रश्न यह है कि 1947 में भारत की गुलामी का अंत और (1948) गांधी की दुःख मृत्यु के बाद हमारे संविधान में अस्पृश्यता निवारण के कौन-कौन से प्रावधान रखे गए और अस्पृश्यता निवारण में हम कहां तक सफल हुए उसकी चर्चा अनिवार्य है।

निष्कर्ष

गांधीवादी दृष्टिकोण अनुसूचित जातियों का केवल आर्थिक और राजनीतिक कल्याण से समस्या से समाधान नहीं मानता, बल्कि पहले सामाजिक पहलुओं पर विशेष ध्यान देने की बात करता है। क्योंकि गांधीवादी सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक जीवन को अलग-अलग टुकड़ों में बांटकर उत्थान का समर्थक नहीं रहा है। गांधी की नजरों में अस्पृश्यता-निवारण और दलितों के भौतिक उत्थान की समस्या़ केवल अनसूचित जातियों तक ही सीमित नहीं थी, बल्कि यह सवर्ण हिन्दू या

सम्पूर्ण भारतीय समाज की समस्या थी। इसका समाधान न तो अनुसूचित जातियों के दृष्टिकोण से। इसके लिए एक समन्वित दृष्टिकोण अपनाए जाने की आवश्यकता थी। गांधीवादी का एक मूल तत्व यह भी है कि सामाजिक परिवर्तन विधान-निर्माण और जोर-जबरदस्ती से नहीं लाया जा सकता। सामाजिक परिवर्तन मानसिक सोच में और अहिंसात्मक पद्धति से ही आ सकता है। क्योंकि जोर-जबरदस्ती का प्रभाव केवल तात्कालिक होता है और परिस्थितियों के बदलने पर वह टूट सकता है, जबकि सामाजिक सहमति से परिवर्तन लाने में देर भले ही हो, परंतु उसका प्रभाव दूरगामी और स्थायी होता है। अत: एक यथार्थ और स्थायी समाज-रचना के लिए गांधी का यह स्पष्ट मत था, कि जब तक व्यक्ति के विचार और सोचने के तरीके में परिवर्तन नहीं लाया जाएगा, तब तक विधान-निर्माण और कानून बना देने मात्र से से समाज को नहीं बदला जा सकता है। इसलिए गांधीवाद लोगों में सत्य, अहिंसा और नैतिक दृष्टिकोण के प्रचार-प्रसार से जन-जागृति उत्पन्न करने पर बल देता है।

संदर्भ

1. मो.क. गांधी, सम्पूर्ण वाडमय, भाग-35, 1970, पृ.149।
2. मो.क. गांधी, सम्पूर्ण वाडमय, भाग-58, 1947, पृ.048।
3. मो.क. गांधी, सम्पूर्ण वाडमय, भाग-64, 1976, पृ.273।
4. मो.क. गांधी, सम्पूर्ण वाडमय, भाग-19, 1966, पृ.20।
5. मो.क. गांधी, सम्पूर्ण वाडमय, भाग-24, 1968, पृ.230।
6. मो.क. गांधी, सम्पूर्ण वाडमय, भाग-19, 1966, पृ.529।
7. मो.क. गांधी, सम्पूर्ण वाडमय, भाग-30, 1969, पृ.183।
8. मो.क. गांधी, सम्पूर्ण वाडमय, भाग-53, 1993, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, नई दिल्ली, पृ.281।
9. वही, पृ.93।
10. वही, भाग-21, 1967 सूचना और प्रसारण मंत्रालय, नई दिल्ली, पृ.261।
11. मो.क. गांधी, सम्पूर्ण वाडमय, भाग-19, 1966, पृ.88।
12. वही, पृ.336।
13. वही, पृ.101।
14. मो.क. गांधी, सम्पूर्ण वाडमय, भाग-35, 1970, पृ.269।

15. मो.क. गांधी, सम्पूर्ण वाडमय, भाग-58, 1947, पृ.238।
16. मो.क. गांधी, सम्पूर्ण वाडमय, भाग-58, 1947, पृ.82।
17. मो.क. गांधी, सम्पूर्ण वाडमय, भाग-55, 1973, पृ.276।
18. मो.क. गांधी, सम्पूर्ण वाडमय, भाग-58, 1970, पृ.101।
19. मो.क. गांधी, सम्पूर्ण वाडमय, भाग-52, 1973, पृ.83।
20. मो.क. गांधी, सम्पूर्ण वाडमय, भाग-35, 1970, पृ.101।
21. मो.क. गांधी, सम्पूर्ण वाडमय, भाग-58, 1947, पृ.6।
22. मो.क. गांधी, सम्पूर्ण वाडमय, भाग-19, 1966, पृ.554।
23. वही, पृ.335।

24. मो.क. गांधी, सम्पूर्ण वाडमय, भाग-26, 1968, पृ.259।

25. मो.क. गांधी, सम्पूर्ण वाडमय, भाग-53, 1973, पृ.431।

26. मो.क. गांधी, सम्पूर्ण वाडमय, भाग-58, 1947, पृ.183।

27. मो.क. गांधी, सम्पूर्ण वाडमय, भाग-64, 1976, पृ.405।

28. मो.क. गांधी, सम्पूर्ण वाडमय, भाग-21, 1967, पृ.1।

29. मो.क. गांधी, सम्पूर्ण वाडमय, भाग-58, (नई दिल्ली: सूचना-प्रसारण मंत्रालय, 1974), पृ.451।

30. मो.क. गांधी, सम्पूर्ण वाडमय, भाग-19, 1966, पृ.153।

31. मो.क. गांधी, सम्पूर्ण वाडमय, भाग-35, 1970, पृ.504।

32. मो.क. गांधी, सम्पूर्ण वाडमय, भाग-21, 1967, पृ.418।

33. मो.क. गांधी, सम्पूर्ण वाडमय, भाग-53, 1973, पृ.301।

34. मो.क. गांधी, सम्पूर्ण वाडमय, भाग-19, 1966, पृ.581।

35. मो.क. गांधी, सम्पूर्ण वाडमय, भाग-56, 1974, पृ.255।

36. मो.क. गांधी, सम्पूर्ण वाडमय, भाग-48, 1972, पृ.287 ।

अध्याय–16

गांधी और पर्यावरण

भूमिका

मानव विकास रिपोर्ट 1990 में स्पष्ट रूप से कहता है कि ''राष्ट्र के असली धन अपने लोग हैं। विकास का उद्देश्य लोगों के लम्बे, स्वस्थ और रचनात्मक जीवन के लिए वातावरण उपलब्ध करना। यह सरल लेकिन अकाट्य सत्य को लोग वैभव व वित्तीय धन की खोज में अक्सर भुला देते हैं।'' सवाल यह उठता है कि विकास के प्रारूप में लोगों का स्थान कहां है? पर्यावरण संरक्षण और पृथ्वी मां के लिए ध्यान कहां है? क्या मानव लम्बे, स्वस्थ और क्रियाशील जीवन का आनन्द ले पा रहा है। यदि नहीं तो इसके लिए कौन जिम्मेदार है।

आज मनुष्य भौतिक उन्नति के मार्ग से सुख खोज रहा है। परिणामतः विभिन्न प्रकार के संघर्ष उत्पन्न हो रहे हैं। विश्व युद्ध, धर्म के नाम पर युद्ध, सामाजिक संघर्ष, मनोवैज्ञानिक तनाव आदि पूरे मानव समाज को टुकड़ों में बांट रही है। इन सबसे भी भयावह, आदमी ने प्रकृति के खिलाफ जो एक सतत् युद्ध छेड़ रखा है पृथ्वी पर जीवन के अस्तित्व को ही खतरे में डाल दिया है। मनुष्य ने दो विश्व युद्धों के बाद भी अपने आप को बचा लिया। लेकिन मनुष्यों ने जो सतत् न खत्म होने वाला युद्ध प्रकृति के खिलाफ छेड़ रखा है, कालानतर में प्रकृति की अस्तित्व बचेगा या नहीं यह कहा पाना असंभव है। प्राकृतिक आपदायें नये–नये रूप में सामने आ रही हैं। समझने वालों के लिए खतरे की घंटी सुनाई दे रही है। इससे पहले कि बहुत देर हो ाए मनुष्य को अपने विवेक से काम लेना चाहिए तथा अपने जीवन को पर्यावरण संरक्षण में लगाना चाहिए। मानव और पर्यावरण में संघर्ष न होकर समन्वय होना चाहिए। मानव के क्रियाकलाप प्रकृति के नियम के अनुरूप होने से विकास संतुलित एवं दीर्घकालिक होते हैं। इसकी चर्चा गांधी ने बड़ी गहराई से 1909 में अपनी पुस्तक हिन्द स्वराज में की है।

वर्तमान स्थिति में आदमी खुद गंभीर तनाव के अधीन पाता है। जिसके कारण व्यक्ति अपने पर्यावरण, प्रकृति, संस्कृति व भविष्य के लिए सोचने पर मजबूर हो गया है। विकास आधुनिक युग के मूलमंत्र एक संदिग्ध प्रस्ताव बन गया है। अल्पकालिक उत्साह, मानव जाति के लिए दीर्घकालिक इन्कुबस में तब्दील हो रही है। मानवता आज वैश्विक आयाम की एक पर्यावरणीय संकट से जूझ रही है––जो मानव के अस्तित्व पर ही खतरा पैदा कर रही है। विकास एवं आधुनिकीकरण के नाम पर प्रकृति के साथ हो रहे अत्याचार के कारण मां पृथ्वी संकट में आ गई है। पर्यावरण क्षरण एक ऐसा संकट है जो अमीर व गरीब राष्ट्रों तथा विकसित व विकासशील राष्ट्रकों को प्रभावित कर रही है तथा खतरनाक दर से आगे बढ़ रहा है––ये सभी अधिक से अधिक विकास के नाम पर। आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के रूप में विकास हमारे पर्यावरण के लिए अभिषाप साबित हो रहे हैं। अधिक विकास का मतलब है अधिक पर्यावरण क्षरण।

पर्यावरण एक वैश्विक चिन्ता का विषय है और इसके संरक्षण एक सबसे बड़ी चुनौतीपूर्ण कार्य आज मानवजाति के सामने आ गया है। ''आज के लिए उपभोग और कल के संरक्षण'' पूरे मानव जाति के लिए सम्पूर्ण विश्व में नारे बन गया है। यह कहना सत्य है कि ''कोई भी तकनीक हस्तक्षेप चाहे कितना भी बेहतर व प्रभावकारी हो, चाहे कोई भी सामाजिक–आर्थिक सुधार कितना भी प्रभावकारी व गहरा हो तथा हमें अशांत तबाही से बचाने के लिए सक्षम हो, बचा नहीं सकता अगर प्राकृतिक संशाधन अपने संयम की क्षमता के नीचे चली गई तथा पर्यावरण ठीक करने योग्य नहीं रह गई।''

इसलिए गांधीवादी दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर अपनी जीवन शैली को बदलें तथा प्रकृति के साथ सौहार्दपूर्ण संबंध में जीना सीखें साथ ही अनावश्यक आवश्यकता को कम करें। गांधीवादी दृष्टिकोण एक पारिस्थितिकीजन्य है यह मात्र पुराने मान्यताओं पर आधारित नहीं है। इसमें मैफूज प्रतिमान की अस्वीकृति शामिल है––पूंजीवाद, उद्योगवाद, उपभोक्तावाद, पर्वप्रधान व्यवसथा और अधिक पर्यावरण के अनुकूल है एक नये मूल्यों का पुनर्निर्माण एवं अंगीकार करने से है।

मुद्दे एवं चुनौतियां

पृथ्वी के पर्यावरण संबंधी समस्याओं का जन्म पृथ्वी के जन्म के साथ ही लगभग 4.6 अरब साल पहले प्रारम्भ हुआ। पर्यावरण क्षरण सबसे अधिक मानव के क्रिया–कलापों के कारण हुई जिसके फलस्वरूप प्रकृति के रसायन में बदलाव हुआ। ये सभी असंयमित मानव विकास के कारण हुआ। जान मॅक हॉल के अनुसार––मानव सबसे खतरनाक जीव बन गया है। जिसकी मेजबानी पृथ्वी की।

व्यापक रूप से यह मान्यता है कि तेजी से औद्योगिकीकरण––प्रदूषित नदियां, प्रदूषित मिट्टी, लुप्त होती वन्य जीव तथा समाप्त होती प्रकृतिक संसाधनों को छोड़ दिया है। यह संकट न केवल गरीब एक अरब निवासियों के अस्तित्व को खतरा है बल्कि, यह एक ऐसा संकट है जो सभी प्राणियों के अस्तित्व को ही मिटा देगा। वास्तव में यह संकट वैश्विक परिस्थितिकी संकट के रूप में हमारे सामने खड़ा है। इस संकट का निदान भी आसान नहीं है। इसके लिए पूरी मानव जाति, समाज और सभी राष्ट्रों को मिलकर काम करना होगा तथा ऐसी विकास की प्रणाली को अपनाना होगा, ो प्रकृति पर विजय पाने के बजाय प्रकृति के नियम पर चलने वाला हो।

उपभोक्तावाद और परिष्कृत उच्च जीवन शैली के साथ उच्च औद्योगिक राज्य के लोग दुनिया के 80 प्रतिशत संशाधनों का प्रयोग करते हैं, जबकि विश्व जनसंख्या का केवल वे 20 प्रतिशत ही हैं। वहीं दुनिया के 80 प्रतिशत लोग मात्र 20 प्रतिशत संशाधनों पर ही अपना जीवन निर्वाह कर रहे हैं।

जहां तक ग्रीन हाउस प्रभाव का सवाल है, पृथ्वी की वार्मिंग और ओजोन परत, पेय जल की कमी, बढ़ती रासायनिक और औद्योगिक कचरे, प्रदूषित ध्वनि, पानी और भोजन ने सभी को एक गहरा झटका दिया है। लेकिन

विडम्बना यह है कि समृद्ध पश्चिम के राष्ट्र के लोग अपने जीवन को संयमित करने तथा उपभोक्तावाद पर रोक लगाने को तैयार नहीं हैं। साथ ही पर्यावरण क्षरण को तकनीक उपायों के द्वारा समाधान ढूंढते हैं।

वास्तव में हम पर्यावरण की समस्याओं को हल करना चाहते हैं तो ध्यान देना होगा व्यक्ति की सोच क्या है, वे पर्यावरण से किस प्रकार जुड़े हैं, तथा वे अपनी जीवन शैली को मितना परिवर्तित करने को तैयार हैं। इसके लिए धर्म की संस्कृति और आध्यात्मिक सोच जीवन का आधार बनाना होगा, जिससे सभी व्यक्तियों को लाभ होगा। विश्व की सभी संस्कृतियों का पर्यावरण से सम्बन्ध है। मानव के भोजन, वस्त्र और कला आदि वहां के पर्यावरण के अनुरूप विकसित हुई हैं। आज औद्योगिक संस्कृति अस्त्र–शस्त्र के अर्थ पर आधारित है।

आज हर मिनट में दुनिया के देशों के द्वारा सैन्य आयुद्ध पर 1.8 मिलियन अमरीकी डॉलर खर्च किए जाते हैं। वहीं प्रत्येक घंटे में लगभग 1500 बच्चे भूख सम्बन्धी कारणों से मर जाते हैं। हर दिन एक प्रजातियां विलुप्त हो जाती है। हर वर्ष, उष्णकटिबंधीय जंगलों जो तीन मिमाहियों कोरिया के आकार के एक क्षेत्र को नष्ट कर दिया है और समाप्त हो जाता है। हर दशक वैश्विक वार्मिंग के कारण वर्तमान से 1.5 मीटर समुद्र के स्तर बढ़ सकते हैं। परिणाम स्वरूप हमारे संयत्र, समुद्री जीव–जन्तु और विशेष रूप से तटीय क्षेत्रों के लिए विनाशकारी सिद्ध होंगे। हॉल के दिनों में सुनामी और भूकम्पों ने इसे साबित कर दिया है। अगर हम लोग समय रहते नहीं चेते तो परिणाम कितना भयावह हो सकता है इसकी परिकल्पना मनुष्य के सोच के बाहर है।

दुनिया की महान शक्तियां महान पाप करती हैं। जिसका खामियाजा विकासशील दुनिया के रोजमर्रा की जिन्दगी को प्रभावित करते हैं। ये छह महापाप हैं––

1. लालच : विश्व की जनसंख्या का 16 प्रतिशत जो मुख्यतः अमीर सात देशों के हैं दुनिया के संशाधनों का 81 प्रतिशत उपयोग करते हैं।

2. आलस : 1987 की ब्रांटलैण्ड रिपोर्ट में बताए गए तरीकों को कोई भी सरकार अपनी विकास के रास्ते में बदलाव नहीं लाए।

3. क्रोध : विश्व का वार्षिक सैन्य खर्च 600 अरब अमरीकी डॉलर से ज्यादा है। इसका 80 प्रतिशत नाटो देश करते हैं। हर मिनट दुनिया में हथियारों पर 1.7 करोड़ डॉलर खर्च होता है वहीं 57 लोग भूख से सम्बन्धित बीमारी से मर जाते हैं।

4. लिप्सा : 1989 में गरीब दक्षिणी राष्ट्रों ने अमीर उत्तरी देशों को प्राप्त ऋण या सहायता की तुलना में 82 अरब डॉलर अधिक भुगतान किया है।

5. गर्व : समृद्ध देशों का यह मानना है कि उनके द्वारा अपनाये गए विकास के पथ केवल सार्थक और एकमात्र सही पथ हैं।

6. वासना : यहां विदेशी पर्यटक विदेशी मुद्रा की सबसे बड़ी अधिक है वहीं विकासशील देशों के शहरी गरीब अमीर देशों से पर्यटकों के लिए अपना जिस्म बेचने को मजबूर हो गए हैं।

संयुक्त राष्ट्र अमेरिका और अन्य देशों में जीवन शैली उच्च स्तरीय खपत पर आधारित हैं और उच्च खपत अंततः पर्यावरणीय क्षति और अपशिष्ट निपटान की समस्याओं की ओर जाता है। विकासशील और अविकसित राष्ट्र के लोग भी पश्चिमि देशों का अंधाधुंध अनुकरण कर रहे हैं। यह न केवल उनके लिए बल्कि उनके सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृति और पर्यावरण के विनाश का कारक बनता जा रहा है।

प्रति व्यक्ति ऊर्जा की खपत, राष्ट्रों के उपभोग के स्तर का एक अच्छा संकेत है। आंकड़ों की दृष्टि से अमरीका कोयले के बराबर 10127 किलोग्राम, जर्मनी 5377 किलोग्राम, जापान 4032 किलोग्राम, चीन 810 किलोग्राम, भारत 307 किलोग्राम और बंगला देश 69 किलोग्राम का उपयोग करता है। दूसरे शब्दों में औसतन एक अमेरिकी नागरिक भारतीय नागरिक की तुलना में 30 गुना अधिक ऊर्जा का उपयोग करता है। और कुछ विशिष्ट मामलों में यह अन्तर 1 : 150 का है। इसके अलावा एक अमेरिकी नागरिक भारतीय नागरिक की तुलना में इस्पात 20 गुना, कागज 100 गुना सीमेन्ट 15 गुना अधिक खपत करता है। अगर विकासशील व अविकसित देशों के नागरिक एक अमेरिकी नागरिकों की तरह वस्तुओं का उपयोग करें तो उपलब्ध पृथ्वी पर संशाधन कितने समय तक चल पाएगें। यह एक गंभीर प्रश्न एवं चिन्ता का विषय है।

भारत के पर्यावरणीय संकट को जोरदार पूर्वक पी. दयानंदन ने इस प्रकार उठाया है :––

1. जनसंख्या एक अरब से ज्यादा पहुंचना।

2. शहरी आबादी 160 से 350 मिलियन हो जायेगी।

3. 250 मिलियन कुपोषण से पीड़ित है।

4. 35 वर्ष से कम आयु के 70 प्रतिशत लोग शिक्षा और रोजगार मांगेंगे।

5. शहरी–ग्रामीण और अमीर–गरीब का अंतर बढ़ रहा है।

6. गंभीर मिट्टी का कटाव (5 मिलियन टन प्रतिवर्ष)।

7. तीन दशकों में सूखा और बाढ़ में वृद्धि (6.4 से 9 मिलियन हेक्टेयर)।

8. 50 प्रतिशत अविकसित भूमि, 70 प्रतिशत सतह जल दूषित।

9. 60 प्रतिशत यादा, 500 मिलियन पशुधन और 3.5 प्रतिशत दराई भूमि की कमी।

10. एक दशक में 34 प्रतिशत वन कवर की कमी।

11. प्रति व्यक्ति 0.47 हेक्टेयर जंगल मात्र 150 मिलियन लोगों के लिए उपलब्ध।

12. 1500 से अधिक पौधों व जानवरों की प्रजाति खतरे में।

13. भूमि उपयोग और संशाधनों की साझेदारी में टकराव।

विश्व में इस समय लगभग 424 परमाणु रिएक्टर कार्य कर रहे हैं और भविष्य में और भी लगाए जा रहे है। ये परमाणु रिएक्टर न तो सुरक्षित हैं और न ही पर्यावरण के साथ दोस्ताना। गांधीवादी दृष्टिकोण से विचार करने पर यह सुस्पष्ट हो जाता है कि इन विकृतियों के पीछे प्रमुख कारक गरीबी, समृद्ध वर्गों का लालच तथा आर्थिक गतिविधियों के प्रत्येक क्षेत्र में प्रौद्योगिकी का लापरवाह उपयोग है।

लगभग सभी उपभोक्ता वस्तुओं को आर्थिक विकास बनाए रखने के लिए रूरत से ज्यादा प्रोत्साहित किया जा रहा है। जिसके कारण प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से समाज पर दूरगामी प्रभाव पड़ रहा है। आंकड़ों एवं तथ्यों के विश्लेषण से पता चलता है कि प्रत्यक्ष हिंसा प्रतिवर्ष न केवल भारत में बल्कि दुनिया में बढ़ रहे हैं। अप्रत्यक्ष हिंसा में कई गुणा बढ़ोतरी हुई है। ो देख या समझ सकता है उसे स्पष्ट दिखाई पड़ रहा है। संयुक्त राष्ट्र संघ के पूर्व महासचिव श्री बुट्रोस घाली ने चेतावनी दी है कि भविष्य में युद्ध तेल को लेकर नहीं बल्कि पानी को लेकर होगा जो एक कमी वाला प्राकृतिक संशाधन होता जा रहा है। उनकी इस बात की प्रतिध्वनि विश्व बैंक के उपाध्यक्ष इनमेल सेराग्लेडीन के कथन में भी गूंजती है। वे कहते हैं––कोई भ्रम में न रहे, सामान्य पानी की कमी सभी शहरों को प्रभावित करेगी तथा युद्ध आगे की सदी में जल को लेकर विवाद के कारण लड़ा जाएगा। भारतवर्ष में विभिन्न राज्यों में दिन–प्रतिदिन जल विवाद गहरा ही होता जा रहा है।

साइलेंट–स्प्रिंग (रायेल कार्सन, 1962); द लिमिट टू ग्रोथ (मीडोज एट ऑल, 1972); विश्व आयोग पर्यावरण और विकास की रिपोर्ट (1987) ने मानव जाति किन–किन पर्यावरणीय समस्याओं से जूझ रही है और उससे किस प्रकार निजात पायी जाने पर सुझाव दिया। रियो डी फनेरियो में पर्यावरण और विकास पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन एक मील का पत्थर है। सम्मेलन के परिणाम पांच दस्तावेजों जिनमें प्रमुख था––एजेंडा 21। यह भविष्य के लिए एक खाका था।

अब वह समय नहीं रहा––पर्यावरण संरक्षण केवल बड़ी बिल्लियों की देखभाल के साथ पर्याय था। आज उस पर निर्भर करता है पूरे रूप से सम्पूर्ण पृथ्वी व उस पर आश्रित सभी निवासियों, जीव–जन्तुओं एवं उसके पारस्परिक निर्भरता पर। सभी प्राणियों में एक जबरदस्त कनेक्टिविटी और विभिन्न घटकों के बीच अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। आम पर्यावरण के दायरे में सामाजिक, आर्थिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, दार्शनिक, नैतिक सभी पहलु आते हैं।

हमारे पर्यावरण के दुश्मन हममें से हर एक के भीतर हैं। क्योंकि हरेक व्यक्ति अधिक से अधिक प्रकृति की कीमत पर अपने लिए चाहता है। और मन की चाहत बढ़ती ही जा रही है। आज हम अपने हिस्से से ज्यादा खपत करते हैं। वासतव में प्रकृति, संस्कृति एवं भविष्य के खिलाफ अद्योपित युद्ध है। आज मानव जाति उस चौराहे पर खड़ी है जहां अंधकार ही अंधकार है। एवं जहां वह अपने आप को बेवश महसूस कर रहा है। साथ ही अपने को ठगा

महसूस कर रहा है। वर्तमान पर्यावरणीय क्षरण और प्रदूषण अमीरों के लालच का परिणाम है तथा गरीबों के अस्तित्व की जरूरत है और प्रौद्योगिकी के दुरुपयोग व बिना सोचे–समझे प्रयोग का दुष्ट परिणाम है।

पर्यावरण के प्रति जागरूकता व महत्व बढ़ रहा है। कारण यह कि जीवन` सभी आयाम इससे प्रभावित हैं। बहुत पहले जब पर्यावरण की समस्या इतनी भयावह नहीं थी तब गांधीजी ने कहा था–– अगर भारत के लाखों लोग इंग्लैंड के लोगों के अनुरूप जीवन व रहन–सहन करने लगें तो कितने और ग्रह की आवश्यकता पड़ेगी क्योंकि ब्रिटेन इस समृद्धि को बनाये रखने में पृथ्वी के आधे संसाधनों का उपयोग करता है।

औद्योगिक देशों की नजर विकासशील देशों पर है। उनके द्वारा विकासशील देशों में जनसंख्या स्थिरीकरण के लिए लक्ष्यों का निर्धारण तथा संसाधनों के उपयोग की स्वेच्छा से सीमा अपने देशों में भी तय करनी है। नैतिकता से संशाधनों का उपयोग एवं उसके प्रबंधन की बात खुलेआम उत्तर के देशों में विचारकों द्वारा की जाने लगी है। इसके विपरीत भारत में संत और दार्शनिक न केवल संशाधन संरक्षण के बारे में बात कर रहे थे बल्कि मानव इतिहास के प्रारम्भ से ही इसे अपने जीवन में उतार रखा था। वे सादगी का जीवन जीते थे। वर्तमान संदर्भ में दूरदर्शी गांधी ने ठीक ही कहा––''पृथ्वी हर आदमी की जरूरत को पूरा कर सकती है, परन्तु एक आदमी के लालच की पूर्ति के लिए इसके पास पर्याप्त संशाधन नहीं हैं।''

बीसवीं सदी बेशक अभूतपूर्व आर्थिक विकास की एक सदी है। अधिकतम उत्पादन शांति व समृद्धि के महत्वपूर्ण कुंजी बन गए हैं। फलतः प्रकृति उपभोग की वस्तु बन गई और समाज केवल मानव मात्र के लिए। यह हमारा मौलिक कर्तव्य बनता है कि विज्ञान व प्रौद्योगिकी की मदद से प्रकृति की सहायक बने तथा उसकी जीवन रक्षक क्षमता को खोने नहीं दिया जाए। सभी प्राणियों की बुनियादी जरूरतों को कम से कम प्रयासों के साथ अपने परिवेश से पूरा किया जाना चाहिए। वर्तमान प्रणाली अधिक से अधिक धातुओं व खनिजों के उपयोग पर अधिक निर्भर करता है। ये साधन सीमित हैं। ये सभ्यता ज्यादा दिन तक नहीं चल सकती। प्राचीन संस्कृतियां बच गई क्योंकि वे अक्षय संशाधनों पर आश्रित थे। इवान इलियट से जब यह पूछा गया कि यह सभ्यता को इस संकट से कैसे उबारा जा सकता है। उनका उत्तर था, ''शायद स्कोमोज हमें रास्ता दिखा सकते हैं।'' एडवर्ड गेल्डस्मिथ, अपने 32 साल के अध्ययन के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि ''प्रेरणा बना कुलर समाजों की विश्वदृष्टि से निकलता है विशेषकर कैथेलिक विश्व दृष्टि से यहां प्राचीन काल में लोग प्रकृति के साथ समन्वय के साथ रहते थे।''

आधुनिक जीवन जटिल से जटिलतम हो गया है और कुछ चीजों के बिना हम रह नहीं सकते। ये जटिलता मनुष्य की दुख की देन है। अतः उसे अब विकल्प खोजने होंगे। हमें वर्तमान ऊर्जा प्रणाली, जो अमानवीय, खतरनाक और अस्थायी है कि जगह जरूरत है––पशु, जैव, पवन, त्वारीत, पनबिजली तथा सौर ऊर्जा को प्राथमिकता देनी

चाहिए। वास्तविक विकास समाज को विकृति से संस्कृति व समृद्धि की ओर ले जाएगा। इसका अर्थ समाज को पीछे नहीं ले जाना है बल्कि सही दिशा में विकास के पथ को अग्रसर करना है।

संपोषित विकास

वर्ण डेन्टलैंड आयोग पर्यावरण और विकास पर 'हमारे आम भविष्य' की रिपोर्ट में कहा है कि स्थिरता के लिए एक कसौटी है––संपोषित विकास। ''संपोषित विकास के लिए यह आवश्यक है कि वर्तमान की अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए भविष्य की पीढ़ियों की क्षमता की अनदेखी नहीं होनी चाहिए।'' यह परिभाषा अति सामान्यीकरण की ओर ईशारा मात्र है। इसलिए यह विभिन्न व्याख्याएं भी एक किस्म के अधीन किया गया है। मोटे तौर पर, विकसित देश आर्थिक व तकनीकी पहलुओं पर जोर देते हैं। किस प्रकार आर्थिक निर्णय लेने में पर्यावरणीय लागत को एकीकृत किया जाए। तथा औद्योगिक प्रतिस्पर्धा और रोजगार के अवसरों को बढ़ाने में से है। इसके विपरीत, विकासशील देशों के दृष्टिकोण अलग और जाहिर हैं। इन देशों के विचार में, गरीबी पर्यावरण की सबसे बड़ी प्रदूषक है, इसलिए वे आर्थिक विकास में तेजी लाने के लिए लोगों की बुनियादी जरूरतों को पूरा करना चाहिए और अगर औद्योगिक अमीर देशों को पर्यावरण के बारे में वास्तव में गंभीर हैं तो उन्हें एहसास होना चाहिए कि पर्यावरण के वर्तमान संकट उनकी वजह से हुई है न कि गरीब देशों के कारण। अतः उन्हें वित और नवीनतम तकनीकों के द्वारा पर्यावरण की रक्षा के लिए अनुकूल सहायता सहजता से करनी चाहिए। साथ ही विकास की गति को बनाये रखने के लिए पर्यावरण के अनुरूप तकनीकी की खोज तथा उपयोग को बढ़ाना होगा।

प्रत्येक देश और प्रत्येक क्षेत्र के अलग–अलग दृष्टिकोण टिकाऊ भविष्य को बनाये रखने के लिए किए गए हैं। संपोषित विकास एक स्थिर अवधारणा नहीं हो सकती। यह एक गतिशील प्रक्रिया है और अपने स्वयं के सांस्कृतिक, राजनीतिक और आर्थिक दृष्टिकोण के साथ में विभिन्न देशों द्वारा लागू किया जाए। संपोषित विकास एक दीर्घकालिक तथा एक सतत् प्रक्रिया है, जो आर्थिक, तकनीकी और सामाजिक संरचना और अधिरचना पिछले कुछ सदियों के दौरान दुनिया भर में दुनिया के औद्योगिक देशों में, विशेष रूप से बनाया गया, एक दिन में ध्वस्त नहीं कर सकते हैं।

समता और न्याय संपोषित विकास की एक अनिवार्य शर्त है। इसके चार आयाम हैं :––(अ) राष्ट्रों के बीच समानता––अमीर राष्ट्रों, गरीब राष्ट्रों, विकासशील राष्ट्रों (ब) देशों के बीच समानता––क्षेत्रों, सामाजिक वर्गों, लिंग, गतिविधियों के क्षेत्रों में (स) पीढ़ियों के बीच समानता और (द) अर्थशास्त्र और पारिस्थितिकी, विज्ञान और अध्यात्म के बीच समानता।

संपोषित विकास के लक्ष्यों का एक नियमित सेट है। संपोषित विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने के तरीके और दृष्टिकोण अलग हो सकते हैं। ये लक्ष्य हैं :––(1) सभी मनुष्यों की मूल आवश्यकताओं, यानी भोजन, वस्त्र, आवास,

शिक्षा, स्वास्थ्य, सुरक्षा और आत्मसम्मान को पर्याप्त रूप से पूर्ति होना। साथ ही इन जरूरतों को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। प्राकृतिक और तकनीकी उपलब्ध है और वैश्विक संदर्भ में सामाजिक–आर्थिक संसाधनों के द्वारा इन जरूरतों का स्तर निर्धारित किया जाना चाहिए। (2) विकास प्रक्रिया इतनी व्यापक एवं व्यक्त हो कि पारिस्थितिकी संतुलन और पर्यावरण शुद्धता कम से कम बाधित हो, यह सब किया जाना चाहिए। और (3) सभी राष्ट्रों और लोगों को हाथ मिलाकर कार्य करने चाहिएं साथ ही एक–दूसरे का समर्थन और एक–दूसरे के साथ काम करने के लिए एक दुनिया में जो उपयुक्त हो लक्ष्यों को अनुकूलित कर रहे हैं करने चाहिएं।

संपोषित विकास प्रकृति के प्रति हमारे दृष्टिकोण में परिवर्तन की मांग करता है। वहां एक तत्काल आवश्यकता है कार्तीय दुनिया (Cartisian World-view) देखने से दूर कदम है और खुद को पारिस्थितिक दुनिया के दृष्टि से सभी चीजों को देखना। विचार यह नहीं है कि अतीत को वापस लाना है बल्कि वर्तमान के बाहर एक नए भविष्य बनाने की। वर्तमान के स्वरूप में यह नहीं है। अतीत नए भविष्य के आकार देने में मदद कर सकते हैं।

सतत व संपोषित विकास अकेले सरकार और निजी कंपनियों का ही दायित्व नहीं है। इसमें सामान्य लोगों की भी भागीदारी होनी चाहिए। यह एक ऐसी प्रक्रिया है, जो मानव प्रयास और जीवन के प्रत्येक स्तर पर शुरू होनी चाहिए। यह एक आंदोलन है जो विकास के प्रारूप को मौलिक रूप से परिवर्तित करने के लिए है। यह तभी संभव होगा जब बहुत से लोग एवं महान लोग इसमें सम्मिलित हों। बड़े बदलाव तभी संभव होंगे।

पश्चिमी दृष्टिकोण संरक्षण के विचार के साथ पश्चिमी पूंजीवादी व्यवस्था की असंगति से संबंधित है। वहीं दूसरी ओर भारतीय परिप्रेक्ष्य–जीवन की सादगी और हमारे सभी पारिस्थितिकी और पर्यावरण की समस्याओं के लिए रामबाण के रूप में स्व–नियंत्रित, संयमित, साधारण जीवन शैली पर हैं। सभी संस्कृतियों में अपनी परम्परा, शिष्टाचार और संस्कृति है जो संरक्षण और पर्यावरण को संरक्षण प्रदान करती है। कैसे विभिन्न प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग करें कि ये संसाधन नष्ट न हों या एक दम खत्म न हों की बात सभी संस्कृतियों में दी गई है। हमें इन सबको समझना और उन्हें एक सांकेतिक शब्दों में बदलना चाहिए और उस विधान को आत्मसात करना चाहिए। संयमित जीवन पद्धति ही विश्व का मार्ग–दर्शन कर सकती है। बिना तपे सृजन संभव नहीं है। वैसे ही विकास की निरंतरता को बनाये रखने के लिए प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग संयमित करना होगा। जो स्वयं संचालित हो।

प्रत्येक समाज में कुछ मूल्य प्रणाली हैं जो उनके जीवन का हिस्सा हैं। पूर्वी और पश्चिमी समाजों में विभिन्न सामाजिक मूल्यों पर आधारित सिस्टम हैं। अधिकांश मामलों में हमारे मौलिक सामातजक मूल्य उनसे भिन्न हैं। तथा सामाजिक मान्यता भी अलग–अलग हैं। पश्चिमी समाज का दृष्टिकोण भौतिकवादी है वहीं भारतीय समाज के दृष्टिकोण आध्यात्मिक हैं। आज भी भारतीय ग्रामीण समाज उपभोगतावादी समाज नहीं है। देखभाल, समविभा और सहायता के मूल्य अभी भी समाप्त नहीं हुए हैं। इस संस्कृति को बनाये रखना एक बहुत बड़ी मानवीय चुनौति है।

भारत में वनों के संरक्षण की अनूठी परम्परा एवं अवधारणा है। लोग पेड़ों की पूजा करते हैं। कुछ औषधीय गुण वाले पेड़–पौधे भगवान या देवियों के नाम के साथ जुड़े हुए हैं। इसी प्रकार भारत में 3000 साल पहले अद्वितीय सिंचाई प्रणाली विकसित करने का गौरव है जो संरक्षित और भूमिगत जल को पुनः जल प्रयान कर भूमि की सिचाई और लोगों को समुचित अन्न प्रदान करने में मददगार साबित होती थी। जल प्रबंधन के हजारों उदाहरण हमारे सामने हैं। विशेषकर वाटरशेड योजना बनी और राजस्थान में पानी एकत्रित कर उसे समुचित प्रयोग में लाने की व्यवस्था की गई। इस तरह के कार्यक्रम भारत के विभिन्न भागों में चल रहे हैं।

भारत के संविधान के अनुच्छेद 48(अ) तथा 51अ(अ) में कहा गया है कि ''राज्य जंगलों और वन–प्राणियों की रक्षा करने तथा पर्यावरण में सुधार के लिए प्रयास करेगा। और नागरिकों का कर्तव्य है कि जंगलों, झीलों, नदियों और वन्य जीवन सहित प्राकृतिक पर्यावरण में सुधार तथा इनकी रक्षा करेगा।''

गांधीवादी परिप्रेक्ष्य

पश्चिमी सभ्यता के खतरे, मानवता व इसके अस्तित्व के विषय में कई मुद्दों एवं संदर्भ के बारे में महात्मा गांधी के विचार आज महत्वपूर्ण हो गए हैं। गांधी ने स्पष्ट रूप से नैतिक गिरावट और सांस्कृतिक क्षय बहुत पहले अनुभव किया तथा हिन्द स्वराज (1909) में प्रकाशित पुस्तक में व्यापक रूप से प्रस्तुत किया। औद्योगिक सभ्यता के नकारात्मक परिणामों को हिन्द स्वराज के माध्यम से लोगों को अवगत कराया। गांधी अपने समय की पीढ़ी को अनर्गल आर्थिक विकास और प्रौद्योगिकीय नवाचारों की सीमा को बताया साथ ही उद्योगवाद, उपभोगतावाद, आदि से होने वाले नुकसान तथा इससे उभरती प्रवृत्तियों की आलोचना की। उपभोक्ता संस्कृति के स्थान पर तप आधारित जीवन पद्धति तथा विकास में नैतिक मूल्य नई सहस्राब्दि के लिए आवश्यक है पर गांधी बल देते हैं।

नई सहस्त्राब्दि के पर्यावरण संबंधी चुनौतियों से निपटने के लिए सभी मोर्चों पर कुल नयापन की आवश्यकता है। समग्र विश्लेषण, ज्ञान, अतीत और सम्पूर्ण पारदर्शिता के तथा पूर्व के अनुभवों आदि को संहिताकरण करने की आवश्यकता है। व्यवहार्यता और सफल प्रारूपों को पुनः योजनाबद्ध तरीके से दोहराने की जरूरत है। जैसे जैसे समय गुजरता जा रहा है महात्मा गांधी द्वारा बताए गए प्रारूपों की महत्वता बढ़ती जा रही है। गांधी पारम्परिक मूल्यों व समकालीन सच्चाइयों के बीच समन्वय की मिशाल हमारे सामने रखते हैं। सत्य, अहिंसा, सादगी, चरित्र को व्यक्तिगत जीवन के क्रिया–कलापों में लाने की वकालत की है।

गांधी ने कहा कि जब इंसान को जीवन बनाने के लिए कोई शान्ति नहीं है तो उसे कोई जीवन को नष्ट करने का अधिकार कहां है। मनुष्य की खुशी संतोष में निहित है। वह मनुष्य चाहे उसके पास अपार संपदा है संतोष नहीं है तो वह अपनी इच्छाओं का दास बन जाता है। गांधी के अंतःनिहित दर्शन का मुख्य बिन्दु हैः––आवश्यकता न की लालच, कुछ आराम न की विलासिता। गांधी का पूरा जीवन व्यक्ति, समाज, मानवता व पर्यावरण के लिए एक

विरासत है। इसलिए नहीं कि गांधी ने पर्यावरण पर एक बड़ा ग्रंथ लिखा है या एक बड़े बांध या उद्योग या नदी स्वच्छ करने के लिए एक बड़ा आंदोलन खड़ा किया है। बल्कि उनका सम्पूर्ण जीवन एवं क्रिया–कलाप पर्यावरण के लिए न केवल भारत बल्कि विश्व के लिए एक मार्गदर्शक का काम कर रहा है। संक्षेप में, अपने पूरे जीवन से गांधी पर्यावरण और विकास के लिए अनुपम सबक मानवता के लिए छोड़ देते हैं, जो इस प्रकार हैः––

1. मानव जाति को प्रकृति के अंग के रूप में कार्य करना चाहिए न कि प्रकृति से अलग में कार्य करेगा।

2. पृथ्वी पर उपलब्ध संशाधनों का प्रयोग मानव जरूरतों के लिए करेगा न कि अपनी लालसा की पूर्ति के लिए।

3. मनुष्य अहिंसा का प्रयोग न केवल साथी मनुष्यों के प्रति बल्कि अन्य रहने वाले जीवन और निर्जीव के प्रति भी करेगा। क्योंकि संशाधनों का अति उपयोग भी हिंसा के बराबर है।

4. अधिनायकवादी शीर्ष से नीचे की जगह नीचे से ऊपर की साझा दृष्टिकोण।

5. असंपोषित उपभोक्तावादी आत्मविनाशकारी दृष्टिकोण के स्थान पर संरक्षणवादी और टिकाऊ जीवन रक्षक दृष्टिकोण।

6. मनुष्य का मानव के साथ साझा और समाज में गरीब और बेसहारों के लिए देखभाल एक नैतिक दायित्व के रूप में।

7. मानव जाति यह जरूर सोचे कि एक साधारण गरिमामय जीवन के लिए कितनी वस्तुएं पर्याप्त हैं।

8. सभी विकास सामान्यतः स्थानीय आत्मनिर्भरता, समता और सामाजिक न्याय के विकास को बढ़ाती है।

9. नैतिकता और संशाधन प्रयोग में आत्म अनुशासन विकास की सर्वोत्तम कसौटी है।

तिब्बतियों के धर्मगुरु दलाईलामा खूबसूरती से लिखते हैं––यदि हम प्रकृति के लिए परवाह करते हैं तो प्रकृति को अमीर, भरपूर और अक्षय रूप से स्थायी किया जा सकता है।

गांधी के विचार एवं चिंतन केवल भारत के लिए ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण विश्व के लिए उपादेयक हैं क्योंकि इनका लक्ष्य मनुष्य एवं प्रकृति में सामंजस्य बिठाना है। गांधी व्यक्ति एवं प्रकृति के सामंजस्य से अहिंसक समाज की नींव डालता है, जहां किसी भी व्यक्ति का शोषण संभव न हो। स्वदेशी की भावना व्यक्ति में निहित हो। स्व–सहायता, स्थानीय लोगों के आत्मविश्वास, सहयोगात्मक प्रबंध, लैंगिक समानता, समता और सामाजिक न्याय पर आधारित थे। व्यक्ति प्रकृति के साथ पूर्ण सामंजस्य स्थापित करके रहने लगें तो पर्यावरणीय समस्या उत्पन्न ही नहीं होगी। गांधी का दर्शन इस पर आधारित है––आवश्यकता हो तब भी लालच मत करो, आराम हो तो थोड़ा हो और वह विलासिता न बन जाए।'' क्योंकि जब लोभ, लालच व्याप्त हो जाता है तो प्रकृति का संतुलन बिगड़ जाता है और सभी प्रकार से जैविक ह्रास होता है। प्रकृति में संतुलन बहुत आवश्यक है और थोड़ी–सी असंतुलन पारिस्थितिकी तंत्र में, प्राकृतिक

संतुलन को बर्बाद करने के लिए बहुत है। दुनिया भर के लोग आज गांधी के इस मत से सहमत हैं कि मौजूदा स्वरूप में औद्योगिक, उपभोगतावादी समाज लम्बे समय तक क्रियाशील रहने वाला नहीं है। अतः गांधी की साधारण और संयमित जीवन शैली भौतिकवादी, मूल्यविहीन उपभोगतावादी जीवनशैली ही भविष्य के खतरों से मानवता को निजात दिला सकती है।

अब आर्थिक, सामाजिक, पर्यावरणीय और सांस्कृतिक समस्याओं पर गंभीरता एवं निष्पक्षता के साथ पुनर्विचार अत्यन्त जरूरी हो गया है ताकि संपोषित विकास को अमलीय जामा पहनाया जा सके। गांधी की स्पष्ट अवधारणा थी कि आम व्यक्ति के जीवन शैली में बदलाव के साथ–साथ पारिस्थितिकी, कृषि संबंधी पारिस्थितिकी प्रणाली व औद्योगिक तथा आर्थिक प्रणाली को एक खास ढंग से संरक्षित रखने और निश्चित तरीके से इसका उपयोग करने की जरूरत है।

गांधीवादी प्रारूप ग्रामोन्मुखी, विकेन्द्रीकरण और रोजगार उन्मुखी तथा प्रकृति के साथ सामंजस्य बनाते हुए पूरी तरह से शोषणमुक्त पद्धति पर आधारित है। गांधी ने दोनों समकालीन प्रणालियों––समाजवाद और पूंजीवाद में शोषण के तत्वों की मौजूदगी बड़ी बारीकी से देखी थी। उपभोगतावाद एवं नव उदारवाद भी शोषणमुक्त प्रणाली नहीं है। अतः गांधी वैकल्पिक प्रौद्योगिकी, जिसका लक्ष्य ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्रों के प्रत्येक व्यक्ति की आवश्यकताओं की पूर्ति करना है, शहरीकरण की दिशा में बढ़ते कदमों पर अंकुश, गांवों में मूल–भूत आवश्यकताओं की पूर्ति करके लगाना है।

सर्वोदय, स्वदेशी और सत्याग्रह की गांधीवादी अवधारणाओं नई सहस्त्राब्दी के सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक व पर्यावरणीय चुनौतियों को हल करने के लिए बहुत उपयोगी होगा। सर्वोदय की अवधारणा ''एक और सभी के जागरण'' के रूप में व्याख्या की जा सकती है। सबके जागरण के अलावा, यह कुल मानव आत्मा और व्यक्तित्व के जागरण को संदर्भित करता है। सर्वोदय की अवधारणा खुद को और उनके तत्काल परिवारों के कर्तव्यों को सम्पूर्ण दुनिया से जोड़ता है। सर्वोदय का मानना है कि व्यक्ति मान्यताओं और मूल्यों के पालन के द्वारा 'स्वशक्ति का विकास' जन शक्ति के जागरण के लिए कर सकता है जो व्यक्ति का धर्म है। सार्वभौमिक आदर्श के रूप में सर्वोदय, सभी के कल्याण के भौतिक पक्ष के ही विकास पर ध्यान नहीं देता, बल्कि व्यक्ति के नैतिक एवं आध्यात्मिक पहलुओं के भी विकास पर ध्यान देता है।

इसी प्रकार स्वदेशी वर्तमान समय की आर्थिक समस्याओं के निदान में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। स्वदेशी का अर्थ है सभी क्षेत्रों में आत्मनिर्भरता। सही मायने में समझें तो स्वदेशी का अभिप्राय सेवा है। स्वदेशी से प्रत्यक्ष रूप से अपने आप को लाभ होगा, हमारे परिवारों, हमारे देश और अन्ततः पूरी मानवता को लाभ होगा। स्वदेशी

का संदर्भ अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति सामाजिक परिवेश और स्थानीय उपलब्ध संशाधनों के द्वारा पूर्ति से है। स्वदेशी नैतिकता पर आधारित व्यवस्था पर आधारित है।

स्वदेशी आंदोलन समाज की बुराइयों को समाप्त करने का एक आंदोलन है। यह पुर्नजागरण का आंदोलन है क्योंकि यह देश के लिए अपनी संस्कृति और विरासत, अपने स्वयं के अनुभूतों और परम्परा तथा अपने अगले दरवाजे पड़ोसी की ओर लौटने का विचार प्रदान करता है। यह उचित समय है हमारे लिए स्वदेशी की अवधारणा को समझने के लिए और इसे हर संभव तरीके से लागू करने का। स्वदेशी से हम खुद को आत्मनिर्भर और हर क्षेत्र में आत्म–दम घुटता जीवन को सुन्दर, नैतिक तथा शोषणमुक्त तथा राजनीतिक अधीनता से मुक्ति प्राप्त होगी।

सत्याग्रह भी एक महत्वपूर्ण साधन है जिसके द्वारा व्यक्तियों और समूहों और सरकार की नीति और संरक्षण से संबंधित कार्यक्रमों पर तत्काल प्रभाव डाल सकते हैं। व्यक्तियों और समूहों को एकजुट करके पर्यावरण के मुद्दों पर सरकार और जनता को ध्यान आकर्षित कर सकते हैं। व्यक्तिगत स्तर पर भी सत्याग्रह प्रभावी है। 'बेहतर भविष्य के लिए सत्याग्रह' व्यक्तियों को एक छतरी के नीचे लाकर अन्याय, और सरकारी गलत नीति जो सामाजिक अन्याय, अलगाव और पर्यावरण प्रदूषण पैदा कर रही है के खिलाफ लड़ने का एक वांछनीय साधन होगा।

निष्कर्ष

वर्तमान पर्यावरणीय संकट, लालच, शोषण और वर्चस्व की गलतियों के परिणाम हैं। इसलिए वर्तमान जरूरत की मांग है कि प्रकृति की बुनियादी ज्ञान तथा प्रकृति के नियमों का पालन है। जीवन का प्रबंधन प्रकृति के मूल्यों के अनुरूप करना होगा। अतः वर्तमान विकास संकट गांधीवादी रास्ते पर एक अलग दुनिया की परिकल्पना का मार्ग प्रशस्त करता है। जिसमें वर्तमान जीवन शैली में परिवर्तन तथा उपभोक्तावाद में कमी से है। संदेश सरल और बहुत ही स्पष्ट है। लोगों के पास विकल्प नहीं है। एक सुरक्षित भविष्य तथा टिकाऊ संपोषित पर्यावरण की रक्षा हेतु गांधी के मार्ग पर चलना ही होगा। साथ ही जो आधुनिक विज्ञान और प्रौद्योगिकी के ज्ञान हैं उसे भी समुचित ढंग से प्रयोग में लाना होगा। आर्थिक हमारे दृष्टिकोण विकास और आर्थिक उन्नति पर मानव मूल्यों के साथ सामंजस्यपूर्ण होना चाहिए। हमारा उद्देश्य 'जीने लायक जगह तथा जीने योग्य जीवन' हमारे जीवन शैली के बदलाव के माध्यम से प्राप्त किए जा सकते हैं। हमारी असीमित जरूरत और असीमित लालच को नियंत्रित किया जाना चाहिए।

हम हिंसा की नींव पर शांति का शहर नहीं खड़ कर सकते हैं। यदि मानव जाति शांतिपूर्ण जीवन निर्वाह करना चाहती है तो सभी क्षेत्रों में हिंसा को हराना होगा। साथ ही हिंसा के स्थान पर प्रेम और सहयोग के दर्शन को जीवन का अंग बनाना होगा। हमें त्याग का जीवन अपनाना होगा। हम पृथ्वी पर नरक बनाकर स्वर्ग तक पहुंचना चाहते हैं उनके लिए यह चेतावनी है। हमारे दैनिक जीवन में गांधीवादी मूल्यों को अपनाना होगा तथा शोच, दृष्टिकोण तथा क्रियाकलापों में अभूतपूर्ण परिवर्तन करना होगा। हमें कहीं से तो शुरुआत करनी होगी। पर्यावरण के प्रति

जागरूकता को बढ़ावा देने के रास्ते में आ रही बाधा को दूर करना होगा। वास्तव में आज गांधीवादी मूल्यों को दोहराने की जरूरत है न कि उनके चित्रों व मूर्तियों पर माला पहनाने की। आज जरूरत है वास्तविक जीवन में गांधी के आदर्शों की अनुपालना की। हम यह कह सकते हैं कि गांधी का पूरा जीवन एक संदेश था। उनका जीवन भारतीयों के विकास का मार्गदर्शक था और शेष दुनिया के लिए अनुयायी–प्रथा।

संदर्भ :

1. विश्व पर्यावरण और विकास पर आयोग 'हमारे आम भविष्य'।

2. आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1987।

3. मानव विकास रिपोर्ट, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1999।

4. सतत विकास की ओर – अनिवार्यताओं और परिप्रेक्ष्य, भारतीय लोक प्रशासन के जर्नल, खण्ड–39 म. 3, जुलाई–सितम्बर, 1993।

5. अनिल दत्ता मिश्रा, गांधीयन ऐप्रोच टू कंटपरेरी प्रोबलेम्स, नई दिल्ली, मित्तल प्रकाशन, 1996।

6. थॉमस बेरी, टी ड्रीम ऑफ दी अर्थ, सैन फ्रांसिस्को, सिचरा क्लब, 1988।

7. द हिन्दू पर्यावरण सर्वेक्षण, 1999।

अध्याय – 17

महात्मा गांधी की प्रासंगिकता

'बापू' और 'राष्ट्रपिता' के रूप में चर्चित महात्मा गांधी बीसवीं सदी की दुनिया के सबसे बड़े नेता हैं। पूरी दुनिया में उन्हें शांति, अहिंसा, सत्य, ईमानदारी, शाश्वत पवित्रता, करुणा के प्रति उनके प्रेम तथा सूची जनता को एकजुट करने और औपनिवेशिक ताकत से देश को स्वतंत्र कराने में मदद करने तथा विश्व को नया रास्ता दिखाने में इन साधनों के इस्तेमाल में मिली कामयाबी के लिए याद किया जाता है। गांधी एक सृजनात्मक व्यक्ति थे और वह अपने समय की चुनौतियों का सामना करने के साथ ही वर्तमान और भावी पीढ़ियों के लिए उदाहरण भी पेश करने वाले व्यक्ति थे। महान वैज्ञानिक अल्बर्ट आइन्सटीन ने ठीक ही कहा है कि ''आने वाली पीढ़ियां शायद ही इस बात पर भरोसा करेंगी कि इस तरह का कोई इंसान कभी इस धरती पर चला भी था।''

गांधी ने इतिहास की दिशा बदल दी और नया इतिहास बनाया। वह सिद्धांतों और दृढ़ आस्थाओं वाले व्यक्ति थे तथा उन्होंने हमेशा वही उपदेश दिया जिसका वह खुद पालन करते थे। उनके लिए सिद्धांत और व्यवहार में कोई विरोधाभास नहीं था और न ही वह सार्वजनिक तथा निजी जीवन में कोई विभेद करते थे। वह दुनिया पर अपनी अमिट छाप इसलिए छोड़ गये क्योंकि उन्होंने सत्य बोला और जन समुदाय खासकर सामाजिक रूप से वंचितों और शोषितों की जुबान को समझा। यहां तक कि अपने निधन के 63 वर्ष के पश्चात् भी गांधी न केवल भारत बल्कि समूची दुनिया में विद्वानों, सामाजिक कार्यकर्ताओं, मीडिया, नीति निर्माताओं और स्वप्न–द्रष्टाओं का ध्यान लगातार आकृष्ट करते रहे।

वर्तमान में दुनिया मानवीय इतिहास के एक संकटपूर्ण दौर से गुजर रही है और उसे एक विकल्प की तलाश है। उदारीकरण, निजीकरण और भूमंडलीकरण न केवल लोगों और देश की अर्थव्यवस्था का रूप बदल रहा है बल्कि मूलतः यह दुनिया भर में लोगों की जीवन शैली, दृष्टिकोण, विचारधारा और संस्कृति को भी दिल रहा है। हरेक जगह इन मौलिक बदलावों को देखा जा सकता है। 'छोटे' का स्थान 'बड़ा' ले रहा है। अदृश्य चीजें अब साक्षात दिखने लगी हैं। चारों तरफ भौतिक प्रगति के लिए अंधी होड़ मची हुई है जिसका नतीजा यह हो रहा है कि इंसान समाज तथा प्रकृति से अलग होता जा रहा है और अलग तरह की हिंसा का आसरा लेने लगा है। हरेक जगह संरचनात्मक हिंसा में बढ़ोतरी देखने को मिल रही है। सेवा और जरूरत का स्थान लालच ने ले लिया है। नैतिकता और ईमानदारी अब सार्वजनिक जीवन के आदर्श नहीं रह गये हैं। एक संकट का स्थान दूसरा संकट ले लेता है और एक भ्रष्टाचार का स्थान दूसरा भ्रष्टाचार ले रहा है। इसकी वजह से अंततः लोगों की ही मुश्किलें बढ़ती हैं। हालांकि मार्क्सवाद ने पूंजीवाद

का एक विकल्प दिया था लेकिन अपने अंतर्निहित विरोधाभासों के कारण मार्क्सवादी प्रयोग भी नाकाम हो गया। उदारवाद और नव–उदारवाद भी लोगों की समस्याओं को दूर करने के लायक नहीं हैं। ऐसी स्थिति में लोगों की उम्मीदें गांधीवाद स ही जुड़ी हैं जो कि उन्हें एक विकल्प प्रदान करता है।

गांधीवादी सिद्धांत आधुनिक युग की सबसे बड़ी चुनौती का भी सामना करने में सक्षम हैं। आज के दौर की सबसे पहली जरूरत मानवीय पीड़ा को समाप्त करना है। मानवीय व्यवहार की जटिलता की वजह से वर्तमान विश्व में गांधी का दर्शन बेहद प्रासंगिक हो जाता है। उनका दर्शन, मानवीय स्वभाव की अच्छाई पर बल देना, मानव–जाति की एकता, मनुष्य की सेवा, व्यक्ति के सामूहिक जीवन और अंतर–राज्य संबंधों के लिए वैध माने जाने वाले नैतिक सिद्धांतों का अनुप्रयोग, परिवर्तन की अहिंसक प्रक्रिया, सामाजिक और आर्थिक समानता तथा आर्थिक और राजनीतिक विकेन्द्रीकरण, आंतरिक और अंतर्राष्ट्रीय सद्भाव को मुश्किल में डालने वाले विभिन्न प्रकार के तनावों का समाधान करने की कोशिश करता है। यह प्रेम, सृजन तथा जीवन और सौंदर्य के उल्लास को जन्म देने वाली शक्तियों को सशक्त करने में सक्षम है। यह व्यक्ति के प्रति एक समग्र दृष्टिकोण अपनाता है और उसकी आध्यात्मिक प्रकृति पर बल देता है। गांधी एक उत्तर और एक विकल्प प्रदान करते हैं जो सबसे बढ़कर व्यक्ति, राज्य और समाज के लिए उम्मीद की एक किरण, भविष्य का एक नजरिया तथा एक खाका है। गांधीवादी विचार और दृष्टिकोण के बारे में की गयी व्याख्याओं को बार–बार दोहराने की जरूरत है ताकि जन–समुदाय अपने विचारों और कार्यों में उन्हें समाहित कर सकें और उनका पालन करें।

गांधी विकासवादी आयामों और नेतृत्व की विफलता की वजह से उपजे समकालीन दुविधा और संघर्षों का समाधान उपलब्ध कराते हैं। यहां तक कि कल्याणकारी राज्य भी उम्मीद के मुताबिक काम नहीं कर पा रहा है। आधुनिक भारत की त्रासदी यह है कि गांधी के दर्शन के महत्वपूर्ण पहलुओं पर अधिक ध्यान नहीं दयिा गया हैं सत्तारूढ़ अभिजात्य वर्ग को कभो भी इस बात का एहसास नहीं हुआ कि गांधी अपने समय से कहीं आगे की सोच रखने वाले व्यक्ति थे। मानवता के लिए सामाजिक न्याय और सातत्य की तलाश उस समय तक एक स्वप्न ही रहेगा जब तक मानवता को गांधी की उस बात की अहमियत का एहसास नहीं होता जिसमें उन्होंने कहा था कि नैतिक मूल्यों की अवहेलना और उन्हें नजरअंदाज करने की वजह से अर्थशास्त्र कभी भी सच्चाई के करीब नहीं होता है। गांधी ने स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान लिखे गये अपने लेखों और अपने भाषणों में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण और ग्रामीण विकास को हमेशा ही महत्ता दी। गांधी ने 'हरिजन' के 22 जुलाई 1946 के अंक में लिखा कि 'स्वतंत्राता का आरंभ सबसे निचले स्तर से होना चाहिए।' उन्होंने कहा था, 'मेरे सपनों का स्वराज एक गरीब व्यक्ति का स्वराज है। जिंदगी की

जरूरतों की पूर्ति एक सामान्य इंसान को भी वैसे ही होनी चाहिए जैस कि कोई शाही अथवा धनी व्यक्ति करता है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि तुम्हारे पास भी उनकी तरह महल होंगे। प्रसन्नता के लिए वे जरूरी नहीं है। तुम्हें या मुझे उन महलों को लेकर आसक्त होने की जरूरत नहीं है। लेकिन इतना जरूर है कि तुम्हें भी जिंदगी की वे सुविधाएं मिलनी चाहिएं जो धनी व्यक्ति को मिलती है। मेरे मन में इस बात को लेकर तनिक भी संदेह नहीं है कि स्वराज उस समय तक 'पूर्ण स्वराज' नहीं बनेगा जब तक कि इसके भीतर तुम्हें इन सुविधाओं की गारंटी नहीं मिल जाती है।''

गांधीजी की स्वतंत्रता भारत को लेकर बनी तस्वीर उस गीत में साफ झलकती है जो नयी दिल्ली की बान्धी कॉलोनी में होने वाली उनकी संध्या पूजा के दौरान गाया गया था। गांधी के सपनों के भारत की तस्वीर दिखाने वाला यह गीत इस प्रकार था––

गीत

और उन्हें इस बात का एहसास था कि उन्हें यह इंसान कहां मिलेगा।

15 अगस्त 1947 को आजादी मिलने के साथ ही भारत के लोग अचानक ब्रिटिश प्रजा के स्थान पर भारतीय नागरिक बन गये। लेकिन गांधी के शब्दों में यह आजादी नहीं थी बल्कि यह स्वराज यानि स्वशासन था। वह न भारत बल्कि बाकी दुनिया के लिए भी एक 'नया नागरिक' चाहते थे जो कि दूरदर्शी हो। इस नये नागरिक को समूची दुनिया को एक ही परिवार समझना होगा। उसका दर्शन और विकास का लक्ष्य 'सर्वोदय' यानि 'सभी का विकास' से प्रेरित होगा। उसके सिद्धांत और पद्धतियां 'सत्य एवं अहिंसा' पर आधारित होंगी। उसे अन्याय के खिलाफ अथक लड़ाई लड़नी होगी। उसे अपने विरोधी का हृदय परिवर्तित करने के लिए 'सत्याग्रह' यानि खुद को कष्ट देकर भी सत्य के पक्ष में खड़े रहना, का इस्तेमाल करना होगा।

यह नया व्यक्ति घृणा को प्रेम और प्रतिस्पर्द्धा को सहयोग से बदलने में सक्षम होगा तथा परस्पर–निर्भरता उसके जीवन का मूलभूत सिद्धांत होगा। वह विश्व में शांति, सहिष्णुता और सद्भाव लाएगा। वह भारत तथा पूरी दुनिया को बताएगा कि हमें युद्ध अथवा पलायन का रास्ता अख्तियार करने की आवश्यकता नहीं है और न हमें संघर्षों तथा मतभेदों के समाधान के लिए अत्यधिक आज्ञाकारी होने की आवश्यकता ह। वह हमें बताएगा कि हम शारीरिक शक्ति का सामना आत्मबल से कर सकते हैं और सद्भाव से दूसरे को झुकने के लिए बाध्य भी कर सकते हैं। गांधी के विचारों, कथन और कार्यों को आत्मसात् करके और उन्हें अपनाकर इस 'नव पुरुष' को अस्तित्व में लाया जा सकता है। समस्याओं से जूझ

रही इस दुनिया के लिए मोक्ष गांधी के विचारों के इस 'नवपुरुष' में ही छिपा हुआ है क्योंकि वह समस्त विश्व को एक संयुक्त परिवार समझेगा।

पंडित जवाहरलाल नेहरू ने 14–15 अगस्त 1947 की मध्यरात्रि को दिये गये अपने ऐतिहासिक भाषण में भारतीय शासन के लक्ष्य निर्धारित कर दिये थे। पंडित नेहरू ने गरीबी, अज्ञानता, बीमारी तथा अवसर की असमानता को समाप्त करने का लक्ष्य निर्धारित किया था। महात्मा गांधी ने भी सुशासन की व्यवस्था में सार्वजनिक नीतियों की प्रभावोत्पादकता के आकलन के लिए कुछ सख्त मानदंड सुझाये थे। उन्होंने कहा था, ''क्या यह समाज के निर्धनतम और सबसे कमजोर व्यक्ति को अपनी जिंदगी और भाग्य पर नियंत्रण स्थापित करने लायक बना पाएगा? दूसरे शब्दों में कहें तो क्या शासन भूखे और आध्यात्मिक रूप से अभावग्रस्त करोड़ों लोगों को स्वराज दिला पाएगा?'' इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए संविधान में नीति निदेशक तत्वों का प्रावधान किया गया। हालांकि नीति निदेशक तत्व न्याय–योग्य नहीं हैं लेकिन देश के शासन के लिए ये मूलभूत निर्देशों से काम भी नहीं हैं। लेकिन आजादी के बाद के 60 से अधिक वर्षों में भारतीय राज्य अपनी जिम्मेदारियों को पूरा करने में निस्संदेह नाकाम रहा है।

गांधी ने नैतिक मूल्यों की श्रेष्ठता संबंधी अपने विचारों को पुनर्स्थापित और पुनर्प्रतिष्ठित करने के लिए 'हिन्द स्वराज' लिखा था। हिन्द स्वराज भौतिकता पर नैतिकता की श्रेष्ठता की अवधारणा पर आधारित एक नयी विश्व व्यवस्था का घोषणा–पत्र है। यह भारत और बाकी दुनिया के आम लोगों की आवाज होने के साथ ही उन लोगों की भी आवाज है जो अनसुने ही रह जाते हैं। हिन्द स्वराज कई मौलिक सवाल खड़े करता है। ब्रिटेन के साथ भारत का टकराव राजनीतिक और आर्थिक न होकर सभ्यता का था। गांधी ने जिन लोगों को ध्यान में रखते हुए हिन्द स्वराज लिखा था, उनके लिए हालात अब भी अलग नहीं हैं। हिन्द स्वराज वैयक्तिक, राज्य तथा सामाजिक स्तर पर उठने वाले आंतरिक और बाह्य संघर्षों से पैदा होने वाली समकालीन और तात्कालिक समस्याओं से निपटने का गांधी का तरीका है।

भविष्य की उम्मीद भी हिन्द स्वराज में समाहित है। वास्तव में हिन्द स्वराज गांधीवादी विचारों की बाइबल है। यह राष्ट्रपिता द्वारा देश को दी गयी पवित्र पुस्तक है और सच्चे अर्थों में राष्ट्रवादी दौर की गीता है। हिन्द स्वराज के जरिए गांधी भारत के लोगा के आत्म–सम्मान और नैतिक–उद्‌भव को स्थापित करना चाहते थे। दूसरे शब्दों में, इस पुस्तक के जरिए गांधी एक देश के रूप में भारत तथा इसकी राज–व्यवस्था के साथ ही हरेक भारतीय को भी बदलना चाहते थे। हिन्द स्वराज भारत तथा भारतीयों के मूल्यांकन के लिए एक स्रोत ग्रंथ है। यह लोगों के लिए कार्यों की एक निर्देश–पुस्तिका भी है। हिन्द स्वराज भौतिकवादी पश्चिमी समाज की अतिवादिता का आलोचक भी है। यह उपनिवेशवाद, नव–उपनिवेशवाद,

हिंसा और अलगाव जैसी आधुनिक सभ्यता की नकारात्मक प्रवृत्तियों की तरफ भी हमारा ध्यान आकष्ट करती है। इसके अलावा यह पुस्तक राजनीतिक लोकतंत्र को भी अपने दायरे में लेती है क्योंकि सामाजिक लोकतंत्र के बगैर राजनीतिक लोकतंत्र वास्तविक लोकतंत्र है ही नहीं। रेलवे, वकीलों और डाक्टरों की आलोचना को उपनिवेशवाद और नव–उपनिवेशवाद के नकारात्मक पक्ष के रूप में देखा जाना चाहिए। हिन्द स्वराज एक दबे–कुचले समुदाय के लिए संघर्ष करने का वैकल्पिक रास्ता भी सुझाता है। यह दमन, अन्याय, अतिवाद और हिंसा आदि के खिलाफ संघर्ष का तरीका बताता है। यह व्यक्ति, समाज और राज्य के लिए भी विकल्प पेश करता है। अगर ईमानदारी से कह तो भारत के लोक हिन्द स्वराज के बारे में बातें करना पसंद करते हैं लेकिन इसे समुचित तरीके से समझ नहीं पाते हैं औन न–न ही इसके विचारों अथवा दर्शन को कभी साकार रूप दे पाये हैं। यह पुस्तक स्वतंत्रता–पश्चात् के भारत में भारत तथा इसके निवासियों के मूल्यांकन का स्रोत ग्रंथ है।

तीस जनवरी 1948 को महात्मा गांधी की हत्या के कुछ घंटों के भीतर ही सरोजनी नायडू ने उन्हें श्रद्धांजलि देते हुए कहा था, ''ईश्वर करे कि मेरे मालिक, मेरे नेता, मेरे बापू की आत्मा को शान्ति न मिले। बापू कभी आराम नहीं करते हैं। आइए, हम सभी एक प्रण लें। आप हमें शक्ति दें ताकि हम आपके वंशजों, अपने उत्तराधिकारियों से किये गये वादे को पूरा कर सकें। यै लोग ही आपके सपनों के रक्षक और भारत के भाग्य के निर्माता हैं।''

सरोजनी नायडू के इस शब्दों की ताकत हमें यह एहसास कराती है कि हमें गांधी के दो मूलभूत सिद्धांतों सत्य और अहिंसा को विचार और कर्म के रूप में आत्मसात् नहीं होने तक शांति से नहीं बैठना चाहिए। हमें आशावादी दृष्टिकोण रखते हुए यह उम्मीद रखनी चाहिए कि हम दुनिया के समक्ष मौजूद चुनौतियों का सफलतापूर्वक सामना कर पाएंगे।

गांधी के अनुसार वास्तविक लोकतंत्र न केवल कुछ लोगों बल्कि निर्धनतम व्यक्ति समेत सभी लोगों के लिए मायने रखना चाहिए। यहां तक कि अपंग, नेत्रहीन और मूक–बधिर के लिए भी लोकतंत्र का वही मायने होना चाहिए। वह आदर्श दिखाने के लिए महज जुबानी संवेदना में यकीन नहीं करते थे जैसा मौजूदा समय के अधिकतर नेताओं में आसानी से देखा जा सकता है। गांधी के अनुसार समूचा सामाजिक ढांचा ही ऐसा होना चाहिए कि इस आदर्श को व्यवहार में भी अपनाया जा सके। एक वास्तविक लोकतंत्र उद्देश्य के प्रति अव्वल दर्जे की गंभीरता तथा अत्यावश्यकता की अपेक्षा करता है। गांधी को यह एहसास था कि एक बार जागृत हो जाने पर लोग एक क्रांतिकारी ताकत बन जाते हैं। अगर उन लोगों की न्यूनतम अपेक्षाएं भी

पूरी नहीं की गयीं तो उनमें विस्फोट हो जाएगा। इस जागरूक जनता में हुआ विस्फोट कई तरह के अरुचिकर और बदसूरत रूप भी ग्रहण कर सकता है।

आज मूलभूत सवाल यह है कि क्या शासकों और राजनतिक दलों ने लोकतांत्रिक शासन के उद्देश्य के प्रति अव्वल दर्जे की गंभीरता तथा अत्यावश्यकता की भावना दर्शायी है? इस सवाल का जवाब निश्चित रूप से नकारात्मक है। इतने सारे कानूनों के बावजूद भारत में चुनाव प्रणाली और समू3ची चुनाव प्रक्रिया जनमत की ईमानदार तस्वीर सही तरीके से नहीं पेश कर पा रही है। हालांकि यह दुनिया के अन्य देशों के लिए भी उतना ही सत्य है। यहां तक कि अपराधी भी चुनाव जीतकर राजनीतिक पदों पर आसीन हो रहे हैं अब चुनाव में ताकत अधिक विश्वसनीय रूप अख्तियार करने लगी है। हालांकि दूसरे देशों में भी स्थिति उज्ज्वल नहीं है। चुनाव के दौरान मतदाताओं को रिश्वत दी जाती है और कई बार चुनावों में भरपूर धांधली भी होती है। इस तरह उम्मीदवार निर्वाचित न होकर खरीद–फरोख्त के परिणाम होते हैं। सभी मानवीय पहलुओं पर राजनीति का भारी पड़ जाना चुनावी दौर के सबसे दुखद पहलुओं में से एक है।

दरअसल मौजूदा दौर की असंतुष्टि और असमंजस को दूर कर पाने का एकमात्र रास्ता संघर्षों के समाधान का गांधीवादी तरीका अख्तियार करना है। अर्नाल्ड टायनबी ने सटीक आकलन करते हुए कहा है कि ‘मानव इति5हास के इस बेहद खतरनाक क्षण में मानव–जाति के लिए मोक्ष का एकमात्र रास्ता भारतीय पथ है जो सम्राट अशोका और महात्मा गांधी के अहिंसा के सिद्धांतों पर आधारित है तथा श्री रामकृष्ण ने धर्मों के सद्भाव के लिए उसे प्रमाणित भी किया है। यहां हमारे पास एक ऐसा नजरिया और भावना है जो समूची मानव–जाति को एक परिवार की त5रह एक साथ फलना–फूलना संभव बना सकती है। परमाणु हथियारों के इस दौर में अपने–आपको नष्ट कर देने का यह एकमात्र विकल्प है।''

भारत में लोग नैतिक नेतृत्व के लिए लालायित और प्रतीक्षारत हैं लेकिन यहां के राजनेता नैतिक नेतृत्व देने के बजाय पहले से ही दूषित हो चुकी व्यवस्था को बनाये रखने में ही जुटे हुए हैं। यह व्यवसथा सामूहिक दुरास्था से जहरीली होने के साथ ही निजी हितों को महत्ता देने के कारण दूषित हो चुकी है। लोगो को दूरदृष्टि और कल्पना पर आधारित सेवाएं देने के स्थान पर उन्हें धोखे में रखा जा रहा है और छला जा रहा है। एक नागरिक का कर्तव्य न केवल मतदान करना बल्कि समझदारीपूर्वक मतदान करना भी है। उसे सिर्फ और सिर्फ तर्क से संचालित होना चाहिए। उसे किसी भी तरह के विचारों और दलीय आधार से इतर सबसे अच्छे उम्मीदवार को ही मत देना चाहिए। किसी ‘गलत दल में मौजूद सही व्यक्ति’ किसी भी स्थिति में ‘सही दल में मौजूद गलत व्यक्ति’ से बेहतर है। वह समय अब बीत गया जब राजनीतिक दल के रूप में कांग्रेस का ही नाम प्रमुखता से उभरता था।

मोटे तौर पर भारतीय 'निम्न जागृति' वाले लोग हैं। वे सामंतवादी दासता और घातक समर्पण के साथ अन्याय और अनुचित कार्यों को सहन करते हैं। भारत को 15 अगस्त 1947 को स्वतंत्रता मिली लेकिन उस दिन महात्मा गांधी नयी दिल्ली में मौजूद नहीं थे। उनकी अनुपस्थिति का कारण बड़ा सरल था। दरअसल उनकी जिंदगी के दो सपने थे। पहला सपना ब्रिटिश आधिपत्य से देश को स्वतंत्र कराने का था जबकि दूसरा सपना भारतीयों को दमन और अन्याय, विषमता और असमानता तथा असहमति और असहिष्णुता से मुक्ति दिलाने का था। खुद उन्हीं के शब्दों में, ''मैं एक ऐसे भारत के निर्माण के लिए कार्य करूंगा जिसमें सबसे गरीब व्यक्ति भी यह महसूस करेगा कि इस देश के निर्माण में उसकी आवाज को भी अहमियत दी जा रही है, एक ऐसा भारत जिसमें लोगों के बीच अमीर और गरीब का कोई वर्गीकरण नहीं होगा और एक ऐसा भारत जिसमें सभी समुदाय पूर्ण सद्भाव से रहेंगे। यह मेरे सपनों का भारत होगा।'' उसका पहला सपना तो पूरा हो गया लेकिन दूसरा सपना पूरा नहीं हो पाया। महात्मा गांधी के अनुसार जश्न मनाने का सही समय तब होगा जब दूसरा सपना भी पूरा हो जाएगा। गांधी अपने लोगा के नेता थे, उन्हें किसी भी सत्ता का समर्थन हासिल नहीं था, एक ऐसे राजनेता जिसकी सफलता कौशल और छल पर नहीं बल्कि अपनी आत्मा के नैतिक बड़प्पन पर आधारित थी, एक ऐसे योद्धा जिन्होंने धरती के सबसे शक्तिशाली साम्राज्य को बल–प्रयोग के बगैर धराशायी कर दिया, गहन बुद्धिमत्ता और सम्मोहक विनम्रता से परिपूर्ण आत्मा, लौह इच्छाशक्ति और अडिग संकल्प रूपी हथियारों से लैस तथा सैनिक शक्ति की क्रूरता का एक साधारण इंसान की गरिमा के साथ प्रतिरोध करने वाले एक दुर्बल काया के व्यक्ति थे। महात्मा गांधी के लिए सत्य ही ईश्वर था तथा अहिंसा उनका धर्म था। राजद्रोह के मामले की यादगार सुनवायी के दौरान वर्ष 1922 में उन्होंने कहा था, ''अहिंसा मेरी आस्था का पहला बिन्दु है। यह मेरे पंथ का अंतिम बिन्दु भी है। अहिंसा में बहादुरी मर जाने में निहित है, न कि मारने में।'' उनकी दयालुता और मानवता ब्रह्माण्ड की तरह सीमाओं के परे है। उन्होंने कहा, ''भारत के सभी धर्मों और नस्लों के सभी लोगों को एक बैनर के तले एकत्र करो और सभी सांप्रदायिक तथा संकीर्ण विचारों से उन्हें दूर रखने के लिए उनके भीतर एकता तथा सद्भावना के भाव प्रवाहित करें।'' वह आगे कहते हैं कि ''मेरा हिन्दुत्व धर्मनिरपेक्षता नहीं है। इसमें इस्लाम, ईसाइयत, बौद्ध और पारसी धर्मों के वे सबसे अच्छे तत्व भी समाहित हैं, जिनसे मैं परिचित हूं। सत्य मेरा धर्म है और अहिंसा इसे मूर्त रूप का एकमात्र रास्ता है।'' गांधी की यह दृढ़ राय थी कि एक अच्छे नागरिक का जीवन देश की सेवा में किये गये कर्मों का जीवन है। उन्होंने अपने शरीर के साथ ही अपने शब्दों की भी अंत्येष्टि कर दिये जाने की इच्छा जताते हुए कहा था, ''मैंने जो किया है वह बरकरार रहेगा, न कि वह जो मैंने कहा है अथवा लिखा है।''

महात्मा गांधी के शरीर को निशाना बनाने वाली घृणा और कट्टरता उनकी महात्मा आत्मा को छू भी नहीं पायी थी। भारतीय प्रणालियां और विचारधाराएं किसी समय प्रासंगिक और दूसरी स्थिति में पूरी तरह अप्रासंगिक भी हो सकती हैं लेकिन इस महान और मानवता तथा बुद्धिमत्ता के सौम्य चिराग की शिक्षाएं अनंत काल के लिए हैं। उन्होंने हमें एक देश के तौर पर आत्म–सम्मान तथा गरिमा के एहसास का अनमोल उपहार दिया। महात्मा गांधी ने अपना अंतिम साक्षात्कार 30 जून 1948 को दोपहर में 'लाइफ' पत्रिका की अमेरिकी पत्रकार मार्ग्रेट बर्क को दिया था। उस साक्षात्कार में मार्ग्रेट ने गांधी से पूछा था कि क्या वह एक शहर पर नाभिकीय हमले की सूरत में भी अहिंसा के अपने सिद्धांत पर दृढ़ रहेंगे। महात्मा गांधी ने इस सवाल का जवाब देते हुए कहा था कि अगर असहाय लोग अहिंसा की भावना के साथ मरते हैं तो उनका बलिदान व्यर्थ नहीं जाएगा। वे उस पायलट की आत्मा के लिए प्रार्थना करेंगे जिसने बिना विचारे उस शहर को मौत की तरफ धकेल दिया। मानव–जाति की सहानुभूति के लिए यह उनका अंतिम संदेश था। वह अपने आपको पूरी तरह से भारतीय जनमानस के रूप में देखते थे। उन्होंने कहा था, ''हमें सबसे पहले लोगों के साथ काम करके उनके जीवंत सम्पर्क में आना चाहिए, ताकि हम उनके दुख–दर्द साझा कर सकें, उनकी मुश्किलों को समझ पाएं और उनकी जरूरतों का अनुमान लगा सकें। अछूतों के साथ हमें अछूत ही रहना चाहिए ताकि हम यह देख सकें कि ऊंची जातियों की आलमारियों को साफ करना और उनके घर में बचे–खुचे सामान का अपनी तरफ फेंका जाना कैसा लगता है। हमें यह देखना चाहिए कि बम्बई के मजदूरों के साथ डिब्बों, जिन्हें गलती से घर कहा जाता है, में रहकर कैसा लगता है। हमें उन ग्रामीणों के साथ खुद को देखना चाहिए जो कड़ी धूप में मेहनत करके अपनी पीठ जला रहे हैं। हमें उस तालाब से पानी पीकर भी देखना चाहिए जिसमें ग्रामीण नहाते हैं तथा अपने कपड़े और बर्तन धुलते हैं तथा उनके मवेशी भी उसी तालाब से अपनी प्यास बुझाते हैं और उसमें लोट–पोट भी होते रहते हैं। जब हम ऐसा कर लेंगे तभी हम सही तरीके से आम जनता का प्रतिनिधित्व कर पाएंगे और उस समय वे निश्चित रूप से आपकी हरेक आवाज का जवाब देने आएंगे।''

भारत के लोगों ने पूर्ण समर्पण की भावना से महात्मा गांधी के आह्वान का जवाब दिया। उन्होंने लोगों से कहा कि ''वास्तविक स्वराज कुछ लोगों के हाथों में सत्ता का अधिग्रहण होने से नहीं बल्कि सत्ता का दुरुपयोग किये जाने पर उसका प्रतिरोध करने की क्षमता हरेक व्यक्ति में आ जाने पर आएगा।'' वह बारंबार इस बात का जिक्र किया करते थे कि भारत को आजादी दिलाकर सार्वभौमिक बन्धुत्व के लक्ष्य को हासिल करने की दिशा में हम अपनी कोशिश जारी रखेंगे। वह सच्चे अर्थ में मानवता की विस्तारित बेहतरी को हासिल करने में जुटे हुए थे।

गांधी ने अर्थ और मोक्ष, धर्मनिरपेक्षता और आध्यात्मिकता तथा शक्ति और न्याय के मूल्यों के बीच सहिष्णुता का मार्ग दिखाया है। गांधी ने 'पुरुषार्थ' की व्याख्या करते हुए कहा है कि यह मूल्यों और आदर्शों का एक ऐसा समुच्चय है जिसके दायरे में रहते हुए भारत में सार्वजनिक विचार–विमर्श हो सकता है और यही होना भी चाहिए। वह जीवन के प्रति एक संतुलित दृष्टि प्रस्तुत करते है। धन, शक्ति, सुख, कलात्मक सौंदर्य, नैतिक एकनिष्ठता और आत्मा की स्वतंत्रता रूपी पुरुषार्थ सभी भारतीयों की कामना के लक्ष्य हैं। गांधी यह विवेचना भी करते हैं कि कामना आधुनिक भारत के सार्वजनिक दर्शन का आधार क्यों और कैसे होनी चाहिए।

पुरुषार्थ की अवधारणा के तीन तरह के मायने हैं। पहला, यह किसी भी मानवीय श्रम से संबंधित है, दूसरा, यह भाग्य और कर्म के ढांचे को तोड़ने के लिए किये गये मानवीय प्रयास से संबंधित है। और तीसरे अर्थ में यह जीवन के चार सर्वमान्य लक्ष्यों––धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के उल्लेख से सबंधित है। 'धर्म' जहो धार्मिक मान्यताओं और नैतिक मूल्यों से संबंधित है वहीं 'अर्थ' धन और शक्ति से जुड़ा हुआ है। 'काम' शारीरिक सुख और आनन्द की अनुभूति से संबंधित पुरुषार्थ है जबकि 'मोक्ष' का तात्पर्य जन्म–मरण के चक्र से मुक्त हो जाने से है।

गांधी स्वयं इन पुरुषार्थों को बड़ी खूबसूरती से अभिव्यक्त करते हैं। वह धार्मिक हैं, वह प्रसन्न हैं और एक तरफ वह धनवान भी हैं। वह आत्मनिष्ठ हैं, किसी के भी प्रति उनके मन में दुर्भावना नहीं है, किसी का भी शोषण नहीं करते हैं और सदैव सच्चे मन से काम करते है। इस तरह का हरेक व्यक्ति मानवता की सेवा के योग्य है।

पूर्व प्रधानमंत्री पी.वी. नरसिम्हा राव के मुताबिक मौजूदा समस्याओं को एक ही स्रोत से उपजा हुआ माना जा सकता है। राजनीतिक प्रतिष्ठान का नौकरशाही से लगभग पूर्ण अलगाव हो चुका है और एक तरफ समृद्ध आभिजात्य वग है तो दूसरी तरफ नागरिक समाज के लोग। इनमें से नागरिक समाज को छोड़कर बाकी सभी लोग अपनी अहमियत और ताकत बढ़ाने की कोशिश करते हैं। नेता चुनाव प्रणाली के जरिए और नौकरशाह कानूनों, नियमों और प्रक्रियाओं में गड़बड़ी करके अपनी महत्ता बढ़ाने की कोशिश करते हैं जबकि समृद्ध आभिजात्य वर्ग राजनीति और नौकरशाही के साथ अपने अनुचित संबंधों के माध्यम से इस शोषणकारी व्यवस्था में अपनी ताकत बढ़ाने में लगा रहता है।

नागरिकों को इस बात का एहसास होता है कि राज्य ने गुंडों और मवालियों के आगे अपनी शक्ति का प्रयोग करना धीरे–धीरे बंद ही कर दिया है। जिलाधिकारी, निगम पार्षद, विधायक, सांसद और मंत्री को

अब वह प्रतिष्ठा नहीं मिलती है जो कभी मिला करती थी। आम नागरिक की दृष्टि में, अदालते और संसद धोखेबाजी, बेईमानी और जोड़–तोड़ को वैधता दिलाने क उपाय–भर बनकर हर गयी हैं।

सत्तारूढ़ दल के साथ ही अन्य दलों के नेता भी अपने निजी हितों को छोड़कर उस मूलभूत तथ्य को समझने में नाकाम रहे हैं कि अगर राजनीति सिर्फ वोट बैंक तक ही सीमित होकर रह जाती है तो इस देश में कोई भी पार्टी बची नहीं रह सकती है, फलने–फूलने की तो बात ही छोड़ दीजिए। भारत में राजनीतिक हालात इतने बिगड़ चुके हैं कि राजनीति का इस कदर अपराधीकरण हो चुका है कि अब अपराध का राजनीतिकरण होने लगा है।

नागरिक भारत के तर्कसंगत विकास को बाधित करने के लिए तीन कारक जिम्मेदार हैं। पहला, गरीबो है जिसकी वजह से किसी भी कीमत पर आर्थिक सुरक्षा की जरूरत पैदा हो रही है। इसका प्रत्यक्ष परिणाम यह है कि अमीर और गरीब के बीच की खाई लगातार चौड़ी होती जा रही है। दूसरा कारक बड़ी तेजी से बढ़ रही जनसंख्या है और तीसरा कारक धार्मिक–जातीय पहचान और एकता क सिद्धांत के बीच का टकराव है। जन–मानस पर इन दबावों के परिणाम स्वरूप भारत में एक आत्म–केन्द्रित समाज का आविर्भाव हो गया है। यह समाज तुच्छ निजी स्वार्थों, आत्म–संवर्द्धन और स्वार्थी आकांक्षाओं से हटकर दूर तक देख पाने में असमर्थ दिखायी दे रहा है। अब यह अपवाद छोड़कर नियम बन गया है जो सभी निष्पक्ष लोगों को एक भारी बोझ से लाद देता है। दरअसल इन निष्पक्ष नागरिकों को इस बात का भली–भांति एहसास है कि दूसरों की फिक्र करने वाली जीवन–शैली के प्रति लोगों का भरोसा बहाल करने में कामयाब नहीं होने पर निकट भविष्य म हमारे पास नाम को चरितार्थ करने वाला कोई देश ही नहीं बचा रह जाएगा।

हममें से कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं है जो हमारी सामाजिक संस्कृति से समृद्ध न हुआ हो। चाहे वह संगीत, भोजन या वेशभूषा जैसे रोजमर्रा के मामले ही क्यों न हों। उदाहरण के लिए एक माला के भीतर मौजूद अदृश्य धागा राष्ट्रीयता अथवा अंतर्राष्ट्रीयता का शानदार रूपक है। अगर इस माला के धागे को कहीं से भी काट दिया जाता है तो माला का अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है। यहां पर सवाल यह उठता है कि इस धागे को किस तरह बचाकर रखा जाए। मेरी सलाह है कि इस सवाल का जवाब देने के लिए हमें एक अलग तरह की भाषा अपनाने की आवश्यकता है। दुनिया का कोई भी देश अपना अस्तित्व तभी कायम रख पाएगा जब वह अमीर और गरीब के बीच की सबसे गहरी खाई को पाटकर नयी सामाजिक–आर्थिक व्यवस्था का निर्माण करता है जिससे एक नागरिक की दूसरे के साथ बढ़ रही दूरी भी समाप्त हो जाती है।

अधिकतर राजनेताओं की नैतिक सत्ता लगभग विलुप्त हो चुकी है क्योंकि उन्हें मौका–परस्त माना जाता है और प्रायः उन्हें अपराधियों और बेईमान व्यवसायियों की कतार में शामिल कर दिया जाता है। इस

तरह नेताओं के लिए समाज को अनुशासित कर पाना संभव नहीं हो पाता है क्योंकि समाज इन नेताओं को अनुशासनहीनता के उदाहरण के रूप में देखता है। आम आदमी हमारे नैतिक स्तर में आयी गिरावट और समूची दुनिया में फैल रही नैतिक बीमारी से काफी परेशान है। धन की ताकत का असर सर्वत्र दखा जा सकता है। बहरहाल हम उम्मीद करते हैं कि हम उस स्थिति तक न पहुंच जाएं जहां उदासीनता एक संक्रामक रोग बन जाए अथवा अत्यधिक थकान की भावना धीरे–धीरे समूचे देश में फैल जाए। अगर ऐसा नहीं होता है तो एक हद तक हिंसा को स्वीकार्य कर लिया जाता है, घोटाले रोजमर्रा की बात हो जाते हैं और उग्रवादी प्रतिरोध को फिल्मी कहानी के रूप में पेश किया जाने लगता है। आनन्द, नियंत्रण और हिंसा की जगह आत्म–नियंत्रण, साझेदारी और दयालुता की कामना करने के लिए लोगों को प्रेरित करने में शिक्षा को एक औजार की तरह इस्तेमाल किया जाना चाहिए। हम सभी भारतीयों को ''वसुधैव कुटुम्बकम्'' का अपना उदात्त लक्ष्य हासिल करने के लिए पहले खुद को एक सूत्र में पिरोना होगा।

राजनीतिक दलों को भारत की एकता और अखंडता के लिए काम करना चाहिए। लेकिन दुर्भाग्य से कुछ अपवादों को छोड़कर सभी राजनीतिक दलों ने अपने चुनावी लाभ के लिए जाति, धर्म और भाषा का इस्तेमाल किया है। दुर्भाग्यपूर्ण तरीके से पिदले पांच या कुछ अधिक वर्षों में, खासकर भारत में कुछ ऐसी स्थिति बन गयी है कि किसी गलत काम का विरोध किये जाने अथवा उसे बर्दाश्त किये जाने के बार में कुछ कहना मुश्किल है। आर्थिक अपराधियों और घोटालेबाजों का अब विरोध किया जाने लगा है लेकिन यह भी सच है कि उन्हें वर्षों तक यह गड़बड़ी फैलाने की अनुमति दी गयी थी। इससे साबित होता है कि इन लोगों को न केवल बर्दाश्त किया गया था बल्कि संभवतः उन्ह बढ़ावा भी दिया जाता रहा।

एक देश के तौर पर भारत की सफलता को एक विषमता से परिपूर्ण परिवेश को समरूप बना दिये जाने से नहीं आंका जाएगा बल्कि सफलता तो वह कही जाएगी जिसमें विविधता से परिपूर्ण समाज भी एक साथ अस्तित्व में रहें और उनके बीच सद्भाव भी बना रहे। इस विविधतापूर्ण समाज में परंपराओं और आधुनिकता का समुचित मेल होगा और मानव–निर्मित पूंजी प्राकृतिक पूंजी का विनाश नहीं करेगी। भारत में दोनों ही तरह के माडल की मौजूदगी के कुछ खास क्षेत्र हैं।

सारांश

हमें उन शांतिपूर्ण और खुशहाल दिनो की भावना और आदर्शों की तरफ लौटना चाहिए जब ''सबसे पहले और सबसे आगे राष्ट्र'' के दर्शन का अनुसरण किया करते थे। उस समय हम दिल की जुबान बोलते थे, आदर्शवाद की हवा में सांव लेते थे, स्वार्थ–रहित सेवा और बलिदान के रास्ते पर कदम–से–कदम मिलाकर चलते थ तथा मातृभूमि के सभी बेटों और बेटियों को सदैव खुद को ''भारतीय पहले, भारतीय

आखिर में और भारतीय हमेशा'' मानने में गर्व होता था। आज के समय की यह जरूरत है कि देश के नेता और लोग महात्मा गांधी के आदर्शों और शिक्षाओं से प्रेरित हों। हमें सरकार के शीर्ष पर मूल्यों से परिपूर्ण एक व्यक्ति की जरूरत है। हमें एक 'दार्शनिक राजा' की आवश्यकता है। जिसका दिमाग साफ हो और जिसका दिल सही स्थान पर मौजूद हो। अगर यह सच हो जाता है तो गांधी की प्रासंगिकता बनी हुयी है। अगर कल की नीतियां विशुद्ध व्यक्गित आकांक्षा के प्रतिकूल प्रभाव से मुक्त करा दी जाती हैं और इंसान को शारीरिक तथा मानसिक तौर पर गरीबी, बीमारी और भूख से मुक्ति दिलाने जैसे महान लक्ष्यों को हासिल करने के लिए बनायी जाती हैं तो गांधी प्रासंगिक हैं। अगर दया–भाव, क्षमा–भाव, सज्जनता और दूसरों के लिए फिक्रमंद होने जैसे गुण सार्वजनिक जीवन का अंग बने हुए हैं तो गांधी की प्रासंगिकता है। समय बीतने के साथ ही गांधी की प्रासंगिकता न केवल हमारे देश बल्कि पूरे विश्व के लिए बढ़ जाएगी। मुझे तनिक भी यह संदेह नहीं है कि जहां तक मेरे देशवासियों और खासकर महज गांधी का नाम सुनने वाली युवा पीढ़ी का संबंध है, वे भारत के ऐतिहासिक काया–तरण से जुड़ी वास्तविक समस्याओं को पूरी समग्रता में और पर्याप्त समय देकर हल कर लेंगे। आज भी गांधी की प्रासंगिकता यथावत् है। हकीकत तो यह है कि राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक मुद्दों से संबंधित गांधी के विचार और नजरिया उनके जीवन–काल की तुलना में अब अधिक प्रासंगिक हैं। नीति–निर्माताओं, राजनीतिज्ञों, बुद्धिजीवियों और वैज्ञानिकों को अपनी सोच और कार्यों में निश्चित रूप से महात्मा गांधी के जंतर का ध्यान रखना चाहिए।

गांधी ने कहा था, ''मैं आप लोगों को एक जंतर दूंगा। जब कभी आपके मन में कोई संदेह हो अथवा आपका अहम आप पर भारी पड़ने लगे तो यह तरीका अपनाना। उस सबसे गरीब और सबसे कमजोर व्यक्ति का चेहरा याद करना जिसे तुमने देखा है और खुद से यह सवाल करना कि अगर तुमने यह कदम उठाया तो उससे उस व्यक्ति को कोई लाभ हो जा रहा है अथवा नहीं? क्या उसे तुम्हारे इस कदम से कुछ मिलेगा? क्या तुम्हारा कदम उस व्यक्ति के लिए अपने जीवन और भाग्य पर किसी तरह का नियंत्रण स्थापित करने में मददगार बन पाएगा? दूसरे शब्दों में, क्या यह कदम भ्ख और आध्यात्मिक वंचना से जूझ रहे लाखों लोगों के लिए स्वराज ला पाएगा? तब तुम्हें अपने संदेह के जवाब मिल जाएंगे और तुम्हारा अहम भी जाता रहेगा।''

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि गांधी के कहे हुए शब्द, उनका लेखन और उनके कार्य सदियों तक ध्वनित होते रहगे। इसी के साथ हमें उन सात सामाजिक पापों को भी ध्यान में रखना चाहिए जिनका उल्लेख महात्मा गांधी ने 22 अक्टूबर 1925 को यंग इंडिया के अपने लेख में किया था। ये सामाजिक पाप हैं––

सिद्धांतों के बगैर राजनीति,
कार्य के बगैर धन,
अंतःकरण के बगैर आनन्द,
चरित्र के बगैर ज्ञान,
नैतिकता के बगैर व्यवसाय,
मानवता के बगैर विज्ञान, और
बलिदान के बगैर आराधना।

जिंदगी के लिए जो महत्व सांस का है वही मानवता और सभ्यता के लिए गांधी का है। जब तक दुनिया में आपसी संघर्ष, शत्रुता, जातीय वैमनस्य, धार्मिक अशांति, आंतरिक टकराव और सैनिक कब्जे का भय बना रहेगा, लोग महात्मा गांधी की तरफ रुख करते रहेंगे। उनकी उपयोगिता उस समय तक समाप्त नहीं होगी जब तक संघर्ष बंद नहीं हो जाते हैं, भेदभाव समाप्त नहीं हो जाता है, महिलाएं सशक्त नहीं हो जाती हैं और गरीब सम्मानपूर्वक जीवन नहीं व्यतीत करन लगते हैं।

सार–संक्षेप

– गांधी एक रचनात्मक व्यक्ति थे और उन्होंने अपने समय की चुनौतियों का बखूबी मुकाबला किया।

– गांधी ने इतिहास की दिशा बदल दी और नये इतिहास का सृजन किया। वह सिद्धांतों और दृढ़ प्रतिबद्धता वाले व्यक्ति थे और उन्होंने हमेशा वही काय किया जिसका वह दूसरों को उपदेश दिया करते थे। उनके लिए सिद्धांत और व्यवहार में कोई विरोधाभास नहीं था और न ही उनके सार्वजनिक तथा निजी जीवन में कोई अंतर्विरोध था। आम लोगों खासकर सामाजिक रूप से वंचित और शोषित समुदाय की जुबान बोलने और समझ पाने के कारण वह दुनिया पर स्थायी असर छोड़ गये।

– गांधी के विचारों और परिप्रेक्ष्य की पुनर्व्याख्या बार–बार करते रहने की जरूरत है। जब तक कि जन समुदाय अपने विचारों और कार्यों में उसे अपनाना और व्यवहार में लाना सीख नहीं जाता है।

– 15 अगस्त 1947 को आजादी मिलने के साथ ही भारत के लोग 'प्रजा' की जगह नागरिक बन गये। लेकिन गांधी के शब्दों में हमें आजादी नहीं बल्कि 'स्वराज' यानि स्वशासन मिला था।

– महात्मा गांधी ने सुशासन से परिपूर्ण व्यवसथा में सार्वजनिक नीतियों की प्रभावोत्पादकता आंकने के लिए सख्त पैमानों का समूह भी सुझाया था। उन्होंने कहा, ''क्या इस नीति से सबसे गरीब और कमजोर

व्यक्ति को अपनी जिंदगी और किस्मत पर नियंत्रण स्थापित करने में मदद मिलेगी? दूसरे शब्दों में, क्या यह भूखे और आध्यात्मिक रूप से वंचित लाखों लोगों को स्वराज दिला पाएगा?''

– गांधी के अनुसार सच्चा लोकतंत्र न केवल कुछ लोगों बल्कि सबसे गरीब और यहां तक कि विकलांग, दृष्टिहीन और मूक–बधिर व्यक्ति समेत सभी लोगों के लिए मायने रखना चाहिए। वह आदर्श पेश करने के लिए सिर्फ जुबानी सहानुभूति में भरोसा नहीं करते थे, जो कि आज के अधिकतर राजनीतिज्ञों और नेताओं के लिए बड़ा आसान काम हो गया है।

– अपनी जिंदगी में गांधी के दो सपने थे। भारत को ब्रिटिश दासता से मुक्त कराना उनका पहला सपना था जबकि भारतीयों को दमन और अन्याय, असमता और असमानता तथा असहमति और असहिष्णुता से मुक्त कराना उनका दूसरा सपना था।

– गांधी ने अर्थ और मोक्ष, धर्मनिरपेक्षता और आध्यात्मिकता तथा शक्ति और न्यय जैसे मूल्यों के बीच सामंजस्य बिठाने का रास्ता दिखाया।

– हमें सरकार के शीर्ष पर मूल्यों से परिपूर्ण एक व्यक्ति की जरूरत है। हमें एक 'दार्शनिक राजा' की जरूरत है जिसका मस्तिष्क साफ हो और जिसका दिल अपने सही स्थान पर हो। अगर ऐसा सच होता है तो गांधी प्रासंगिक बने हुए हैं।

– गांधी की उपयोगिता उस समय तक बनी रहेगी जब तक संघर्ष समाप्त नहीं हो जाते हैं, भेदभाव मिट नहीं जाता है, महिलाएं सशक्त नहीं हो जातो हैं और गरीब सम्मान के साथ नहीं जीने लगता है।

अनुशंसित पुस्तकें

– एस.सी. विश्वास (संपादित), गांधी : थ्योरी एंड प्रैक्टिस, सोशल इम्पैक्ट एंड कंटेम्परारी रेलिवेंस, इंडियन इंस्टीट्यूट ऑ एडवांस स्टडी, शिमला, 1969।

– एम. जूडिथ ब्राउन, गांधी : प्रिजनर आफ होप, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली, 1992।

– विद्युत चक्रवर्ती, सोशल एंड पोलिटिकल थॉट आफ महात्मा गांधी, लंदन, स्टलेज, 2006।

– मनमोहन चौधरी, एक्सप्लोरिंग गांधी, गांधी शांति प्रतिष्ठान, नयी दिल्ली, 1987।

– एस.सी. गांगल, गांधियन थॉट एंड टेक्निक्स इन द मार्डन वर्ल्ड, क्राइटेरियन पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 1988।

– बी.एस. गांगुली, गांधी'ज सोशल फिलास्फी : पर्स्पेक्टिव एंड रेलिवेंस, विकास पब्लिशिंग हाउस प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, 1973।

– अनिल दत्त मिश्रा, रिविजिटिंग हिन्द स्वराज, नयी दिल्ली, कान्सेप्ट, 2010।

– अनिल दत्त मिश्रा (संपादित), गांधियन एप्रोच टू कंटेम्परारी प्राब्लम्स, मित्तल पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 1996।

– एंथनी जे. पैरेल, गांधी'ज फिलास्फी एंड द क्वेस्ट फार हार्मोनी, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज, 2006।

– थामस वेबर, गांधी ऐज डिसिपल एंड मेंटर, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज, 2004।

एपेन्डिक्स – 1

गांधी के जीवन की महत्वपूर्ण घटनाएं

1869 : 2 अक्टूबर को पोरबन्दर (अब गुजरात), भारत में जन्म।

1876 : कस्तूरबाई के साथ सगाई।

1883 : कस्तूरबाई के साथ विवाह।

1887 : प्रवेषिका परीक्षा उत्तीर्ण, सांवलदास महाविद्यालय, भावनगर में प्रवेष।

1888 : 4 सितम्बर को विधि की पढ़ाई के लिए इंगलैंड प्रस्थान।

1889 : इंगलैंड में शाकाहारियों की सभा में पहला जन भाषण।

1891 : 10 जून को बैरेस्टर बने, भारत वापस 7 जुलाई को बम्बई पहुंचे, जहां उन्हें अपनी माताजी के देहांत का समाचार मिला।

1892 : राजकोट और बम्बई में वकालत प्रारम्भ।

1893 : अप्रैल में एक दीवानी याचिका की सुनवाई के सिलसिले में पहली बार दक्षिण अफ्रीका गये।

1894 : दीवानी याचिका का फैसला समझौते से आया।

1895 : नटाल सर्वोच्च न्यायालय में वकील के रूप में नामांकन नटाल भारतीय कांग्रेस का गठन।

1896 : दक्षिण अफ्रीका से भारत वापसी, जहां वह 6 महीने रहे तथा तिलक, गोखले व अन्य भारतीय नेताओं से मिले। 18 नवम्बर को पुनः दक्षिण अफ्रीका प्रस्थान किया।

1897 : डरबन में गांधी विरोधी प्रदर्षन ने गांधी के जीवन में महत्वपूर्ण परिवर्तन की शुरुआत की।

1899 : बोअर युद्ध में ब्रिटेन की सहायता।

1901 : भारत वापसी राजकोट में प्लेग प्रभावित क्षेत्रों में जनसेवा संगठित किया।

1902 : बर्मा गये : भारत में तीसरे दर्जे रेलवे कम्पार्टमेंट में यात्रा शुरू, जुलाई में बम्बई में एक कार्यालय खोला। 3 महीने बाद दक्षिण अफ्रीका में पुनः वापसी।

1903 : ट्रांसवाल ब्रिटेन इंडिया एसोसिएषन की स्थापना, इंडियन ओपिनियन के संपादन की शुरुआत।

1904 : गीता और रस्किन के अन्टू दा लास्ट ;न्दजव जीम स्ंजद्ध का अध्ययन जिसने उनके जीवन में

क्रांतिकारी परिवर्तन लाया, फोनिक्स आश्रम की स्थापना।

1906 : जुलु विद्रोह, विद्रोह में घायलों की सेवा, ब्रह्मचर्य रहने की प्रतिज्ञा, 'सत्याग्रह' शब्द पहली बार

सामने आया, भारतीय मण्डल ;कमचनजंजपवदद्ध के सदस्य के रूप में इंगलैंड प्रस्थान।

1907 : काले कानून के खिलाफ सत्याग्रह की शुरूआत।

1908 : ब्रिटिष शासक के साथ अन्तरिम समझौता, एक पठान का हमला, सत्याग्रह की पुनः शुरुआत,

गिरफ्तार हुए।

1909 : टॉलस्टॉय को अपना पहला पत्र लिखा, भारतीय मण्डल के सदस्य के रूप में दूसरी बार इंगलैंड

गये। इंगलैंड से वापसी में 'हिन्द स्वराज' और 'इण्डियन होम रूल' लिखा।

1910 : जोहनसबर्ग में टॉलस्टॉय फर्म की स्थापना।

1912 : गोखले दक्षिण अफ्रीका पहुंचे : 'नीतिधर्म' नाम से एक किताब का प्रकाषन, स्वास्थ्य के लिए

प्राकृतिक उपचार पर सामान्य जानकारी से सम्बन्धित दूसरी पुस्तक लिखी।

1913 : सत्याग्रह की पुनः शुरूआत : गिरफ्तारी और रिहाई, 7 दिन का उपवास, उसके बाद साढ़े चार

महीने तक दिन में एक बार भोजन लिया।

1914 : 14 दिन का उपवास, सत्याग्रह की सफलता, समझौते के परिणामस्वरूप, 18 जुलाई को इंगलैंड

प्रस्थान, 4 जुलाई को विष्वयुद्ध फैला, अगस्त में सरोजनी नायडू के साथ बैठक, विष्वयुद्ध में

अपनी सेवा दी।

1915 : भारत वापसी पर केसर–ए–हिन्द की उपाधि से नवाजे गये। व्यापक भारत भ्रमण, काका कालेलकर

ओर आचार्य कृपलानी के साथ बैठक, 19 फरवरी को गोखले का देहांत, 25 मई को साबरमती आश्रम की स्थापना।

1916 : काषी विष्वविद्यालय की स्थापना के उपलक्ष्य में ऐतिहासिक भाषण, लखनऊ कांग्रेस में जवाहरलाल

नेहरू के साथ पहली बैठक।

1917 : डॉ. राजेन्द्र प्रसाद से पहली मुलाकात, 10 अप्रैल को चम्पारण सत्याग्रह की शुरुआत, 31 मई को

शोषण के प्रतीक बन चुके श्रम कानून का खात्मा, महादेव देसाई के साथ पहली मुलाकात।

1918 : अहमदाबाद में मिल श्रमिकों की हड़ताल, 3 दिन का उपवास, खेड़ा सत्याग्रह, चरखे का

पुनर्जीविकरण।

1919 : रॉलेट कानून, 6 अप्रैल को प्रार्थना सह–उपवास दिवस के रूप में मनाया, 13 अप्रैल को

जलियांवाला बाग नरसंहार, 'यंग इंडिया' और 'नवजीवन' के संपादन की शुरुआत, खिलाफत आंदोलन, अमृतसर कॉग्रेस।

1920 : 1 अगस्त को लोकमान्य तिलक का निधन, 2 अक्टूबर को तिलक स्वराज फण्ड की स्थापना, गांधी

के द्वारा निर्मित कांग्रेस संविधान को मंजूरी, असहयोग आंदोलन का सूत्रपात, गुजरात विद्यापीठ की स्थापना।

1921 : दूसरे राष्ट्रीय शैक्षणिक संस्थानो की स्थापना, प्रिंस ऑफ वेल्स के आगमन का बहिष्कार, दंगे 5

दिन का उपवास, अहमदाबाद कांग्रेस।

1922 : 5 फरवरी को चोरी–चोरा विद्रोह, सत्याग्रह स्थगित, 5 दिन का उपवास, 10 मार्च को गिरफ्तारी,

6 साल की कैद की सजा।

1924 : अपेंडिसाइटिस का ऑप्रेषन, 5 फरवरी को जेल से मुक्त हुए, 24 सितम्बर से 21 दिन का

उपवास, बैलगांव कांग्रेस का सभापतित्व।

1925 : 16 जून को देषबन्धु चितरंजन दास का निधन, एक सप्ताह का उपवास, कानपुर कांग्रेस, चर्खा

संघ की स्थापना।

1927 : खादी के पुर्नजीवन के लिए पूरे भारत का भ्रमण, 19 सितंबर को हकीम अजमल खान का निधन।

1928 : साईमन कमीषन, बारडोली सत्याग्रह, 22 अप्रैल को पटना में मगनलाल गांधी का निधन, 17

नवम्बर को लाला लाजपतराय का निधन, नेहरू रिपोर्ट, कोलकाता कांग्रेस में समझौता प्रस्ताव।

1929 : लाहौर कांग्रेस में पूर्ण आजादी का प्रस्ताव पारित।

1930 : 26 जनवरी को पूर्ण आजादी के लिए शपथ, नमक कानून तोड़ने के लिए 12 मार्च को दांडी मार्च

का आयोजन, 5 मई को गिरफ्तारी।

1931 : 4 जनवरी को इंगलैंड में मोहम्मद अली का निधन, 25 जनवरी को गांधी जेल से मुक्त, 6

जनवरी को पंडित मोतीलाल नेहरू का निधन, 4 मार्च को गांधी इर्विन समझोता, 25 मार्च को गणेष शंकर विद्यार्थी की शहादत, दूसरे गोलमेज कांग्रेस में भारत के एक मात्र प्रतिनिधि के रूप में भागीदारी लेकिन दिसम्बर में निराष वापिस लौटे।

1932 : कांग्रेस गैर कानूनी संगठन घोषित, सत्याग्रह पुनः शुरू, जनवरी को गिरफ्तार हुए, 'यंग इंडिया'

और 'नवजीवन' का प्रकाषन बंद हुआ, 20 सितंबर से साम्प्रदायिक अवार्ड के विरोध स्वरूप मृत्यु पर्यन्त उपवास पर बैठे, 24 सितंबर को यरवदा समझौता, 26 सितंबर को उपवास का समापन।

1933 : 8 मई से 21 दिनों का उपवास प्रारंभ, 'हरिजन' साप्ताहिक का प्रकाषन प्रारंभ, जेल से मुक्त हुए

और पुनः गिरफ्तार हुए, एक साल की कैद, 16 अगस्त से मृत्यु–पर्यन्त उपवास शुरू जो एक सप्ताह बाद टूटा, 23 अगस्त को जेल से मुक्त हुए, 30 सितंबर को एनी बेसेंट का निधन, 22 सितंबर को वल्लभभाई पटेल का निधन, वर्धा निवास के लिए साबरमती आश्रम छोड़ा, हरिजन उद्धार के लिए 7 नवंबर से व्यापक दौरा शुरू।

1934 : बिहार भूकम्प, 7 मई को सत्याग्रह स्थगित, सात दिन का उपवास, 26 अक्टूबर को ग्राम उद्योग संघ की स्थापना, बम्बई कांग्रेस।

1935 : भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के 50 वर्ष पूरे (स्वर्णोत्सव)।

1936 : सेवाग्राम आश्रम की स्थापना।

1937 : जुलाई में कांग्रेस की सदस्यता ली, 'नई तालीम' कार्यक्रम की शरुआत हुई।

1939 : 4 जनवरी को मौलाना शौकत अली का निधन, राजकोट में मृत्यु पर्यन्त उपवास जो वायसराय के हस्तक्षेप से 4 दिनों बाद टूटा। त्रिपुरा कांग्रेस, सुभाषचंद्र बोस ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के सभापतित्व से इस्तीफा दिया, 3 सितंबर को दूसरे विष्व युद्ध की शुरुआत, 8 नवंबर को सारे प्रांतों की कांग्रेसी सरकारों ने इस्तीफा दिया।

1940 : 11 अक्टूबर से व्यक्तिगत सत्याग्रह की शुरुआत, विनोबा गिरफ्तार होने वाले पहले सत्याग्रही बने, 'हरिजन' साप्ताहिक का प्रकाषन स्थगित।

1941 : 7 अगस्त को रविन्द्रनाथ टैगोर का निधन, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की सदस्यता छोड़ी, 30 सितंबर को गौ–सेवा–संघ की स्थापना।

1942 : भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस की सदस्यता पुनः ली, 11 फरवरी को श्री जमनालाल बजाज का निधन, क्रिस्प मिषन, हिन्दुस्तानी प्रचार सभा की स्थापना, 8 अगस्त को 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव, 9 अगस्त को भारतीय नेताओं की सामुहिक गिरफ्तारी, 15 अगस्त को महादेव देसाई का निधन।

1943 : आगा खां महल में 21 दिनों का उपवास।

1944 : 22 फरवरी को कस्तूरबा गांधी का निधन, 6 मई को जेल से आजाद हुए, गांधी–जिन्ना बातचीत।

1945 : भारतीय नेताओं को जेल से मुक्त किया गया, प्रथम षिमला कांग्रेस।

1946 : कैबिनेट मिषन, 16 अगस्त से मुस्लिम लीग को 'सीधी कार्रवाई' मिषन की शुरुआत, साम्प्रदायिक दंगे, नोआखोली की पदयात्रा, 12 नवम्बर को मदन मोहन मालवीय का निधन।

1947 : 15 अगस्त को भारत आजाद हुआ, कलकत्ता में शांति के 73 घंटों का उपवास।

1948 : दिल्ली में शांति की स्थापना के लिए मृत्यु पर्यन्त उपवास, पांच दिनां तक चला, 30 जनवरी को शहादत, 'हे राम', 'हे राम' बोले अन्तिम शब्द।